अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

जुलाअी १९६०
वर्ष : ९ अंक : १

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

जुलाई १९६०

वर्ष ९ अंक १

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। असका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. डाक से मंगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का अुल्लेख करें। व्यवस्था सम्बन्धी पत्र व्यवहार प्रबंधक, "नई तालीम" के पते पर और अन्य पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

तीन अुगलिया काम करती हैं। लेकिन दो अगुलिया काट दी जाय तो फिर कैसे लिखना होगा। "मिल-जुल कर काम करो, यह है सर्वोदय की कुजी।"

अुगलियो में अेक विशेषता होती है और वह है, हरेक में अपना-अपना गुण। अेक जो काम करती है, वह दूसरी नहीं कर सकती। धमकाया अेक अुगली से जाता है, दूसरी अुगली में अगूठी पहनते हैं। सब में अलग-अलग गुण हैं। कोई बढई है, कोई कुम्हार है, कोई चमार है, कोई बुनकर है, कोई लुहार है, गावो में ये सब मिलकर काम करे। ये पाच अुगलिया मिलजुलकर काम करे। लेकिन अगर अेक अुगली दूसरी को न छुअे तो काम नही बनेगा। इसलिअे हरेक जातिवाले को आपस में मिल जुलकर काम करना चाहिअे। अेक अुगली कहेगी कि मैं ब्राह्मण, दूसरी कहेगी कि मैं क्षत्रिय, तीसरी कहेगी कि मैं वैश्य और चौथी कहेगी कि मैं शूद्र, तो काम कैसे बनेगा? दूसरी बात है सब का अलग-अलग गुण होता है, अलग-अलग ताकत, वैसे अलग-अलग धन्धे। अेक ही किसानी का धन्धा चले, अैसा नही हो सकता, जुलाहा होना चाहिअे, कपडा भी बनना चाहिये। अुगलिया कट जाय तो कैसे काम चलेगा?

तीसरी बात कौन-सी सीखने की होती है? अेक अुगली छोटी है और दूसरी बडी। लेकिन बडी-छोटी में कम ही अतर है। अैसा नही कि अेक अेक इच की है तो दूसरी अेक फुट की। थोडी कम-बेशी रह सकती है। काटकर बराबर कर दी जाय सो भी ठीक नही है। अेक लखपति है तो दूसरे को दो आने-चार-आने रोज मिलता है। अैसा अगर हुआ तो काम ठीक से नही चलेगा। अगर अुगलिया थोडी-सी कम-बेशी रहती हैं तो इसका नाम है सर्वोदय।

अुगलियो की तरह अगर गाव के लोग चलते हैं तो इसका नाम है सर्वोदय। तब पुलिस कुछ नही कर सकेगी, बनिया कुछ नही कर सकेगा, साहुकार कुछ नही कर सकेगा। चकबदी की बात करते है, पर मैं कहता हू कि जमीन बाट-बाट कर क्यो रखते हो? मिल-जुलकर सारे गाव की रखो तो फिर न चकबदी वाले आयेगें, न अधिकारी, तब गाव वाले स्वय प्रबध कर सकेगे। इसका नाम है सर्वोदय।

सर्वोदय की सबसे बडी किताब है रामायण। राम की कथा रोज शाम को होनी चाहिअे। फिर गाव में किसको दु:ख है और किसको सुख है, यह सोचना चाहिअे। तब आप दु:खी नही होगे। रामजी जिसके साथ हैं, अुसे कोई कुछ नही कर सकेगा। नही तो जो आया सो काटेगा, कूटेगा, पीटेगा। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारो कैसे रहते थे? मिल-जुलकर रहते थ। इस वास्ते सब मिलजुल कर रहें जिससे "दु:ख दाह, दारिद्र्य मिट जाय। गाव-गाव अस होई अनदा।"

"वाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना" वाल्मीकि डाकू थे। "मरा-मरा" कहते थे। राम-राम भी नही कह पाते थे, तो भी अुन्हे ब्रह्म मिल गया।

"अुल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥"

रामजी की कथा चलेगी तो जो पापी हैं सो पुण्यवान बनेंगे, जो पुण्यवान हैं सो भगत बनेंग, जो भगत हैं वे ज्ञानी बनेंगे, जो ज्ञानी हैं वे मुक्त हो जायेंगे। अब कौन कहा है बताओ? समझो कि सब पापी हैं तो भी वे

(शेषांश कवर पृष्ठ तीन पर)

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

जुलाई १९६०

वर्ष ९ अंक १

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। इसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का १७ न. पै. है। चंदा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. द्वारा मंगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चंदा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें। व्यवस्था सम्बन्धी पत्र व्यवहार प्रबन्धक, "नई तालीम" के पते पर और अन्य पत्र व्यवहार सम्पादक "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

तीन अुगलिया काम करती हैं। लेकिन दो अगुलिया काट दी जाय तो फिर कैसे लिखना होगा। "मिल-जुल कर काम करो, यह है सर्वोदय की कुजी।"

अुगलियो में अेक विशेषता होती है और वह है, हरेक में अपना-अपना गुण। अेक जो काम करती है, वह दूसरी नही कर सकती। धमकाया अेक अुगली से जाता है, दूसरी अुगली में अगूठी पहनते हैं। सब में अलग-अलग गुण हैं। कोई बढई है, कोई कुम्हार है, कोई चमार है, कोई बुनकर है, कोई लुहार है, गावो में ये सब मिलकर काम करे। ये पाच अुगलिया मिलजुलकर काम करे। लेकिन अगर अेक अुगली दूसरी को न छुअे तो काम नही बनेगा। इसलिअे हरेक जातिवाले को आपस में मिल जुलकर काम करना चाहिअे। अेक अुगली कहेगी कि मै ब्राह्मण, दूसरी कहेगी कि मै क्षत्रिय, तीसरी कहेगी कि मै वैश्य और चौथी कहेगी कि मै शूद्र, तो काम कैसे बनेगा? दूसरी बात है सब का अलग-अलग गुण होता है, अलग-अलग ताकत, वैसे अलग-अलग धन्धे। अेक ही किसानी का धन्धा चले, अैसा नही हो सकता, जुलाहा होना चाहिअे, कपडा भी बनना चाहिये। अुगलिया कट जाय तो कैसे काम चलेगा?

तीसरी बात कौन-सी सीखने की होती है? अेक अुगली छोटी है और दूसरी बडी। लेकिन बडी-छोटी में कम ही अतर है। अैसा नही कि अेक अेक इच की है तो दूसरी अेक फुट की। थोडी कम-बेशी रह सकती है। काटकर बराबर कर दी जाय सो भी ठीक नही है। अेक लखपति है तो दूसरे को दो आने-चार-आने रोज मिलता है। अैसा अगर हुआ तो काम ठीक से नही चलेगा। अगर अुगलिया थोडी-सी कम-बेशी रहती हैं तो इसका नाम है सर्वोदय।

अुगलियो की तरह अगर गाव के लोग चलते हैं तो इसका नाम है सर्वोदय। तब पुलिस कुछ नही कर सकेगी, बनिया कुछ नही कर सकेगा, साहुकार कुछ नही कर सकेगा। चकबदी की बात करते हैं, पर मै कहता हू कि जमीन बाट-बाट कर क्यो रखते हो? मिल-जुलकर सारे गाव की रखो तो फिर न चकबदी वाले आयेगें, न अधिकारी, तब गाव वाले स्वय प्रबध कर सकेगे। इसका नाम है सर्वोदय।

सर्वोदय की सबसे बडी किताब है रामायण। राम की कथा रोज शाम को होनी चाहिअे। फिर गाव में किसको दु:ख है और किसको सुख है, यह सोचना चाहिअे। तब आप दुखी नही होगे। रामजी जिसके साथ हैं, अुसे कोई कुछ नही कर सकेगा। नही तो जो आया सो काटेगा, कूटेगा, पीटेगा। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारो कैसे रहते थे? मिल-जुलकर रहते थ। इस वास्ते सब मिलजुल कर रहें जिससे "दुख दाह, दारिद्र्य मिट जाय। गाव-गाव अस होई अनदा।"

"वाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना" वाल्मीकि डाकू थे। "मरा-मरा" कहते थे। राम-राम भी नहीं कह पाते थे, तो भी अुन्हें ब्रह्म मिल गया।

"अुल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥"

रामजी की कथा चलेगी तो जो पापी हैं सो पुण्यवान बनेंगे, जो पुण्यवान हैं सो भगत बनेंगे, जो भगत हैं वे ज्ञानी बनेंगे, जो ज्ञानी हैं वे मुक्त हो जायेंगे। अब कौन कहा है बताओ? समझो कि सब पापी हैं तो भी वे

(शेषांश कवर पृष्ठ तीन पर)

शिक्षा से हम क्या चाहते हैं ।

आलडस हक्सली

अिस दुनिया की वास्तविक अवस्था को —जैसे कि हम अुसे जानते हैं—ख्याल में रखते हुअे हमें अपने आपसे अेक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना होगा । जो हम मानते हैं कि प्राथमिक शालाओ में आज स्वय शासन और जिम्मेदारी के साथ सहयोग का प्रशिक्षण बच्चो को दे रहे हैं, माध्यमिक शिक्षा यानी किशोर अवस्था की शिक्षा में भी वैसा प्रशिक्षण चालू रखने मात्र से क्या हम दुनिया की आज की परिस्थिति में, समाज में या समाज के अगीभूत व्यक्तियो के जीवन में भी कोई विशेष परिवर्तन ला सकते है ? व्यावहारिक जीवन ही सब से कारगर शिक्षक होता है । मान लीजिये हम अैसे किशोरो को, जिन्हें स्वयशासन और सहकार की शिक्षा मिली हो, अेक स्पर्धापूर्ण, प्रतिष्ठा लोलुप समाज में छोड देते हैं, तो क्या होगा ? शाला में जो अितने विचारपूर्वक प्रयत्नपूर्ण शिक्षण अुन्हें दिया गया, वह टिकेगा ? शायद नही । बहुत सभव है कि वे लडके कुछ अर्से तक अेक सभ्रांति और कष्ट का अनुभव करेंगे, अुसके बाद अुनमें से ज्यादा तर तो अपने आपको जिन्दगी की वास्तविक परिस्थितियो के अनुकूल बना लेगे । अिससे यही सिद्ध होता है कि जिन्दगी अेक समग्र चीज है और अेक विभाग में वान्छनीय सुधार अपेक्षित परिमाण तबतक नही ला सकेगे जबतक दूसरे विभागो में भी अुसके अनुकूल परिवर्तन न हो ।

मेरा नम्र निवेदन यह है कि अच्छी शिक्षा मात्र ही हमारे सब रोगो के लिअे अमोघ चिकित्सा नही हो सकती है, जैसे कि हममें से कुछ अुत्साहशील लोग दावा करते हैं । या यो कहना चाहिअे कि वह अैसी अमोघ चिकित्सा तभी हो सकती है, जब कि अुसके साथ जिन्दगी के दूसरे पहलुओ में भी अनुकूल परिस्थितिया पैदा करने का प्रयत्न हो । यह सिर्फ अेक कारण और कार्य का प्रश्न नही है, बल्कि अत्यन्त जटिल परस्पर सबधो का—घात प्रतिघातो का—सवाल है । अच्छी शिक्षा तभी पूरी तरह से कारगर हो सकती है जब अुसके साथ अच्छे विश्वास, अच्छी भावनाअें और अनुकूल सामाजिक परिस्थितिया हो और ये विश्वास और भावनाअें अच्छी शिक्षा के बगैर समाधानकारक नही हो सकती हैं । अिसमें सुधार तभी सभव है जब हम अिस दुष्टवृत्त को तोड कर निकल पडेंगे और अुसकी जगह पर अेक अच्छी व्यवस्था कायम करेंगे । हमारे पहले के शिक्षा सुधारको का यह विश्वास था कि सार्वजनिक शिक्षा दुनिया को अिन जजीरो से मुक्त कर देगी, अुसे "प्रजातत्र के लिअे सुरक्षित" बना देगी । लेकिन

वर्ष ९ अंक १ ★ जुलाई १९६०

सत्य को कबूल करनेवाले : सत्याग्रही

सत्याग्रह का अर्थ समझना चाहिये। जो सत्य हमने समझा, उसे कभी न छोड़ें। अड़गा लगाने को, ध्यान खींचने को सत्याग्रह नहीं कहते। सत्याग्रही निश्चय कर ले कि चाहे जितनी तकलीफ आये, सत्य पर अमल करेगा ही। सत्याग्रही बनने के साथ-साथ सत्यग्राही भी बनना चाहिये। अपने पास तो सत्य हो ही, दूसरे के पास भी जो सत्य हो, उसे भी ग्रहण करना चाहिये। सत्यग्राही का अर्थ है सत्य को कबूल करनेवाले। हम जब अपना दिल और दिमाग, खुला रखेंगे, तभी सत्यग्राही बन सकेंगे और सत्याग्रही भी। आजकल सत्याग्रह टालने की बात चलती है। सत्य, प्रेम, करुणा, टालने की चीज नहीं। सत्याग्रह भी टालने की चीज नहीं। इसीलिये तो हम प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर हमें सत्य को ग्रहण करने, समझने और उसपर डटे रहने की ताकत दे।

अब प्रेम की बात लें। सत्याग्रह हमेशा किसी-न किसी के खिलाफ होता है। सत्याग्रह किसी के "खिलाफ" नहीं, किसी के "साथ" होना चाहिये, तभी-सत्याग्रह हो सकेगा।

करुणा का अर्थ है ढूढना। ढूढना यह कि हम से ज्यादा दुःखी दुनिया मे और कौन है? जो भी आदमी अपने से ज्यादा दुःखी दिखायी पड़े उसे ढूढकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करना चाहिये। हमारे एक मित्र बीमार होकर अस्पताल गये। तब से वे खुश रहने लगे। क्या कीमिया हुई? पूछने पर बताया कि अपने वार्ड मे मैंने जब अपने से ज्यादा दुःखी लोगों को देखा तो मुझे ऐसा लगा कि इनके आगे मैं क्या रोऊं? मेरा दुःख घट गया। हमने अपने से ज्यादा दुःखी देख लिया। हम चाहे जितने दुःखी हो, हम अपने से ज्यादा दुःखी को ढूढें और अपनी संपत्ति में से उसे हिस्सा दें। भूखे को खिलायें। रन्तिदेव की कहानी बड़ी प्रसिद्ध है। कितने दिनों के फाके के बाद वह खाने बैठा तो एक भूखा आ गया। उसने अपना भोजन उठाकर उसे खिला दिया।

पानी अपने से नीचे स्तर को ढूढता है। नीचे की ओर दौड़ता है। उसी तरह अपने नीचे को, अपने से दुःखी को ढूढकर उसका दुःख मिटाओ। सत्य, प्रेम और करुणा–इन तीन गुणों को यदि हम प्राप्त करें तो बड़ा काम बनेगा।

—विनोबा

वैर न कर काहू सन कोई

विनोबा

मान लो दो पक्षो में लडाई हुई। जो जीता वह सुखी और जो हारा, वह दु खी होता है। हिरन और शेर में लडाई हुई। हिरन भागा, अिसलिअे बच गया। शेर दु खी और हिरन सुखी। मान लीजिये कि शेर ने हिरन को पकड लिया, तो हिरन दु खी और शेर सुखी। अेक के दु ख में दूसरे का सुख, जगल में यह कानून चलता है। यदि गाव में भी वही चले, भाई भाई के बीच अेक दूसरे को लूटे, तो लूटने वाला सुखी और लूटा गया आदमी दु खी होगा। यह जगल जैसी बात हुई, जानवर जैसी बात हुई। यह अिन्सान की बात नही। सर्वोदय में अैसा नही होता। सर्वोदय में अेक सुखी, दूसरा सुखी, तीसरा सुखी, सब सुखी। सर्वोदय में किसी पर जुल्म, दबाव नही होता।

पाच पाडव थे। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव। ये तो पाच ही, लेकिन सब साथ थे। अिनके खिलाफ कौरव थे। वे सौ थे, फिर भी पाडवो का कुछ नुकसान नही कर सके, क्योकि धर्मराज युधिष्ठिर की बाते सब भाई मानते थे। भगवान ने भी अुनकी मदद की। अिसलिअे कौरव हार गये, पाडव जीत गये। अिस प्रकार गाव में सब मिल-जुलकर रहे तो सर्वोदय होगा।

अेक भाई आया। कहने लगा कि हमको पुलिस सता रही है। दूसरे ने डाकुओ की शिकायत की, तीसरे ने चकबदी की शिकायत की। ये तीनो सही भी हो सकती है और गलत भी हो सकती है। मै आपके हाथ में कुजी देना चाहता हू।

"ताला कुजी हमें गुरू दीनी।
जब चाहो तब खोलो किवरवा॥"

कबीर कह रहे है कि गुरू ने हमारे हाथ चाबी दे दी है। जब चाहे तब हम ताले को खोल सकते है।

अैसी अेक कुजी मेरे पास है, वह सर्वोदय की कुजी है। अगर वह कुजी है तो सब का भला होगा, कोई परेशान नही करेगा। चाहे तो सरकार की ओर से तकलीफ हो, चाहे तो चकबदी की ओर से, चाहे तो पुलिस की ओर से, चाहे तो वकील की ओर से, चाहे तो साहूकार की ओर से, चाहे डाकुओ की ओर से, चाहे गाव और पचायत की ओर से तकलीफ होती हो, अगर कुजी हाथ में है तो सब ताले खुल जाते है। कैसे काम करती है यह कुजी? यह अुगलियो की तरह काम करती है। अुगलिया मिल-जुलकर काम करती है। पाच है बेचारी, पाडव की तरह। मिल-जुलकर काम करती है तो लाखो काम हो जाते है। चक्की पीसना, पानी खीचना, रसोई पकाना, फल काटना, खाना खाना और कपडे धोना, सारे काम इन पाच से होते है। लिखनेवालो की

अैसा नहीं हुआ, अुलटा अिस शिक्षा ने तो दुनिया को अेकाधिपत्य (डिक्टेटरशिप) और सार्वभौम युद्ध के लिअे ही तैयार किया है। कारण स्पष्ट है। आप अेक अैतिहासिक ध्येय को अुसकी अुलटी दिशा में चलने से पा नही सकते हैं। अगर आपका लक्ष्य स्वातंत्र्य और प्रजातंत्र है तो आपको चाहिये था कि लोगों को स्वतंत्र रहने की और स्वयंशासन की कला सिखायें। अिसका अुलटा अगर आप अुन्हें दूसरों के अूपर सत्ता जमाने और विना पूछे आज्ञा पालन करने की कलायें सिखाते तो आप स्वतत्रता और स्वयंशासन के अपने लक्ष्य पर नही पहुंच सकते हैं। अच्छे साध्य कभी अनुपयुक्त साधनों से प्राप्त नही किये जा सकते। सत्य तो अेकदम स्पष्ट है। फिर भी हम अुसके अनुसार काम करने से अिन्कार कर रहे हैं; अिसीलिअे अपने आपको आज की विकट परिस्थिति में पाते हैं।

यह दोनों तरीकों की शिक्षा-अेक स्वतंत्रता और जिम्मेदारी की शिक्षा, दूसरी शोषण और गुलामी की शिक्षा, दोनों ही–पाश्चात्य देशों के तथा कथित प्रजातंत्रों में प्रायः साथ-साथ पायी जाती हैं। फासिस्ट देशों में पहले प्रकार की शिक्षा अेकदम निषिद्ध है। यह विचार करने योग्य बात है कि जर्मनी में १९३५ में वहां की राष्ट्रीय पुलीस ने मॉन्टिसरी सोसायटी का विसर्जन कर दिया था, १९३६ में मुसोलिनी के शिक्षा मंत्री ने इटली में मोन्टिसरी पद्धति की सब प्रवृत्तियां अेक सरकारी हुकुम द्वारा वन्द कर दी थीं। लेनिन के समय में रूस की शिक्षा प्रणाली हर स्तर पर अैसे सिद्धान्तों पर आधारित थी जो डॉ० मान्टिसारी के विचारों से मूलतः साम्य रखते हैं। लेनिन की अधिकार प्राप्ति के अेकदम बाद के शिक्षा संबन्धी सरकारी अैलानों में हमें अैसे वाक्य मिलते हैं—"विद्यार्थी के ज्ञान, योग्यता और आचरण को मार्क देने के तरीके से आकने की पद्धति को अिस आदेश से रद्द किया जा रहा है।.....मेडल और अुपाधियां देने की प्रथा रद्द की जा रही है।... पुराने तरीके का अनुशासन, जो स्कूल के सारे जीवन को दूषित करता है और बच्चे के व्यक्तित्व के स्वतत्र विकास में बाधा डालता है, हमारे काम की पाठशालाओं में नहीं चल सकता है। काम की प्रगति ही अपने आप में अिस आन्तरिक अनुशासन को पैदा करती है, अुसके बगैर सामूहिक और बुद्धिपूर्वक काम असंभव है। स्कूलों में किसी प्रकार का सजा देना मना है। सब परीक्षाअें रद्द की गयी हैं। स्कूल में यूनिफार्म नही पहनना है..."

× × ×

शिक्षा प्रणालियों में अविवेक पूर्ण परिवर्तन करने से लाखों मानव प्राणियों के मानसिक संस्कार जिन्दगी भर के लिअे बिगड सकता है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, वडे होने पर अेक व्यक्ति का आचरण अनिपेध्य और अति-निश्चित रूप से बचपन में डाले गये संस्कारों के अनुसार नही होता है, लेकिन बचपन में जैसे सिखाया गया अुसके प्रतिकूल सोचना और काम करना निश्चय ही मुश्किल होता है। जब सामाजिक परिस्थितियां प्रचलित शिक्षा प्रणाली के अनुकूल हैं तो बाल्य संस्कारो को तोडना नितान्त दुष्कर है।

मनुष्य के बनाये सब साधनों के जैसे खेल के भी अच्छे और बुरे दोनों प्रयोजन हो सकते हैं। सन्मार्ग पर प्रवृत्त होने से वह धीरता,

आदोलन चलाये थे। महात्मा गाधीने स्वराज्य आदोलन का नेतृत्व स्वीकारने के बाद से तो सामाजिक समता, आर्थिक न्याय, सर्वधर्म समभाव आदि तत्वो का राजकीय लोकशाही में समावेश करके अुनका देश में प्रचार किया। पाश्चात्य देशो में भी प्रौढ शिक्षा को जो शुरू में साक्षरता का स्वरूप था, वह आगे चलकर अनुभवो से अपूर्ण और अेकागी महसूस होने के कारण, वहा के शिक्षा शास्त्रियो ने प्रौढ शिक्षा को व्यापक स्वरूप देकर अभी समाज-शिक्षा, यह नाम दिया है।

महात्मा गाधीने शिक्षा विपयक अपने नये विचार अिसी दरम्यान प्रगट किये, और जन्म से लेकर मरने तक के सपूर्ण जीवन को अुन्नत करने का काम शिक्षा का है, यह विचार प्रतिपादित किया। गाधीजी के अिन विचारो ने शिक्षा जगत में अेक बडी क्राति की है। जीवन के सभी अगो का समतोल विकास हो, अैसा वातावरण निर्माण करने की भी जिम्मेवारी शिक्षा और शैक्षणिक आदोलनो ने स्विकारनी चाहिये, यह तत्व हमारे देश में मान्यता पा रहा है।

जीवन के साथ शिक्षा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध

हमारा देश मुख्यत देहातो का बना होने से हमारा शिक्षा विपयक आदोलन ग्रामीण-जीवन-सुधार का आदोलन होना चाहिये। देहाती लोगो के सवाल प्रधानत आर्थिक विकास के सवाल है। लोकतान्त्रिक पद्धति से ग्रामीण जीवन की पुन.रचना याने, ग्रामीण जनता को अपने विकास के लिअे अिच्छायुक्त और अुत्साहयुक्त बनाना चाहिये। जीवन पुनर्रचना के साथ शिक्षा का प्रत्यक्ष सबध जोडना चाहिये, यह सूत्र अब सर्व मान्य होता दिखायी देता है। विद्यार्थी और शिक्षक दोनो ने शिक्षा काल में ही जनता के सर्वांगीण विकास के कामो में प्रत्यक्ष योग दिये बिना शिक्षा में सजीवता नही आयेगी, अिसका भान दिनो-दिन बढता जा रहा है। अिससे भविष्य काल में स्कूली शिक्षा और प्रौढ शिक्षा के बीचका फासला मिटनेवाला है। अिन दोनो शिक्षाओ का मिलन स्वाभाविक दिखायी देता है। अभी समाज-शिक्षा में आर्थिक विकास के आदोलन, सामाजिक समता के सस्कार और सास्कृतिक तथा कलात्मक कार्यक्रम, अिन सब का समावेश किया जाता है। साक्षरता प्रचार के कार्य को गौण स्थान प्राप्त होता जा रहा है, यह शिकायत भी बीच-बीच में सुनाई दे रही है। समाज शिक्षा में लिखाई-पढाई को कम महत्व है अैसा नही। आधुनिक युग में हरेक को लिखना-पढना आना चाहिये, और लिखित साहित्य की मदद से नानाविध ज्ञान स्वय प्राप्त करने की शक्ति हरेक में आनी चाहिये, *अिसमें बिलकुल शका नही।* अिसके लिअे साक्षरता का प्रचार अुत्साह से चालू रखना चाहिये। साक्षरता कायम रखने के लिअे बडे पैमाने पर प्रौढ साक्षरो के वास्ते साहित्य निर्माण आवश्यक है। परतु आधुनिक विज्ञान के द्वारा श्रवण तथा दर्शन के नये नये साधनो का निर्माण होने से वाचन के साथ श्रवण, दर्शनादि साधनो का अुपयोग ज्यादा करना चाहिये। क्योकि श्रवण और दर्शन से मनपर होनेवाले सस्कार शीघ्र तथा परिणाम कारक होते है।

शहरों की ओर होनेवाली अविवेकी दौड को रोकें

समाज शिक्षा याने मुख्यत अपने देश की

ग्रामीण जनता की शिक्षा, अैसा अूपर कहा, अिसका माने शहरो में मेहनत करके जीवन बिताने वाली श्रमजीवी जनता की शिक्षा को महत्व नही, अैसा नही है। लेकिन शहरियो के जीवन में जो अनगिनत सवाल पैदा हुअे है, अुनके कारण देहातो का आर्थिक ढांचा ढह गया है, और शहरो की तरफ जाने की वृत्ति जोर पकड रही है। अिससे अभी शहरो की जनसख्या में बे-शुमार वृद्धि हुअी है। अिस बढती हुअी जनसख्या के कारण शहरो में रहने की जगह, पानी की व्यवस्था, आरोग्य, यातायात की व्यवस्था और रोजगार, ये बडी समस्यायें बन गयी है। शहरों की ओर होनेवाली अविवेकी दौड को यदि हम नही रोक सकें तो शहरो का जीवन अति दुःखमय हुअे बिना रहेगा नही।

अिसीलिअे शहरो के सुधार के लिअे ही सुधारको को ग्रामीण क्षेत्र की ओर बढना चाहिये। ग्रामीण जनता अपने ही क्षेत्र में सादगी से, परतु सुख-समाधान से कैसे रह सकती है, अिस सवाल को हल करना चाहिये। ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र की समाज शिक्षा के स्वरूप में काफी भेद रहेगा। शहरी क्षेत्र में साधन स्वाभाविक ही बडे पैमाने पर अुपलब्ध होते है। अिसीलिअे धधो के लिअे जनता को अधिक योग्य बनाने की शिक्षा प्राप्त कराने की आवश्यकता होती है। बौद्धिक पात्रता बढी तो कार्यक्षमता भी बढती है। बौद्धिक पात्रता बढाने की बौद्धिक शिक्षा के साधन शहरी जीवन में तुरन्त फैलाने की आवश्यकता होती है। अिससे वहा की समाज शिक्षा के कार्यक्रम में साक्षरता प्रचार को महत्व प्राप्त होता है। स्वच्छता, आरोग्य, पडौसी धर्म, अेक दूसरे के साथ बर्ताव करने की आदते आदि में शहरी जीवन में मजदूर-वर्ग पर संस्कार डालने की आवश्यकता होती है। अुसके लिअे विशिष्ट प्रयत्न भी किये जाने चाहिये। बौद्धिक ज्ञान का मेल अिन सस्कारो के साथ बैठा सकते है। मनोरजन के विविध कार्यक्रम भी समाज शिक्षा में दाखिल करना योग्य होगा।

शिक्षा निर्मितिक्षम हो

ग्रामीण क्षेत्र के प्रौढो को शिक्षा देना यानें अुन्हें अपने प्रदेश में स्वावलबन और सहकार से जीना शक्य है, यह दिखा देना है। अिसलिअे अुनकी शिक्षा याने अुत्पादन की शिक्षा है। खेती और अन्य छोटे-छोटे अुद्योग धधो की सुधरी हुअी पद्धति के आधार पर ग्रामीण जीवन पुनर्गठित करना, यही ग्राम शिक्षा का मुख्य प्रयोजन होना चाहिअे। अिस शिक्षा में अुत्पादन का, निर्माण का, सगठन का महत्व का स्थान रहेगा। किताबी शिक्षा गौण होगी। अिससे ग्रामीण जनता की समाज शिक्षा की जिम्मेदारी जिस कार्यकर्त्ता के अूपर रहेगी अुसकी दृष्टि केवल किताबी होने से नहीं चलेगा। अिसमें किताबी शिक्षा का विरोध नही है। लेकिन देहात के लोगो के सवालो के हल सिर्फ शब्दो से नही निकलेगे। ग्रामीणो को जो शब्द पढाया जाय वह निर्मितिक्षम होना चाहिये। अुस शब्द से अन्न पैदा होना चाहिअे, गृहनिर्माण होना चाहिअे, सफाई और आरोग्य की निर्मिति की जानी चाहिअे। अैसा शब्द सिखाने वाले के पीछे जनता खुशी से दौडेगी।

धर्मनिरपेक्ष वृत्ति मिले

भारत के सविधान की रचना लोकतांत्रिक पद्धति के आधार पर होने के कारण लोगो में

लोकतांत्रिक वृत्ति का निर्माण किया जाना चाहिअे । क्योंकि बहुसख्यक मतदाता वर्ग ग्रामीण क्षेत्र में ही रहता है अिस दृष्टि से भी ग्रामीण क्षेत्र के प्रौढो की शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाना चाहिअे । मानव-मानव में सकुचित धर्म भावना से जो भेद निर्माण होते हे, वे सचमुच में अिस सच्चे मानव धर्म को मारनेवाले ही होते है । मानवो के सासारिक प्रश्न समान ही होते है । हरेक मानव को अन्न, वस्त्र, घर, रोगो से बचाव आदि बातो की समान ही आवश्यकताओ की पूर्ति के लिअे जो भौतिक ज्ञान चाहिअे अुसका भी किसी प्रकार से धर्म पथ से सबध नही होता । अिस कारण अैहिक् जीवन के सुख दु खो का विचार करते हुअे धर्म पथ का विचार मन में नही लाना चाहिअे । अैसी शिक्षा से समाज में अैक्य पैदा होने में अच्छी मदद होती है । आपस के सहकार से सामाजिक जीवन समृद्ध हो सकता है । लोकतांत्रिक सविधान अमल में लाने के लिअे धर्मनिरपेक्ष वृत्ति समाज में गहरी बैठान की आवश्यकता है,।

वैसा देखा जाय तो सभी धर्मों में जो महान साधु-सत पैदा हुअे हैं, अुन्होने पथ निरपेक्ष मानव प्रेम का ही अुपदेश किया है । सभी धर्म पुरुष अुदात्त प्रेमभावना का ही प्रसार करते हे । अपने आचरण से वे सामान्य जनता में प्रेम और त्याग की मिसाल पेश करते हें । लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि अिन धर्म पुरुषो या साधुपुरुषो के नाम से पथ निर्माण किये जाते हे । और अुन पथो का हठ पकडकर प्रेम के विपरीत द्वेष और सशय का प्रचार किया जाता है । धर्मों के अितिहासो में से यह समाज विघातक हिस्सा अब जनता को स्पष्ट करके दिखाने का समय आया है । महाराष्ट्र के साधु सतोने "विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म" विष्णुमय जग वैष्णवो का ही धर्म यह दृष्टि हमें दे रखी है । अुसी का आधार लेकर विशुद्ध मानव-प्रेम का प्रसार हम कर सकेगें ।

स्व की श्रेष्ठता हटे

हिन्दू समाज को विभिन्न जातियो ने चीर डाला है । अिन जातियो में अपने को श्रेष्ठ समझने की और दूसरो को हीन मानने की शिक्षा परपरा से दी जाती है । यह अति दुष्ट प्रथा है । लोकतांत्रिक समाजनिर्मिति के लिअे अिस प्रथा का सपूर्णतया अुच्चाटन किया जाना चाहिअे । रक्त शुद्धि और वश शुद्धि की कल्पना दुनिया के सभी समाजो में चलती आ रही है । लेकिन मानव प्रेम की दृष्टि से देखा जाय तो यह कल्पना अत्यत त्याज्य है । आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से तो ये कल्पनायें सपूर्णतया अशास्त्रीय साबित हुअी हैं । अिसी-लिअे वर्तमान दुनिया की सब सुजान विचार-धारायें अिन कल्पनाओ के विपरीत हे ।

अस्पृश्यता का निवारण

अस्पृश्यता हमारे समाज का भयकर शत्रु है । अुस विचार को धर्म का आधार देकर हमारे पूर्वजोने बहुत बडा नुकसान कर छोडा है । अस्पृश्यता की कल्पना को सच्चे धर्म की जड में ही विरोध है । सभी मानव यदि अीश्वर की सतान हे तो अुनमें स्पृश्य-अस्पृश्यता कैसे रह सकती है । हमारे साधु-सतोने भी भेदाभेदभ्रम अमगल, अैसा कहा है । लेकिन सामाजिक अस्पृश्यता का व्यवहार से सपूर्णतः लोप करने

का आदेश वैदिक धर्म के अनुसार चलने वाले साधु सतोने भी स्पष्ट तौर पर नही दिया था। तथापि अेकनाथ जैसे थोर अत.करण के सत्पुरुषोने और बौद्ध, जैन, लिंगायत, महानुभाव अित्यादि सब अवैदिक पथो के साधुओंने अस्पृश्यता का व्यवहार में निषेध किया है। आधुनिक काल में अस्पृश्यता मानना यह जगलीपन ही समझा जाता है। गाधीजी ने अस्पृश्यता का अपने प्राणो की बाजी लगाकर विरोध किया और स्वतत्र भारत के सविधान ने *अस्पृश्यता को गैर-कानूनी घोषित किया है।* तो भी प्रत्यक्ष व्यवहार और खास करके देहातो से अस्पृश्यता का अभी तक निर्मूलन नही हुआ है। अस्पृश्यो को सार्वजनिक कुओं पर अभी तक देहातो में पानी भरने की अिजाजत नही है। स्पृश्य समाज की ओर से अुन पर हो रहा यह जुलम तुरंत रोकना चाहिअे। देहातो के प्रौढो को–विशेषत. स्पृश्य समाज को–अस्पृश्यता निवारण के तत्व समझाने का काम समाज शिक्षा का होना चाहिअे।

अन्धविश्वास को हटाना है

अपने देश में सुख साधनो का निर्माण बढते हुअे पैमाने पर होता है। तो भी, विज्ञान की निष्ठा से अुपासना करने की वृत्ति अभी तक दृढ नही हुअी। अिसका कारण हमारे मन मध्य-कालीन सकुचित समझ पर ही पोसे हुअे हैं। *मत्र-तत्र, जादूटोना, भूतों-खेतो की फाजिल बातें,* फलज्योतिषपर विश्वास, वैरागियो के चमत्कारो पर लाचारी से रखा जानेवाला विश्वास ये सब बाते बौद्धिक कमजोरी के लक्षण हैं। अपने राष्ट्र को अिन बौद्धिक कमजोरिओ से तुरत छुडा देना चाहिअे। अिसके विना हम लोग कोई भी अैहिक पुरुषार्थ साध नही सकेंगे। प्रयोगशीलता, वुद्धिद्वारा स्पष्ट किन्ही भी चमत्कारो के आगे गर्दन न झुकाने की हिम्मत आदि सद्गुण अपनी जनता में रूढ करने का हमें दृढ प्रयत्न करना चाहिअे। समाज शिक्षा के कार्यकर्ताओ को अिन प्रश्नो की ओर विशेष दक्षता और आस्था से ध्यान देना चाहिअे।

आर्थिक समता की आवश्यकता

विज्ञान से तैयार हुअी तत्रविद्या से मानव की अुत्पादन शक्ति अजस्र प्रमाण में बढाये जाने के कारण दुनिया में अिसके बाद किसी को भी गरीबी में पडे रहने की आवश्यकता नही रही। विज्ञान युग के पूर्व दुनिया भर में सपत्ति, सुख और सस्कृति यह मुट्ठी भर अूचे वर्गों के ही हाथो में सचित रही थी। यह विषमता ओश्वरकृत ही है, अैसी सब की दृष्टि थी। विज्ञान ने यह दृष्टि अब पूर्णतया झूठी साबित की है। भगवानने मानव को निर्मित किया होगा, लेकिन सपूर्ण समाज रचना मानव ने ही निर्माण की है यह अभी दुनिया के सभी विचारवानो को मान्य हो रहा है। अपने देश में भी सभी प्रकार की विषमताओ को भगवान और धर्म के आधार दिये गये थे। अुन सस्कारो की पकड हमारे लोगो के मन पर अभी भी मजबूत बनी हुअी है। शिक्षा के द्वारा भारतीय मन को अिस पकड से जल्दी-से-जल्दी मुक्त करना चाहिअे। *मानव तितुका अेकची आहे,* (मानव अुतने सभी अेक ही हैं), अैसी घोषणा हमारे चारो ओर गूजनी चाहिअे। आर्थिक विषमता दूर हुअे बिना सास्कृतिक विषमता दूर नही होगी। अिसलिअे सामाजिक समता की रुचि रखनेवाले सभी लोगो को आर्थिक

विषमता नष्ट करने के प्रयत्न आस्था से करने चाहिये। पुराने जमाने में भगवान के नाम का जय-घोष करने वाले लोग भी प्रत्यक्ष आर्थिक व्यवहार में दुर्बलो का शोषण करते थे। आज काल्पनिक भगवान का नाम-घोष रोककर सहकारी तरीको से समाज कल्याण के लिये सारे आर्थिक व्यवहार नियोजित किये तो सुखी और समाधानी समाज का निर्माण सहज कर सकेंगे। और सारा समाज संस्कृति के अेक अुच्च स्तर पर आसानी से चढ सकेगा।

शिक्षा का कर्तव्य

यह काम शिक्षा द्वारा ही करना है। संपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक व्यवहार सहकारी तरीको से और समाज-हित की प्रेरणा से कैसे चलायें, यह दिखानेवाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। गाधीजी की प्रेरणा से जीवन-शिक्षा का नया विचार शुरू हुआ है। शिक्षा और जीवन, इनका संपूर्णतया संबध जोडने की दृष्टि इस शिक्षा पद्धति ने अपनायी है। कई सालो के अनुभवो के अवलोकन से मुझे महसूस होने लगा है कि गाधीजी की विचार-पद्धति तरुण तथा प्रौढो के शिक्षाक्रम में सफलतापूर्वक अपनायी जा सकती है। क्योकि प्रौढो के जीवन में अुठनेवाले सवालो को हल करने की शक्ति प्राप्त हुअी होती है। अुनके जीवन में अुस तरह के प्रयासो की आवश्यकता हर घडी पैदा होती है। सारा ग्रामीण जीवन अेक इकाई मानकर प्रौढ अपने सारे व्यवहारो का नियोजन कर सकेंगे। ग्रामीण जीवन की संपूर्ण पुनर्रचना करने का समय अभी इस देश में आ गया है। खेती-ग्रामोद्योग, इनकी पुनर्रचना सहकारी तत्वो के आधार पर किये बिना यह लाभदायी नही होंगे। अैसी संगठनायें देहातो-देहातो में शुरू करना, यह प्रौढ शिक्षा का सफल माध्यम हो सकता है। ये संगठन खडे करते समय ही, अुसके लिये आवश्यक बौद्धिक ज्ञान ग्रामीण जनता को दे सकेंगे। और सहकारिता तथा समाजहित की वृत्ति का पोषण भी प्रत्यक्ष में होगा। प्रेम, सेवा, त्याग आदि गुणो का शब्दो द्वारा कितना भी अुपदेश दिया तो भी अुसका प्रचार नही होता। यह अबतक सबका अनुभव है। केवल बौद्धिक विचारो से मनुष्य दयालु और सहिष्णु नही बन सकता। हमारे देश में आज पाश्चात्य शिक्षा के नये संस्कार लेकर तैयार हुअे लोग बौद्धिक वादविवाद में तथा आदर्श समाज कैसा हो, आदर्श मानव कैसा हो, इसकी शाब्दिक तस्वीरें खीचने में निपुणता प्राप्त कर चुके हैं। परतु इनके व्यक्तिगत व्यवहार में विशिष्ट प्रकार का त्याग या अुदारता का दर्शन नही दीखता है। जीवनावश्यक सारे व्यवहार जब अेक दूसरे के सहारे से चलने लगेंगे तभी प्रेम, सहिष्णुता आदि गुणो का वृत्ति में अुदय होगा। समाज शिक्षा के कार्यकर्ता यदि यह दृष्टि स्वीकार करेंगे तो शिक्षाशास्त्र को व्यावहारिक दृष्टि से सफल करने का श्रेय प्राप्त होगा।

"ग्रामीण शिक्षण" (मराठी) से साभार

सुखराज सिंह

बीज कैसे उगते हैं ?

दूसरी कक्षा । बालको की अुम्र सात से साढे नौ के बीच ।

बरसात का मौसिम प्रारभ हो चुका था । ज्वार के खेता में बोनी का काम समाप्त होने को आया था । किसी किसी खेत में अकुर भी निकल चुके थे । हमारी पाठशाला से लगे हुअे खेत में तो पौधे अेक अेक बालिश्त के हो गये थे ।

शाला के खेत में बोनी का काम दो-तीन दिन पहले ही पूरा हुआ था । शाला के बडे बालको ने खेत की तैयारी इत्यादि सभी काम बडे अुत्साह के साथ किये थे । बीज बोने के काम में इन नन्हे बालको के लिअे कोई काम नही था । इसलिअे अुनके वास्ते पाठशाला के अहाते में ही छोटी-छोटी कुछ क्यारिया दे दी थी, जिनमें अुन्होने हाथ से ज्वार बोई । खूब मजा आया ।

बीज कैसे अुगते हैं ? काच का ग्लास और साधारण ब्लॉटिंग कागज से किया गया प्रयोग ।

अशोक सात साल का है । बीज बोने के बाद जब हम हाथ धोकर वर्ग की तैयारी के लिअे जा रहे थे तो अुसने पूछा, "गुरुजी, बीज कैसे अुगते हैं ?" बडा अच्छा प्रश्न था, किन्तु क्षणभर के लिअे मैं विचार में पड गया और सोचने लगा कि किस तरह बालक की इस जिज्ञासा को पुरा करू । अगर किसी प्रकार बच्चो की आखो के सामने बीजो का अकुरित होना, अुनमें पत्ते फूटना और अुनका पौधो का स्वरूप ले लेना स्पष्ट दिखाया जा सके तो वही प्रश्न का अुचित अुत्तर होगा ।
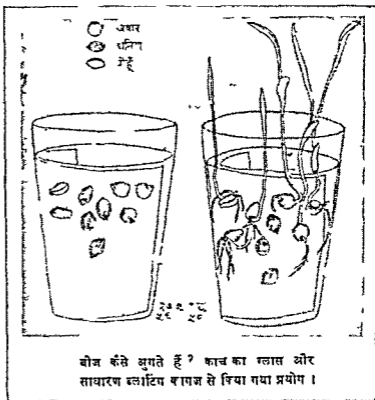
हमारे गाव की छोटी-सी शाला में विज्ञान की प्रयोग शाला के कुछ भी सामान नही थे । अेक बार मैने अेक वनस्पतिशास्त्र की प्रयोग-शाला में देखा था कि बीजो के अकुरित होने

के प्रयोग काच के बर्तनो में किस प्रकार किये जाते है। यह बात मुझे याद आ गयी। बच्चे जब वर्ग के लिअे चले गये तो अशोक का प्रश्न सबके सामने रखा और बताया कि बीज कैसे अुगते है, यह प्रत्यक्ष आखो से देखेंगे।

पाठशाला में कुछ काच के ग्लास हैं। अुनमें से अेक मगाया। ग्लास ५ इच अूचा था। अेक टुकडा साफ स्याही-सोखते (ब्लाटिंग कागज) का ३" × १०" का काटा। बालको से पूछा कि वे कौन-कौन से बीज अुगते हुअे देखना चाहेंगे। अुन्होने कहा—ज्वार और गेहू। मैंने अुसमें धनिया और जोड दिया। ज्वार तो शाला में था, क्योंकि बोने के लिअे रखा गया था। अशोक दौडकर अपने घर से गेहू ले आया और अेक बालक धनिये के कुछ दाने।

होशियारी के साथ मैंने तीनो प्रकार के ५-५, ६-६ बीज ग्लास की दीवार और स्याही-सोखते के बीच में फैलाकर रख दिये (ब्लाटिंग कागज को गोल करके ग्लास की दीवार के साथ-साथ चिपका-सा दिया था। देखिये साथ का चित्र) बीज सजाने के बाद ब्लाटिंग को भिगो दिया और ग्लास में थोडा पानी भी डाल दिया (लगभग आधा इच) जिससे कि कागज भीगा रहे और बीजो को सीलन मिलती रहे।

बालक यह तमाशा देख कर असमजस में पडे जा रहे थे। अुन्होने सोचा था कि गुरुजी ने बीज रखे कि फौरन अुनमें से पौधे फूट निकलेगे। जब मैंने ग्लास स्टूल पर रखा तो अशोक अुसमें आखें गाडकर कहने लगा—"गुरुजी कुछ तो नही हुआ।" "अरे भाई अितनी जल्दी नही होगा। अुसे तो समय लगेगा।" -मैं अुन्हे अिसका बिलकुल भी अन्दाज नही देना चाहता था कि वे कितने दिन में अकुरित होगे और कितने दिन में पौधे बनेंगे। वे प्रकृति के अिस चमत्कार का पर्यो न स्वय ही शोध करें।

सुबह की शाला समाप्त हुई, बच्चे भोजन के लिअे चले गये। दोपहर में फिर दो बजे वर्ग शुरू हुआ। कक्षा के सारे बालक गये अुसी ग्लास के पास। सबने बडी निराशा से कहा, "कुछ भी तो नही हुआ।" अुस दिन तो कुछ नही हुआ। निराशा और भी बढ गयी। किन्तु अशोक दौडा दौडा आया और कहने लगा "गुरुजी बीज मोटे हो गये।" हमने सूखे बीजो के साथ तुलना की तो देखा बीज फूल गये हैं। कुछ बालको को लगा कि हाँ, कुछ तो हो रहा है। दो-दो तीन-तीन घण्टे में बालक जाते और ग्लास में कुछ परिवर्तन हुआ या नहीं यह देखते।

तीसरे दिन किसी-किसी को दीखा कि ज्वार के दानो के अेक तरफ सफेद-सफेद कुछ रूई जैसा अुगा है। चौथे दिन ज्वार में से अकुर निकले। अेक आकाश की ओर और अेक धरती की ओर। बडी चर्चा चली, नन्हें-नन्हें वैज्ञानिको में। अेक पौधे के पत्ते और डठल बनेगा। और अेक जडें।

गेहू में चौथे दिन पहला परिवर्तन दीखा। धनियो में पाचवे दिन भी कुछ नही हुआ था। बालको ने खूब प्रश्न पूछे। दस दिन में गेहू व ज्वार के तो अच्छे पौधे ही बन गये थे। धनिया भी अुगने लगा था। बच्चो में जो जिज्ञासा पैदा हुअी अुसका कोअी ठिकाना नही। अलग-अलग बीज अलग-अलग समय लेते हैं, क्यो लेते हैं अित्यादि बडे बडे वैज्ञानिक प्रश्नो पर बहस मुबाहसा हुआ। अगर हमेशा सचेत रहा जाय और आखें खुली रखी जाय और साथ-साथ अध्ययन करते रहे तो बालको को सामान्य विज्ञान खेलते-खेलते सिखाया जा सकता है। "प्रयोग शाला" न रहे तो भी साधारण वस्तुओ का सुन्दर अुपयोग करके भी काम चलाया जा सकता है।

बेलगांव में ग्राम सुधार का काम

देवी प्रसाद

जब पता चलता है फलानी जगह स्थानिक नागरिकों नें अपने पराक्रम से कुछ लोकशिक्षा और विकास का काम किया है, तो स्वाभाविक ही अुसके बारे में अधिक जानने की अिच्छा होती है । हमें पता चला कि जिला चांदा की वरोरा तहसील में बेलगांव नाम के गांव में अैसा कुछ काम हुआ है तो हम तीन-चार साथी अुसे देखने के लिअे गये । जो कुछ देखा सुना और अनुभव आया वह अिस प्रकार है ।

बेलगांव अिस क्षेत्र के औसत गांव जैसा ही है । अिसकी आबादी लगभग १००० है और परिवारों की सख्या १६० है । ये लोग अपने गाव को सुधारने के काम में पिछले ३ वर्षों से लगे हुअे हैं । दरअसल बेलगांव की विकास प्रवृत्तियों का अितिहास वहा के प्रतिष्ठित परिवार के अेक नवयुवक की कहानी है। सेवा वृत्ति वाले ये भाई खेती-शास्त्र में अेम. अे. करने के बाद सोचने लगे कि क्या काम किया जाय । नौकरी करना नही चाहते थे । चाहते यह थे कि अुनका जीवन आध्यात्मिक ढग का हो । अिसलिअे कई स्थानों पर गये और अनुभव लिया । किन्तु आखिर में जब आनन्द-वन (कुष्ठ आरोग्य केन्द्र-वरोरा) के श्री आमटे ने अुन्हे कहा कि ग्राम सेवा में ही मनको सन्तोष मिलेगा तो अुन्हें बात जंच गयी और वे अुसमें लग गये । अुनका गांव अुनकी बात सुनेगा, यह सोचकर अुन्होने अपना कार्य क्षेत्र बेलगांव ही चुना ।

अिन भाई का अब तक विश्वास रहा है कि अगर हमारे गावों की जनता की आर्थिक अुन्नति हो जाय तो समस्या हल हो जायगी । अिसलिअे अुन्होंने पहले लोगों को काम मिले, अिसके लिअे योजना बनायी ।, साथ-साथ यह भी आवश्यक था कि पूजी का अिन्तजाम किया जाय । अुन्होने गांव की अेक जमीन को खरीदने का तय किया । अिसके लिअे पैसा कहां से लाया जाय । गाव के लगभग पचास लोग अपनी-अपनी जमीनो पर जिला कोऑपरेटिव बैंक से कर्ज ले आयें, यह योजना बनायी गयी । यह रकम अुस ९० अेकड जमीन को खरीदने और अुसके अूपर के खर्च के लिअे काफी हो गयी । २१,००० रुपये में ग्राम विकास मंडल ने जमीन खरीद ली । जब अिस कर्जे को लौटाने का वक्त आया तो वर्ष के अुत्पादन के द्वारा आधे लोगों ने लौटाया और कुछ ही दिनो के बाद अगले वर्ष के लिअे और कर्ज ले लिया, जिसको लेकर दूसरे आधे लोगो ने पिछला कर्ज लौटा दिया और कुछ दिनो के बाद फिर से अगले वर्ष के लिअे कर्ज ले लिया । बेलगांव के ग्राम विकास कार्य की विशेषता यही है कि बिना पूंजी के के अुन्होने अपना काम किया है ।

अुनके सामने अेक प्रश्न था कि बैंक अगर पैसा न दे तो क्या होगा ? यह सभी जानते हैं कि आम तौर पर ये को-ऑपरेटिव बैंक चाहे गावो को सहायता करने के लिअे ही क्यो न हो, पर गाव की जनता को अुनसे पूरा-पूरा लाभ नही मिल पाता है । अिन्होने अुस समस्या का हल बैंक पर अपना कब्जा कर लेने से किया । अिस वर्ष जब कि बैंक-कमेटी का चुनाव होता है तो खूब प्रचार कर वे सब-के सब सदस्य अपने अनुकूल ही अैसे चुन लिअे । अब बैंक अुनके प्रभाव में आने के कारण काम में सुविधा हुई है । अुनकी योजना है कि अुस क्षेत्र के किसानो को कर्ज घर बैठे मिले और ठीक समय पर मिले ।

यह सब किस हद तक योग्य है, अिस प्रश्न पर शका होती है । क्योकि अगर ग्रामनिर्माण का कार्य करने वाले लोग चुनाव आदि मामलो में फस जायेंगे तो वे कहा तक पार्टीबाजी से मुक्त रह सकेगे । और जिस तरह की पक्ष-हीन समाज निर्माण करने की कल्पना है, वह कहा तक सफल होगी ।

श्री पद्मावार से, जिनकी मेहनत से यह कार्य हो रहा है, हमने पूछा कि विकास कार्य प्रारम्भ करने के पहले की स्थिति में और आज की स्थिति में वे क्या अतर महसूस कर रहे हैं । अुन्होने निम्नलिखित बाते बतायी ।

१ पहले से अब अुत्पादन में वृद्धि है । २ पहले गाव में अनाज कम था, अब अनाज में वह स्वावलम्बी है । मजदूर भी पूरा साल पेटभर खाता है । ३ लोगो के पास काम पूरा नही था, अब सब को पर्याप्त काम मिलता है । ४ लोगो में आत्मविश्वास था ही नही, अब अुनमें वह कुछ मात्रा में निर्मित हुआ है । ५ बच्चो की शिक्षा की कमी थी, गाव में अब शाला होने के कारण अिसके लिअे सुविधा हुई है । खास तौर पर लडकियो को शिक्षा का मौका मिल रहा है ।

गाव की आम भलाई के लिअे कई अच्छे काम लोगो ने श्रमदान से और जो-जो सुविधायें विकास खण्ड और अन्य मार्गों से मिल सकती हैं अुनसे करा लिये हैं ।

तालाब-अेक पुराना तालाब था । अुसे सुधार कर और अुस पर दो पक्के घाट बनाकर मजबूत कर लिया है । अुससे बडा लाभ यह हुआ है कि गांव के कुवो में पानी काफी होने लगा है । यह गाव हमेशा पानी की तगी महसूस करता रहा है ।

आटा धान चक्की-ग्राम विकास मडल ने गांव का आटा पीसने के लिअे अेक चक्की बैठायी है । अुसका मुनाफा ग्राम विकास मडल को जाता है । अिसी में धान भी कूट लेते हैं । (यह गाव धान भी पैदा करता है)

पानी की टकी-यह अेक बडी सुविधा गाव वालो को मिली है । चक्कीवाले तेल के अेंजिन के द्वारा अेक कुअें से पानी २५ फिट अूची टकी में जाता है और वहा से नल गाव के अलग-अलग क्षेत्रो में जाता है । कुल लगभग चालीस-नल गाव में लग गये हैं । अुनमें से १९ व्यक्तिगत घरो में जाते हैं और बाकी सामूहिक तौर पर लगाये गये हैं । घरो में नलका लेने वालो को ३ रुपया माहवार खर्च देना होता है । जिस क्षेत्र में ग्राम विकास मडल ने नल आम स्थानो में लगाये हैं, वहा के लोग प्रति परिवार अेक रुपया माहवार देते हैं ।

अम्बर चर्खा

पानी के लिओ लोगों का खर्च बढा तो अुन्होंने अुस खर्च को किसी प्रकार मेहनत करके निकाल लेना है, अिस विचार से घरों में अम्बर चर्खे की शुरूआत की । पिछले साल से २५ चर्खे चलते आ रहे हैं। हाल ही में और २५ चर्खे बढाये गये हैं । प्रति परिवार औसत १० रुपये प्रति माह अुसके द्वारा आमदनी हो जाती है। खादी कमीशन की ओर से अेक भाई अम्बर परिश्रमालय चला रहे हैं।

सडकें

जैसा कि हर गांव में होता है, सडकें कहीं चौडी और कहीं संकरी होती थीं। हमारे ये नवयुवक मित्र भी शौकीन हैं और क्योंकि अुन्हें गांव की यह बाजू अखरती रही, अुन्होंने अेक सिलसिला सडकें चौडी करने का जारी किया। जहां आवश्यकता थी लोगों को समझा बुझाकर आंगन आदि का हिस्सा सडकों में ले लिया गया। कहते हैं कि अिस बात के लिअे अुन्हें सबसे अधिक कठिनाई पेश आयी । कई मौकों पर लोगो को समझाना कठिन होता था। गांव के चारों तरफ लगभग अेक मील लम्बी सडक का निर्माण अुल्लेखनीय है । अुस जगह पहले बरसात में गांव के जानवर दलदल में फंस जाया करते थे, अितना कीचड होता था।

गलियां

सडकों की दोनों ओर पत्थर की नालियां बनायी जा रही हैं । अिससे, अुनका ख्याल है कि बरसात का पानी और गांव का गंदा पानी बाहर निकल जायगा ।

घर-घर में नींबू के पेड

यह अेक बडी सुन्दर परंपरा वहां शुरू हुई। लोग अपने आंगनों में कम-से-कम अेक नींबू का पेड लगा रहे हैं। अगर नींबू को ठीक ढंग से लोग अपने भोजन में अिस्तेमाल करेंगे तो हमारे भोजन की अेक बडी कमी को वह पूरी करेगा।

स्कूल

सरकारी मदद और गांव के श्रमदान से वहां चौथी कक्षा तक की अेक शाला खुली है। गांव वाले अिसे अेक बडी देन मानते हैं।

गोशाला

विकास मंडल की खेती के काम के साथ-साथ-अेक गोशाला की शुरुआत भी हुई है। दूध का अुत्पादन शुरू हुआ है, किन्तु अैसा पता चला कि अुसको खरीदकर कोई पीना नहीं चाहता, हालांकि ग्राम विकास मंडल अुसे पांच आने सेर (खर्च की कीमत से भी कम) के हिसाब से बेचने के लिअे तैयार है।

पिछले चार वर्षों में कुल मिला कर जो खर्च मंडल ने विकास कार्यों और खेती पर किया है अुसका मोटा हिसाब इस प्रकार बताया गया :

कार्य	खर्च रुपये
१. सडक निर्माण (अेक मील)	६०००
२. पाठशाला की इमारत	५५००
३. व्यायाम मंदिर	१५००
४. तालाब : खुदाई :	६०००
५. पानी योजना	२५०००

कार्य	खर्च
६. तालाब : घाट बनाने :	२५००
७. पंचायत घर	४०००
८. नालियां : सडको के किनारे :	४०००
९. सांड	६५०
१०. कुओं की मरम्मत	५००
११. बालवाडी के साधन	४००
१२. नीबू आदि के पौधे	१००
१३. वाचनालय	३५०
१४. डी. डी. टी. छिडकने की मशीन	२३५
१५. दवा पेटियां और अन्य सामान	४००
कुल रुपये	५७१३५

इस रकम में से ६०५० रुपये का काम श्रमदान के रूप में हुआ और १७६५० रु. की मजदूरी गाववालो को मिली।

खेती पर खर्च	रुपये
१. जमीन : ९० अेकड :	२१०००
२. बांध बांधना	६०००
३. बैल घाट बनाना	१५००
४. भूमि सुधार	२०००
५. तीन जोडी बैल	२०००
६. अन्य	२०००
कुल	३७०००

इसमें से ८७०० रुपये का काम गाववालो को मिला।

जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है, श्री पद्मावार की मुख्य प्रेरणा आर्थिक सुधार ही रही है। और जहां तक आर्थिक विकास का प्रश्न है बेलगांव अपने क्षेत्र के अन्य गांवों से आगे बढ चुका है। दूसरे गावों के लोग वहां देखने आते हैं और हमें यह बताया गया कि वे भी अपने गावों में अिस प्रकार के सुधार करने की अिच्छा प्रकट करते हैं। जो मुख्य बात बेलगाव के विकास कार्य को देखकर महसूस होती है वह यह है कि भौतिक विकास के पीछे सामूहिकता का आदर्श जब तक नही होगा तब तक केवल आर्थिक अुन्नति गांव में सच्चे सुख की नीव नही डाल सकेगी। वह आर्थिक विकास, जिसमें आधार व्यक्तिगत हो, आखिर में चलकर पूजीवादी संबध कायम करता है। ग्रामदान के सिद्धातों के आधार पर ग्रामविकास और विकास खण्ड के ग्राम विकास में जो फर्क है वही समझने की आवश्यकता है। किसी भी विकास कार्य की समीक्षा अित अेक दो प्रश्नो के द्वारा होनी चाहिअे—विकास कार्य के द्वारा क्या ग्राम परिवार की नीव पडने में सहायता मिल रही है? ग्राम विकास कार्य के द्वारा लोगो का अपना पराक्रम और पुरुषार्थ पैदा हो रहा है? ग्राम विकास कार्यों की प्रक्रिया क्या अैसी है कि अुससे स्थानिक लोकतान्त्रिक नेतृत्व पैदा हो रहा है? ग्राम विकास कार्य के द्वारा क्या अुत्पादन के साधन व्यक्तिगत न रहकर समाज के हों, यह दृष्टि लोगो में पैदा हो रही है?

बेलगाव के विकास कार्य को आज शक्ति चाहिअे अेक अैसे आदर्शवाद की जिससे कि बेलगाव में फ्यूडल और पूजीवादी परम्पराओं की जडें ढीली पडें और वहा की जनता अपना आर्थिक स्तर अुठाने के साथ-साथ पारिवारिक भावना निर्माण कर सके। बेलगाव को आज बुद्धिशाली और क्षमतावान अुत्साही नेतृत्व मिला है और हमें पूरी आशा है कि वह गांव अपने अिस कार्य को धीरे-धीरे ग्रामदान के सिद्धातों की दिशा देने में समर्थ होगा।

गांधी ग्राम और नई तालीम

श्रीनिवासन

गांधीग्राम का जन्म और विकास दक्षिण में नई तालीम का आरंभ और विकास माना जा सकता है। पूज्य बापूजी के मार्ग दर्शन के आधार पर आसपास के गांवों का सुधार और अुन्नति ही गांधीग्राम का अेक मुख्य अुद्देश्य है। गांधीजी ने जो रचनात्मक काम हमारे सामने रखे, अुन सबों का समावेश नई तालीम में है। अिसलिअे यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज की समाज रचना में जो बुराअियां और विषमतायें है, अुनको दूर करने के लिअे अेक मात्र अुपाय नई तालीम का प्रसार है। अिस काम में १९४७ में गांधीग्राम ने पहला कदम अुठाया। आसपास के गावों के बच्चों के लिअे अेक छोटी-सी बुनियादी शाला स्थापित हुई। आज तेरह साल की अवधि में यह छोटी सी, बुनियादी शाला दिन-ब-दिन बढते हुअे काफी विकास कर चुकी है। अब यहां पूर्व बुनियादी, बुनियादी और अुत्तर बुनियादी नामक तीन विभागों में नई तालीम का काम चल रहा है। हम यहां अुत्तर बुनियादी विद्यालय के बारे में कुछ जानकारी पेश करेंगे।

उत्तर बुनियादी शाला

हमारी अुत्तर बुनियादी शाला अेक अैसी प्रवृत्ति का नमूना अुपस्थित करती है, जो हमेशा विकासशील है, और जिसकी आगे अुन्नति भी करनी है। हम हर साल अेक के बाद अेक ग्रेड जोडते गये। १९५५ में हमारी बुनियादी शाला पक्की बनी थी। आठ साल की बुनियादी शिक्षा पाये हुअे जो विद्यार्थी निकले अुनके आगे की पढाई के लिअे क्या किया जाय? यह समस्या अुत्पन्न हुई। आठ साल तक ये छात्र-छात्रायें हमारे साथ रह चुके है। नई तालीम के क्षेत्र में हमारे प्रयोग तथा प्रयत्नों का फल ये ही हैं। साधारणतया अिनको भी अन्य हाईस्कूलों के चौथे फारम में भर्ती किया जा सकता था। अैसा करने पर अुस अजस्र प्रवाह के साथ बहकर ये भी अुसी में विलीन-हो जाते। लेकिन यह बात नही होने की थी। अिस बीच हमको भी विश्वास हो गया कि आठ साल की बुनियादी शिक्षा अवश्यंभावी अेव अनिवार्य है। स्वयं हमारे विद्यार्थियों में भी अुत्तर बुनियादी शिक्षा पाने का अदम्य अुत्साह भरा था। हम अिस नई जिम्मेवारी को अुठाने से जरा हिचकिचाते तो रहे, पर आखिर १९५५ में हमने यह भार तहेदिल से अुठा लिया। बुनियादी शाला की नीव तो पक्की हो गयी थी। अब हमारे लडके और लडकियों ने खुद कमर कसकर अेक तात्कालिक मकान अेवं रसोई घर का निर्माण कर लिया। मिट्टी की दीवारें अुठी। चारों ओर बांस के वातायन और

अुनपर नारियल के पत्तों का आवरण था। श्री० आर० श्रीनिवासन प्रधान अध्यापक बने। अुनके अेक साथी भी थे। बिहार के प्रसिद्ध बुनियादी शिक्षा शास्त्री श्री रामशरण अुपाध्यायजी ने अिस नये भवन का अुद्घाटन किया। शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों ने कंधे-से-कंधा मिलाकर परिश्रम किया। अुत्तर बुनियादी स्कूल का यह पहला साल हमारे लिअे अेक बिलकुल नया और निराला अनुभव था।

अिन चार सालों में छात्रों की संख्या भी काफी बढ गयी। छात्रों की तीन टोलियां शिक्षा पूरी करके बाहर निकल चुकी हैं, पक्का मकान बन गया है। काफी तादाद में जमीन और अन्य साधन अेव शिक्षण सामग्रियां भी मिली हैं, कुछ सरकार की तरफ से और कुछ लोगों की सहायता से। अब अिनमें से आठ शिक्षक का काम कर रहे हैं और ८३ (१९ बालिकाअें और ६४ बालक) विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं।

अुत्तर बुनियादी शाला का प्रधान मूल अुद्योग कृषि है और वस्त्र-विद्या सहायक अुद्योग है। स्कूल के सारे कार्यक्रम का केन्द्र खेती है। वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से छात्र कताई की अपेक्षा बुनाई पर अधिक ध्यान देते हैं। आगे चलकर बुनाई के साथ रंगाई, मुद्रण कला अेव सिलाई को भी जोडने का अुद्देश्य है। अिसके अलावा छात्रों को गांधीग्राम ग्राम-विश्व-विद्यालय के ग्रामोद्योग केन्द्र में प्रत्यक्ष काम द्वारा तेलघानी, मधुमक्खीपालन, कागज अेव साबुन बनाने की भी शिक्षा मिल रही है।

जीवन और शिक्षा में गहरा संबंध स्थापित किया गया है। सभी विद्यार्थी काफी पूर्व-तैयारी अेव योजना के साथ रोज बराबर किसी-न-किसी अुत्पादक श्रम में लगे रहते हैं, ताकि वे लोग विभिन्न विषयों का ज्ञान भी प्राप्त करें, साथ साथ यथाशक्ति अन्न, वस्त्र आदि भौतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर लें। अेक क्षण भी बेकार नहीं जाता। साल में २०४ दिन स्कूल काम करता है। रोज चार घंटे की पढाई तथा चार घंटे अुत्पादक अेव सामुदायिक परिश्रम, अिस रूप में स्कूल का समय विभाजित किया गया है। सारा शिक्षण-कार्य अिन सात मुख्य अंशों से सम्बद्ध अेव समवेत रहता है।

१. स्वस्थ जीवन २. रसोई की व्यवस्था ३. सामुदायिक स्वशासन ४. वैयक्तिक ध्यान, मनन, चिंतन और सर्व धर्म प्रार्थना ५. अुत्पादक कार्य ६. सच्ची नागरिकता का अभ्यास अेव ग्रामसेवा। शांति-सेना का काम भी अिसमें सम्मिलित है। ७ सांस्कृतिक तथा मनोरंजनात्मक कार्य।

समवाय शिक्षण आम तौर पर तीन प्रकार से विभक्त है:– १ भाषाओं का अध्ययन, तमिल, हिन्दी और अंग्रेजी। २. सांस्कृतिक अेव सामाजिक विषयों का अध्ययन, जिनके अन्दर भूगोल, अितिहास, अर्थ-शास्त्र, नागरिक-शिक्षा, चित्रकारी, प्रसाधन कला, संगीत और नाटक आदि समाविष्ट हैं। ३. गणित और विविध विज्ञानों का अध्ययन। रसोई, खेती का काम, ग्रामोद्योग, रोगियों की सेवा, गोपालन आदि हैं। हम हर तरह से ज्ञान प्राप्ति का अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। गणित तो अेक अैसा व्यापक विषय है जिसका संबंध किसी भी कार्य से जोडा जा सकता है और अिस विषय के शिक्षण के लिअे बडी सावधानी के साथ समय पर काफी तैयारी की जाती है, ताकि छात्रों को गणित के सभी पहलुओं का सिलसिलेवार ज्ञान प्राप्त हो जाय। विद्यार्थी

अिर्दगिर्द के देहातो के जीवन और वहा की समस्याओ से काफी परिचित रहते हैं और समाज के साथ स्कूल का जो गहरा सबध है अुसकी ओर छात्रो का ध्यान हमेशा आकृष्ट किया जाता है। भ्रमण के जरिये भी छात्रो को काफी नये-नये अनुभव अेव ज्ञान मिलता है।

सामुदायिक जीवन के द्वारा छात्रो में आत्म विश्वास, आत्म निर्भरता आदि गुणा का विकास होता है। स्कूल का प्रत्येक कार्य छात्र अेव शिक्षक, दोनो मिलकर विभिन्न टोलियो में बटकर स्वय कर लेते हैं। बारी-बारी से हर अेक प्रत्येक कार्य में भाग लेता है। बालको को आम-सभा अेव अुनसे चुना गया मन्त्रि-मडल अपना सारा कार्य बडो कुशलता अेव शिष्टता के साथ सभाल लेते हैं। चर्चा अेव वाद विवाद की कला में कई विद्यार्थी प्रवीण हो गये हैं। प्रत्यक छात्र का सूक्ष्मनिरीक्षण, विश्लेषण और विवेचन के द्वारा यह साबित हो गया है, कि छात्रो में जिम्मेदारी का गुण काफी विकास कर चुका है। अुनके इस विकास का खास कारण यही है कि यहा दैनिक जीवन, काम अव पढाई में शिक्षक और शिक्षार्थियो का सपर्क हमेशा बना रहता है और वे साथियो की तरह साथ जीवन बिताते रहते हैं। प्रधान कुल पति (श्री० जी० रामचन्द्रन) की अध्यक्षता में शिक्षक अकसर मिलते हैं, विचार करते हैं, और यह देख लेते हैं कि काम अेव शिक्षा के इस क्रम को क्षति पहुँचने न पावे।

स्वावलंबन

स्वावलबन ही नई तालीम की कसौटी है। अैसा माना जाता है कि प्रत्येक छात्र और छात्रा कताई के द्वारा साल में १०० गुंडिया सूत अुत्पन्न कर सकता है। अुनका औसत वस्त्र अुत्पादन बीस वर्ग गज है। अिस तरह प्रति छात्र को ४ कमीज, ४ निकर तथा दो तौलिये मिल जाते हैं। अिससे यह मालूम होता है कि आज के देहातो की आर्थिक दशा के मुताबिक हमारे विद्यार्थी वस्त्र के विषय में १००% स्वावलबी हो गये हैं। अन्न के विषय में भी हमारे छात्र ६०% स्वावलबी हो पाते हैं। अिस विषय में हमें और भी अुन्नति करनी है और सतत प्रयत्न भी जारी रखना है। जब तक हम यह साबित नही कर सकते कि अुत्तर बुनियादी शाला का कोई भी छात्र अपने खर्च के लिअे मातापिता पर निर्भर न रहकर स्वावलबी बन सकता है, साथ-साथ अच्छी शिक्षा भी हासिल कर सकता है, तब तक हम नई तालीम के अिस प्रयोग को पूरे तौर पर सफल नही मान सकते। अुम्मीद है, आगे चलकर हमारा प्रयत्न और अुत्साह सौ गुना बढेगा, फल भी निकलेगा और हमारे अुद्देश्य की पूर्ति भी हो जायेगी।

बच्चे की देखभाल और शिक्षा (७)

- जानकी देवी
देवी प्रसाद

बच्चा कैसे सीखता है ?

अिस लेख माला के दूसरे लेख में हमने शिशु की चेप्टाओ का जिक्र किया था। शिशु जो शिक्षा ग्रहण करता है, अुसके लिअे ये चेष्टाअें बडी जिम्मेवार होती हैं। माताओ-पिताओ और पालको का कर्तव्य है कि शिशु के सीखने के तरीके को जानें-समझें, जिससे कि वे अुस दिशा में जाने के लिअे समुचित वातावरण तैयार कर सके। ज्यो-ज्यो शिशु बडा होता है त्यो-त्यो वह अपने वातावरण के प्रति अनुक्रियाशील (रेस्पान्सिव) होता जाता है। अपने वातावरण के साथ जैसे-जैसे अुसका सबध घनिष्ठ होता जाता है वैसे-वैसे वह अुसमें से नई-नई शोध करता जाता है। और जैसे-जैसे अुसके अनुभव दोहराये जाते है, वैसे-वैसे शिशु अपनी चेष्टाओ और बर्ताव में कुशलता पाता जाता है। मातायें जानती हैं कि कोई-कोई नवजात शिशु स्तन से दूध चूसने की क्रिया में कुशलता प्राप्त करने में अेक दो दिन भी ले लेते हैं। यही बात हर "सीखने" में लागू होती है।

सीखने की प्रक्रिया के पीछे पुरस्कार और कष्ट के पहलू काम करते हैं। जब बालक अपने वातावरण के प्रति अेक अनुक्रिया करता है तो या तो अुसे अुसके द्वारा सुख मिलने का अनुभव होता है, या कष्ट और सजा का। अगर अनुभव सुख का हुआ तो वह अुस बर्ताव को दोहराता है और अुसे अधिक कुशलता के साथ करने का प्रयत्न करता है। अुलटा अनुभव होने से वह अुस प्रकार की अनुक्रिया बाद में नही करता। यह सीखने का सिद्धात है। नये-नये सुयोग पाने और तरह-तरह की वस्तुओ को बरतने के जितने मौके अुसे मिलेगे अुतने ही अुचित ढग की अनुक्रियाअें वह कर पायेगा। बालक के सीखने की प्रक्रिया अुसके शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक विकास, अपने वातावरण के प्रति ठीक ढग की अनुक्रियाओ की समृद्धता और अपने लोगो के साथ के सबधो पर आधारित होती है। अुन्ही के आधार पर वह अपने भीतर हुअे और वातावरण से मिले अुद्दीपनो (स्टीमुलस) के प्रति अनुक्रियाशील होगा।

शिशु अनुभवो की प्रतिबद्धता (कन्डीशनिंग) से भी सीखता है। चाक्षुष, शब्द और स्पर्श के कुछ अैसे अुद्दीपन हो सकते हैं जिनके प्रति वह प्रतिबद्ध हो सकता है-किसी खास शब्द को सुनने से या वस्तु या भाव को देखने से बालक अेक निश्चित स्थिति में आ सकता है। दूध पिलाते-पिलाते अगर अुनको ढंग-विशेष से पकडा या कुछ दिखाया, तो हो सकता है कि अुसका "पेट भर गया" जैसी अनुक्रिया हो। किन्तु

अिसप्रकार का सीखना हालांकि बडी अुम्र तक भी चलता रहता है, तो भी आवश्यकता के आधार पर बदलता रहता है।

सीखने की परिस्थिति

हर बालक अेक ही गति से नही सीखता। बालक का सीखना अुसके शारीरिक विकास और अुसकी स्नायू-सस्थान पर बडा निर्भर करता है। वह अुपयुक्त अुम्र और अवस्था में अेक कुशलता कम अभ्यास से भी पा लेता है, जब कि गैर मौके और कम अुम्र में वह अधिक अभ्यास से भी नही सीखेगा और अगर सीखता हुआ दीखा, तो भी अुसे वह शीघ्र भुला दे सकता है। कअी चीजें होती हैं जिनके लिअे अधिक अभ्यास की आवश्यकता नही होती, क्योंकि व्यक्तित्व में अुनकी बुनियाद अधिक नैसर्गिक अवस्था की होती है। किन्तु कअी प्रवृत्तिया जो सरल प्रकार की नही होती, अुप युक्त काल में अधिक अभ्यास से गहरी पैठ जाती है। शिशु की कअी शक्तिया अैसी भी होती हैं जो मूल प्रवृत्तिया होने के बावजूद भी ध्यान न देने के कारण खो जाती हैं। अिसलिअे पालको को यह समझना अधिक आवश्यक है कि बालक के अन्दर की शक्तियो को ठीक समय में ध्यान देकर विकसित करना ही अच्छी शिक्षण की बुनियाद डालना होगा।

शिशु-सीखता क्यों है ?

प्रारम्भ से ही शिशु को जो अनुभव होते हैं अुनमें से कुछ तो अैसे होते हैं जिन्हें वह आराम और सुख देने वाले समझकर पहचानता है और कुछ अैसे जिनके द्वारा अुसके मन में चिन्ता और तनाव पैदा हो जाते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता वह अुन्ही बातो को करता है जिससे अुसके मन की चिन्ता और तनाव कम हों। कुछ बडा याने लगभग अेक सवा साल का होने पर माता-पिता अपने बच्चो की शक्तियो के बारे में सोचने लगते हैं। अगर वह अैसा कुछ नही कर पाता जो अुसकी मा अुससे अपेक्षा करती है तो वह समझ जाता है और क्योंकि मा की वृत्ति के कारण जो तनाव पैदा हुआ होता है, अुसे हटा कर वह आराम पा सके अिसलिअे नअी परिस्थितियो को काबू में करने का प्रयत्न करता है, और अिस प्रकार सीखता है। शिशु अुन्ही चीजो को पहले सीखता है जो अुसकी भावनाओ पर असर करने वाली हो, अुसे आनन्द देने वाली हो और आपसी सम्बन्धो में सुरक्षा की भावना देने वाले हो।

माता-पिता शिशु के सीखने में कैसे मददगार हो सकते हैं ?

जिस बालक का अपने माता-पिता और पास के व्यक्तियो के साथ सृजनात्मक सम्बन्ध बना है, वह अवश्य ही सीखता रहता है। पिछले सभी लेखो में हमने बालक के साथ प्रेम-मय सुखी सम्बन्ध के महत्व के बारे में काफी कहा है। जिस बालक के सम्बन्धो में अुसे सुरक्षा और अनुमोदन का भान मिलता है, वह बालक नि.सकोच नये-नये प्रयास करता रहता है, अपने वातावरण की वस्तुओ और परिस्थितिओ को देखता, परखता रहता है, जिससे कि अुसे हर वक्त सीखने का मौका मिलता है।

किन्तु केवल सम्बन्धो से पूरा-पूरा काम नही बनता। वातावरण भी बनाना पडता है। वातावरण में अैसी गुजाअिश होनी चाहिअे जो बालक को नअी-नअी शोध करने का मौका दे। अच्छे खिलौने, बाग-बगीचा, पक्षी-जानवर,

(शेषाश पृष्ठ ३४ पर)

साहित्य परिचय

बुनियादी शालाओं की हालत ★

केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित "बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीय अिन्स्टीट्यूट" ने पिछले वर्षों में अेक जांच-पडताल अखिल भारतीय स्तर पर की। पडताल का विषय था बुनियादी पाठशालाओं के शिक्षकों की समस्यायें। अुसे अिन्सटीट्यूट ने १९५६ में प्रारंभ किया था और अुसकी रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुअी है, जो अध्ययन करने योग्य है। सरकार ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा के बतौर मान लिया है। सरकारों ने अिसका प्रसार १९३७ में (जब कांग्रेस ने प्रांतों का राज संभाला था) प्रारम्भ कर दिया था। कुछ प्रांतों में यह काम तब से अभी तक चालू है। परन्तु बुनियादी तालीम की स्थिति कदाचित् संतोषजनक नही कही जा सकती है। यह अवस्था कब तक चलेगी?

अैसी हालत में यह अुचित ही था कि बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीय अिन्स्टीट्यूट ने अिस प्रकार की पडताल की जिससे सरकारों को और गैर सरकारी तौर पर काम करने वालों को भी, अेक स्पष्ट चित्र मिल जाय और वे अगर बुनियादी तालीम के विकास में सचमुच रुचि रखते हैं तो शीघ्रातिशीघ्र सर्वेक्षण द्वारा दर्शाअी गयी शिक्षकों की मुशकिलातों को हटाने में श्रद्धा के साथ लग जायं।

सर्वेक्षण के लिअे अिन्स्टीट्यूट ने सभी अैसे राज्यों को लिया, जिनमें बुनियादी तालीम चलती हो। सर्वेक्षण का जरिया बेसिक ट्रेनिंग कॉलेजों को बनाया गया। अेक प्रश्नावली बनाकर अिन कॉलेजों को भेजी गअी और अुसके साथ विस्तृत सूचनायें भी, जिससे कि अेक बेसिक स्कूल के केवल अेक या अधिक-से-अधिक दो शिक्षकों से जानकारी हासिल करने में सुविधा हो।

कुल १३ ट्रेनिंग कॉलेजों ने ४०९ प्रश्नावलियों में जानकारी अिकट्ठी की। जिन शिक्षकों से जानकारी ली गई अुनमें पांच कक्षाओ वाले और आठ कक्षाओ वाले स्कूलो के शिक्षक, शिक्षिकायें व हेडमास्तर शामिल हैं।

प्रश्नावली के साथ निम्नलिखित हिदायतें भेजी गई थी,

१. अेक क्षेत्र से लगभग ५० शिक्षकों से जानकारी प्राप्त की जाय। जहां बेसिक शालायें कम हो, वहा से २० से कम से तो नही हो।

२. जिन शिक्षकों से जानकारी लें वे प्रशिक्षित होने चाहिअे।

★ रिसर्च अेण्ड स्टडीज-"डिफीकल्टीज आफ बेसिक स्कूल टीचर्स" नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक अेजूकेशन, ४३, फ्रेन्ड्स कॉलोनी, दिल्ली १४। मूल्य-रु.१ न० पै० ७५।

३. शिक्षक कम-से-कम ३ वर्ष के अनुभव वाले हों।

४. नमूने अधिक-से-अधिक स्कूलों से लिये जायं।

५. बुनियादी कन्या शालाओं से भी जानकारी प्राप्त करें।

६. जानकारी प्राप्त करते समय ख्याल रखा जाय कि वह अलग-अलग अुद्योगों के शिक्षकों से प्राप्त की जाय।

७. हर शिक्षक को स्थानिक भाषा में प्रश्नावली दी जाय।

८. अच्छा यह होगा कि अगर ट्रेनिंग कॉलेज के प्राचार्य ही अपने साथियों की मदद से जानकारी प्राप्त करें।

९. प्रश्नावली का सारा काम वही व्यक्ति सम्भाले जो अुस पद्धति का जानकार हो।

यहां प्रश्नावली संक्षेप में दे देना भी अुचित होगा, जिससे कि पाठकों को सर्वेक्षण का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाय।

हमारे रोजमर्रा के अनुभवों में आता है कि बुनियादी शालाओं के सगठन और शिक्षण पद्धति के चलाने में कठिनाअियां आ रही हैं। ये कठिनाअियां निम्नलिखित दस प्रकार की हो सकती हैं। अेक अनुभवी शिक्षक के नाते आपने अिनमें से कुछ कठिनाइयां महसूस की होंगी। अगर बुनियादी तालीम को सफल बनाना है तो अिन कठिनाईयों को दूर करना होगा। अिसलिअे अिनके बारे में आपके सुझाव चाहिअे। आप अिनका क्रम निश्चित करें।

अुदाहरणार्थ—अगर आप अिनमें से किसी का क्रम १ कहेंगे तो अुसका अर्थ होगा कि वह कठिनाई प्रथम महत्व की है। अगर दसवां क्रम देंगे तो अुसका अर्थ होगा कि वह कठिनाई अगर फौरन दूर नहीं की जायगी तो भी काम चल सकता है।

कठिनाअियां—१. अिमारत २. साधन ३. संगठन ४. शिक्षक ५. पाठ्यक्रम ६. शिक्षणपद्धति (समवाय पद्धति) ७. शाला में सामूहिक जीवन ८. दस्तकारी ९. शिक्षक-विद्यार्थी संबन्ध १० वृत्तियां ११. अन्य कोई कठिनाईवाला पहलू।

१. हर पहलू के विभाग किये गये हैं, कृपया होशियारी से समझ लें कि आपको क्या करना है, २. आपको हर पहलू के हर विभाग के बारे में अपना अनुभव, क्रमांक देकर बताना है। ३. हर विभाग के सामने अे० बी० सी० डी० लिखा है। अुसका अर्थ अिस प्रकार है, अे. यानी कठिनाई को फौरन दूर किया जाना चाहिअे। 'बी' यानी कठिनाई पर ध्यान देना आवश्यक है। "सी" यानी तुरन्त कदम नहीं लेने से भी चलेगा। "डी" यानी कठिनाई नहीं है।

४. हर पहलू में आप नये विभाग भी सुझा सकते हैं।

५. आपके अनुभव का लाभ अुठाना है। अिसलिअे आपको अगर कुछ और सुझाना है तो अलग कागज पर लिख दें।

६. सत्य बात लिखें। आपका नाम प्रश्नावली पर नहीं रहने वाला है।

७. हर विभाग को देखकर ध्यान देकर अुत्तर दें और अे, बी. सी. डी. में से जिनपर आप निशान लगाना चाहते हैं गोल रेखा खींचकर लगा दें।

१. इमारत

अ. अनुकूल क्षेत्र	अे बी सी डी
आ. पर्याप्त स्थान	अे बी सी डी
अि. अिमारत की हालत	अे बी सी डी
अी. प्रकाश और हवा का अिन्तजाम	अे बी सी डी
अु. सफाई	अे बी सी डी
अू. आंगन	अे बी सी डी
अे. ——	अे बी सी डी

२. साधन

अ. वर्ग कमरा	अे बी सी डी
विद्यार्थियों के बैठने के	अे बी सी डी
शिक्षक के बैठने के	अे बी सी डी
आ. दस्तकारी	अे बी सी डी
अि. पुस्तकालय-अलग कमरा	अे बी सी डी
पुस्तकों की अलग संख्या	अे बी सी डी
बाल साहित्य	अे बी सी डी
शिक्षकों के लिअे संदर्भ ग्रंथ	अे बी सी डी
अी. शिक्षण साधन-श्यामपट	अे बी सी डी
आलेख, नक्शे, आदि	अे बी सी डी
विज्ञान के साधन	अे बी सी डी
साधन बनाने की सुविधायें	अे बी सी डी
अु. अन्य प्रवृत्तियों के साधन-खेल	अे बी सी डी
सामाजिक कार्यक्रम के	अे बी सी डी
सांस्कृतिक कार्यक्रम के	अे बी सी डी
अू. ——	अे बी सी डी

३. संगठन

अ. बजट की सुविधा	अे बी सी डी
आ. अिन्स्पेक्टर का मार्ग दर्शन और सहयोग	अे बी सी डी
अि. हेडमास्टर का मार्ग और सहयोग	अे बी सी डी
अी. शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था	अे बी सी डी

अु. स्वास्थ्य निरीक्षण व स्वास्थ्य शिक्षा — अे बी सी डी
अू. समय पत्रक — अे बी सी डी
अे. स्कूलों की आपसी अध्ययन गोष्टियां आदि — अे बी सी डी
अै. ——— — अे बी सी डी

४. शिक्षक

अ. प्रशिक्षण व अनुभव — अे बी सी डी
आ. अुपयुक्ततता — अे बी सी डी
अि. कार्य का भार — अे बी सी डी
अी. सहयोग — अे बी सी डी
अु. कुशलता — अे बी सी डी
अू. व्यक्तिगत — अे बी सी डी
अे. ——— — अे बी सी डी

५. पाठ्यक्रम

अ. सैद्धान्तिक — अे बी सी डी
आ. पाठ्यक्रम बनाना और आपसी सहयोग — अे बी सी डी
अि. सम्भावनाअें — अे बी सी डी
अी. विषयवस्तु — अे बी सी डी
अु. वर्ष-प्रति-वर्ष अटूट कार्य — अे बी सी डी
अू. बालकों के लिअे पठन योग्य साहित्य — अे बी सी डी
अे. शिक्षकों के लिअे मार्ग दर्शक पुस्तकें — अे बी सी डी
अै. ——— — अे बी सी डी

६. दस्तकारी

अ. अनुकूलता — अे बी सी डी
आ. स्थानाभाव — अे बी सी डी
अि. कच्चा माल — अे बी सी डी
अी. साधन संरजाम — अे बी सी डी
अु. हिसाब रखना — अे बी सी डी
अू. अुद्देश्य पूर्ति-गुणात्मक — अे बी सी डी
संख्यात्मक — अे बी सी डी

अे. अरुचि—विद्यार्थियों में	अे बी सी डी
पालकों में	अे बी सी डी
शिक्षकों में	अे बी सी डी
अधिकारियों में	अे बी सी-डी
अै. दस्तकारी के लिअे समय	अे बी सी डी
ओ. कच्चे माल का कोठार	अे बी सी डी
औ. तैयार माल का कोठार	अे बी सी डी
अं. माल बिक्री	अे बी सी डी
अः. अुद्योग के शिक्षकों का अभाव	अे बी सी डी
क. स्वावलम्बन	अे बी सी डी
ख ——	अे बी सी डी
७. शिक्षण पद्धति : समवाय	अे बी सी डी
अ. पद्धति की जानकारी	अे बी सी डी
आ. समवाय पाठ तैयार करना	अे बी सी डी
अि योजना और संचालन	अे बी सी डी
अी भाषा, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान, गणित, दस्तकारी	अे बी सी डी
अु मार्गदर्शन का अभाव	अे बी सी डी
अू. प्रयोग करने की सुविधा	अे बी सी डी
अे ——	अे बी सी डी
८ सामाजिक जीवन	
अ समय	
आ संगठन—बालसभा, सफाई, समाज सेवा	अे बी सी डी
मनोरंजक कार्यक्रम	अे बी सी डी
अि स्थानिक जनता से सहयोग	अे बी सी डी
अी. ———	अे बी सी डी
९. शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध	
अ शिस्त	अे बी सी डी
आ. विद्यार्थियों द्वारा शिक्षक का आदर	अे बी सी डी
अि. शिक्षकों द्वारा विद्यार्थी का आदर	अे बी सी डी
अी. शिक्षक-पालक सम्पर्क	अे बी सी डी

(शेषांश पृष्ठ ३१ पर)

शान्ति समाचार

"यहा अेक बडा काम परमेश्वर की कृपा से हो रहा है। कुछ भाई जो हम जैसे ही इन्सान हैं और जिनमें आज भी भगवान् की ज्योति बुझी नही, अुन्होने यहा आकर आत्मसमर्पण किया है। इनके डर से लोग तग आ गये थे। इन्ही को दवाने के लिअे जगह-जगह पुलिस पडी है। इधर पुलिस और अुधर बागी, दोनो के बीच जनता पिस रही है। पुलिस का न्याय है जैसे का तैसा। पर इस न्याय से मसले हल नहीं होते। मसले प्रेम से हल होते हैं। हम यह बात ११ दिनो से इस क्षेत्र में कहते आये हैं। खुशी है कि ईश्वर की इच्छा से कुछ नतीजा आ रहा है। कुछ लोगो ने अपने आप को हमें सौंप दिया है। इन बागी भाइयो ने अपने शस्त्र भी सौंप दिये हैं। पुलिस की तरफ से इन्हें कोई तकलीफ नही होगी। ये हमारे साथ रहते भी हैं। बाद में पुलिस के पास पहुचा दिये जायेंगे। पर अुनके साथ ज्यादती नहीं होगी। अगर सुबह का भूला शाम को घर आ जाय तो माता-पिता की तरह प्यार से हमें अुन्हे स्वीकार करना चाहिअे। अुन पर कानूनी कार्रवाई होगी। पर अुनके या अुनके बाल बच्चो के साथ ज्यादती या सख्ती करने का कोई इरादा सरकार का नही है। हम नही चाहते कि गुनाहगार को सजा न हो। मगर यह भी नहीं चाहते कि बेगुनाह को सजा हो, ताकि अुनके रिश्तेदारो को तकलीफ हो। हम नही चाहते कि पुलिस हमेशा के लिअे यहा कायम रहे। बागियो के बचाव का इन्तजाम होगा। **पर यह समझ लेना चाहिअे कि सजा टालने में नहीं, पाने में लाभ है।** इसलिअे जिन्होंने अपने को सौंपा है अुन्होंने छूट जाने के ख्याल से नही सौंपा है। आप लोग गावो में जाकर सबको यह समझा दें।

डाकू कोई जन्म से नही होते। हम जैसे भाई वे भी हैं। हरेक के दिल में अच्छे-बुरे खयाल आते रहते हैं। भगवान की जिनपर अखण्ड कृपा होती है अुन्ही को सदा सद्विचार आते हैं। इसलिअे हमेशा के लिअे कोई डाकू नहीं होता। दो बाते ध्यान में रखने लायक हैं—**अेक तो जन्म मे कोई बुरा नहीं होता और दूसरी कायमी तौर पर कोई बुरा नही होता।** इसलिअे हमारे मन में दया हो, सहानुभूति हो।

जो डाकू कहलाते हैं अुनमें से भी अुत्तम शान्ति-सैनिक निकल सकते हैं। पर यह आगे की बात है। पहले तो अुन पर कानूनी कार्रवाई होगी। **सच्चा पश्चात्ताप हो तो अुनमें से महात्मा भी पैदा हो सकते हैं।"**

विनोबा

अमेरिका के "पीसमेकर्स" समूह के द्वारा फेडरल कर न देने का आन्दोलन चल रहा है। अुनका कहना है कि जो कर जनता दे रही है अुसका अधिकांश युद्धकी सामग्री और सैनिक तैयारियों में चला जाता है। और क्योंकि युद्ध का विरोध करना हर शान्तिप्रिय व्यक्ति का कार्य है, वे अुस कर को देने से अिनकार करते हैं। अिस सदर्भ में पीस मेकर्स समूह के कई सदस्य टेक्स के फार्म नही भरते, अुसके लिअे जेल जाते हैं और अदालतो में जाकर धरना भी देते हैं। पिछले दिनो अिसी प्रकार अेक बहन—कुमारी परोसीना रॉबिन्सन को अेक वर्ष की सजा दी गयी।

कुमारी रॉबिन्सन अेक साहसी बहन है और अहिंसा में अुनका पूरा विश्वास है। जब अुनके पास समन्स आया तो अुन्होंने अदालत में स्वेच्छा से जाने से अिनकार किया। अदालत अुन्हें अुठाकर ले गयी। अिसी प्रकार तीन बार अुन्हें अुठाकर ले जाया गया। आखिर २६ जनवरी १९६० को अुन्हें बन्दी बना दिया गया। अुन्होंने तभी से अुपवास शुरू कर दिया। २७ जनवरी को अुन्होंने अदालत को कहा, "मैं टेक्स अिसलिअे नही देती क्योंकि मुझे मालूम है कि अुसका अधिकांश सैनिक प्रवृत्तियों में जाता है। अधिकतर धन अेटम और हाअिड्रोजन बम पर खर्च होता है। अिन शस्त्रों से मनुष्य की जान को भयानक नुकसान होते हैं जैसे कि सिद्ध किया जा चुका है। अगर मैं कर दू तो मैं भी अुसी विध्वंस के कार्य में हिस्सेदार हूगी। हमारा कर्त्तव्य तो मानव जीवन को रचनात्मक सहायता करना है न कि विध्वंसात्मक।"

जिस दिन से अुन्हें बंदी बनाया गया अुस दिन से ही अुन्होंने अुपवास प्रारंभ कर दिया था। अब खबर है कि अुन्हें रिहा कर दिया गया है। अुनका स्वास्थ्य तो ठीक है पर बड़ी कमजोर हो गयी है। अिस बहादुर बहन को हम नत मस्तक होकर प्रणाम करते हैं।

शान्ति समाचार के बारे में

पाठकों ने पिछले दो अंकों में शांति-समाचार के पृष्ठ पढे हैं। हमारे शिक्षा-शास्त्र के पत्र में शांति-समाचार पृष्ठों की क्या आवश्यकता? यह प्रश्न कुछ मित्रों के मन में आ सकता है। आज जो सामान्य तौर पर शिक्षा-शास्त्र के बारे में विचार होता है, वह केवल पाठशाला में विषय ज्ञान, अुद्योग में दक्षता और अन्य पढाई लिखाई तक ही सीमित रहता है। किन्तु अिधर विचारवान शिक्षा-शास्त्री शिक्षा की व्यापकता का जीवन के हर क्षेत्र में महत्व देख रहे हैं। वे शिक्षा को जीवन दर्शन के तौर पर देखते हैं, केवल पढाई लिखाई की पद्धति के तौर पर नही। व्यक्ति को अेक अैसी दृष्टि मिले जिससे वह अपने पडोसियों के साथ शांतिमय-सहयोगी जिन्दगी बिता सके, यह शिक्षा का कर्त्तव्य है। आज हम अुस ओर कितना अग्रसर हो रहे हैं?

आज यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है, और अुसको हल करने के लिअे शिक्षा को ही जुटना चाहिअे। अगर यह तथ्य हमारे मन में अुतर जाय तो हम समझ जायेंगे कि हरेक शिक्षक और शिक्षित व्यक्ति का अिसकी ओर क्या कर्त्तव्य है।

शान्ति अेक परिस्थिति नही है, वह जीवन की वृत्ति है, दृष्टि है। अुसके लिअे साधना की आवश्यकता है। आज कल मिलिटरी ट्रेनिंग की बात चलती रहती है। क्या अहिंसा को मानने वाले व्यक्ति के या राष्ट्र के जीवन में मिलिटरी ट्रेनिंग को स्थान है? अगर नही है तो फिर अहिंसक समाज में देश की रक्षा कैसे होगी? अिस प्रश्न का मार्मिक अुत्तर अुस सन्देश से मिलता है जो विनोबाजी ने अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन, तुर्की १९५७ के लिअे भेजा था।

"ग्रामदान, अुसके आधार पर ग्राम-स्वराज्य, यह हमारा कार्यक्रम है। अुसमें शिक्षा और रक्षा, अैसे दो बडे अंग हमको विकसित करने हैं। रक्षा के लिअे शान्ति सेना और शिक्षा के लिअे ग्राम-जीवन। अब सर्वोदय को अितनी

(शेषांश पृष्ठ ३४ पर)

अु. पुराने विद्यार्थियो के साथ सम्पर्क	अे बी सी डी
१०. वृत्ति	
अ. बुनियादी शिक्षा में श्रद्धा का अभाव	अे बी सी डी
जनता, अधिकारी, शिक्षक, बालक	अे बी सी डी
आ. शरिरश्रम के प्रति घृणा	अे बी सी डी
जनता, अधिकारी, शिक्षक, बालक	अे बी सी डी
अि. दस्तकारी के प्रति घृणा	अे बी सी डी
जनता, अधिकारी, शिक्षक, बालक	अे बी सी डी
अी. ———	अे बी सी डी

पडताल के नतीजो को बारीकी से देखना यहा समव नही है। बुनियादी स्कूलो की हालत का चित्र अिस पुस्तिका से मिल जाता है। अुसमें प्रश्नावली के नतीजो के आकडे आदि विस्तार से दिये गये है। बताया गया है कि शिक्षको की मुश्किलात में अुद्योग के साधनो का प्रश्न गभीर है, पुस्तकालयो का अत्यन्त अभाव है, पाठ-शालाओ के पास खेती बागवानी के लिअे जमीन और खेती के औजार नही है। अिन सब कठिनाअियो को लेकर शिक्षक अिस काम को कैसे आगे बढा सकते है? अधिकतर बुनियादी शालायें गावा में है, किन्तु शिक्षको को रहने के लिअे मकान नही है। अिसके कारण शिक्षक गाव के साथ व्यक्तिगत सपर्क कायम करने में कठिनाअियो का अनुभव करते है। बुनियादी तालीम के लिअे यह अवस्था शोचनीय है।

अिन सब बातो के पीछे अेक महत्व का कारण यह भी है कि प्रदेशो के जिलो के शिक्षा विभाग के अधिकारी और निरीक्षक लोगो को बुनियादी तालीम के सिद्धातो और अुद्देश्यो से कम ही परिचय है। अगर अुनकी तरफ से शिक्षा के मूल सिद्धातो को समझने का प्रयत्न होगा तो शिक्षको की ये मुश्किलात आसानी से हल हो सकती है।

बुनियादी तालीम की कल्पना केवल अेक शिक्षण पद्धति के तौर पर नही की गअी है। वह तो समाज विकास या सच कहिअे तो सामाजिक क्रान्ति का वाहन है। इसीलिअे जब बापूजी ने अुसे फैलाकर सारे जीवन की तालीम बनाया तो अुसका नाम नई तालीम रखा। यह शिक्षा चाहे सरकार के द्वारा चलाई जाय तो भी इसका सामाजिक जीवन के साथ सम्बन्ध का पहलू मुख्य है। इसके बावजूद भी अगर केवल इसके सिद्धान्तो को 'अेकेडेमिक' नजर से भी देखा जाय तो वह आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के हिसाब से सबसे खरी अुतरती है। तो भी क्या कारण है कि कई जिम्मेवार व्यक्ति इसकी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते है। क्या इसका कारण यह हो सकता है कि हमें सच्ची सामाजिक क्रान्ति का डर है? गाधी जिस क्रान्ति को लाना चाहते थे, नई तालीम के प्रसार के द्वारा लाना चाहते थे, शायद हम अुसी के भय से इस शिक्षा को अपना नही पा रहे है। दरअसल आज पडताल हमारे अपने मन और दृष्टि की करनी चाहिअे।

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

पानी, मिट्टी, रेत और अनेक अैसी वस्तुअें जिन्हें सजा-सजा कर कई तरह से निर्माण-कार्य कर सकें, पौधों में पानी देने के छोटे-छोटे झारे, खुरपी और झाडू लेकर बालक खूब आनन्द के साथ नये-नये अनुभव प्राप्त करता है। छोटे-छोटे झूले, सीढ़ियां, गिरगनी आदि भी अिस प्रकार का वातावरण निर्माण करने के अच्छे साधन हैं।

आम तौर पर बालक अपनी पद्धतियां स्वयं निर्माण कर लेता है। वह किसी सामान्य परिचित वस्तु को नयी परिस्थिति में जब देखता है तब अुसे बरतने के तरीकों को भी खोज निकालता है। किन्तु कई परिस्थितियां अैसी आ जाती हैं, जब कि बालक को सहारे की आवश्यकता होती है। अेक-डेढ़ वर्ष का बालक पूरा-पूरा स्वतंत्र नहीं होता है, अभी भी वह अपने माता पिता के अूपर निर्भर होता है। अुसके साथ समवयस्क अन्य बालक खेल के साथी होने के बावजूद भी वह अपनी मां को ही खेल का साथी समझता है। अिसलिअे अपने वातावरण से खोज निकालने की प्रक्रिया में वह कुछ मदद और सहारा चाहता है, जो अुसे देना चाहिये।

(पृष्ठ २० का शेषांश)

हिम्मत करनी चाहिये कि यह दोनों पहलू अपने हाथ में लें। पर अहिंसा में शिक्षा और रक्षा अेक ही चीज बन जाती हैं। जब तक ये दो चीजें अलग-अलग मानी जायेंगी तब तक अहिंसा अपना पूर्ण रूप नहीं दिखा सकेगी। शासनमुक्त समाज का अर्थ ही है शिक्षण युक्त समाज।"

अिसके अूपर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं दीखती। हमारे नई तालीम का कार्यकर्ता मित्र यह महसूस करे कि शिक्षा के मूलभूत अुद्देश्यों में व्यक्ति को शान्ति की दृष्टि देना भी अेक अुद्देश्य है। यानी अुसे यह आवश्यक महसूस होना चाहिये कि अुसका परिचय शान्ति की ओर अग्रसर होने वाले कार्यक्रमों से नियमित होता रहे। विनोबाजी तो बरसों से कहते आ रहे हैं कि नई तालीम के हर शिक्षक को शान्ति सैनिक होना चाहिये। अिसी दृष्टि से हमने 'नई तालीम" में नियमित तौर पर देश विदेश के शान्ति कार्य के समाचार, खास तौर पर अैसे जिन्हें जानकर शिक्षक अपने कार्य और जीवन में लाभ अुठा सकें, देने का निर्णय किया है। हम आशा करते हैं कि अिस प्रयास में साथी और पाठक हमारी सहायता करते रहेंगे।

शान्ति सैनिको के लिये यहन श्री निर्मला देशपाण्डे ने यह पत्र काशी से भेजा है—

प्रिय बंधु,

पूज्य विनोबाजी चाहते है कि हरअेक शांति-सैनिक का जीवन-वृत्तांत शांति-सेना कार्यालय के पास हो, जिसके आधार पर 'हूज हू" बनाया जाय। अतअेव आपसे सविनय प्रार्थना है कि अपने बारे में निम्नलिखित जानकारी हमारे कार्यालय के पास शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करे।

(१) नाम और पता

(२) आयु और स्वास्थ्य

(३) खानदान का परिचय तथा परिवार

(४) शैक्षणिक योग्यता तथा भाषाओं का ज्ञान

(५) आपकी प्रिय किताबें तथा प्रिय विषय

(६) खेल, योगासन आदि के प्रति रुचि

(७) कताई, बुनाई आदि अुद्योगों का ज्ञान

(८) संक्षेप में पूरा जीवन-वृत्तांत

(९) आज का मुख्य कार्य

इस जानकारी के साथ आप अपनी अेक फोटो भी भेजने की कृपा कीजियेगा।

काशी २६-५-'६० विनीत

निर्मला देशपांडे

(पृष्ठ ३ का शेषांश)

पुण्यवान बनेंगे। जो मेट्रिक पास करेंगे वे फर्स्ट इयर में जायेंगे, जो फर्स्ट इयर पास करेंगे वे सॅकण्ड इयर में जायेंगे। अिसी भांति अेक-अेक सीढी अूपर बढते चले जायेंगे। राम-प्रताप अैसा है कि पाप नहीं टिक सकता, वैर नहीं टिक सकता। तुलसीदासजी ने साफ कह दिया है—

"रामप्रताप विषमता खोई।
वैर न कर काहू सन कोई।।"

रामजी का प्रताप जहां प्रकट हुआ वहां कोई किसी से वैर नहीं कर सकता। यह अूचा, यह नीचा, यह ब्राह्मण, यह हरिजन, यह मालिक, यह मजदूर, अैसी विषमता नहीं टिकती। तो मेरे भाअियो, सर्वोदय की सबसे बडी पुस्तक रामायण, वह घर घर में होनी चाहिये, सब को पढकर सुनाओ और कसम खाओ कि आज से कोई किसी से वैर नहीं रखेगा, सब मिल जुलकर रहेंगे। परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

समझे नेता की आज्ञा का पालन करना है। आज दुनिया की परिस्थिति अैसी है कि अब हम अिस विषय में अेक निर्णय लिये बिना रह नहीं सकते है। अब अिसके बारे में दो मन नहीं रख सकते हैं। या तो हमें खेल को क्या सारी शिक्षा व्यवस्था को ही निष्पक्ष बुद्धिवाले शान्तिप्रिय स्त्री-पुरुषों के निर्माण का माध्यम बनाना होगा या युद्ध की विभीषिका के सामने हमें अिनको सैनिक शिक्षा का साधन मानना होगा। पहले रास्ते में काफी विचार और साहस की जरूरत है, लेकिन अुससे कोई अेक देश नहीं, सारी मानव जाति ही अुस विनाशगर्त से बच सकती है जिसकी ओर हम तेजी से बढ रहे हैं। दूसरा मार्ग अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के और बिगडने और आखिर सर्व नाश में ही हमें ले जायगा।

Regd. No. N-106

अेक नारा चला था—"भूखी जनता अब न सहेगी।" मेरा कहना है कि उसे बदलकर करदो-"सुखी जनता अब न सहेगी।" सुखी जनता कह दे कि वह सुख नहीं सहन करेगी। वह खुद दुःख उठाकर दूसरों को अपना सुख बांट देगी।

बचपन में हमारे घर में कटहल का पेड था। उसके कटहल जब हमसे पास पडोसवालों को मां बंटवा लेती, तब हमें खाने को देती। बडों को बच्चे के हाथ से दिलाने की यह तालीम मुझे मां से मिली है। यह देने का आनंद, दूसरों को खिला-कर खाने का आनंद मैंने मां से सीखा। इसीसे मुझे भूदान की अक्ल सूझी। दूसरों को अपना सुख बांटने से दूसरों के सुख में ही नहीं, अपने सुख में भी वृद्धि होगी।

—विनोबा

श्री. सदाशिव भट, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

अगस्त १९६०
वर्ष : ९ अंक : २

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

अगस्त १९६०

वर्ष ९ अंक २

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और एक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. डाक से मंगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। व्यवस्था सम्बन्धी पत्र व्यवहार प्रबन्धक, "नई तालीम" के पते पर और अन्य पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष ९ अंक २ ★ अगस्त १९६०

हमारी उपेक्षित मातृभाषा की लज्जा दूर हो

"...शिक्षा के सम्बन्ध में सब से बढ़ कर मानी हुई और सब से बढ़ कर उपेक्षित बात यह है कि शिक्षा वस्तु जीवधर्मी है, यान्त्रिक नहीं।

"...विद्यालय के काम के जो जानकार हैं, वे जानते हैं कि छात्रों का एक दल स्वभावतः ही भाषा-शिक्षा में अपटु है। अंगरेज़ी भाषा में अधिकार होने पर भी अगर वे किसी तरह मैट्रिक की ड्योढ़ी पार भी कर जाते हैं, तो ऊपर की सीढ़ियाँ चढ़ते समय उनकी बधिया बैठ जाती है। फिर उन्हें मार-मार कर भी उठाया नहीं जा सकता।

"...मेरा निवेदन यह है कि आज कोई भगीरथ हमारी मातृ-भाषा में शिक्षाधारा को विश्वविद्या के समुद्र तक ले चलें, देश के हजार हजार मन मूर्खता के अभिशाप से प्राणहीन हुए पड़े हैं; इस संजीवनी धारा के स्पर्श से वे जी उठें, संसार के सामने हमारी उपेक्षित मातृभाषा की लज्जा दूर हो जाय और विद्या-वितरण के अन्नसत्र स्वदेश की नित्यसंपदा हो कर हमारे आतिथ्य के गौरव की रक्षा करें।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

क्रान्ति का सच्चा रास्ता

विनोबा

अपना देश अधिकतर अशिक्षितो का देश है। यहा कुछ थोडे ही लोग शिक्षित है। इसलिए शिक्षितो पर भारी जिम्मेदारी आती है। अपने अशिक्षित भाइयो को सब प्रकार की मदद पहुचाना उनका कर्तव्य है। हमारा अशिक्षित समाज ही अधिक काम करने वाला समाज है। उसे शिक्षा का लाभ नही मिल रहा है, पर उसकी सेवा से हम सब लाभ उठा रहे है। आज शिक्षितो और अशिक्षितो के बीच एक दीवार-सी खडी हो गयी है। शिक्षा के ढग में परिवर्तन करने की बात सरकार और समाज ने मान ली है, पर अभी तक कोई परिवर्तन हुआ नही है। अग्रेजो को अपना राज्य चलाने के लिए एक नौकर वर्ग की जरूरत थी। उन्होने अपनी शिक्षा-पद्धति के उद्देश्यो में यह बात साफ-साफ लिखकर भी रखी थी। आज ५५ लाख नौकर ऐसे है, जिन्हे सरकार ने देश की सेवा के लिए लगा रखा है। पचपन लाख नौकर यानी पचपन लाख परिवार। हिन्दुस्तान में कुल ७ करोड परिवार रहते है। इनकी सेवा के लिए पचपन लाख नौकर नियुक्त है। मतलब यह हुआ कि इस देश में १३ परिवारो पर एक सरकारी सेवक रखा गया है। इतना बडा सेवक-समाज शायद ही कही और हो। लेकिन असल सेवा करने वाले तो दूसरे ही है। जो अशिक्षित है, वे ही सेवा करते है। पर वे समझते है कि हम तो अपना पेट पालने के लिए मजदूरी कर रहे है। वे सेवक बनने का दावा नही करते। इधर सरकारी नौकर तो अपने को लोकसेवक (पब्लिक सर्वेण्ट) कहते भी है। इस तरह हमारे देश में सेवक कहलाने वाला एक वर्ग है और सेवा करने वाला दूसरा। इन पचपन लाख सिविल सेवको के अलावा पाच लाख मिलिटरी सेवक और है। इनमें से ज्यादातर लोग उत्पादन का नही, विभाजन का काम करते है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो में वे 'मल्टिप्लिकेशन' नही 'डिविजन' करते है। इनकी रहन-सहन का दरजा मजदूरी करनेवालो के दरजे से ऊचा होता है। इस तरह हमारे यहा जिनके पास विद्या है, उनके पास उत्पादन की शक्ति नही है और जिनके पास उत्पादन की शक्ति है, उनके पास विद्या नही है। नतीजा यह है कि आज राहु और केतु की तरह समाज के दो टुकडे हो गये है, ये दोनो ही जीवनहीन है। इनमें एक अन्धा है और दूसरा लगडा। जहा कर्मशक्ति है, वहा ज्ञान नही है, जहा ज्ञान है, वहा कर्मशक्ति नही है। गावो के ज्यादातर लोग अन्धे है और शहरो के ज्यादातर लोग लगडे है। यो अध-पगु-न्याय से शहरो के बहुत-से लगडे अन्धो के कन्धो पर बैठे हुए है। अन्धे लगडो का बोझ ढोते है। दोनो अक्षम है। दो अक्षमो

के सहयोग से समाज सक्षम बनेगा, इसकी कोई आशा नही है। जरूरत इस बात की है कि दोनो की आखें हो और दोनो के पैर हो। दोनो एक-दूसरे के गुणो की पूर्ति करे, अक्षम होकर नही, सक्षम और समर्थ बनकर। आज तो हालत यह है कि आपस में सहयोग के बदले दोनो के बीच सघर्ष बना रहता है। लगडा अपना हक समझ कर अन्धे के कन्धे पर बैठा है और उतरने का नाम ही नही लेता। यहा मुझे एक कहानी याद आ रही है। जब घोडे से आदमी की पहली मुलाकात हुई, तो आदमी ने घोडे से कहा-"तू अपनी पीठ कुछ देर के लिए मुझे किराए से दे दे।" घोडा राजी हो गया। आदमी ने घोडे को लगाम लगा दी, उसपर पडती है। शान्तिवादी कहता है-"हमें ऐसी क्रान्ति-मिश्रित शान्ति नही चाहिए।" उसके विचार में डाकू नीच है। उसके लिए शरण या मरण दो ही रास्ते हो सकते है। शान्ति में क्रान्ति का भाव आ जाने से इन शान्तिवादियो का दबदबा या रोब घटता है, इसलिए ये उसे नापसन्द करते हैं। दूसरी तरफ से क्रान्तिवादियो की मार भी हम पर पडती है। वे कहते हैं- "आप तो थोडा-थोडा दान भी मागते है। इससे क्रान्ति की धारा क्षीण होती है। उसमें जोश लाने के बजाय आप उसे कमजोर करते हैं।" इस तरह दोनो तरफ की मार खाने से शरीर की गठन अच्छी होती है।

इस तरह आप देखेंगे कि आज का कानूनवादी करुणवादी से पिछड़ा हुआ है।

उधर शान्तिवादियों की यह हालत है कि वे वादे पर वादे करते चले जाते हैं। पहले उन्होंने कहा—दो सालों में हिन्दुस्तान अन्न की दृष्टि से अपने पांवों पर खड़ा हो जायेगा। इस बात को आज दस साल हो चुके हैं। अन्न के मामले में हिन्दुस्तान जहां का तहा है। अब वे कहते हैं कि छः साल बाद देश जरूर स्वावलंबी हो जायगा। किसी ज्योतिषी से पूछना चाहिए कि छः साल के बाद ग्रहों की स्थिति कैसी—क्या रहेगी?

जब गांधीजी के जमाने में यह सवाल उठा था, तो उन्होंने कहा था कि गमलों में तरकारी बोइए। उनका इशारा यह था कि इस सामूहिक काम में हरएक की इच्छा-शक्ति लगनी चाहिए। समूचे मानव-समाज में इस काम के लिए प्रबल भावना पैदा करना उनका उद्देश था। वेदों में भगवान् को सहस्र-शीर्षः पुरुषः कहा गया है। जहां हजारों हाथ जुड जाते हैं, वहां भगवान् ही काम करता है। गोवर्धन पर्वत उठाते समय भगवान् ने सब से सहारा देने के लिए कहा और खुद ने सिर्फ उंगली लगायी। वेद में कहा है—'नहि श्रान्तस्य ऋते सख्याय देवा'। मतलब यह कि जब आदमी खुद मेहनत करके थक जाता है, तभी भगवान् उसकी मदद के लिए *आता है*।

अशान्ति से झूठी क्रान्ति होगी

उपनिषद् में कहा है—अन्न खूब पैदा करो। इसे अपना व्रत समझो। वैसे, उपनिषद् ब्रह्म-विद्या के ग्रन्थ हैं, पंचवर्षीय योजना के नहीं। पर हमारे ऋषि जानते थे कि यदि अन्न पैदा न हुआ, तो समाज में द्वेष बढ़ेगा और ब्रह्म-विद्या के लिए वह घातक होगा, क्योंकि मत्सर रहित या द्वेष-रहित समाज ही ब्रह्मविद्या का आधार बन सकता है।

इस दृष्टि से अन्न पैदा करने के बारे में बापू ने राष्ट्रीय पैमाने पर एक व्रत-भावना जगाने की कोशिश की थी। ये शान्तिवादी भाई यह नहीं कहते कि हम सब मिलकर इस काम को कर लेंगे। उलटे, वे तो यह कहते हैं कि हम आपके लिए इसे कर देंगे। छः साल में राष्ट्र आत्मनिर्भर हो जाएगा। इसके विपरीत, *गांधीजी के जमाने में लोकभावना कुछ ऐसी* बन गयी थी कि सरकारी अफसर भी कहते थे कि इन मिनिस्टरों के बंगलों के अहातों में इतनी जमीन जो पड़ी है, उसमें ये लोग साग-तरकारी क्यों नहीं बोते?

तो मैं यह कह रहा था कि ये वादा करने वाले लोग आज कल 'डिस्टरबन्स' नहीं चाहते। गड़बड़ी से ये घबराते हैं। चाहते हैं कि जैसा चल रहा है चलता चले। उधर क्रान्तिवादी हैं, जो जिस किसी भी तरीके से क्रान्ति करना चाहते हैं। *लेकिन जब शान्ति की रीति से* क्रान्ति आयेगी, तभी सच्ची क्रान्ति हो सकेगी। अशान्ति से क्रान्ति आई तो वह झूठी क्रान्ति होगी।

शिक्षित और अशिक्षित का भेद मिटे

इस विचार के चलते शिक्षित और अशिक्षित के बीच का भेद मिटेगा। आज जरूरत इस बात की है कि भारत का हर नागरिक शिक्षित और परिश्रमी बने। भगवान् ने हर आदमी को भूख दी है, तो हरएक को दो हाथ भी दिये हैं। दिमाग भी दिया है और दिल भी

(शेषांश पृष्ठ ४३ पर)

सजा किसलिए है ?

दादा धर्माधिकारी

कुछ मित्रो से बात करते समय मेरे मन पर यह असर हुआ कि हममें से बहुतो का मन अभी क्रान्तिकारी नही बना है। वैसे, आज के समाज को बदलने की इच्छा तो हमें जरूर है, लेकिन उसके लिए एक रुख, एक मनोवृत्ति की जरूरत होती है, वह मनोवृत्ति हमारी नही बनी है। कम्यूनिस्टो के जैसे साधन है, वैसी ही उनकी मनोवृत्ति भी है। वह उनके साधनो के अनुकूल ही है। लेकिन हम जिन साधनो को स्वीकार कर रहे है, उनके अनुकूल हमारी मनोवृत्ति नही बनी है, इसलिए हम बहुत जल्दी व्यग्र हो जाते है, और छोटी-छोटी बातो को भी अपने लिए एक विक्षेप मानते है।

कइयो को लगता है कि अहिंसा को इतना पकड रखना गलत है, क्योकि डाकुओ का मसला अहिंसा से हल नही होगा। मुझे लगता है कि अहिंसा में जिस मुकाम तक हम, याने गाधीजी के जमाने के आदमी, पहुचे है, उससे आगे आनेवाली पीढी का विचार जा रहा है, ऐसा अनुभव नही आ रहा।

मध्य-प्रदेश में डाकुओ ने विनोबाजी के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। यह जो मसला आया, उसमें क्या हमने कभी सोचा कि आखिर सजा किसलिए है ? बदला अलग चीज है और सजा अलग। बदला आदमी दूसरे से लेता है। पर जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सजा करता है, तब उसे बदला नही कहते। बाप बेटे को सजा देता है। न्यायाधीश अपराधी को सजा देता है। इन सबमें बदले की भावना नही होती। अगर हो, तो सजा का स्थान समाज में नही रहेगा। सजा में बदले की भावना जितनी कम रहेगी, सजा उतनी शुद्ध होगी। दड में न्याय होना चाहिए। न्याय तब होता है, जब उसमें प्रतिशोध और क्रूरता कम-से-कम होती है। पहले के जमाने के एक आदमी ने किसी स्त्री की तरफ बुरी निगाह से देखा, तो उसकी आख फोड देते थे। शिवाजी जैसे न्यायी और उदार राजा ने भी लोगो के हाथ तोड दिये थे, इस-लिए कि उन्होने चोरी की थी। इसे आज हम सजा नही मानते है। मनुष्य के हाथ काटकर उसे नाकाबिल बना देना क्रूरता मानी जाती है। सजा का, दड का, उद्देश्य मनुष्य को नाकाबिल बना देना नही है। आज जो समाज-विरोधी तत्व है, क्या हम उन्हे नि सत्व बनाना चाहते है ? अगर नही चाहते है, तो फिर उनके सुधार का कोई आयोजन होना चाहिए। क्या आज के दड विधान में ऐसा कोई आयोजन है ? अगर नही है, तो किसी समाज-सुधारक को वह करना होगा।

आपने एक चीज देखी होगी। दुनिया में जितने प्रसिद्ध डाकू हुए, उन सबकी कहानिया बडी दिलचस्पी के साथ पढी जाती है। रॉबिनहुड अग्रेजी साहित्य में–"हीरो" है। टट्या भील का नाटक खेला जाता है, उसकी जीवनी लिखी जाती है। मैंने मध्यप्रदेश की यात्रा में

देखा कि वहां के लोग डाकुओं को वीर पुरुष मानते हैं। इसका कारण यह है कि पुलिस को लोगों ने अपना रक्षक, सहायक कभी नही माना। पुलिस ने लोगों के मन में विश्वास और आश्वासन पैदा करने के बदले आतंक पैदा किया। मनुष्य जिससे आतंकित होता है, उसे दबानेवाला कोई सवा सेर मिल जाए, तो उसे संतोष होता है। इस तरह आतक से एक अनैतिक वातावरण बन जाता है, जिससे डाकुओं की भी इज्जत होती है।

पढे-लिखे लोगों का एक बहुत बडा भ्रम है कि सजा के डर से मनुष्य सही रास्ते पर चलता है। इससे बडा भ्रम समाज में दूसरा कोई नही है। आखिर सजा पैदा कैसे हुई? सजा का नियम किसने बनाया? अगर लोग यह न चाहते कि अपराधियो को सजा मिले, तो सजा का नियम नही बनता। वह नियम इसलिए बना कि लोग चाहते है कि अपराधी को अपराध से रोकने के लिए दड दिया जाय, निरपराधी के मन में आतक पैदा करने के लिए नही। कोई डाकू डकैती न करे, इसके लिए सजा रखना अलग चीज है। अगर सजा का प्रयोजन यह हो, तो यह मनुष्य के मन में आतक पैदा करेगी। और जितना आतक अधिक, कानून की प्रतिष्ठा उतनी कम।

समाज में अपराध के प्रति अरुचि व्यापक और सार्वत्रिक रूप से हमेशा रहे, इसलिए सजा का आयोजन हुआ है। सजा इसलिए है कि अगर थोडी देर के लिए सजा से डर पैदा भी हो, तो भी बाद में अपराध न करना मनुष्य की प्रकृति बन जाये, अपराध न करना उसके लिए स्वाभाविक हो जाये। आज वह डर के मारे रुकता है, लेकिन कल अपनी इच्छा से नेक बन जाये। असल में सजा का यही उद्देश्य है। इसीलिए पहले जितनी क्रूरतापूर्ण सजा दी जाती थी, उतनी आज नही दी जाती। व्यभिचार के लिए आंखें फोडना, चोरी के लिए नाक काटना हाथ तोडना, इसे आज सभ्य समाज की सजा नही माना जाता। सजा में बदला तो नही ही हो, क्रूरता भी नही होनी चाहिए। इस पर अगर आज के व्यवस्था और सुरक्षा चाहनेवाले कहें कि इसमें कानून की इज्जत कम होती है, मनुष्य की नीति-निष्ठा कम होती है, तो उनके सामने मैं एक सवाल पेश करूंगा कि फिर जेल में सुधार क्यो करते हैं? क्या इससे अपराध नही बढेंगे? जेल-सुधार करने वालो से अगर मैं कहू कि आप अपराधियो को हमसे अधिक गौरव दे रहे हैं, उन्हें 'ग्लोरीफाई' कर रहे हैं, तो? स्कूल के लडको को जो सुविधाएँ मिलती हैं, उनसे अधिक आज कैदियो को मिलती है, इसका उत्तर उन्हे देना होगा। हममें से किसी को भोजन न मिले, तो वे जिम्मेवार नही हैं। हर कैदी को दो वक्त भोजन मिलना ही चाहिए। इस तरह अपराधियो की व्यवस्था निरपराधियो से भी ज्यादा अच्छी की गयी है। इसके मानी यह है कि समाज ने सजा के पीछे अपनी जो जिम्मेवारी थी, उसे माना है।

मृत्यु के भय से किसीने अपराध करना बन्द किया हो, ऐसा कभी नही हुआ है। इसी-लिए आजकल माग की जा रही है कि फासी की सजा बन्द हो और सजा ऐसी हो, जिससे अपराधी नागरिक बनकर जेल से निकले, दुबारा जेल में न आय। पहले का तरीका ऐसा था कि वह दुबारा जेल में न आए, इसके लिए उसे जेल में ज्यादा-से-ज्यादा तकलीफ दी जाये। लेकिन अब दूसरा तरीका अपनाया जा रहा है

कि अपराधी सभ्य बनकर जेल से बाहर निकले। कहा गया है कि इन डाकुओ के समर्पण के मामले से सामाजिक मूल्यो और मान्यताओं के मामले में घाघली पैदा हो रही है, तो ऐसा कहनेवालो के मूल्य ही सामने रखकर मैं उनसे पूछ रहा हू कि सभ्य समाज दड की योजना किसलिए कर रहा हैं। परिवर्तन के लिए, प्रतिशोध के लिए नही। इसीलिए आज जेल में सुधार के जो प्रयाग हो रहे हं, उनका उद्देश्य अपराधी को सभ्य नागरिक बनाना है तो क्या जेल में सुविधा देने से अपराध को उत्तेजन मिलेगा ? सजा के भय से नीति बढती है, इससे बडा भ्रम दुनिया में और कोई नही है। आप डराना उनको चाहते हं, जो समाजद्रोही तत्व हं। जहा सजा का भय होता है, वहा वह निकल भी जा सकता है। लेकिन नीति के लिए समाज में आदर होता है, तो उस आदर के भरोसे काम चलता है, सजा के डर से नही।

सजा जो काम नही कर सकती है वह सज्जनो की नैतिकता करती है। विनोबाजी जैसा मनुष्य सामने आता है तो कुछ काम बनता है। असल में यह काम तो सब सज्जनो का है, जिनमें पुलिस भी शामिल है। क्या पुलिसवाले नागरिक नही हं। वे नागरिक पहले हं और सिपाही बाद में। लेकिन दुर्भाग्य से आज वे आतक को अपनी प्रतिष्ठा मानते हं और विश्वास को 'डिमॉरलाइजेशन'। पुलिस को आज के समाज में कोई अपना सहायक नही मानता। यह इसीलिए कि आज समाज में गरीब ज्यादा हं और गरीबो के रक्षण के लिए पुलिस की जरूरत नही है। गरीब के पास ऐसी कोई चीज नही है, जिसके रक्षण के लिए उसे पुलिस की जरूरत मालूम हो। वह तो उल्टा इस बात से डरता है कि पुलिसवाला कही मेरे घर आएगा, तो मेरी रक्षा के लिए नही, बल्कि मुझे चोर बनाने के लिए ही आएगा। अगर सरकार और पुलिस चाहती है कि कानून की प्रतिष्ठा बनी रहे, तो कानून ऐसा होना चाहिए, जो गरीबो का सहायक हो। पुलिस अगर जनता की सहायक होती, तो डाकुओ की प्रतिष्ठा नही होती। हमने सुना है कि कुछ डाकुओं ने धर्मशालाए बनवायी। गरीब यह सोचेगा कि मेरे पास तो लूटने के लिए धन है ही नही। अमीरो का धन लूटकर धर्मशाला बनवानेवाला अच्छा ही काम करता है। इसलिए समझना चाहिए कि जबतक आप क्रान्ति नही करते हैं, तब तक सामाजिक समस्याए हल नही होनेवाली है। इसलिए इसमें क्रान्तिकारी दृष्टि और योजना होनी चाहिए।

आज जेल में सुधार हो रहे हैं। न्याय में बारीकिया ढूढी जा रही हैं—इसीलिए कि किसी निरपराधी को सजा न मिले। आज जो डाकू पकडे गये हैं, उन्हे अदालत से सजा होगी। अदालत में उनपर जो आरोप लगाये गये है, वे सिद्ध न हो तो डाकू विनोबा के पास आकर कहता है कि मैंने अपराध किये हैं। तो इस तरह वह अपना अपराध स्वीकार ही कर लेता है और आपके गवाहो का पैसा बचाता है। इतना होने के बाद भी न्याय में कोई 'आश्वासन' नही है। लेकिन परिस्थिति में वह आश्वासन आ जाता है। बेटा बाप के पास जाकर कहता है कि मैंने आज चोरी से बीडी पी ली, तो वह तमाचे के लिए तैयार होकर तो आता है, लेकिन आशा यह करता है कि बाप उसे ईमानदार मानकर सजा नही देगा, क्योंकि तब परिस्थिति

यह पैदा होती है कि हृदय-परिवर्तन हो ही गया है। लेकिन इतना तो हुआ कि जिन्हे आप खोज रहे थे, वे खुद सामने आये हैं और उन्होंने अपना गुनाह मान लिया है।

समाज में निरपराधियो से भी अपराधियो की तरफ देखने की एक विशेष दृष्टि रही है। वह दृष्टि सारे समाज में रही है, सिर्फ सन्त-सज्जनों में नही। एक मिसाल लीजिए। मैंने कही शराब नही पी, तो उसमें मेरी कोई विशेष इज्जत नही है। लेकिन थोडी देर के लिए फर्ज कीजिए कि यहा कोई जबर्दस्त पियक्कड है, जो चोरी से गैर-कानूनी शराब बनाता है, बेचता है, और पीता है। सब लोग इस चीज को जानते हुए भी उससे इतने आतंकित है कि कोई उसके खिलाफ गवाही देने के लिए तैयार नही होता है। पुलिसवाले भी या तो डर से या रिश्वत से कुछ कर नही पा रहे है। ऐसी हालत में वह सामने आकर कहता है कि "मैं इतनी शराब बनाता था, लेकिन आज से छोड दी है," तो यहा के टाउनहॉल में आप उसकी इज्जत करेगे कि मेरी? इस पर क्या मै यह कहूगा कि आप उसकी इज्जत कर रहे है और हम तो यो ही रह गये। यह 'ग्लोरीफिकेशन' नही है, 'कन्सीडरेशन' है।

आप इस बात पर सोचे कि पुलिस की सफलता किस चीज में है। जिस इलाके में कम-से-कम पुलिस रखनी पडती है, वही उसको सफलता मानी जाती है न? जहा ज्यादा जवान तैनात करने पडते है और हर रोज पुलिस की जरूरत पडती है, वहा पुलिस सफल नही, असफल मानी जाएगी, उसी तरह पुलिस को सफलता उसकी जरूरत न पडने में है। क्या जेल की सफलता उसकी आबादी बढाने में है? अदालत, पुलिस, जेल आदि सस्थाओं की सफलता इसी में है कि *उनका कम-से-कम उपयोग* करना पडे। क्या ऐसी परिस्थिति पुलिसवाले मध्य प्रदेश में पैदा कर सके है? स्पष्ट ही वे ऐसा नही कर सके। तेलगाना में भी नही कर सके थे।

बल्कि उन्होंने डाकुओ की चतुरता को बढाया और लोगो में आतक पैदा किया। नही तो डाकुओ की खोज क्यो करनी पडती? वहा डाकुओ की खोज करनी पडती है। इसके मानी है कि नागरिक उस खोज में शामिल नही है। डर के मारे भी नही होगे। लेकिन उसके मानी यह भी है कि आतक कम नही हुआ है और सज्जनो को आश्वासन नही मिला है। सज्जनो को आश्वासन मिले और अपराधियो में भय पैदा हो, इसके बदले दलील यह पेश की जाती है कि सारे समाज में पुलिस का आतक रहे, नही तो 'डिमारलाइजेशन' होता है।

समाज में सजा, दड आदि की आवश्यकता कम-से-कम हो इसके लिए क्रान्तिकारी मनुष्य चाहिए। जहां चोरी-डकैती के जैसे गलत काम होते है, वहा ऐसे ही मनुष्य काम कर सकेगे, जो अपने मनसे अपरिग्रही बन गये हो। वैसे, गरीबो को चोरी का डर नही रहता है, क्योकि उनके पास सपत्ति ही नही रहती है, लेकिन वे आतंकित रहते है, क्योकि उनको सपत्ति की इच्छा है। जिसके पास सपत्ति है, लेकिन उसकी इच्छा नही है या जिनके पास सपत्ति नही है और उसकी इच्छा भी नही है, ऐसे अपरिग्रही व्यक्तियो का ही यह काम है, क्योकि यह समस्या आज की साम्पत्तिक रचना में से पैदा हुई है।

हमें समझना चाहिए कि सजा के अवसर तब कम होगे, जब साधारण नागरिक पुलिस

(शेषाश पृष्ठ ४३ पर)

को अपना सहायक मानेगा। आज किसी गरीब को पुलिस की जरूरत ही नहीं है। क्योंकि उसके पास सम्पत्ति ही नहीं है। इस पहलू को हमें समझना होगा। इसलिए आज की सापत्तिक स्थिति में परिवर्तन करना होगा और ऐसे काम में वे ही सफल होंगे, जो मन से अपरिग्रही होंगे।

हम लोग उस क्षेत्र में काम कर रहे हैं, हमें श्रेय के मामले मे नही पडना चाहिए। श्रेय का झगडा खडा ही नहीं होना चाहिए। आखिर डाकुओ की समस्या किसने हल की? हमने या पुलिस ने? विनोबाजी ने या सरकार ने? सरकार जो नही कर सकी वह सर्वोदय-वाला ने किया है—इस तरह की श्रेय-आकाक्षा हम में हो, तो सारा मामला ठप्प हो जायगा। जो चमत्कार दड नही कर सकता है, वह चमत्कार अहिंसा कर सकती है। लेकिन तभी कर सकती है, जब अहिंसा को श्रेय की आकांक्षा नहीं रहती—आग गर्मी पैदा करती है। पानी ठडक पहुंचाता है। इन दोनों में श्रेय की आकाक्षा नहीं रहती। दोनो अपना काम करते हैं। अगर आज की परिस्थिति में श्रेय का झगडा पैदा हुआ, तो समस्या उलझने ही वाली है।

(पृष्ठ ३८ का शेषाश)

दिया है। सब अपनी-अपनी बुद्धि का विकास करे। सब शरीरश्रम करे। इससे भारत एकवर्ण समाज बनेगा। उसका नाम होगा—हसवर्ण—हसवर्ण समाज नीर-क्षीर-विवेक करनेवाला सतुलित समाज। ज्ञान और कर्म की निष्ठा के दो पखा द्वारा वह पक्षी की तरह ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए उडेगा।

सर्वोदय का आदर्श

वेद में अगस्त्य ऋषि का वर्णन आता है। कहते हैं, वह समुद्र को पीकर सुमात्रा–बोर्नियो तक गया था। विन्ध्याचल को झुकाकर उसने दक्षिण भारत की यात्रा की थी। उन दिनो इतनी लम्बी समुद्र-यात्रा करना और विन्ध्याचल को लाघना बहुत कठिन काम था। तमिलनाड के लोग आज भी अगस्त्य को बडी श्रद्धा से याद करते हैं। वेद में लिखा है—"अगस्त्य कुदाली से खोदता था। उस उग्र ऋषि ने दोनो वर्णों का पोषण किया।" मतलब यह कि अगस्त्य ने अपने समाज में श्रमनिष्ठ और ज्ञाननिष्ठ वर्णों को इकट्ठा कर दिया था। आज हमें ऐसा ही एक समाज बनाना है। सर्वोदय का यही आदर्श है।

लोक भारती* में हम क्या कर रहे हैं !

मनुभाई पांचोली

ज्ञान का प्रवाह देहात की जनता तक पहुँचे तथा उसके द्वारा देहात में सुप्तावस्था में पडे हुए जीवन के अंकुर नवपल्लवित हों, ऐसी आज भारत वर्ष की आकांक्षा है। उस आकाक्षा को सफल करने के लिए आज के नवयुवकों को देहातों के, देश के तथा आंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों के संबंध में गहराई से जानकारी हो, यह अत्यावश्यक है। भारतीय जीवन दृष्टि केवल किसी प्राचीन युग की अवशेष नही है, परन्तु एक जीती जागती अद्यतन दृष्टि है, इसका भान करना भी उतना ही आवश्यक है। खेती या गोपालन कोई एक टॅकनिकल विषय नही है परन्तु हिन्द के समग्र जीवन में खून की तरह बहता हुआ एक विषय है।

सर्वोदय की दृष्टि से पूज्य महात्माजी द्वारा निर्दिष्ट सत्य तथा अहिंसा की नीव पर देहातो के विविध प्रश्नो को सुलझाने में, उस विद्या का प्रसार किस प्रकार मदद रूप हो सकेगा इसके अनेक प्रयोग करना लोक भारती का ध्येय है। भारतीय संस्कृति तथा प्रकृति का सुमेल रहा है। ग्राम भूमि तथा ग्राम समाज में शुभ तत्वों की जो अपार शक्ति पडी हुई है वह शिक्षा द्वारा बाहर आये, ऐसा प्रयत्न लोक भारती करती आयी है। इस दिशा में हम जो प्रयास कर रहे हैं उसकी अल्प रूपरेखा यहां दी जाती है।

लोक भारती संस्था की स्थापना २८ वी मई १९५३ के रोज श्री. माननीय काकासाहेब कालेलकर के शुभ कर कमलो द्वारा हुई। संस्था आज विविध प्रवृतियां चला रही है। ग्राम उच्च विद्या के स्नातकों को तैयार करना इनमें से प्रधान है। आजतक लोक-भारती में से चार टोलियां उत्तीर्ण होकर निकली हैं। ये लोग आज निम्नलिखित क्षेत्रों में काम कर रहे हैं।

१. सौराष्ट्र-गुजरात की लोक शालाएं तथा शिक्षा संस्थाएं	५९
२. सर्वोदय योजनाए	४
३. खेती व्यवस्था	५
४. सहायक खेती केंद्र	५
५. गोशाला व्यवस्था	२
६. सघन क्षेत्र व्यवस्था	११
७. स्वतंत्रव्यवसाय–खेती से संबंधित	११
८. सरकारी खेती पंचायत विभाग	६
९. स्नातकोत्तर शिक्षा	१३

लोक सेवा महाविद्यालय

यह लोक भारती की एक प्रधान अंग है। देहातों के प्रश्नों में मुख्य हैं, खेती गोपालन तथा शिक्षा का विकास। इस दृष्टि से लोक सेवा महाविद्यालय के दो अंग रखे गये हैं :– १. खेती गोपालन २. लोक शिक्षा। अभी तक दोनों

ने जो मार्ग निकाला वह उनके रोज निशियो तथा वार्षिक रिपोर्ट में से दिखाई देता है।

इस शिक्षा काल के दरम्यान खेती गोपालन के विद्यार्थियो ने खेतो में अच्छे फसल के लिये खाद के अलग अलग प्रयोग किये तथा किसानो को कितनी ही नई नई पद्धतिया भी बतायी। शरीर श्रम में किसी भी अच्छे मजदूर के मुकाबले में ये विद्यार्थी पीछे न रहते थे, यह देखकर किसान भी आश्चर्य चकित हो जाते।

एक किसान भाई के पत्र में से कुछ वाक्य इस बात के समर्थक हैं– 'आपकी संस्था में से ग्रामनिवास के हेतु आये हुए दोनो भाईयो के कारण हमें सब प्रकार से खूब लाभ हुआ है। अधिक वर्षा के समय उनके मार्ग दर्शन ने रासायनिक खाद डालकर फसल को निष्फल होने से रोका, अब यह अनुभव हमने कायमी रूप से हस्तगत कर लिया। इसके अलावा उनका सामान्य ज्ञान भी मुग्ध कर देने वाला है। मेरी दूकान तो उन दोनो ने अपने खेती के ज्ञान के प्रचार का केंद्र ही बना रखी थी। ये विद्यार्थी तो खूब ईमानदार, नीतिवान तथा चारित्र्यवान हैं, अपनी जिम्मेदारी तथा कर्त्तव्य का पूरा भान उन्हे है।

इसी प्रकार लोक शिक्षा के विद्यार्थियो के बारे में भी जिन केंद्रो में उन्होने काम किया वहा से ऐसे पत्र हमें प्राप्त हुए हैं–"दूसरी संस्थाओ के स्नातको की अपेक्षा लोकभारती संस्था के स्नातको में ग्रामजीवन की दृष्टि तथा निष्ठा विशेष प्रकार से दिखाई देती है। तीनो मित्रो ने यहा के वातावरण में नया रंग भर दिया जिससे वातावरण गूज उठा था। आये थे मेहमान बनकर, गये हमारे होकर।"

लोक शिक्षा के विद्यार्थियो ने लोकशालाओ मे तथा उत्तर बुनियादी शालाओ में प्रत्यक्ष वर्ग शिक्षण, छात्रालय संचालन, विद्यार्थियो के श्रम का आयोजन, मानसशास्त्रीय अवलोकन इत्यादि अनेक प्रवृत्तियां की थी।

छात्रालय

लोक सेवा महाविद्यालय के विद्यार्थियो की समग्र तालीम के लिए उनका छात्रालय जीवन भी तालीम के अंग के तौर पर आयोजित किया गया है।

अलग-अलग छात्रालयो में विद्यार्थी गृहपति की देखरेख के नीचे रहते हैं। छात्रालय की तमाम व्यवस्था के काम जैसे–सफाई, पानी भरना, संडास-सफाई, रसोई घर संचालन इत्यादि का ये लोग स्वयं आयोजन करते हैं। चार छात्रालय तो अपना स्वावलंबी रसोई घर चलाते हैं। इन छात्रालयो में ३० से ३५ तक विद्यार्थी रहते हैं और अपने गृहपति के मार्गदर्शन में किफायत के साथ, व्यवस्थित रीति से तथा सभी को संतोष मिले इस प्रकार अपना रसोई घर चलाते हैं।

विद्यार्थी मंडल की प्रवृत्ति भी यहा की समग्र तालीम के एक भाग के तौर पर चलायी जाती है। लोकशाही में सत्ता और जिम्मेदारी एक ही सिक्के के दो बाजू हैं यह बात यहा विद्यार्थियो के मन में दृढ हो जाय, उस प्रकार से उसका संचालन होता है। मुख्य गृहपति विद्यार्थी मंडल के मार्गदर्शक के तौर पर काम करता है। यह विद्यार्थी मंडल अपना मंत्री मंडल हरेक सत्र में चुनता है।

सतत श्रम आयोजन

विद्यार्थी रोज ढाई घंटे खेती में तथा गोशाला में प्रत्यक्ष काम किया करते थे। परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था में श्रम तथा काम का सातत्य नही रहता था। साधन सामग्री जुटाने,

उनको काम में लाने तथा काम शुरू करने में बहुत ही कम समय मिलता था। इसमे काम का सपूर्ण रूप और सारी क्रिया-प्रक्रियाओ का ज्ञान नही मिलता था । समय तथा एकाग्रता दोनों दृष्टियो से यह आयोजन असफल प्रतीत हुआ । अत डॉसन प्रथा शुरू की, जिसका अल्प परिचय इस प्रकार है ।

विद्यार्थियो को वर्गवार महीने में एक हफ्ते तक ६ घटे रोज के हिसाब से श्रम करना पडता है । यह श्रम सुबह ७ से १० तक चलता है । साधन सामग्री का पूरा आयोजन होता है । ७ से काम शुरू करते हैं । फिर १० से १ बजे तक समय नहाना, धोना, खाना और आराम के लिए दिया जाता है । एक से ढाई बजे तक वर्ग होते हैं और बाद में विद्यार्थी काम पर लग जाते हैं । साढे पाच बजे तक काम करते हैं। हफ्ते में जो वर्ग इस प्रकार सतत श्रम करता है उसे पढाई केवल दो वर्ग की यानी डेढ घटे ही करनी होती है । परन्तु काम हरेक विद्यार्थी को ५० घटे का करना पडता है । यदि किसी कारण वश में ५० घटे पूरे न हो सके तो उस विद्यार्थी को बीमारी के कुछ दिन छोडकर बाकी छट्टीया में रहकर काम पूरा कर देना पडता है । तभी वह अपने वर्ग में उत्तीर्ण माना जाता है । इससे विद्यार्थियो को सतत काम करने की आदत पडती है । काम पूर्ण एकाग्रता तथा व्यवस्थित रूप से होता है । शुरू किया हुआ काम पूरा करके ही छोडते हैं, इससे काम का सातत्य बना रहता है और उसमें मजा आता है, समय भी बचता है । मजदूरो की आवश्यकता जरा भी नही रहती । विद्यार्थी स्वय सारा काम पूरा कर डालते हैं ।

दूसरे हफ्ते में दूसरा वर्ग आकर इसी प्रकार काम करता है । यदि पहले वर्ग का कुछ रह गया हो तो ये विद्यार्थी पूरा करके दूसरे काम को शुरू कर देते हैं । पहला वर्ग अब अभ्यास में लग जाता है । अब उसे ३ हफ्ते केवल पढना ही है । जिन घटो को उसने पहले हफ्ते में काम में लगाया था उनको अब वह पढाई में लगाता है । इससे पढाई में अधिकएकाग्रता आती है ।

इस प्रकार जब विद्यार्थी सस्था के अलग-अलग विभागो में काम करते हैं—उदा -खेती, गौशाला, रसोई घर, सफाई, प्रयोग शाला इत्यादि—तब उनके काम का औसतन उत्पादन १५ नया पैसा प्रति घटे का होता है । यह पैसा सस्था में फीस के बदले जमा किया जाता है क्योकि उनसे किसी प्रकार का शिक्षा शुल्क नही लिया जाता है । श्रम कार्य इस प्रकार से व्यवस्थित चलाया जाय तो उस श्रम द्वारा सस्थाको अच्छी रकम मिल सकती है, ऐसा आज तक के आकडो को देखकर प्रतीत होता है ।

अंम्बर चरखा

अम्बर चर्खे का काम उत्तरोत्तर अधिक व्यवस्थित चल रहा है । एक सत्र में ३० विद्यार्थियोंने रोज औसतन छ घटे के हिसाब से काम करके कुल १७४३ गुडी सूत निकाला था । हम इसका प्रयोग निष्ठा के साथ कर रहे हैं और हमें दृढ विश्वास है कि इसमें सफलता मिलेगी ।

आखिर अभ्यास क्रम तो एक साधन तथा नकशा है । उसमें प्राण भरने का काम ही महत्व का है । हमारी दृष्टि के समक्ष हमेशा यही बात रही है कि लोक भारती अपने स्नातको द्वारा भारतीय सस्कृति की परपरा लक्ष्य में रखकर यहा के देहातो की प्रजा की सेवा करके भारत के नवनिर्माण के कामा में अपना हिस्सा यथाशक्ति बटावे तथा सहयोग दे ।

★श्री नानाभाई भट्ट द्वारा स्थापित शिक्षा सस्था, जो सणोसरा, सौराष्ट्र में शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है ।

बच्चे की देखभाल और शिक्षा (८)

जानकी देवी
देवी प्रसाद

शिशु देखना सीखता है

मुन्नी दो माह की थी। एक दिन दूध पीने के समय से कुछ पहले ही उसे भूख लग गयी और वह रोने लगी। मा कुछ काम में लगी थी। उसके पिता उसे गोद में लेकर चुप करने की कोशिश करने लगे। किसी तरह भी वह चुप नही होती थी। रात हो गई थी। आकाश में चाद खिला हुआ था। पिता बच्ची को चुप करने के प्रयत्न में खुले में चला गया। इतने बडे आकाश में चमकता हुआ चाद। उसने मुन्नी के मन को खेंच लिया। वह एक दम चुप हो गयी और एक टक चाद की तरफ देखने लगी। यह उसका चाद का पहला "देखना" था। बाद में उसने दूध पिया। पर दूध पीते समय और उसके बाद काफी देर तक भी उसकी आखें कुछ खोजती रही, वह किसी एक खास चीज को देखना चाहती थी और उसे ढूढ रही थी।

शिशु इसी तरह देखना सीखता है। अगर उसके सामने सरलता से वस्तुएं एक-एक दो-दो करके आयें तो वह उन्हे देखता है। मां जब शिशु को गोद में लेकर इधर-उधर घुमाती है तब उसे नई-नई वस्तुएँ नजर पडती है, वह उन्हे देखता है, इसमें उसकी देखने की रुचि बढती है। डेढ या दो माह की अवस्था के करीब शिशु, जब कोई उसके पास जाकर उससे बोलता है तो उनके मुहं की तरफ देखने और थोडा-थोडा हँसने लगता है। यह हँसना उसका दूसरों के साथ का पहला बातचीत, "कम्यूनिकेशन" है। मां की गोद में लेट कर दूध पीते समय बच्चा मा के मुह की तरफ देखने लगता है। मां को दूसरे लोगो से अलग पहचानने में उसको एक-आध महीना और लग जाता है। ढाई तीन महीने में चलती हुई वस्तुओ के साथ वह नजर घुमाने लगता है—अगर उसकी मां या और कोई उसके पास से चला जाता है तो उसकी आँखें उनके पीछे घूमती हैं। शायद पांच छः महीने में वह वस्तुओ के आकार को पहचानने लगता है; उदाहरणार्थ—दूध की बोतल को पहचानता है। धीरे-धीरे जब उसके हाथ और नजर का समन्वय होने लगता है तब वह वस्तुओ को और बारीकी से देखता है। नजदीक की चीजो को पकडने की कोशिश करता है।

बैठना, खडा होना और चलाना सीखता है

जिस बालक का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होता है वह बैठना, चलना आदि उन बालको से पहले सीखता है जो कमजोर और बेस्फूर्तिवाले होते हैं। साथ-साथ यह भी देखा गया है कि जिन बालको के मन में कुछ डर बैठ गया हो वे भी कुछ नया अभिक्रम करने से घबराते

हैं। बालक नई चीजें तभी सीखते हैं जब उन्हे नया अभिक्रम करने में सुख और सफलता का अनुभव होता है। अगर कभी सीढी पर चढने में शिशु को कडी चोट लग कर मन में भय बैठ गया हो तो वह फिर चढने में सकोच करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि इन बातो को सीखने के लिए निम्नलिखित बातो की आवश्यकता होती है:

अच्छा स्वास्थ्य–यानी सतुलित भोजन, जिसमें शिशु की हड्डियो और पेशियो को *विकसित होने का पूरा-पूरा मौका मिले।*

स्वतन्त्रता–शिशु अपनी शक्ति और विकास के अनुसार नये-नये अभिक्रम कर सके, ऐसी परिस्थिति घर में और परिवार में हो। अधिक कपडे, गलत प्रकार की खाट, घर की बनावट ऐसी जिससे कि बालक को अडचन आये, माता पिताओं को बच्चो को चोट लगाने के डर से स्वतन्त्र छोड देने का भय इत्यादि कई कारणो से बालक सीखने में देरी कर सकता है।

सुरक्षा.–नये अभिक्रम करने के दौरान में जो खतरे आते हैं उनकी ओर से बालक को सुरक्षा मिले। इसका मतलब यह हुआ कि बालक को जिन कारणो से गभीर चोटें लग सकती हैं और जिनके कारण उसके मन में दहशत बैठ सकती है, उन सब कारणो को यथाशक्ति दूर करना। छ.–सात माह के शिशु को ऐसी ऊंची खाट पर सुलाना गलत होगा जिससे वह लुढक सके। ऐसी खाट या झूले पर बालक को अकेला नही छोडना चाहिए। अगर उस पर चारो तरफ बचाव के लिए कमचियां लगी हों, जिससे कि बच्चा गिरने न पाये तो उसे अकेला छोडने में कोई नुकसान नही है। आजकल शिशु के खेलने की जगह को एक सुन्दर से कटघरे जैसे घेर देते हैं, ताकि बालक खूब स्वतन्त्रता पूर्वक उसमें खेल सके। उसके खेल के साधन आदि भी उसमें रहते हैं। इस "क्रीडा-घर" की रेलिंगो को पकडकर शिशु खडा होने का प्रयत्न करता है। वह उसके सहारे-सहारे चलने का भी प्रयत्न करता है। यानी उसको सुरक्षित, पर स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने का अवसर मिले।

बोलना सीखता है

परिवार की एक मित्र बहन चार-पाच माह के शिशु को देखने आयी। शिशु के साथ जब वे तमिल में "बात करने" लगी तो शिशुने भी कुछ आवाज निकालना शुरू किया। यह बहन बोली कि "देखो, हर बालक पहले तमिल की ही आवाज निकालता है।" कुछ दिन के बाद एक मित्र गाव से आये और उसी प्रकार कहने लगे कि बालक हमेशा मराठी के ही शब्द पहले निकालता है। सच बात तो यह है कि शिशु तमिल, मराठी, जर्मन और लैटिन सभी भाषाएँ बोलने वालो की एक भाषा समझता है। वह है उसके साथ सवेदना की भाषा। भाषा के साथ सामाजिकता का पहलू जुडा हुआ होता है। मा की मीठी आवाज को सुनकर शिशु भी आवाज निकालता है और फिर जो भी उसकी आवाज को सुनकर उसके साथ प्रतिक्रियात्मकता दिखाता है तो बालक भी बोलने का प्रयत्न करता है। पहले वह शब्दो के बाहरी अर्थ को नही, बल्कि वार्तालाप करनेवाले के साथ के सम्बन्ध को ही समझता है और उसका उत्तर देता है। पहले-पहल वह खुद बडबडाता है और अपने आप ही अपनी भाषा तैयार कर लेता है। धीरे-धीरे वह आगे बढता है। वह अपने ढग से ही शब्दो

सीखता है, जो कई दफे गलत भी होता है। अगर उसे ठीक ढंग से विकास करने का मौका मिला तो उसकी भाषा के संस्कार अच्छे बनते हैं। भाषा के समुचित विकास के लिए पहली आवश्यकता तो माता-पिता के साथ शिशु के सम्बन्ध की होती है। माता-पीता से प्रेमपूर्ण वातावरण और स्वयं अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ने का मौका उसमें मददगार होता है। कई माता-पिता बच्चे को खिलाने के लिए, उसे खुश करने के लिए तरह-तरह की भद्दी आवाजे निकाल कर ऐसा सोचते हैं कि वे बालक का दिल बहला रहे हैं। किन्तु वह सचमुच शिशु की अपनी भाषा के विकास में नुकसान ही केता होगा। कम-से-कम यह बात तो सच है कि उससे बालक को न तो भाषा के मामले में लाभ होता है और न सौंदर्य-बोध के मामले में। सब से अच्छा यह है कि शिशु की स्वाभाविक वातावरण मिले और उसे शब्दो का सुन्दर उच्चारण सुनने को मिले, अच्छे-अच्छे शब्द सुनने को मिले और उसके साथ अच्छे ढग से रुचिकर वार्तालाप हो।

नये शब्द की आवाज सुनने में शिशु को बड़ा मजा आता है। अगर बालक का शब्द संग्रह अच्छा बनाना हो तो माता-पिता को चाहिए कि उपयुक्त मौके पर वे बालक के कान पर नये शब्द डाले। जैसे खाना खाते समय खाने की चीजों के नाम, कपड़े पहनते समय कपड़ों के नाम, आदि।

डरना सीखता है

शिक्षा की दृष्टि से जब छोटे-छोटे बच्चों के जीवन का निरीक्षण करते हैं तो कई ऐसी बाते सामने आती हैं जो अत्यन्त दुखदायक होती है। उनमें से एक यह भी है कि बच्चो को किस प्रकार भय करना सिखाया जाता है। भय के सिलसिले में दोहरी कठिनाई होती है। एक तो मनुष्य के अन्दर अभी भी उसके आदियुग के समय बैठे हुए भय के अवशेष बाकी हैं। अन्धेरा भी आदमी को भयभीत कर देता है। जोर की कठोर आवाजें भी भयभीत कर देती हैं। और इन अवशेषों के साथ-साथ अगर ऊपर से भूत का भय, पुलिस का भय और तेल निकालने वाले का भय भी बालकों में बाकायदा ढग से पैदा किया जाय तो आखिर कैसा व्यक्तित्व पैदा होगा, आज भी कई माता-पिता और सयाने इस बात को कम ही समझते हैं। अपने काम की सुविधा के लिए, बच्चे को चुप करने की दृष्टि से मा-बाप पुलिस का भय और न जाने कितने प्रकार के भय बच्चे के मन में बैठा देते हैं। उनसे बाद में छुटकारा मुश्किल से ही मिलता है। बालक को अनुशासन में लाने के लिए जिस पुलिस और भूत के भयों का उपयोग शिशु काल में किया जाता है, वे भय ही बाद में चलकर व्यक्ति की बुद्धि को भ्रम में डालने और उसे मन्द कर देन का काम करते है। इसलिए यह आवश्यक है कि माता-पिता, पालक और शिक्षक अच्छी तरह समझ ले कि व्यक्ति की अन्तर और बाह्य शक्ति को बिलकुल नष्ट-करने वाली चीज भय है। शिक्षा का एक बुनियादी फर्ज अभय का निर्माण करना माना जाना चाहिए।

पहले बालक के सामने अजीब-अजीब चीजें और चेहरे आते हैं तो वह यह नही समझ पाता कि उसे किस प्रकार ले। कोई अजीब आवाज होती है तो वह चौंक जाता है। यह परिस्थिति धीरे-धीरे दो तरीको से ठीक की जा सकती है।

एक तो यह कि माता पिता को चाहिए कि वे बालक को अहिस्ता-अहिस्ता हमेशा नई-नई आवाजों, शक्लो और परिस्थितियों से परिचित कराते रहें और दूसरे यह कि बालक के मन में विश्वास का बोध पैदा हो इसका प्रयत्न करे। अगर अजीब चेहरा भी हो और उसके प्रति मां को विश्वास है, यह बालक समझ ले तो उसको भी भय नही होता।

हमने दो परिस्थितिया आम तौर पर देखी हैं। एक बालक रात को बैठा बाहर के अंधेरे में कुछ अजीब आकार देख कर डर-सा रहा था। उसके पिताने समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु बातचीत से वह नही समझा। पिताने समझ बूझ का काम किया और बालक को स्पष्ट दिखा दिया कि वह "भयानक" आकार और कुछ नही, बाहर पेड पर पडने वाला उसको लालटेन का ही प्रकाश था। बालक का भय कम हो गया। ऐसी परिस्थिति में भाषण काम नहीं कर सकता। दूसरा अनुभव और मजेदार है। बालक गिरा और देखा गया कि वह मा की तरफ देख रहा था, यह समझने के लिए कि परिस्थिति कैसी है। अगर मा के चेहरे पर चिन्ता और भय का भाव देखा तो बालक भी भयभीत हो जाता है। अगर मा ने हस दिया और उसने उसे एक मजेदार घटना के तौर पर समझा तो बालक भी हसने लगता है। बालक माता पिता की तरफ देख कर तय करता है कि अमुक परिस्थिति की उसपर कैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए। इसलिए उन्हे गैर वाजवी मौको पर घबराना रोना पटकना आदि नही करे, इसके बारे में सतर्क रहना चाहिये। बच्चे अपने बडे भाई-बहन की तरफ भी काफी देखते है। अगर वे किसी परिस्थिति में मजा ले रहे हो तो उन्हें भी मजा आने लगता है जब कि इसकी प्रथम प्रतिक्रिया भय की हो सकती है। वातावरण में विश्वास और परिस्थिति का मुकाबला करने की आदत का अभ्यास बच्चों में निर्भयता का निर्माण कर सकते हैं।

बालक क्रोध करना सीखता है

बालक चिढचिढाते हैं तो उसके पीछे कुछ खास कारण होता है। कभी-कभी वह किसी ऐसे कारण से भी चिढचिढाता है जिसके बारे में मा-बाप कुछ नही कर सकते। ऐसे मौको पर शान्त रह कर बालक के क्रोध को सहन करना ही अच्छा होता है। कभी-कभी वह स्वास्थ्य खराब होने के कारण छोटी-छोटी बातो पर चिढचिढाता है। ऐसी हालत में अच्छा है कि उसे गुस्सा होने के मौके न हो, यही ध्यान दिया जाय। क्योंकि कमजोर बालक चिढचिढाता है तो उसके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वह नुकसानदेह हो सकता है।

कभी-कभी बालक को उसकी किसी प्रिय प्रवृत्ति से हटाने की आवश्यक्ता पड सकती है। तो ऐसे किसी दूसरी रुचिकर परिस्थिति निर्माण करके हटाने से अच्छा होता है, जिससे कि उसे चिढचिढाने का मौका न हो। कई लोग बालक को चिढाने में मजा लेते हैं। वह गलत चीज है और बालक के स्वभाव को गुसीला बनाने वाला होता है। पालको का प्रयत्न यह होना चाहिए कि बालक जब चिढें या गुस्सा हो तो मूल तकलीफ को दूर करने की कोशिश करे।

सक्षेप में-बालक को सीखने में मदद

निम्न-लिखित बातों से की जा सकती है :

१. बालक को अपने ही विकास की सीढी पर चढने दें, उसमें कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए । उसके लिए आवश्यक है कि उसके कपडे ऐसे हों जिससे उसकी चेष्टाओं में रुकावट न आये ।

२. उसको ऐसा स्थान मिलना चाहिए जहां वह पूर्ण स्वतंत्रता के साथ हाथ-पैर हिला डुला सके, खिसक सके, पलट सके । इससे वह समय आते ही बैठ सकेगा, खडा हो सकेगा और चल सकेगा ।

३. उसको अपनी प्रवृत्तियां स्वय करने और अपनी परिस्थितियों का मुकाबला अपने आप करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए । उसके उपयोग की चीजें उसकी ऊंचाई और शक्ति के अनुसार ही रखना अच्छा होता है, जिससे कि वह अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण कर सके ।

४. *शिशु की दिनचर्या जितनी हो सके नियमित हो* । उसके शौच, स्नान, भोजन और निद्रादि का कार्यक्रम पहले तो उसके ही छन्द के जैसा चलेगा किन्तु बादमें वह धीरे-धीरे नियमित हो, इसका प्रयत्न करना चाहिए । बदल की ये प्रक्रियायें ऐसी न हो कि जिससे *उसके मन में उनके प्रति भय बैठ जाय* ।

५. शिशु को खेल में या अन्य किसी समय उत्तेजित न किया जाय । उसके साथ इतना नहीं खेलना चाहिए कि वह अधिक थक जाय ।

६. अपनी आवश्यकताओं को भाषा के द्वारा प्रदर्शित करे इसके लिए उसे प्रोत्साहन देना चाहिए ।

७. शिशु को ऐसा वातावरण देना चाहिए कि जिससे वह अपनी वृत्ति और आवश्यकता के अनुसार अनुभव प्राप्त कर सके । उसको ऐसे मौके मिलने आवश्यक है कि जिससे उसको तरह-तरह के अभिक्रम करने में प्रोत्साहन मिले । उसी अनुसार उसके खेल के खिलौने और अन्य वस्तुएँ बनायी जानी चाहिए ।

८. उसके भोजन आदि का पहले से ही परीक्षण कर लेना चाहिए । हो सकता है कि उसमें कुछ कमी रह गयी हो या वह जल गया हो, इससे उसके ऊपर अप्रिय परिणाम होंगे और माता-पिता शायद वह समझ भी न सके और बालक चिडचिडाने लगे । ऐसी परिस्थितियों को सतर्कता से टाला जा सकता है ।

९. *जो भी कार्य शिशु के लिए किया जाय*, वह इस तरह किया जाय कि जिससे उसका सहयोग मिल सके, यानी उसे उठाया तो *ऐसे न उठाया जाय कि जैसे वह एक निर्जीव* वस्तु हो, बल्कि हर क्रिया में वह भी आपके प्रयत्न में साथ दे रहा हो, ऐसी दृष्टि सब *कामों में रहे । उदाहरणार्थ—शिशु जब किसी* का हाथ पकडकर चलना चाहता है तो अनेक बार सयाने उसे ऐसे उठाकर चला देते हैं जैसे कि एक रबर की गुडिया को चला रहे हों, चाहिए तो यह कि शिशु को अपने प्रयत्न के ऊपर जितनी मदद चाहिए, उतनी उसे दी जाय । इससे अभिक्रम जगेगा ।

१० जो कुछ करने को या सीखने की उससे अपेक्षा हो वह उसके मन को सुहावनी और आनन्ददायक होनी चाहिए । तभी वह उसे करने की कोशिश करेगा और उसमें रुचि लेगा । चाहे कितनी भी वांछनीय बात क्यों न हो, चाहे वह कितनी भी शैक्षणिक क्यों न हो अगर बालक उसे करने में संकोच करता है या उससे डरता है, तो उसे कराना गलत होगा ।

प्रयत्न यह करना चाहिए कि संकोच-भय आदि के कारण पहले से दूर हों। सामान्य रोजमर्रा की अवश्यक बातें इस तरह आसानी से आदत बन सकती हैं।

११. अलग अलग बालकों का स्वभाव अलग-अलग हो सकता है। यह कोशिश न की जाय कि जो अपेक्षा एक बालक से है वह सभी से करें। हर बालक के अपने स्वभाव व स्वधर्म के हिसाब से ही हमें भी बर्ताव करना चाहिए।

१२. एक बात हमेशा ख्याल रहे कि बालक के साथ उसी प्रकार इज्जत का व्यवहार किया जाय, जैसा बडों के साथ किया जाता है। वह नन्हा है इसलिए उसे खिलौना नही समझना चाहिए। उसके व्यक्तित्व में अगर आदरभाव को बैठाना है तो उससे आदर का व्यवहार किया जाना चाहिए। बालक का हृदय कोमल होता है, सयानों को पता भी नहीं चलता कि कब उन्होंने उसे अपमानित कर दिया, इसलिए यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि बालक के साथ व्यवहार बराबरी का हो।

१३. साथ-साथ यह भी न हो कि उसके साथ का बर्ताव औपचारिक बन जाय, जैसा कि कई अमीर घरानों में बन जाता है। बालक आत्मविश्वास चाहता है और उसे अपने वातावरण में भी विश्वास की मांग रहती है, इसलिए उसके साथ का बर्ताव उसके साथ दोस्ती का हो, आनन्द लेने वाला हो। वह प्यार को समझता है उसे लाड करवाना अच्छा लगता है। छोटी-मोटी चोटों को झेल लेने में उसे आनन्द आता है—आखिर वह कोई कांच की गुडिया नही है, वह तो एक एसी 'सभावना' है जो परे चलकर न जाने किस कानन की पुष्पलता की तरह प्रफुल्लित हो सकती है। उसे इज्जत देंगे, प्रेम देंगे, विश्वास देंगे और सहयोग देंगे तो वह अवश्य खिल उठेगा।

स्त्रियां स्वरक्षित बनें

आज तक स्त्रियां सुरक्षित मानी जाती हैं। लेकिन स्त्रियां क्यों नहीं स्वयं का रक्षण करें? पुरुष का रक्षण उन्हें आवश्यक नहीं होना चाहिये। अब स्त्रियों को स्व-रक्षित बनकर अपना भी और पुरुषों का भी रक्षण करना चाहिये। शेरनी और शेर दोनों में से जब संकट आता है तो शेर के भाग जाने पर भी शेरनी के रहने और बच्चों की रक्षा करने के अनुभव उदाहरण हैं। वैसे ही स्त्रियों को भी समर्थ स्वरक्षित होना चाहिये।

—विनोबा

आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा का सवाल

वसन्त बोबंटकर

गत साल से अक्राणी अक्कलकुवा के ग्रामदानी क्षेत्र में निर्माण का काम चल रहा है। निर्माण के काम को बुनियाद ही शिक्षा को माना है। शिक्षा का ही वह एक व्यापक प्रयत्न है।

जंगल और पहाडियो के कारण दुर्गम माने गये इस प्रदेश में आवागमन के लिए पगडडी के अलावा कोई साधन पाच साल पूर्व नही थे। इससे दुनिया में जो नये विचारप्रवाह काम कर रहे है या नयी वैज्ञानिक खोज व उपकरण निकले है उनसे यह प्रदेश अछूता ही रहा है। प्रस्तरयुग की सस्कृति का दर्शन यहां मिलता है।

यद्यपि यहा के आदिवासी लोग अपने को हिंदू मानते हैं, फिर भी उनके दैनदिन जीवन में प्रार्थना, उपासना, भजन, सदग्रथ पठन, चितन, मनन आदि का कोई स्थान नही है। इसलिए परपरागत शिक्षा और सस्कृति को बढाने का कोई मार्ग नही है। यहा के लोग भिल्ल पावरा नाम की बोली बोलते हैं, लेकिन इसकी कोई लिपि नही है। इससे नया ज्ञान हासिल करने का रास्ता बद रहता है।

आज की शिक्षा चूकि यहा नही आयी है, उससे आनेवाली कमजोरी, परावलबन की वृत्ति और व्यक्तिवाद की भावना भी यहा नही दिखाई देती। सकटो से लोग मुकाबला करते हैं, कोई भी चिता या दुख उनपर अपना राज नही जमा सकता। बडे खुशमिजाज हैं ये लोग। मन और बुद्धि का विकास न होने के कारण मानसिक गुत्थियो और बौद्धिक उलझनो से ये मुक्त हैं। अपनी ही एक छोटी-सी दुनिया में ये रहते हैं।

यहा का जीवन सरल और स्वच्छद है। बाहरी हस्तक्षेप अब तक न होने के कारण स्वतत्र वृत्ति का विकास इनमें हुआ है। प्राकृतिक ढग से विकसित हुए एक शुद्ध सरल मानव समाज का दर्शन यहा मिल सकता था। लेकिन गरीबी और शराब खोरी के कारण इनके जीवन में अेक तरह की क्रूरता और कुछ कुसस्कार आये हैं। ये सब बातें ख्याल में रखकर यहा शिक्षा का आयोजन करना है।

आज की शिक्षा का आकर्षण

सरकारी अफसर और अन्य पढे-लिखे लोगो को सत्ता और सपत्ति का रसास्वादन करते हुए जब इनको वे देखते हैं तब अपने जीवन पर उनको तरस आता है और 'क्या ही अच्छा होता हम भी पढे-लिखे होते,' ऐसी भावना उनके मन में उठती है। जब वे ठगे जाते हैं और सफेद पोश लोगो से अपमानित किये जाते हैं तब यह भावना और प्रज्वलित होती है। आज चारो ओर पाठशाला की माग है।

लोगों का उत्साह और शिक्षा विभाग की लापरवाही

आजादी मिलने के बाद यहा के लोगोने भिड सेवा मडलकी सहायता से जगह-जगह खानगी शालाएँ चलायी और वहा के ही या बाहर के कुछ पाचवी छटवी कक्षा तक पढे हुए लोगो द्वारा पढाई का काम शुरू किया। लेकिन बाद में जिला बोर्डने वह काम अपने हाथ में लिया। इससे स्थानीय लोगो का अभिश्रम खतम हुआ। अब जो बाहर से फायनल पास किये हुए ट्रेंड शिक्षक नियुक्त किये है उनमे से ५०% स्कूल में जाते ही नही। ५०% में से भी जो जाते हैं वे बहुत कम पढाने का काम करते हैं। इससे पैसा व्यर्थ जा रहा है। और जनता में कर्त्तव्य हीनता का बुरा वातावरण बढता जा रहा है।

इसका सारा दोष केवल शिक्षको के सरपर मॉडना भी उनपर अन्याय करना होगा। ये नये शिक्षक यहा की भाषा नही जानते। उनके रहने का इन्तजाम किसी भी गाव में हुआ भी नही।

जगली जानवरो से और यहा के लोगो से भी वे डरते हैं। बारिश के दिनो में बाकी दुनिया से सबध टूट जाता है। बीमार पडे तो देखनेवाला कोई नही आदि अनेक दिक्कते उनको है।

रास्ता कैसे निकालें ?

ऐसी जगह के लिए आश्रम स्कूल का सुझाव रखा जाता है। यहा सेवामडल की ओर से दो स्कूल चल रहे हैं। लेकिन बचपन में ही माता और पिता के साथ बच्चो का सबन्ध इससे टूट जाता है। आज ये छोटे बच्चे भी मा बाप को घर गृहस्थी में और खेती के कामो में छोटे भाई को सभालना, जानवर चराना, पछियो से फसल को बचाना आदि कई तरह से सहायता करते हैं। इसलिए आश्रम स्कूल कामयाब नही हो सकेगे।

आज यहा जो शिक्षक आते है वे मानो जेल में सजा भुगतने के लिए आते हैं, अैसी अुनकी धारणा बन गयी है। अैसे लोगो से क्या काम हो सकेगा? यहा के ही कम वेशी ही क्यो नही, पढे लिखे लोगो को यह काम सौंपा जाना चाहिये। उनकी योग्यता वढाने के लिए बीच में प्रशिक्षण वर्ग चले। इसके बावजूद भी और शिक्षको की और शिक्षातज्ञो की भी जरूरत होगी। तो इस इलाके के वाहर के हो—जो इस जीवन से घबराते नही, और जिनमें अुत्साह है—अैसे शिक्षक नियुक्त किये जायें। दो मील के फासले के अन्दर के चार पाच गावों के मध्यवर्ती जगह रहे तो बाहर से आये हुए शिक्षको की अडचन दूर होगी। इससे आज स्कूल की जो दुर्दशा है उसे कम करन में काफी सहायता होगी।

शिक्षा कैसी हो ?

इतना करने के बावजूद भी आज की शिक्षा यहा के लोगो की मदद नही कर सकेगी। उसके लिए नये सिरे से ही सोचना होगा। याने जन्म से लेकर मृत्यु तक शिक्षा का इन्तजाम करना होगा। पढने-लिखने की आवश्यकता है ही, लेकिन जीवन के हर क्षेत्र में भी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। वैसे तो शिक्षको का सहारा युवावस्था तक मिलेगा। उसके बाद भी प्रौढ अपने आप स्वाध्याय से आगे बढते रहें, अैसा इतजाम करना होगा। इसलिए रोजमर्रा जीवन, उत्सव त्योहार, नई परपराएँ, निरीक्षण, प्रवास, सत्सग, ग्रथ पठन, अध्ययन, मनन,

चितन, प्रत्यक्ष खेती और अन्य दस्तकारिया आदि कई तरह से शिक्षा मिलने की योजना और उसका मार्ग दर्शन करना होगा।

गत साल से कुछ गावो में हमने शिक्षा का काम हाथ में लिया है। सबसे पहला काम उनकी आत्मसम्मान की भावना को ठेस न पहुचाते हुए उनके जीवन में भौतिक और नैतिक आकाक्षाएँ निर्माण करना है। सत्य, प्रेम और करुणा जैसे मूलभूत गुण अुनके जीवन में दाखल करने के लिए पहले उनको व्यसनो से छुडाना होगा। जीवन में कोमल भावनाएँ दाखिल होने के लिए और क्रूरता मिटाने के लिए गोपालन, वृक्ष सवर्धन और मित्रमंडलियाँ बनाना आदि बिना किसी लाभ की अपेक्षा किए शुरू करनी होगी जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी और प्रेम भावना का परिपोषण होगा।

प्रौढो को रात को हम पढाते हैं। साक्षरता केवल उसका एक छोटा अग है। सबके साथ मिलना, गपशप करना, दिनभर के काम की चर्चा करना, कथा सुनाना, गीत गोष्ठी सुनना अच्छी किताबें पढकर सुनाना, थोडा लिखना, गाव के सुख दु ख की बातें करना, ग्रामविकास की चर्चा, योजना और तत्काल का कार्यक्रम बनाना प्रार्थना भजन आदि कार्यक्रम चलते हैं। इससे लोक शिक्षा होती है, मनोरजन भी होता है और कार्यक्रम भी मिलता है। इस तरह से लोक-मानस तैयार हुआ अैसा दीखा तो मासिक ग्रामसभा में ग्रामसकल्प द्वारा प्रौढशिक्षा पाठ-शाला में मिले हुए सस्कारो को स्थायी रूप दिया जाता है। उस पर सामूहिक आचरण करने से वे सस्कार दृढतर बनते हैं और गाव में अेक सामूहिक शक्ति बनती है। आजतक घर पर कपोस्ट के गड्ढे बनाना, फलो के पेड लगाना, सर्वोदय पात्र रखना, गावो के खेती को पाल बाधना, पीने के पानी के लिए कुआ खोदना, व्यक्तिगत तौर पर दारु, तमाखू छोडना गाव के सामूहिक खेती की जुताई करना, गाव में धान्य कोठार में अनाज इकट्ठा करना आदि काम हुए हैं। यहा के लोगो में हस्तकला का गुण है, इसलिए उनके अक्षर भी सुन्दर होते हैं।

"आज तक हमको कोई सिखानेवाला नही मिला, हम सीखने के लिए तैयार है, सिखानेवाला चाहिए," अैसी यहा के लोगो की माग है, भूख है। पडती जमीन को जोतने पर अच्छी फसल निकलती है, जोतने वाला बोने वाला चाहिए।

फूल में मधुमक्खी के लिए जो वस्तु केवल रग और गन्ध है वही मनुष्य हृदय के लिए सौंदर्य और आनन्द बन जाता है। फूल हमारे पास प्रभु द्वारा रगों से लिखे प्रेम-पत्र के साथ आता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शान्ति समाचार

सीमा का मसला होम कुण्ड या विश्वकुटुंब का चिन्ह ?

राष्ट्रीय सीमाओं के मसलों को लेकर कितना तनाव पैदा हो सकता है, यह हमने अपने अनुभव से देख लिया। भारत-चीन, जो अपने को मित्र राष्ट्र मानते आये हैं, आज उनके बीच जो खाई-सी बनी दीखती है, वह यही सीमा के सवाल की बात है। ये मसले दो-सौ वर्ष पहले खड़े होते तो जागतिक परिस्थिति के संदर्भ में उनकी कोई अहमियत नही थी। यहा तक कि सम्बन्धित देशों को छोड कर अन्य कम ही देशों को उनकी खबर मिल पाती। किन्तु आज दुनिया इतनी छोटी बन गयी है कि छोटे छोटे मसले भी क्षेत्रीय न रहकर जागतिक स्वरूप धारण कर लेते हैं। चीन-भारत की सीमा तो कई हजारो वर्ग मीलो का सवाल है, आज तो कुछ ही मीलों की पट्टी विश्वयुद्ध की रणभेरी बजाने के लिए छलाग मार देती है। किन्तु क्या हम इन प्रश्नों को, चाहे वे हजारो-लाखों मीलों के ही क्यो न हों, मानव के भविष्य का भाग्य विधाता मान कर चलें ? क्या इस प्रकार के बारे में और भावात्मक कोई दृष्टि हो सकती है ? अहिंसा में विश्वास करने वाला इस किस नजर से देखेगा ?

सबसे पहली चीज तो यह है कि भारत के अपने अन्दर वह एकता का दर्शन हो जो हमारे पूर्वजो ने बताया था—

"हिमाचल की गुहा से समुद्र तक हमारा देश एक हो. यह ऋग्वेद ने कहा है। यह कोई अर्वाचीन नहीं बोल रहा है, दस हजार साल पुराना ग्रंथ बोल रहा है। हमारी भारत माता प्राणायाम कर रही है। अन्दर की वायु बाहर फेंकना और बाहर की अन्दर लेना, इसे प्राणायाम कहते हैं। हिमालय की यानी हृदय की गुफा से समुद्र मे हवा फेंकना और वहां से लेना। ऋग्वेद मे इस प्रकार वर्णन आता है—हमारी योगिनी माता प्राणायाम कर रही है। सांस्कृतिक विचार से भारत को बहुत पहले से ही एक माना है।"

यानी हमारे अन्दर हर माने में एकता निर्माण हो ताकि हम मजबूत बनें और हमारे लिए सबको इज्जत हो। परन्तु उतनी ही आवश्यक आज इससे भी व्यापक एक दृष्टि है जो हमें विश्वमानवता का पाठ सिखाती है। विनोबाजी ने २० जुलाई को उज्जैन में अन्तर्भारती के द्वारा आयोजित एक सभा में इस व्यापक दृष्टि का प्रतिपादन किया—

"मैंने जब सुना कि सीमा पर चीन खड़ा है तो मुझे बहुत आनन्द हुआ। आज तक जो हिमालय दो देशों को अलग करता था, वह कहता है 'विज्ञान के जमाने में मैं तो जोड़ूगा, चाहे आप फिर कुछ भी करें। मैं अलग नहीं रखूंगा।' इन दिनों जड भी जोड रहे हैं। जापान और अमेरिका के बीच आठ-दस हजार मील का पैसिफिक महासागर है। ये दो देश पृथ्वी के दो सिरों पर हैं। एक जमाना था जब दोनों में कोई ताल्लुक नहीं था, क्योंकि वह समुद्र तोड रहा था। आज वही समुद्र जोड रहा है। जहां जड भी जोड रहे हैं, वहां यह कम्बख्त चेतन तोड़ेंगे तो कैसे टिकेंगे ? इसलिए जब मैंने सुना कि चीन सीमा पर खड़ा है तो मुझे खुशी हुई। आज ये दो देश पडोसी हैं, इसलिए ये या तो मेल से रहेंगे या लड़ेंगे। जो भी होगा रोजेकयामत तक चलेगा। अगर लड़ते रहेंगे तो अर्थ यह होगा कि दुनिया का बहुत बड़ा हिस्सा आपस मे लड रहा है। ये दोनों बहुत बड़े राष्ट्र हैं, चीन भारत की कुल आबादी १०० करोड़ की है। इनकी लड़ाई का दुनिया पर असर होगा। अब हालत यह हो गयी है कि या तो ये रोजेकयामत तक लड़ें या दोस्ती करें। जमंभी

और फ्रांस की एक छोटी-सी सीमा थी, लेकिन उनकी लड़ाई ने ही सारी दुनिया को तबाह किया। इससे दो महायुद्ध हुए। अगर चीन हिन्दुस्तान, इतनी बड़ी सीमा पर लड़ाई हुई तो मैं समझूंगा कि यह परमात्मा की योजना है दुनिया को भस्म करने की और इसीलिए उसने इस सीमा को होमकुण्ड बनाया है। कुछ भी हो चीन-भारत का सबक हमेशा बना रहेगा। खारे-मीठे-खारी, कभी खट्टे कभी मीठे अनुभव आयेंगे। अभी कुछ खट्टे आ रहे हैं।"

क्या आज के विज्ञान के युग में भी कोई यह सोचता है कि यह दुनिया अब टुकड़ों म बटी रहेगी ? चारों तरफ से गूंज उठ रही है कि सारा जगत एक परिवार बन। अगर हम इतिहास की इस बढती हुई गति का दर्शन कर लेते हैं तो ख्याल में आता है कि ये मसले उतने उत्तेजित होकर हल करने के नहीं हैं। उसके लिए शान्त और अहिंसात्मक दृष्टि चाहिए। विनोबाजी ने ही कहा है कि एक वक्त शीघ्र ऐसा आ रहा है जब हम कहेंगे कि चीन उस देश का एक प्रान्त है जिसका नाम जगत है, वैसे ही भारत, बर्मा, रूस, यूरोप आदि। अगर उस सदर्भ में हमारे प्रश्नो को देखते हैं तो उडान उदारता और शान्ति के आधार पर लेना ही एकमात्र उचित रास्ता लगता है।

बागियों के मुकदमें और पीडितों का पुनर्वास

चबल घाटी शाति समिति में कुल १० व्यक्ति नामजद हुए थे। कार्यों का विभाजन बागियो की पैरवी, पीडितो का पुनर्वास व शाति-स्थापन कार्य, इस प्रकार किया गया है।

बागियो के मुकदमें भिड-मुरैना व आगरा में चालू हो गये हैं। पाच कार्यकर्ता बराबर पुनर्वास के कार्य में ही लग रहे हैं। शांति-स्थापना का विचार-प्रचार अभी नही हो सका है। इसके लिए सितबर माह में दो माह की सामूहिक पदयात्रा पूरे क्षेत्र में करना तय हुआ है।

भिड-मुरैना, इटावा व आगरा क्षेत्र इस प्रकार क्षेत्र-विभाजन भी किया गया है, जिसकी जिम्मेवारी अलग-अलग लोगों ने उठायी है। इस समय उत्तरप्रदेश में सर्वश्री कृष्णस्वरूप, *भगवत सिंह व महावीर सिंह काम कर रहे हैं।* महावीरसिंहजी भिड में भी मुकदमा की पैरवी तथा शान्ति स्थापना का कार्य श्री लल्लूसिंह दादा के साथ कर रहे हैं। श्री लल्लूसिंहजी, हेमदेवजी, श्रीराम गुप्ता और राजेन्द्र कुवरजी भिड-क्षेत्र में व श्री लक्ष्मीचन्द्रजी वैद्य मुरैना *में काम कर रहे हैं।*

यहां पर कार्यकर्ताओ की नितान्त कमी है। इतने बड़े क्षेत्र में निष्पक्ष सैकडों सहायक शाति-सैनिको की आवश्यकता थी, जो कि नही मिल सके हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक व्यापक विचार-प्रचार का काम नही हो *पाया है।*

इस समय बागियो के उजडे परिवारो को बसाने और जमीनें जुतवाने का कार्य चल रहा है।

क्षेत्र में छोटे-छोटे मनमुटावों से कत्ल, फौजदारी हो जाती है और उसीसे लोग फरार होकर बागी बनते हैं। फरार (बागी) होना यहा बहादुरी का परिचायक है। इस मानस को बदलने के लिए तथा आपसी झगडे बढने न पाये, इसके लिए बराबर प्रयत्न चल रहा है। अभी तक के कार्यों से क्षेत्र में आशा का वातावरण बना है।

अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध प्रतिकार संघ (वार रजिस्टर्स इन्टरनेशनल) के मंत्री श्री आरलो टाटम के २६ जुलाई के पत्र के द्वारा उन्होंने भारत में होनेवाले संघ के दसवें अधिवेशन की जानकारी दी है। नई तालीम के जून १९६० के अंक में सम्मेलन के बारे में सूचना दी गयी थी। (२१ से २८ दिसम्बर) उपरोक्त पत्र में श्री टाटम ने सूचित किया है कि वे २६ अगस्त को अधिवेशन के बारे में प्राथमिक चर्चा करने के लिए गांधीग्राम पहुंच रहे हैं। उसके बाद वे विनोबाजी के पास कुछ दिन रहेंगे और फिर देश में होनेवाले सर्वोदय कार्यों के केन्द्रों को देखेंगे।

सम्मेलन के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं कि उसमें भाग लेने वाले मित्रों में से लगभग १०० ने तो अभी से एक विशेष हवाई जहाज का इन्तजाम कर लिया है। अधिवेशन में भाग लेने वालों में इटली के श्री दानिलो, अमेरिका के श्री बेयार्ड रस्टिन, आफ्रिका के श्री माइकेल स्कॉट और बेल्जियम के श्री आवे कार्ते भी शामिल हैं। सम्मेलन का अेक दिन आफ्रिका के अहिंसात्मक संघर्ष के लिए दिया जायगा।

हम हृदय से कामना करते हैं कि सारे जगत से आनेवाले इन शान्ति दूतों की हम प्रेममय सेवा कर सकेंगे और उनके अनुभवों का पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

सम्मेलन के बारे में अधिक जानकारी चाहिये तो निम्नलिखित पते पर लिखें। मंत्री, वार रेजिस्टर्स इन्टरनेशनल अधिवेशन, गांधीग्राम, जिला मदुरा (मद्रास)।

अमेरिका में "एकला चलोरे"

शान्ति की भूख मनुष्य से क्या करा लेती है। महापुरुषों ने उसके लिए क्या नहीं किया। तप, उपवास, हजारों मिलों की पदयात्रायें और क्या कुछ। एक अकेली बहन इसी प्रकार अमेरिका में सन् १९५३ से पैदल यात्रा कर रही हैं। वह अपने आपको शान्ति-यात्री (पीस पिलग्रिम) कहती हैं। अभी तक वह हजारों मील चल चुकी हैं। उनका ध्येय है—शान्ति स्थापना। उनके अपने पत्र से ही उनकी बात सुनिये। यह पत्र उन्होंने देवी भाई के नाम भेजा है।

"पीस पिलग्रिम कोई संस्था नहीं है, वह केवल मैं हूं, केवल एक महिला, जिसने शान्ति के लिए पदयात्रा करने का निर्णय लिया है। मैं सारे अमेरिका और कनेडा और मेक्सीको में घूम चुकी हूं।

मैंने १९५३ में जनवरी माह में यात्रा प्रारम्भ की थी और अभी तक १६०० मील पैदल चल चुकी हूं।

"मेरा ध्येय है कि शान्ति के लिए मैं जो कर सकती हूं करूंगी। उसके लिए प्रार्थना करती हू, लोगों से बातचीत करती हू और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न करती हू कि वे भी शान्ति के लिए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ-न-कुछ करें। मेरी प्रार्थना है कि जगत मे शान्ति हो। पर क्योंकि मेरा विश्वास है कि विश्वशान्ति के लिए व्यक्ति की आंतरिक शान्ति प्रथम आवश्यक कदम है, मैं लोगों से उसी आन्तरिक शान्ति की बात करती हू, जो मुझे मिल गयी है।

"मुझे लोग लिखते हैं 'आपके साथ की चर्चा के बाद हमें महसूस होता है कि हमें भी शान्ति के लिए कुछ करना चाहिए'। मेरी यात्रा के दौरान मे लोगों ने शान्ति-मण्डलियों का निर्माण किया है। क्योंकि मैं जानती हू कि हर सच्चे प्रयत्न का असर होता है, जब तक यह नतीजा नहीं आता मैं चलती रहूंगी।"

"शुभेच्छाओं के साथ— पीस पिलग्रिम"

इस बहन को शतबार प्रणाम।

क्या करते हो और क्या हो सकता था !

मेथोडिस्ट कॉनफ्रेन्स (एक धार्मिक संस्था) के अध्यक्ष श्री एडवर्ड-एजर्स ने इंगलैण्ड के लिवरपूल नाम के शहर में जुलाई के प्रथम सप्ताह में कहा–

"ब्लू स्ट्रोक (इंग्लैण्ड द्वारा बनाये जाने वाले एक आणविक शस्त्र का नाम) के ऊपर जितने धन और बुद्धि को बहाया गया है, उससे सारे जगत से कुष्ठरोग और मलेरिया का पूरा-पूरा निर्मूलन किया जा सकता था।"

उन्होंने उसी दौरान में कहा–

"शान्ति एक स्वेच्छा से चुना हुआ जीवन-पथ है। वह युद्ध का कोई रक्तहीन-लगडा विकल्प नहीं है। वह तो, सबका भला हो, इसके रास्ते खोल देने के लिए कुशलता और शक्ति को उभार लगाना है।"

पीस न्यूज के आधार पर

रूस और अमेरिका के नौजवानों के बीच सहचिन्तन

हम रोजाना अखबारो में पढते हैं कि रूस और अमेरिका में तनातनी बढ गयी और उनके सम्बन्ध बिगडे और अधिक बिगडे। यह आज का जर्नलिजम केवल पार्टी और ऊपरी स्तर को जानता है। क्या हमें यह मालूम है कि शांति की धारा दुनिया के कोने-कोने से फूट निकल रही है? दुनिया का हर कोना शान्ति की पुकार देने लगा है। इसी रूस और अमेरिका के बीच केवल खाई नही है, उस पर पुल भी बांधे जा रहे है।

युवक सघ की सोवियत समिति और अमेरिका के क्वेकर सघ ने मिलकर एक ऐसी योजना बनायी है कि जिसमें रूस और अमेरिका के २०-२० युवक इस बात पर सहचिन्तन करेंगे कि जागतिक शान्ति और इन दोनो राष्ट्रों में [illegible] प्रकार शान्तिमय सहयोग की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार की २ विचार गोष्ठिया होगी। पहली गोष्ठी अगस्त में लेनिन ग्राड (रूस) में और दूसरी १९६१ में अमेरिका में होगी।

लण्डन से मास्को तक

★ आणविक शस्त्र नही चाहिए।

★ वर्ण-भेद ससार से मिटे और मानवीय हक सबके लिए लागू हों।

★ सेना-शक्ति पर जो खर्च होता है वह उनके ऊपर हो जिन्हे सचमुच मदद चाहिए।

इन विचारों का प्रचार करने के हेतु स्वीडन की एक शाति-मण्डली लण्डन से मास्को तक पदयात्रा करने वाली है। १९६१ के ईस्टर मगलवार को ये रवाना होंगे। रोज १५ मील चलेंगे और कुल मिलाकर लगभग ३२९० मील की यात्रा शाति स्थापना के उद्देश्य को लेकर सात माह में सपन्न करेगे।

× × ×

उत्तर प्रदेशीय शांति-सेना मडल तथा अखिल भारत शाति-सेना कार्यालय ने चबलघाटी शांति-सैना मडल की माग पर भिण्ड-मुरैना क्षेत्र में २५ शाति सैनिको को भेजने का निश्चय किया है। (भूदान यज्ञ से)

× × ×

आसाम राज्य की भाषा के प्रश्न को लेकर आसाम मे जो अशांति पैदा हुई, उसके फलस्वरूप अ० भा० शाति-सेना मडल की सयोजिका श्रीमती आशादेवी परिस्थिति के अवलोकनार्थ गौहाटी पहुची। उन्होंने आसाम के शांति-सैनिको से आज की परिस्थिति में उनके कर्तव्य के बारे में चर्चा की और शांति-कार्य की योजना प्रस्तुत कर शाति-सैनिको का मार्गदर्शन किया। इस समय स्थायी शांति-स्थापनार्थ शांति सैनिक भाई-बहन घर-घर जाकर प्रयत्न कर रहे हैं।

(भूदान यज्ञ से)

साहित्य परिचय

"शिशु-परिचर्या और बच्चों की देखभाल।" लेखक: डा० बेंजामिन स्पोक।

हिन्दी संस्करण के प्रकाशक : पर्ल पब्लिकेशन प्राइवेट लि०, बम्बई १। पृष्ठ ७८४, मूल्य एक रुपया।

शिशु संगोपन और बाल-जीवन से जिनका भी संबन्ध आता है, माता-पिता हो या शिक्षक, कुछ बातें ऐसी होती हैं जो उन्हें अवश्य मालूम होनी चाहिये। बच्चे का मानसिक तथा शारीरिक विकासक्रम व स्वास्थ्य, परिस्थितियों का प्रभाव, आम तौर पर होनेवाली कुछ कठिनाइयां, अपने नजदीक के लोगों से तथा बाहरी दुनियां से बच्चे का संबंध, ये सब इसके अन्तर्गत विषय हैं। डा० बेंजामिन स्पोक इस क्षेत्र में एक प्रामाणिक वेत्ता और मार्गदर्शक हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक—"बेबी एन्ड चाइल्ड केअर" ने न केवल उनके स्वदेश—अमेरिका के, बल्कि दुनिया के ही हजारों माता-पिताओं को अमूल्य सहायता पहुंचायी है। पुस्तक की विशेषता उसकी असदिग्ध प्रामाणिकता से भी ज्यादा अत्यन्त सरल प्रतिपादन-रीति है। उसमें कुछ परिस्थितियों का वर्णन इतने सरस ढंग से किया गया है कि विषयवस्तु का ख्याल छोडने पर भी उसको पढ़ना बहुत रसावह होता है।

हर एक माता-पिता चाहते ही हैं कि अपने बच्चों का पालन-पोषण अच्छे-से-अच्छे ढंग से हो। इसके लिए उन्हें बच्चे के विकासक्रम इत्यादि के बारे में कुछ सामान्य बातें जानना जरूरी भी है। लेकिन उतना ही जरूरी है अपनी मनोवृत्ति और कमजोरियों को जानना। आखिर माता-पिता कोई विशिष्ट प्राणी तो हैं नहीं। हर माता-पिता के जीवन में कई ऐसे प्रसंग आयेंगे जब कि वे सब खो बैठेंगे, अपने अच्छे-अच्छे इरादों को भूल जायेंगे। अत्यन्त शुद्ध उद्देश्य के साथ वे कुछ गलतियां भी कर बैठेंगे। और इन गलतियों से पूरी तरह बचाव असंभव-सा ही है। लेकिन अपनी ही मानसिक वृत्ति को जानना इसमें बहुत सहायक होता है। मनश्चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार भी रोगी को अपनी सुप्त मनोवृत्तियों व विकारों से वाकिफ करा देना उसका इलाज है। यह सत्व सिर्फ मानसिक रोगियों के लिए ही लागू नहीं होता, मानव मात्र के बारे में भी यह सच है कि अपनी कमजोरियों और दोषों को पहचानना, उन पर विजय पाने का पहला कदम है। यह मानी हुई बात है कि बच्चों की कई सारी समस्याएं बड़ों के बर्त्ताव और परिस्थितियों के कारण बनी हुई होती हैं, उनको यथासंभव हटाने या कम करने के लिए माता-पिता को अपनी मनोवृति और व्यवहार के बारे में होशियार रहना चाहिये। पुस्तक में इस विषय का सुन्दर विश्लेषण किया गया है और कई व्यावहरिक सुझाव भी दिये गये हैं।

हमें बहुत हर्ष है कि अब इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो गया है। जिससे हमारे देश के माता-पिताओं को भी डा० स्पोक के काम का लाभ मिल सकेगा। यह बात तो जरूर है कि जिन परिस्थितियों और जीवन के तरीकों (अमेरिका) को ख्याल में रख कर किताब लिखी गयी है, उससे हमारी परिस्थितियां और तरीके बहुत ही विभिन्न हैं। फिर भी शिशुसंगोपन और बच्चों के विकास के

दादु चले गये

अब दादु नही रहे। सुबह घूमने के लिए निकलते हुए उन्हे अब हम नही देखेंगे। आज सुबह–अगस्त ६ ता –उन्होने अपना आखिरी श्वास लिया। कल रात को उन्हे बहुत तकलीफ थी, यहा तक कि हमने उन्हे अपनी अस्पष्ट होती हुई आवाज से यह कहते हुए सुना कि "अब इस वेदना को खतम करो।" किन्तु आखरी के ढाई घण्टे वे शान्त थे।

तीन हफ्ते पहले अपने घर के सामने की सीढी पर गिरने से उन्हें चोट लगी थी। कटि की एक हड्डी के टूटने की आशका हुई,तब उन्हे इलाज के लिए नागपुर के मेडिकल कालेज अस्पताल में ले गये। वहा आधुनिकतम पूरी डाक्टरी मदद उन्हे मिली, *लेकिन इस उम्र में वह कुछ ज्यादा कामयाब नही हो सकती* थी। उनकी उम्र थी ८८। जब देखा कि हालत गिर रही है तो हम उन्हे वापस सेवाग्राम ले आये और यहा कस्तूरबा दवाखाने मे उनकी परिचर्या करने लगे। वे अपनी शारीरिक पीडा को प्रसन्नता पूर्वक झेलते रहे और आखिरी दिन तक हिम्मत नही हारी। लेकिन तब उन्होन देखा कि मृत्यु सामने खडी है और उसके लिए तैयार हो गये।

दादु का असल नाम था 'जान हर्मान कार्डिस।" उनका जन्म सन १८७३में ३१ अगस्त का जर्मनी के हेबर्ग नाम के शहर में हुआ था। ईसाई धर्म की उच्च शिक्षा लेकर वे पादरी बन गये थे। दक्षिण आफ्रिका में वे बापु से मिले और फिनिक्स आश्रम में काम करने लगे। वहा के स्कूल के प्रधान अध्यापक रहे। श्री प्रभुदास गाधी अपनी बाल्यकाल की स्मृतियो में उनकी अनु-शासन-प्रियता का वर्णन करते हैं।

१९४७ में बापु ने उन्हे अपने साथ रहने के लिए सेवाग्राम बुलाया। दिसबर महीने में वे यहा पहुचे, लेकिन सेवाग्राम में मुलाकत होने के पहले ही बापु तो चल बसे। दादु ने मान लिया कि सेवाग्राम में रहने का बापु का अन्तिम *आदेश था और उन्होने यही अपना घर बना लिया।* वे व्यायाम और प्राणायाम के अभ्यास में रुचि रखते थे और हमारे बच्चों को यह सिखाने लगे। बाद में पुस्तकालय के काम को उन्होने अपनी मरय प्रवृत्ति बना लो। जिस श्रद्धा और मेहनत से वे एक-एक पुस्तक को झाड पोछ कर सुरक्षित रखते थे, यह यहां के पुराने प्रशिक्षणार्थी और विद्यार्थी याद करेगे ही। कितने ही घटे उन्होने इस काम में लगाये। इसमें उन्हें आनन्द आता था। कितने ही नोजवानो को उन्होने

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

(पृष्ठ ६३ का शेषांश)

खूब लोकोपयोगी जरूर हो गयी है। गांधीजी के "महात्मा" हो जाने पर कइयों ने उनके गुणगान में कई पुस्तकें लिखी है। लेकिन गांधीजी की प्रतिभा के उषःकाल में समझ-बूझ कर लिखा हुआ उस उषा का बेजोड वर्णन (वह भी एक विजातीय की कलम से) पाठकों को इस पुस्तक में मिलेगा।

इसे हिन्दी में प्रकाशित करके सर्व सेवा संघ ने हिन्दी जानने वाले सबकी सेवा की है। ऐसी पुस्तक का अनुवाद कई भाषाओं में होना लाभदायक है। अनुवाद कैसा हुआ यह सवाल अनुचित होगा। क्योंकि सबको संतोष देनेवाला अनुवाद प्रस्तुत करना असंभव-सा कार्य है। इस अनुवाद में तो श्रम अवश्य ही फला है।

अंग्रेजी पुस्तक की प्रस्तावना में आम्थिल महोदय ने लिखा, "मेरी बात पर जो विश्वास करते हैं या नहीं, सबको मेरी सलाह है कि वे इस किताब को पढ़ें।" उस समय उन्होंने केवल विचार-प्रचार के लिए ऐसी सलाह दी थी लेकिन आज गांधीजी की महानता को भली-भांति समझने के लिए यह एक आवश्यक पुस्तक है। हिन्दी में प्रकाशित होने पर यह अधिक संख्या में पढी जायगी इसमें कोई शक नही।

—शंकरन्

दादु चले गये (पृष्ठ ६४ का बाकी)

केवल किताबों का अच्छा उपयोग करना ही नहीं सिखाया, बल्कि साथ-साथ शिष्टाचार की भी शिक्षा दी।

रास्ते में चलते अगर उन्होंने देखा कि किसीने कागज का टुकडा या केले का छिलका मार्ग में फेंका हो तो तुरन्त उसे उठा कर ठीक स्थान पर डालते थे। लापरवाही उन्हें सहन नही होती थी। और दादु थे बडे रसिक और विनोद-प्रिय। वे खूब अच्छा मजाक करना जानते थे। साथ-साथ वे गहरी धार्मिक श्रद्धा के आदमी थे। वे थियोसफि को मानते थे, श्रीमती अेनी बेसन्ट के निकट साथियों में से थे। वियेना में एक दशाब्द से ज्यादा वे थियोसफि के सिद्धान्तों के प्रचार और शिक्षण का काम करते रहे। उस समय के उनके विद्यार्थियों से आज तक उनके पास पत्र आते रहे।

वैसे वे सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा रखते थे। अपनी जन्म-भूमि जर्मनी में हिट्लर के द्वारा जो परधर्म पीडा और असहिष्णुता का राज चलाया गया, उससे वे बहुत ही दुःखी हुए और बापुजी की अहिंसा की शिक्षा की तरफ अधिकाधिक आकृष्ट हुए।

इन आखिरी सालों में दादु ने गीता का गहरा अध्ययन शुरू किया। वे कहते थे कि उससे उन्हें बहुत बल और सान्त्वना मिलती है। सेवाग्राम में उनकी याद एक कर्तव्य परायण, धर्मनिष्ठ वयोधिक के रूप में सदा बनी रहेगी, जो हमेशा हंसमुख और स्नेहशील थे। वे प्रकृति के प्रेमी थे, खुद कहा करते थे, "मै एक कलाकार की भांति ही सौन्दर्य का उपासक हूं।" हम सब के लिए वे "हमारे दादु" ही रहेगे।

हम उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते है।

Regd. No. N.-106

विद्या हि विनयायैव, सा चेदविनयावहा ।
किं कुर्मः-कस्य वा ब्रूमो गरदायां स्वमातरि ॥

विद्या तो विनय के लिए ही है । अगर वह अविनय पैदा करती है तो क्या करें, किसको कहें—जब अपनी मां ही विष देती हो ।

विशेष सूचना

"नई तालीम" का अगला अंक सितम्बर और अक्तूबर का सम्मिलित अंक होगा और उसमें खास तौर पर नई तालीम के अलग-अलग पहलुओं पर विशेष लेख होंगे । सितम्बर में पत्रिका न मिलने से जो असुविधा होगी आशा है पाठकगण उसके लिए हमें क्षमा करेंगे । सधन्यवाद—

श्री. सदाशिव भट, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में .

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

विशेष अंक

नई तालीम की समस्याएँ

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

सितम्बर-अक्तूबर १९६०
वर्ष : ९ अंक : ३-४

Regd. No. N.-106

विद्या हि विनयायैव, सा चेदविनयावहा।
किं कुर्मः कस्य वा ब्रूमो गरदायां स्वमातरि ॥

विद्या तो विनय के लिए ही है। अगर वह अविनय पैदा करती है तो क्या करें, किसको कहें—जब अपनी मां ही विष देती हो।

विशेष सूचना

"नई तालीम" का अगला अंक सितम्बर और अक्तूबर का सम्मिलित अंक होगा और उसमे खास तौर पर नई तालीम के अलग-अलग पहलुओ पर विशेष लेख होंगे। सितम्बर मे पत्रिका न मिलने से जो असुविधा होगी आशा है पाठकगण उसके लिए हमें क्षमा करेंगे। सधन्यवाद—

श्री. सदाशिव भट, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

विशेष अंक
नई तालीम की समस्याएँ

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

सितम्बर-अक्तूबर १९६०
वर्ष : ९ अंक : ३-४

नई तालीम

[अ भा. सर्व सेवा सघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

सितम्बर–अक्तूबर १९६०

वर्ष ९ अंक ३–४

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है । जिसका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै. है । चन्दा पेशगी लिया जाता है । वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है । चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें । पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करें । "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते है । इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है । पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय ।

अनुक्रम

वर्ष ९ अंक ३-४ ★ सितम्बर-अक्तूबर १९६०

एन्टे गुरुनाथन्

स्वर्गीय महाकवि वल्लतोल

लोकमे तरवाट्टु तनिक्कोच्चेटिकलुम्
पुल्कलुम् पुल्क्कलुम् कूटि तन् कुटुम्बक्कार्
त्यागमेन्नते नेट्टम् तालम तानभ्युन्नति
योगवित्तेव जयिक्कुन्नितेन् गुरुनाथन् ।

शास्त्रमेन्निये धर्मसगरम् नटत्तुन्नोन्
पुस्तकमेन्ये पुण्याध्यपनम् पुलर्त्तुन्नोन्
औषधमेन्ये रोग शमिप्पिप्पवन्
हिंसादोषमेन्निये यज्ञ चेय्ववनेन्नाचार्यन्

शाश्वतमहिंसयाणम्महात्माविन् व्रतम्
शान्तियाणविटुन्नु पूजिक्कुम् परदैवम्
ओतुमारुण्टद्देहमहिंसामणिच्चट्ट
येतुटवालिन् कोट्टुवाय्त्तल मटक्कात्तू·

शुद्धमाम् कनकत्तेसानल्लयो विलयिप्प-
तद्धर्मक्रुपकन्टे सत्कर्मम् वयल् तोरुम्
सिद्धनामविट्टुत्ते तूक्कण्णो कनकत्ते–
यिद्धरिन्नि तन् वैरुम् मयमण्णायिक्काण्मू

आततप्रशमनामत्तपस्वि तनुमुम्पि–
लाततायि तन् कोटुंवाल् करिकूंवलमाल्यम्
कूर्त्त दंष्ट्रकल् चेर्न्न केसरियोरु मानुकु-
यर्त्तेंन्तिट तल्लु घनकटल् कलिप्पोय्क
गीतयक्कु मातायाय भूमिये दृढमितु
मातिरियोरु कर्मयोगिये प्रसवियक्कू
नमस्ते गततर्ष ! नमस्ते दुराधर्ष !
नमस्ते सुमहात्मन् ! नमस्ते जगद्गुरो !

मेरे गुरुनाथ (शब्दानुवाद)

यह विश्व ही अपना परिवार है,
ये पौधे घास और कीड़े भी अपने बन्धु हैं।
त्याग ही लाभ है, नम्रता ही उन्नति है,
ऐसे मेरे योगविद् गुरु जीतते हैं।

बिना शस्त्र के वे धर्म संगर करते हैं,
बिना पुस्तक के पुण्याध्यापन चलाते हैं।
बिना औषध के रोगों का शमन करते हैं,
हिंसादोष के बिना यज्ञ करते हैं।

अहिंसा ही उनका नित्य व्रत है,
उनका परादेवता शान्ति है।
वे कहते हैं कि अहिंसा के कवच पर किस
तलवार की नोक कुण्ठित नहीं होती ?

उस धर्म कृषक का सत्कर्म
खेत-खेत में शुद्ध सोना ही पैदा करता है न !
पर उस सिद्ध योगी की पवित्र दृष्टि तो सोने को
इस धरित्रि की पीली मिट्टी की तरह समझती है।

उस आततप्रशम तपस्वी के सामने
आततायी की तलवार पुष्पमाल्य है।
उग्रदंष्ट्रावाला सिंह हरिण का बच्चा है
घोर गरजता हुआ सागर खेलने की पुष्करिणी है।

गीता की माता भूमि ही
ऐसे कर्म योगी को जन्म दे सकती है।
नमस्कार हे गततर्ष ! नमस्कार हे दुराधर्ष !
नमस्कार हे सुमहात्मन् ! नमस्कार हे जगद्गुरो !

नई तालीम की मूल कल्पना

गांधीजी

मुझे दो बातें रखनी हैं, एक प्राथमिक शिक्षा के बारे में, और दूसरी उच्च शिक्षा, यानी हाईस्कूल और कालेज की शिक्षा के बारे में। मैं इस ख्याल का हूं कि प्राथमिक, माध्यकिम दोनों शिक्षाओं को मिला दिया जाय। प्राथमिक शिक्षा की जो शक्ल आज है, उसे मैंने गांवो में देखा है और इधर तो में एक गांव में ही रहने लगा हू। और जब में सेगांव के इन लडकों की पढाई को देखता हूं, तो फौरन् समझ लेता हूं कि वह क्या चीज है। क्योंकि उसका न कोई ढंग है न ध्येय है। इसलिए मैं समझता हूं अगर हम देहातों को कुछ देना चाहते हैं, तो जरूरी है कि सेकेंडरी तालीम को प्रायमरी के साथ मिला दिया जाय। इसलिए अब हमने जो कुछ बनाया है या बनाने जा रहे हैं वह शहरों के लिए नही, बल्कि पूरे गांवों के लिए है।

मेरा ख्याल है कि आजकल देहाती मदरसों में लडकों को जो कुछ पढाया जाता है उससे देहातवालों को नुकसान ही होता है। लडके कुछ समय के लिए मदरसे जाते है, मगर वहा जाकर भी उन्हें असन्तोष रहता है। उनमें से अधिकतर या तो शहरी बन जाते हैं, या गांव के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल जाते हैं और कुछ तो बदमाशी वगैरह भी सीख जाते हैं। इसलिए अपने अब तक के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि हमारी मौजूदा प्राइमरी तालीम से गांववालों को फायदा नही पहुंचता।

तो सवाल होता है कि इस प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो? मेरा तो जवाब यह है कि किसी उद्योग या दस्तकारी को बीच में रखकर उनके जरिए ही यह सारी शिक्षा दी जानी चाहिए। आप जानते हैं, मेरे चार लडके हैं। इनमें एक बागी हो गया है, बाकी तीन मेरे साथ हैं। चन्द वन्धों के मारफत मैंने इनको जो तालीम दी है उससे इन्हें फायदा ही पहुंचा है। अपनी वकालत के दिनों में भी मैं घर पर कुछ न कुछ उद्योग किया करता था और बच्चों को भी बढईगिरी वगैरह की तालीम देता था। जूते बनाने का काम मैंने श्री केलन बैंक से सीखा, जो खुद इसे ट्रैपिस्ट मोनेस्टरी में सीखकर आये थे, क्योंकि वे लोग हिन्दुस्तानियों को सिखाते नहीं थे। इस प्रकार जिन्होंने मुझसे तालीम ली, मैं नहीं समझता हूं कि उनकी दिमागी हालत कमजोर रही या कोई नुकसान उन्हें पहुंचा। टॉलस्टाय फार्म में भी शिक्षा का यही तरीका रहा। वहां तो तरह-तरह के लडके थे—अच्छे, बुरे और बदमाश, सभी। इनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, और पारसी भी, सब एकसाथ मिल-जुल कर रहते थे और अपने-अपने धर्मो का पालन भी करते थे। वजह इसकी यह थी, कि मैंने इनको सिर्फ किताबी तालीम नही दी, बल्कि साथ-साथ कुछ धन्धे भी सिखाये। इनमें कुछ ने चमडे का काम सीखा, कुछ ने बढईगिरी सीखी, और चन्द ऐसे भी निकले जो

आज इन धन्धों के जरिए काफी कमा रहे हैं। इन सबको मैंने वही सिखाया जो मैं खुद थोडा बहुत जानता था।

लेकिन आज मैं जो चीज आपके सामने रखने जा रहा हू, वह पढाई के साथ-साथ एक धन्धा सिखा देने की चीज नही है। मैं तो अब यह कहना चाहता हू कि लडकों को जो कुछ भी सिखाया जाय, सब किसी-न-किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिए ही सिखाया जाय। आप कह सकते हैं कि मध्य-युग में हमारे यहा लडकों को सिर्फ धन्धे ही सिखाये जाते थे। मैं मानता हू। लेकिन उस दिनो धन्धो के जरिए सारी तालीम देने की बात लोगों के सामने न थी। धन्धा सिर्फ धन्धे के ख्याल से सिखाया जाता था। हम धन्धे या दस्तकारी की मदद से दिमाग को भी आला बनाना चाहते हैं। आज हालत यह है कि लोहार का लडका लोहारी नही जानता और सुतार का सुतारी छोड बैठा है। इन्होंने किताबी तालीम तो पायी, मगर अपने पेशे को भूल गये। उससे मुह फेर लिया। अब गाव छोडकर शहर में बसते हैं और मुहर्रिरी करते हैं। अगर वे पढ-लिख कर भी अपने पुश्तनी धन्धो को न छोडते और उसमें तरक्की करके दिखाते, तो आज हिन्दुस्तान की जैसी बुरी हालत हो गयी है, न हो पाती। आज देहात में कही भी चले जाइये, अच्छे बढई, लोहार या कारीगर के दर्शन नही होते। मेरे जो साथी गाव में बैठकर काम कर रहे हैं, उनका भी यह तजरबा है कि वहा जो बढई वगैरह हैं, वे अपने धन्धे के लिहाज से नाकामयाब-से हैं। दूर क्यो जाइए? इस चर्खे को ले लीजिए, जो सारे हिन्दुस्तान में फैला हुआ था। मगर अग्रेज इसे इंग्लैंड ले गये और वहा इसमें इतनी तरक्की कर दी कि बडी-बडी मिले खडी हो गयी। मेरा आशय यह नही है कि उन्होंने जो कुछ किया बहुत अच्छा किया। मगर इसमें कोई शक नही है कि जब उन लोगों ने इतनी तरक्की करडाली, तो हम जो कुछ हमारा था, उसे भी खो बैठे।

इसलिए मेरी दरख्वास्त है कि हम सिर्फ उद्योग या दस्तकारी ही न सिखायें, बल्कि इन्ही के जरिए बच्चों को सारी तालीम दें। मसलन् तकली ही को ले लीजिये। इस तकली का सबक हमारे विद्यार्थी का पहला सबक होगा, जिसके जरिए वह कपास का, लकाशायर का और अग्रेजी सल्तनत का बहुत-कुछ इतिहास सीख सकेगा। मैं खुद भी यही कर रहा हूं। मेरा पोता छ: साल का है। वह लिखता तो बहुत मामूली है और लिखना मैं अभी उसके लिए जरूरी समझता भी नही। पर वह ज्यादातर मेरे साथ हवाखोरी के लिए जाता-आता है और घर पर तकली चलाना भी सीखता है। इस तकली में आज उसे जो दिलचस्पी है और इसके जरिए वह जो इल्म हासिल कर रहा है वैसा हमारे पुरखा शायद नहीं करते थे। यह तकली कैसे चलती है, इसका क्या उपयोग है? और इसके अन्दर क्या-क्या ताकत पडी हुई है? वह सब खेल ही खेल में बालक जान लेता है। इसी के जरिए थोडा गणित का ज्ञान भी उसे मिल जाता है। क्योंकि तकली पर जो सूत के तार उससे गिनवाए जाय और पूछा जाय कि कितने तार कते, तो धीरे-धीरे इसके अन्दर से गणित का भी काफी ज्ञान कराया जा सकता है। और खूबी यह है कि उसके दिमाग पर इन सबका जरा भी बोझा नही पडता। सीखनेवाले को तो पता भी नही चलता कि वह कुछ सीख

रहा है। वह अपने खेलता-कूदता और गाता रहता है, तकली चलाता रहता है, और इसी में बहुत कुछ सीख लेता है।

अब आप देखिए कि मैं क्यों इस चीज पर इतना जोर देता हूं। सिर्फ तकली की बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि मैंने उसकी ताकत और उसके 'रोमांस', का अनुभव किया है। और आज तो इस तकली के जरिए ही हम करोड़ों बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। इसलिए मेरा फर्ज हो जाता है कि मैं इस काम के लिए आप लोगों के अन्दर दिलचस्पी पैदा कर दूं। इसलिए आप देखते हैं, मैंने इस परिषद में राष्ट्रीय विद्यालयों और विद्यापीठों के शिक्षकों को और शिक्षा मंत्रियों को बुला लिया है। अगर उन्होंने और आप सबने इस चीज को अपना लिया, तो यह काम जल्द ही हो सकता है। मगर इसके पहले जरूरी है कि हम लोग आपस में इस पर दिल खोलकर बहस कर ले। जहां तक मेरा तजुरबा कहता है मैं तो प्राथमिक शिक्षा के लिए तकली ही को बीच में रखना चाहता हू। लेकिन अगर आप लोगों के ख्याल में और कोई धन्धा आता हो तो आप नि सकोच उसे सुझाइये ताकि हम उस पर भी विचार कर ले। तकली मुझे सबसे ज्यादा इस लिए जचली है कि इसे छोड़कर और धन्धों के लिए हमारे पास कोई सामान मौजूद नहीं है। तकली को न ज्यादा खर्च की गरज, न सरजाम की। मैं जानता हूं कि इसे लेकर आप कामयाबी तक पहुंच सकेंगे। और इसमें तो मैं भी आपकी मदद कर सकता हूं। लेकिन इसे छोड़कर दूसरा कोई धन्धा ऐसा नहीं है, मुल्क की मौजूदा गिरी हुई हालत में, जिसे हम यहां से वहां तक जारी कर सके।

तो अब मिनिस्टर लोगों के सामने मैंने अपनी योजना रख दी है। वे चाहें इसे पूरा करें चाहे ठुकरा दें। मगर मेरी सलाह है कि वे प्रायमरी तालीम के लिए तकली को ही बीच में रखें और उसीसे लड़कों की पढ़ाई शुरू करें। पहले साल लड़कों को सब कुछ तकली ही के बारे में बताया जाय, फिर दूसरे साल तकली के साथ-साथ और बातें भी शामिल की जायें। तकली के जरिये कमाई भी काफी हो सकेगी और इसके फैलावे में कोई रुकावट भी नहीं आयगी। क्योंकि इसके सूत से जो कपड़ा बनेगा, उसके पहननेवालों की संख्या हमारे यहां इतनी है कि अपने ही बच्चों द्वारा बनाये गये कपड़े को छोड़कर दूसरा कपड़ा खरीदने की हमें जरूरत न पड़ेगी और यह कपड़ा खरीदना हम पसन्द भी करेंगे।

मैंने सोचा है कि यह पाठ्यक्रम सात साल का रक्खा जाय। इससे जहां तक तकली का सम्बन्ध है विद्यार्थी बुनाई तक के व्यावहारिक ज्ञान में जिसमें रगाई और डिजाईनिंग आदि भी शामिल होंगे निपुण हो जाएंगे। कपड़ा जितना हम बना पायेंगे, उसके लिए ग्राहक तो तैयार हैं ही।

मैं इस बात के लिए बहुत ही उत्सुक हूं कि दस्तकारी के जरिये विद्यार्थी जो कुछ पैदा करें, उसकी कीमत से शिक्षक का खर्च निकल आवे, क्योंकि मुझे यकीन है कि देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने के लिए सिवा इसके कोई रास्ता नहीं है। और न यही मुमकिन है कि हम उस वक्त तक ठहरे रहें जबतक कि सरकार अपने खजाने से हमें आवश्यक रुपया दे, या वाइसराय फौजी खर्च कम कर दें, या इसी तरह का कोई और कारगर जरिया

निकल आये। आप लोग यह भी समझ लीजिये कि *प्राथमिक शिक्षा की इस योजना में* सफाई, आरोग्य और आहारशास्त्र के प्रारंभिक सिद्धान्तों का समावेश भी हो जाता है। इसमें बच्चों की वह शिक्षा भी शामिल समझिये, जिससे वे अपना काम खुद करना सीखेंगे और घर पर अपने मा-बाप के काम में भी मदद पहुचाएंगे। आजकल हमारे बच्चो को न सफाई का ख्याल होता है, न साफ सुथरेपन का, वे न अपने पैरो पर खडा होना जानते है, और *न उनकी तन्दुरुस्ती ही ठीक* रहती मै चाहुगा *कि उनके लिए सगीत के साथ लाजमी तौर* पर ऐसी कवायद और कसरत वगैह का इन्तजाम हो जाय, जिससे उनकी तन्दुरुस्ती *सुधरे और जीवन तालबद्ध बने।*

मुझ पर यह इलजाम लगाया जा रहा है कि मै साहित्यिक वा अदबी शिक्षा के खिलाफ हूं। मगर बात ऐसी नही है। मै तो सिर्फ वह तरीका बता रहा हूं, जिससे ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये। मेरे स्वावलबन के पहलू पर भी हमला किया गया है। कहा यह गया *है कि जहा प्राथमिक शिक्षा पर हमें लाखों* रुपया खर्च करना चाहिये, वहा हम उलटे बच्चो ही से उसे वसूल करने जा रहे है। साथ ही यह अदेशा भी बतलाया जाता है कि इसमें मुल्क की बहुत कुछ ताकत नाहक खर्च होगी। *लेकिन अनुभव इस अदेशे को गलत साबित कर* चुका है और जहां तक बच्चो पर बोझ डालने या उनका शोषण करने का सवाल है मै जानना चाहता हू, कि क्या यह बोझ उन्हे उनके सर्वनाश से बचाने के लिए नही है? तकली बच्चो के खेलने का एक काफी अच्छा खिलौना है। महज इसलिए कि वह एक उत्पादक चीज है, यह नहीं कहा जा सकता कि *वह खिलौना नही है, या खिलौने से किसी* कदर कम है। आज भी देहात में बच्चे किसी हद तक अपने मां-बाप की मदद करते ही है। खेती किसानी की बातों में तो हमारे सेवाग्राम के बच्चे मुझ से कही ज्यादा जानते है, क्योकि उन्हे अपने मां-बाप के साथ खेतों में काम करना पडता है। लेकिन जहां बच्चों को इस बात का बढावा दिया जायगा कि वे कातें और खेती के काम में अपने मा-बाप की मदद करें, वहा उन्हें यह महसूस करने का मौका भी दिया *जायगा कि उनका संबन्ध सिर्फ उनके मां-बाप* से ही नही, बल्कि अपने गाव और देश से भी है और उन्हे उनकी भी कुछ सेवा करनी है। *इसलिए मेरे ख्याल में तो तालीम का यही एक* तरीका आता है। मंत्रियों से मै यह कहूंगा कि खैराती तालीम देकर वे मुल्क के बच्चों को असहाय या अपाहिज ही बनायेंगे, जबकि उनकी *शिक्षा के लिए उनसे खुद मेहनत कराकर वे* उन्हें बहादुर और आत्मविश्वासी बना सकेंगे।

तालीम का यह तरीका हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी के लिए एक-सा होगा। मुझसे पूछा जाता है कि मै धार्मिक शिक्षा पर कोई जोर क्यो नही देता? वजह यह कि मै उन्हे स्वावलबन का धर्म तो सिखा ही रहा हू, जो मेरे ख्याल में, सब धर्मों का असली रूप है।

हां, जो लोग इस तरह की तालीम लेकर तैयार होंगे, उन्हें रोजी देना राज का फर्ज होगा। और जहा तक शिक्षको या अध्यापको का सवाल है, प्रोफेसर शाह ने लाजिमी सेवा का तरीका सुझाया ही है। इटली का और दूसरे देशों का उदाहरण देकर उन्होंने इसका महत्व भी बता दिया है।

(शेषांश पृष्ठ ७५ पर)

शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए*

गांधीजी

एक राष्ट्र के नाते शिक्षा में हम इतने पिछडे हुए हैं, कि अगर शिक्षा-प्रचार के कार्यक्रम का आधार पैसा रहे तो अिस विषय में जनता के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन की आशा हम कभी नही रख सकते। इसलिए रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी अपनी सारी प्रतिष्ठा को खो बैठने की जोखीम उठाकर भी मैंने यह कहने का साहस किया है कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। सच्ची शिक्षा वही है, जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणो का सर्वांगीण विकास कर सके, और उन्हें प्रकाश में ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्तिम ध्येय है, न उससे शिक्षा का आरम्भ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषो को शिक्षित बनाने के अनेक साधनो में अेक साधन मात्र है। अपने आप में साक्षरता कोअी शिक्षा नही है। अिसलिए मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ अुसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षण से अुसकी शिक्षा शुरु होती है, अुसी क्षण से अुसे कुछ न-कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूगा। अिस तरीके से हरएक पाठशाला स्वावलबी बन सकती है, शर्त यह है कि अिन पाठशालाओं में तैयार होनेवाले माल को सरकार खरीद लिया करे। मैं मानता हू कि अिस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का उच्च-से-उच्च विकास किया जा सकता है। अिसके लिए आवश्यक है कि जो उद्योग धन्धे आज केवल यत्रवत् सिखाये जाते हैं वे वैज्ञानिक ढग से सिखाये जाय, यानी बच्चों को यह समझाया जाय कि कौन-सी क्रिया किसलिए की जाती है। अिस चीज को मैं थोडे आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूं, क्योंकि इसकी पीठ पर मेरे अनुभव का बल है। जहा-जहा मजदूरो को चर्खे पर सूत कातना सिखाया जाता है, तहा-तहा सब जगह अिस तरीके से कमो-बेश काम लिया गया है। खुद मैंने भी अिस तरीके से चप्पल सीना और कातना सिखाया है और उसका परिणाम अच्छा हुआ है। अिस तरीके में अितिहास-भूगोल के ज्ञान का बहिष्कार नही किया गया है। लेकिन मेरा तजुरबा यह है कि बातचित के जरिये जबानी जानकारी देकर ही ये विषय अच्छी तरह सिखाये जा सकते हैं। वाचन लेखन की अपेक्षा अिस श्रवण-पद्धति से ज्यादा ज्ञान दिया जा सकता है। जब लडके लडकी भले बुरे का भेद समझने लगें और उनकी रुचि का थोडा विकास हो जाय, तभी उन्हें लिखना-पढना सिखाना चाहिये। यह सूचना मौजूदा शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तनो की सूचक है, लेकिन अिसके कारण मेहनत बहुत ही बच जाती है और जिस चीज को सीखने में विद्यार्थी को बरसो बीत जाते हैं अुसे अिस तरीके से वह अेक साल में सीख

सकता है। जिसके कारण सब तरह की बचत होती है और इसमें कोई शक नहीं कि दस्तकारी के साथ-साथ विद्यार्थी गणित भी अवश्य ही सीखेगा।

प्राथमिक शिक्षा को मैं सब से ज्यादा महत्व देता हूं। मेरे विचार में यह शिक्षा अंग्रेजी को छोड़कर और विषयों में आजकल की मैट्रिक तक होनी चाहिये। अगर कालेज के सब ग्रेजुएट अपना पढ़ा-लिखा एकाएक भूल जायें, और जिन कुछ लाख ग्रेजुएटों की याददश्त के यों अेकाअेक बेकार हो जाने से देश का जो नुकसान हो अुसे अेक पलड़े पर रखिये, और दूसरी ओर अुस नुकसान को रखिये जो पैंतीस करोड़ स्त्री पुरुषों के अज्ञानान्धकार में घिरे रहने से आज भी हो रहा है, तो साफ मालूम होगा कि दूसरे नुकसान के सामने पहला कोई चीज नहीं है। देश में निरक्षरों और अनपढ़ों की जो संख्या बतायी जाती है, उसके आंकड़ों से हम लाखों गांवों में फैले हुए घोरतम अज्ञान का पूरा अनुमान नहीं कर सकते।

अगर मेरा बस चले तो कालेज की शिक्षा को जड़-मूल से बदल दूं, और देश की आवश्यकताओं के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दूं। मैं चाहता हूं कि मिकेनिकल और सिविल अिंजीनियरों के लिए उपाधि परिक्षायें रखी जायें, और भिन्न-भिन्न कल-कारखानों के साथ अुनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इन कारखानों को जितने ग्रेजुएटों की जरूरत हो उतनों को वे अपने ही खर्च से तालीम दिलाकर तैयार कर लें। उदाहरण के लिए ताता कंपनी से यह आशा की जाय कि जितने अिंजीनियरों की उसे जरूरत हो उतनों को तैयार करने के लिए वह राज्य की निगरानी में अेक कालेज का सचालन करे। अिसी तरह मिल-मालिकों के मण्डल भी आपस में मिलकर अपनी जरूरत के ग्रेजुएटों को तैयार करने के लिए एक कालेज का सचालन करें। दूसरे अनेक उद्योग-धधों के लिए भी यही किया जाय। व्यापार के लिए भी एक कालेज हो। कृषि-कॉलेज तो अपने नाम को तभी सार्थक कर सकते हैं, जब वे स्वावलंबी हों।

इसे आप निरा काल्पनिक चित्र न समझें। अगर हम अपनी मानसिक जड़ता को दूर कर सकें, तो हमें तुरन्त ही पता चल जाय कि शिक्षा का जो प्रश्न आज महासभा के मन्त्रियों के और फलत स्वयं महासभा के सामने उपस्थित है, उसका यह बहुत ही उपयुक्त और व्यावहारिक हल है।

बाद में शिक्षकों का प्रश्न रह जाता है। इसके लिए विद्वान स्त्री-पुरूषों से अनिवार्य सेवा लेने का जो उपाय प्रोफेसर शाह ने सुझाया है, वह मुझे अच्छा लगा है। ऐसे लोगों के लिए यह अनिवार्य है कि वे कुछ वर्षों तक (सम्भवत: पांच बरस तक) जनता को उन विषयों की शिक्षा दें, जिनमें उन्होंने योग्यता प्राप्त की है। इस बीच जीविका-निर्वाह के लिए उन्हें जो वेतन दिया जाय, वह देश की आर्थिक स्थिति के अनुरूप हो। उच्च-शिक्षा की संस्थाओं में आज शिक्षक और अध्यापक बहुत अधिक वेतन की अपेक्षा रखते हैं। अब यह प्रथा मिट जानी चाहिए। बाद में अिस समय जो शिक्षक काम कर रहे हैं, उनके बदले वहां दूसरे अधिक योग्य आदमी रखे जाने चाहिए।

* 'हरिजन' १९३७ में प्रकाशित

बुनियादी तालीम के मूल सिद्धान्त

आर्यनायकम्

'गांधीजी के कार्यक्रम में एकता' पर भाषण करते हुए एक बार आचार्य कृपलानीजी ने कहा था कि गाधीजी हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में पूरी क्राति पैदा करना चाहते है और इस महान क्राति के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक आदि भिन्न-भिन्न पहलुओ मे एक दूसरे के साथ कितना सामजस्य है। उन्होने बतलाया था कि इस क्राति का उद्देश एक ऐसे समाज की सृष्टि करना है जो मौजूदा समाज से भिन्न होगा। इस समाज की बुनियाद में सत्य, अहिंसा और इन्साफ के आदर्श होगे।

हमारे सामने सवाल यह है कि मौजूदा साधनो से इस नये समाज की सृष्टि एक नये किस्म के व्यक्ति के जरिये ही हो सकती है और ये नये किस्म के व्यक्ति एक नये किस्म की शिक्षा-पद्धति के जरिये ही तैयार किये जा सकते हैं। इस तरह गाधीजी कदम-ब-कदम चलकर राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम तक पहुचे थे और उन्होने उसे देश के सामने रख दिया था।

उन्होने राजनैतिक क्राति के अपने कार्यक्रम को सत्य और अहिंसा के जरिये शुरू कर उसके साथ खादी के द्वारा आर्थिक क्राति के कार्यक्रम को जोड दिया। उसके बाद हरिजन-आन्दोलन की बडी भारी लहर उठी, जिसने सामाजिक क्राति के बीज बो दिये। उसके बाद अखिल भारतीय ग्राम उद्योग सघ का जन्म हुआ, जिसने देहाती दस्तकारी के जरिये आर्थिक क्राति का कार्यक्रम रख दिया। अन्त में सीढी की सब से ऊची पायरी की तरह या अपने जीवन के श्रेष्ठ तत्वज्ञान की तरह उन्होने शिक्षा-सबधी पुन. सगठन का कार्यक्रम पेश किया, जो इन सब भिन्न-भिन्न पहलुओ को एक में मिला देता है।

तब सवाल यह पैदा होता है कि तालीम की जो नई योजना नये किस्म के व्यक्तियो की सृष्टि करना चाहती है, उसके बुनियादी उसूल या आधार-भूत विशेषताएँ क्या है ?

गाधीजी ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की सपूर्ण योजना की मुख्य बात "बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा" नामक पुस्तक की भूमिका में स्वय बतला दी हैं। वे कहते हैं, उसका "अधिक यथार्थ, परन्तु बहुत कम आकर्षक, वर्णन होगा–देहाती दस्तकारी के जरिये देहाती राष्ट्रीय शिक्षा"। 'देहाती' शिक्षा मे नाममात्र की ऊची या अगरेजी शिक्षा का समावेश नही होता। 'राष्ट्रीय' का मतलब अभी सत्य और अहिंसा है और देहाती दस्तकारी के जरिये का अर्थ यह है कि योजना तैयार करनेवाले लोग शिक्षको से आशा करते है कि वे अपने गाव के देहाती बालको को इस ढग से तालीम दें कि

जिससे उनकी तमाम छिपी हुई शक्तियां का विकास, किसी बाहरी दबाव या दस्तन्दाजी से अछूते वातावरण में, किसी चुनी हुई देहाती दस्तकारी के द्वारा हो सके। इन तरह से विचार करने पर यह योजना तालीम के क्षेत्र में क्रान्तिकारी साबित होगी। वह किसी भी अर्थ में पश्चिम से लायी हुई चीज नहीं है।

नगर-सबधी या शहराती की तुलना में देहाती पर जोर दिया गया है। भारतीय राष्ट्र गावो में रहता है, इसलिए राष्ट्र के बालकों के लिए निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा का रूप देहाती होना जरूरी है। ध्यान देन लायक एक खास *बात यह भी है कि हमारी सभ्यता और* सस्कृति का सबध बुनियाद से ही गावो से है, इसलिये भी हमारी शिक्षा का रूप देहाती ही होना चाहिये। पिछले दिनों में इस मरती हुई सभ्यता को सजीव शिक्षण सस्थाओ के जरिये फिर से जीवित रखने की कोशिशें जरूर की गयी हैं। इन कोशिशो ने आश्रमा, राष्ट्रीय विद्यापीठो और गुरुकुलो का रूप धारण किया। *परन्तु इन सस्थाओने प्रचलित शिक्षा पद्धति के* साथ अपना सबध पूरा पूरा न तोडा, यानी ये सस्थाएँ जिस तरह की क्रान्ति-कारता चाहती थी उसका रूप बुनियादी न था। वह पुरान रूप और नये आदर्श का मेल था। यही सबब है कि असली तह तक न पहुच सकन के *कारण उनकी कोशिशें पूरी पूरी सफल न हुई।* क्योंकि उन्होंने भीतरी मकसद को छोडकर बाहरी रूप पर ध्यान दिया। पाठ्यक्रम देहाती जिन्दगी का कुदरती विकास न होकर बाहर से लादी हुई चीज थी। उसकी बुनियाद *में दस्तकारी या उद्योग धधो को न दिया* गया था।

यहां इस बात को समझ लेने की जरूरत है कि बुनियाद में दस्तकारी या उद्योग धधे वाली तालीम से गांधीजी का मतलब क्या है। इस पद्धति की शिक्षा के लिए "आवश्यक है कि जो उद्योग-धधे आज केवल यत्रवत् सिखाये जाते हैं, वे वैज्ञानिक ढग से सिखाये जाय, यानी बच्चा को यह समझाया जाय कि कौन सी क्रिया *किसलिए की जाती है।" तभी सफलता मिल* सकेगी।

दस्तकारी या उद्योग धधा के जरिये शिक्षा देना तालीम के इतिहास में कोई नई बात नही है। पेस्टॉलाजी के समय से शुरू होकर शिक्षा-विशारदो ने दुनिया के हर एक हिस्से में बार बार ऐलान किया है कि वास्तविक और पूरी शिक्षा सिर्फ दस्तकारी के जरिय ही दी जाय और कुछ लोगोने इस उसूल पर किसी हद तक अमल भी किया है।

लेकिन दूसरा से गाधीजी के विचार में यह अतर है कि वे इस शिक्षा सबधी सिद्धान्त को उसके आखिरी नतीजे तक ले गये हैं। क्योंकि उन्होने सिर्फ यही नही कहा कि बच्चो की सारी शिक्षा किसी उद्योग-धन्धे के जरिये दी जाय, बल्कि यह भी कहा है कि यह शिक्षा स्वावलंबी भी हो। नई तालीम के किसी दूसरे पहलू की उतनी नुक्ता चीनी नही हुई है, जितनी उसक स्वावलबी कहे जानवाले पहलू की हुई है। इसलिए यह समझना जरूरी है कि स्वावलबी शब्द का क्या अर्थ है और यह हमारी शिक्षा-योजना का मुख्य अग क्यों है।

"इस तरह की तालीम के पूरे हिस्से पर गौर किया जाय तो वह स्वावलबी जरूर हो *सकती है और जरूर होना भी चाहिये,* दरअसल उसका स्वावलबीपन उसकी वास्तविकता की

बडी कसौटी है । उसके स्वावलवीपन का तालीमी और नैतिक मूल्य, उसकी अधिक से-अधिक आर्थिक पैदावार की अपेक्षा से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ।"

अत में हमें यह देखना होगा कि गाधीजी के मनुष्यजीवन के समूचे तत्वज्ञान और अहिंसा के साथ इस शिक्षा-योजना का ताल्लुक किस तरह है । स्वावलम्वी शिक्षा की भावना अहिंसा की मनोभूमि से अलग नहीं की जा सकती, जबतक हम यह याद नहीं रखते कि इस नई योजना का उद्देश्य एक ऐसा जमाना पैदा करना है जिसमें जातिद्वेष और फिर्कैवन्दी का झगडा बिलकुल न रहने पावे और गरीबो और अमीरों का भेद न हो तबतक हम इस योजना को सफल बना नही सकते । गरज यह है कि हमें अहिंसा में विश्वास रखकर इस काम में लगना चाहिए और यह यकीन रखना चाहिए कि इस योजना की रचना एक ऐसे दिमाग ने की है जो अहिंसा को तमाम बुराइयों की अचूक दवा समझता है ।

(पृष्ठ ७० का शेषाश)

हमारे यहा कौमी झगडे होते रहते है, लेकिन यह कोई हमारी ही खासियत नही है । इग्लैड में भी ऐसी लडाइया हो चुकी है । और आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद सारे ससार का शत्रु हो रहा है । अगर हम कौमी और अतराष्ट्रीय सघर्ष को बद करना चाहते है, तो हमारे लिए जरूरी है कि जिस शिक्षा की मैंने यहा हिमायत की है, उससे अपने बालको को शिक्षित करके शुद्ध और सुदृढ आधार पर उसका आरभ करें । मेरी इस योजना की तह में अहिंसा भरी हुई है । और हालाकि मैंने इससे सपूर्ण मद्य-निषेध के राष्ट्रीय सिलसिले में सुझाया है, तब भी मैं कहता हू कि अगर सरकारी आमदनी में कोई कमी न हो, और खजाना हमारा भरा हुआ रहे, तो भी हमारे लिए शिक्षा का यही तरीका उपयोगी रहेगा, बशर्ते कि हम अपने बालकों को शहरी न बनाना चाहे । हम तो उन्हें अपनी सस्कृति, अपनी सभ्यता, और अपने देश की सच्ची प्रतिभा का प्रतिनिधि बनाना चाहते है और मेरे ख्याल में स्वावलबी प्राथमिक शिक्षा के सिवा दूसरे किसी ढग से हम उन्हें ऐसा नही बना सकते । अगर हिन्दुस्तान ने हिंसा को छोड देने का निश्चय किया है, तो उसे जिस अनुशासन में होकर गुजरना पडेगा, शिक्षा का यह तरीका उसका एक खास अग होगा । हमारे पास शिक्षा की इस अहिंसक योजना के सिवा और कोई उपाय नही रह जाता ।

समाज के सारे कार्यक्रम शिक्षा के अंतर्गत आ जाते हैं

धीरेन्द्र मजूमदार

*जिस समय देश में राष्ट्रपति तथा प्रधान-*मंत्री से लेकर समस्त चिंतनशील व्यक्ति पुरानी तालीम की असारता के कारण चिंतित हैं और उसे बदल कर इस दिशा में आमूल परिवर्तन चाहते हैं, ठीक उसी समय नई तालीम के प्रति लोगों की अरुचि हम सेवकों के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। ऐसे समय यदि हम सब एक साथ मिले हैं तो हमें बुनियादी शिक्षा के बारे में आमूलाग्र विचार करना होगा, कि आखिर क्या कारण है कि यद्यपि लोग एक नई तालीम की खोज में हैं, फिर भी हमारे काम के प्रति जनता का आकर्षण नहीं है। एक असका सामाजिक उद्देश्य, और दूसरा, शिक्षण-कला। वस्तुतः देश और दुनियां के शिक्षण-शास्त्रियों ने बुनियादी तालीम की जो तारीफ की है—वहे इसके शिक्षण-कला के पहलू को देखकर ही।

लेकिन शिक्षण-कला ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होता है, वह तो एक तरीका मात्र है। शिक्षा का असली मकसद तो सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति ही है। मनुष्य शिक्षा द्वारा ऐसा व्यक्ति पैदा करना चाहता है, जो समाज का सही नागरिक बन सके। यही कारण है कि युग-युग में सामाजिक ढांचो के अनुसार ही शिक्षा की ल्पना की गयी है।

गांधीजी ने भी समाज की एक नई कल्पना की थी। वे संसार में एक अहिंसक समाज बनाना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि समाज के जिन प्रतिष्ठानों के कारण मानवहृदय में निरंतर हिंसा का उद्भव हुआ करता है, उनका तिरोधान हो। आप सबको इस बात को समझाने की आवश्यकता नहीं है कि जब तक समाज में शासन और शोषण का अस्तित्व रहेगा, तब तक दुनियां हिंसा से मुक्त नहीं हो सकती है। शासन की शक्ति दंड-शक्ति है। उसे मनुष्य द्वारा चाहे जितनी मान्यता प्राप्त हुई हो वह हिंसाशक्ति ही है, और जिस हद तक मनुष्य पर उसका संचालन चलता है उस हद तक मानव-हृदय पर उसकी प्रतिक्रिया होती रहती है। हिंसा की प्रतिक्रिया प्रति हिंसा है। अत. शासन के अस्तित्व के कारण अदृश्य रूप में ही सही, मनुष्य के अन्दर निरतर हिंसा-प्रतिहिंसा का घात-प्रतिघात चलता रहता है। फलस्वरूप मानव-सस्कार में हिंसा बद्धमूल हो जाती है। फिर यह देखा जाता है कि बुद्धि और संस्कार मे प्रायः सस्कार की ही जीत होती है। अतः मनुष्य बुद्धि द्वारा चाहे जितना हिंसा-मुक्ति चाहता रहे, अगर संस्कार में हिंसा भरी रहेगी तो संस्कार बुद्धि पर विजय पाता रहेगा,

और आज दुनिया में जो परिस्थिति चल रही है—यानी "शान्ति की खोज में युद्ध की तैयारी" —वह अनन्त काल तक चलती रहेगी।

अतएव अहिंसक समाज में अहिंसा की प्राप्ति के लिए एक शासन-मुक्त तथा श्रेणीहीन समाज कायम करने की आवश्यकता है। अब प्रश्न यह है कि यह सब हो कैसे? ऐसा तो हो नहीं सकता कि दुनिया में शासन की आवश्यकता रह जाय और संसार शासन-मुक्त हो जाय। आज दुनिया में शासन का दायरा दिन-प्रति-दिन बढता ही जा रहा है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि मनुष्य शासन की आवश्यकताओं की नई-नई सृष्टि करता जा रहा है। आखिर इन्सान को किस बात की जरूरत पडती है? अगर इसकी सूची का गहराई से विश्लेषण किया जाय तो मालूम होगा कि उसके लिए मुख्य आवश्यकता जिन्दा रहने के साधनों की है, अर्थात् आर्थिक आवश्यकता ही मनुष्य की प्रधान आवश्यकता है। यही कारण है कि मानव-समाज का सामाजिक तथा राजनीतिक ढाचा आर्थिक ढाचे पर निर्भर रहता है। आज जो शासन क्रमशः सर्वाधिकारी होता जा रहा है उसका खास कारण यह है कि मनुष्य ने अपनी आर्थिक जिन्दगी को पूंजी के कब्जे में डालकर अपने को शासन द्वारा गिरफ्तार करा लिया है। पूजी जैसे-जैसे केन्द्रित होती जाती है, वैसे-वैसे उस पर राज्य का कब्जा बढाना पडता ही है।

अतः हमें अहिंसक समाज की स्थापना के लिए अगर सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति द्वारा शासन-मुक्त तथा श्रेणीहीन समाज कायम करना है, तो उसकी शुरूआत होगी—एक आर्थिक क्रान्ति कर मनुष्य की जिन्दगी को पूंजी-निरपेक्ष बनाना। सौभाग्य से सन्त विनोबा भावे ने भूमि-दान-यज्ञ आन्दोलन द्वारा हमारे सामने इसका एक महान और सक्रिय अवसर उपस्थित किया है। आज हम सबको इस क्रान्ति को आगे बढाना होगा।

अतः जहां हमको एक प्रचंड जनक्रान्ति द्वारा मौजूदा राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढाचे में आमूल परिवर्तन करना है, वहां उस बदले हुए ढाचे को चलाने के लिए नये मानव का भी निर्माण करना होगा। जनक्रान्ति के गंगावतरण के साथ-साथ उसे धारण करने के लिए अगर नव-मानव रूपी शिव की प्रतिष्ठा नहीं होती है, तो क्रांति का अवतरण तो होगा लेकिन प्रतिक्रान्ति के पाल में उसका तिरोधान हो जायगा। गांधीजी की सूक्ष्म दृष्टि ने इस तथ्य को समझ लिया था। यही कारण है कि उन्होंने क्रांति के साथ-साथ नई तालीम का संदेश सुनाया।

अतः स्पष्ट है कि नई तालीम कोई स्वतंत्र कार्यक्रम नही है और न वह केवल शिक्षणकला है। वह तो नई क्रांति का वाहन है। देव-वाहन अपने देवता को पीठ पर रख कर ही समाज के आदर के साथ आगे बढ सकता है। शिव के वाहन के रूप में नंदी को पूजा मिल जाती है लेकिन वही नंदी शिव के बिना सांड के रूप में लोगों के खेतों में भटकता रहता है और जनता द्वारा उसे निरंतर दुत्कार मिलता है। वही उल्लू, जो हेय माना जाता है, लक्ष्मी के वाहन के रूप में देवमंदिर में स्थान प्राप्त करके पूजा लेता है। *अतः आज अगर समाज में नई तालीम* का आदर क्षीण हो रहा है तो इसका स्पष्ट कारण यही है कि वह देवता को पीठ पर लिये बिना ही चलने की चेष्टा में है।

अतएव अगर वास्तव में नई तालीम की सेवा करनी है तो हमें एक बार गहराई से आत्म-निरीक्षण करना है कि हम कहा है ? क्या हमारी नई तालीम आज के युग-क्राति के वाहन रूप में चल रही है ? क्या हमारे. कार्य-क्रम के सहज नतीजे से क्रान्ति प्रज्वलित हो रही है ? इन प्रश्नो पर गौर करना होगा।

क्राति-हीन तथा वास्तविकता के विपरीत होने के कारण बुनियादी तालीम की सरकारी चेष्टा किस प्रकार निष्फल हो रही है-यह हमने देखा। अगर हम जो गैर सरकारी तौर पर काम कर रहे हैं, वह काम भी जनता को आकृष्ट नही कर पा रहा है इसका भी यही कारण है कि इसे हम यत्रवत् स्वतत्र कार्यक्रम *के रूप में चलाना चाहते है। हम क्राति देवी* को पीठ पर लेकर चल नही रहे है। हम गभीरता पूर्वक इस बात का विचार नही करते हैं कि नई तालीम के जरिये हमें शोषण-हीन अर्थात् श्रेणी-हीन समाज की स्थापना करनी है। *यदि समाज में कुछ लोग उपदेश देकर* खायें, कुछ व्यवस्था चलाकर गुजारा करे कुछ *लोग केवल माल वितरण करते रहे और कुछ* के जिम्मे शरीरश्रम के द्वारा उत्पादन करना मात्र ही रहे, तो क्या समाज श्रेणी-हीन हो जायेगा ?

अगर नई तालीम को चलाना है तो हमें वास्तविक क्रातिकारी बनना है। आज तो हम लोगों ने कुछ त्याग मात्र किये है, अर्थात् कुछ अच्छे काम के लिए थोडा आराम छोडने को तैयार हुए है। वस्तुतः क्राति और त्याग एक ही चीज नही है। जीवन का तरीका पूर्ववत् रखते हुए रहन सहन के स्तर में थोडी-कमी करने से हम त्यागी हो सकते है। लेकिन क्राति तो जीवन का दर्जा बदलने से ही हो सकेगी। वस्तुतः यह हो सकता है कि एक बाबू से एक मजदूर का जीवन ऊचा हो। लेकिन जीवन का स्तर नीचा होने पर भी अनुत्पादक उपभोक्ता के नाते वह बाबू शोषक वर्ग का ही रहेगा। जब कि शरीर-श्रम से उत्पादन करने के कारण ऊचे जीवन के बावजूद वह मजदूर उत्पादक वर्ग का ही रहेगा। अत. नई तालीम के सेवको को निरतर अपनी कसौटी पर जाचते रहना होगा कि उनकी गति किस ओर है।

नई तालीम के कार्यक्रम में हम एक और महत्वपूर्ण पहलू पर ध्यान नही देते हैं। वह है-शिक्षा के माध्यम के रूप में सामाजिक वातावरण का इस्तेमाल। बुनियादी शालाओ में सास्कृतिक *अनुष्ठान मनाकर या सामाजिक त्यौहार-उत्सव* आदि में शामिल होकर ही हम संतोष कर लेते है। लेकिन इतने मात्र से ही हमारा काम नही चलेगा। जिस प्रकार मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सारी औद्योगिक प्रक्रियायें हमारी शिक्षा के माध्यम है, उसी प्रकार समाज व्यवस्था के सारे कार्यक्रमो को भी शिक्षा के *माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना होगा,* नही तो शासनहीन समाज टिक नहीं सकता है। आखिर राज्य-निरपेक्ष समाज का मतलब यह तो नही है कि समाज मे कोई व्यवस्था न रहे। व्यवस्था तो रहेगी और इतजाम माकूल भी *रहेगा। सवाल यह है कि वह कैसे और किसके* द्वारा चलेगा।

मनुष्य की प्रकृति सस्कृति और *विकृति* दोनों का अंश है। आप उसको चाहे जितनी सास्कृतिक शिक्षा तथा दीक्षा देकर छोड दें, धीरे-धीरे विकृति उसके जीवन में घर करती जायगी। जैसे-जैसे समाज में विकृति का प्रकोप

होगा वैसे-वैसे सचालन, नियन्त्रण तथा शासन की आवश्यकता बढती जायगी । अतएव समाज जीवन के अग-प्रत्यग के साथ सस्कृति तथा शिक्षा का कार्यक्रम जुडा रहना आवश्यक है । आप जिस घर में रहते हैं उसमें धूल जमने पर झाडू देकर उसे साफ करते है । अगर घर को एक बार अच्छी तरह से साफ करके छोड दें, तो कुछ दिनो में वह इतना गदा हो जायेगा कि रहने लायक नही रहेगा । इसीलिए आप अपने घरो को प्रति दिन साफ करते हैं । उसी प्रकार अगर शिक्षा का कार्यक्रम अलग से चला कर मनुष्य को अच्छी तरह से शिक्षित बनाकर समाज में छोड दिया जाय तो उसमे धीरे-धीरे विकृति का प्रवेश होता रहेगा । इसलिए मनुष्य-समाज का जितना कार्यक्रम है, सब को शिक्षा के माध्यम में परिणत करना चाहिये । यही कारण है कि गाधीजी ने कहा था कि नई तालीम का क्षेत्र जन्म से मृत्यु तक है ।

मनुष्य-समाज का सारा कार्यक्रम तीन विभागो में बटा हुआ है । १ आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उत्पादन २ समाज की व्यवस्था तथा ३ प्रकृति के साधनो की खोज । इसलिए नई तालीम के तीनो माध्यम यानी उत्पादन की प्रक्रिया, तथा सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण समान रूपसे आवश्यक हैं, अत इस तालीम के अभ्यासक्रम में इन तीनो का महत्व-पूर्ण समावेश होना चाहिए ।

विकेद्रित स्वावलबी समाज में औद्योगिक प्रक्रियाएँ तीन प्रकार की होगी : गृह-उद्योग, ग्रामोद्योग तथा राष्ट्र उद्योग । हमारे अभ्यास-क्रम में तीनो उद्योगो का वर्गीकरण करना होगा । वह कुछ इस प्रकार का हो सकता है - बुनियादी वर्ग में गृह-उद्योग, उत्तर-बुनियादी के लिए ग्रामोद्योग और उत्तम बुनियादी के लिए राष्ट्र-उद्योग । कृषि का कार्य इतना व्यापक है कि वह तीनो वर्गों में चल सकेगा ।

मैं जब प्रान्तो में घूम कर विकेन्द्रित स्वावलबी समाज की बात करता हू तो प्राय लोग यह प्रश्न करते है कि आखिर कुछ उद्योग तो केद्रित रहेगे ही । अगर राज्य का विघटन किया जाय तो उन्हे कौन चलायेगा ? लोगो के मन में ऐसा प्रश्न इसलिए उठता है कि वे नई तालीम को अच्छी तरह समझ नही सके है । राष्ट्र उद्योगो की जिम्मेदारी न किसी पूजीपति को लेने की जरूरत है और न सरकार को । टाटानगर, चित्तरजन, डालमियानगर, बर्नपुर आदि औद्योगिक केद्र न रहकर वे विभिन्न विषयो के उत्तम-बुनियादी-तालीम के केद्र बन जायेंगे । उस वक्त वहा इजिनीयर और मजदूर नही रहेगे, बल्कि शिक्षक और छात्र रहेगे । वे ही सब मिलकर उत्पादक श्रम करेंगे । तथा आपस में उसी तरह समाज की सारी व्यवस्था नई तालीम के माध्यम से होगी । जिस तरह उद्योग के क्षेत्र में तीन तरह के उद्योगो की परिकल्पना है, उसी तरह समाज-व्यवस्था में भी कुछ स्तर रहेगें । मौलिक स्तर तो ग्राम राज्य ही होगा । लेकिन कुछ अनिवार्य आव-श्यकता पर प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्था रहेगी । शिक्षा के माध्यम के रूप में सामाजिक वातावरण का इस्तेमाल इन्ही व्यवस्थाओ के कार्यक्रम का होगा । यह कैसे होगा, उसका कुछ ब्योरा आप समझ ले ।

पुरानी तालीम में घर पर याद करने के लिए कुछ सबक दिया जाता है । नई तालीम में भी घर के लिए काम देना होगा । बुनियादी वर्ग में आठ दर्जे होते हैं । साल में ५२ सप्ताह

में से अगर ४० सप्ताह भी काम के माने जाय तो आठ साल में ३२० सप्ताह होते हैं। ग्राम-समाज की समस्याओं का समाधान तथा व्यवस्था का काम बुनियादी शाला के छात्रो को बताना ही होगा। छोटे दर्जे के बच्चों को हलके-हलके काम से शुरू करके आठवे दर्जे तक काफी जटिल समस्या तथा व्यवस्था का काम दिया जा सकता है। जैसे, पहले ग्रेड के बच्चों से यह कहा जा सकता है कि "तुम्हारे घर में कितने लोग हैं? उनकी उम्र क्या है? आपस के सबध क्या है? *कितना बड़ा मकान है? कितने कमरे हैं? यह* सब जानकारी प्राप्त कर के बताओ।" इस प्रकार से दूसरी छोटी-छोटी बाते मालूम करते वे आवे, ऐसा अभ्यासक्रम बनाना होगा। फिर उसी माध्यम से विभिन्न विषयो की जानकारी बढानी होगी। उसी तरह ऊपर के दर्जे के बच्चो को गाव की आबादी, गाव में कितनी जमीन है, पैदावार कितनी है, अगर पैदावार कम है तो क्यो, इत्यादि बातो की जानकारी हासिल करने का काम दिया जा सकता है। वे भूमि-समस्याओ का अध्ययन करके शाला में आ सकते हैं। गांवों के आपसी झगडे आदि सामाजिक समस्याओ का अध्ययन तथा समाधान का काम भी कर सकते हैं। और उसी प्रकार उन्हें दूसरे गावो की व्यवस्थाओ का काम दिया जा सकता है। इस तरह गाव की समस्याओं के अध्ययन तथा व्यवस्था के काम को विभिन्न वर्गों तथा छात्रों की योग्यता के अनुसार ३२० सप्ताह के लिए ३२० अभ्यासक्रम बनाये जा सकते हैं। ग्राम समाज के पंचायत के सदस्य उस समय ग्राम सचालक न बनकर ग्राम-व्यवस्था सबधी शिक्षण के शिक्षक होंगे। गांवों की जिन समस्याओ का समाधान तथा व्यवस्थाओ के काम बुनियादी दर्जे के बच्चो की शक्ति के बाहर होंगे, उन्हे उत्तर-बुनियादी तालीम के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना होगा। गाव *के स्तर से ऊपर वाली व्यवस्थाओं में से भी* जहा तक सभव होगा, उन्हें उत्तर बुनियादी तथा उत्तम बुनियादी तालीम के माध्यम के रूप में चलाना होगा।

अतः आप समझ सकते हैं कि मनुष्य समाज के सारे कार्यक्रम यानी उत्पादन-कार्य, समाज-व्यवस्था तथा प्राकृतिक साधनों की खोज नई तालीम के अंतर्गत आ जाते हैं। इस प्रकार समाज के सारे कार्यक्रमो के ताने में शिक्षण तथा सस्कृति का बाना डालकर नव-समाज निर्माण करना होगा। ऐसा करने में मनुष्य के अदर निरतर पैदा होने वाली विकृति की सफाई साथ-साथ चलने वाले सस्कृति के कार्यक्रम के द्वारा होती रहेगी और शासन की आवश्यकताओ की सभावना जाती रहेगी।

अध्यापकगण जितना ही समाज का विश्वास सम्पादन करेंगे और समाज उन्हें जितनी ही स्वतन्त्रता देगा, उनकी शिक्षा उतनी ही सजीव—प्राणवान—होगी। अश्रद्धाशील बनकर यदि समाज अध्यापकों पर आतंक जमाना चाहेगा तो निस्सन्देह उनकी शिक्षा भी निष्प्राण होगी।

—काका कालेलकर

विनोबा

नई तालीम जीवन-दर्शन है

१९३७ में, याने स्वराज्य प्राप्ति के दस साल पहले, बापू ने नई तालीम की कल्पना देश के सामने रखी। स्वराज्य के माने विदेशी सत्ता यहा से हट जाय, इतना ही बापू नही कहते थे, बल्कि एक नया समाज बने, जिसमें शोषण न हो, जिसमें केंद्रित शासन कम-से-कम हो, जिसमें हरएक के विकास के लिए पूरी सहूलियत हो—ऐसी समाज-व्यवस्था को वे 'स्वराज्य' नाम देते थे। स्वराज्य याने ऐसा राज्य, जिसमें हरएक को महसूस हो कि यह राज्य मेरा है। इसीको वे "राम-राज्य" भी कहते थे।

नई तालीम उसी समाज की स्थापना करना चाहती है

नई तालीम और पुरानी तालीम में क्या भेद है? नई तालीम याने नये मूल्यो की स्थापना। पुरानी तालीम चोरी करने को पाप समझती थी। नई तालीम न सिर्फ चोरी को, बल्कि अधिक संग्रह को भी पाप समझती है। पुरानी तालीम शारीरिक और मानसिक परिश्रमो के मूल्यों में फर्क करती थी। नई तालीम दोनो का मूल्य समान समझती है। इतना ही नही, दोनों का समन्वय करती है, दोनो का 'समवाय' साधती है। पुरानी तालीम 'क्षमता' की इज्जत करती थी। नई तालीम "क्षमता को' समता की दासी समझती है। पुरानी तालीम लक्ष्मी, शक्ति, सरस्वती को स्वतंत्र देवता रूप में पूजती थी। नई तालीम मानवता को पूजती है और इन तीनो को उसकी सेवा का साधन समझती है।

शिक्षण प्रयोग : नई तालीम का विश्वास है कि ज्ञान और कर्म दोनो एक ही वस्तु के दो स्वरूप हैं। इसलिए मालूम ही नही होता है कि यह ज्ञान-कार्य चल रहा है या कर्मयोग। एक दृष्टि से देखो तो ज्ञान-कार्य चल रहा है, ऐसा दीखता है, दूसरी दृष्टि से कर्मयोग चल रहा है, ऐसा दीखता है। इस तरह का आभास जिन प्रयोगों मे आयेगा, उसका नाम होगा शिक्षण प्रयोग। जब यह आभास होगा कि यहा केवल ज्ञान-कार्य चल रहा है तो वह शिक्षण प्रयोग ही नहीं है। जहा यह दीख रहा है कि यह कर्मयोग चल रहा है तो भी वह शिक्षण का कार्यक्रम नही है। दोनो मे से कौन-सी चीज चल रही है, उसका पता ही न चले, उसका नाम है शिक्षण प्रयोग। आजकल बुनियादी तालीम मे एक बडा तमाशा चलता है। कहते हैं कि ज्ञान और कर्म का योग होना चाहिये, इसलिए तकली चलाते हैं और इसके साथ तकली के गाने गाते हैं। तकली के साथ तकली के गाने से एकता नही होती। यह बडा सूक्ष्म विचार है। ज्ञान और कर्म मे कहा तक विरोध, भेद और ऐक्य है? और इसी विश्वास पर नयी तालीम खडी है कि ज्ञान और कर्म मे अभेद है, कर्म से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान से कर्म की प्रेरणा मिलती है और दानो से जीवन सार्थक होता है। इस प्रकार की योजना नई तालीम मे है।

नई तालीम में नैतिक मूल्यों का आर्थिक नाप नहीं

आज के समाज मे शारीरिक परिश्रम और मानसिक परिश्रम की कीमत अलग-अलग मानी गयी है, जिसे नई तालीम नही मानती है। नई तालीम के अनुसार मनुष्य जो भी सेवा करता हो—शारीरिक या मानसिक—वह एक नैतिक वस्तु है और उसे जो तनख्वाह दी जाती है वह एक आर्थिक वस्तु है। नैतिक वस्तु की कीमत आर्थिक वस्तु में नहीं आंकी जा सकती। ऐसा सवाल पूछना ही गलत है कि एक फुट के कितने घंटे होते हैं। एक मील के गज टुकड़े कर

सकते हैं पर घटे नही, क्योंकि वे भिन्न चीजें है जिनका परिवर्तन एक-दूसरे मे नही हो सकता है। नदी मे डूबनेवाले को किसीने बचाया। उस काम मे दस मिनट लगे। वह *काम शारीरिक था, बुद्धि का* नही। इसलिए क्या उसे दस मिनट की मजदूरी एक आना दी जाय? उसे तो सौ रुपये दिये जाय, तो भी वह कबूल नही करेगा—यो कहकर कि इसमे पैसा लेने की बात ही नही है। इसी तरह जिस किसी ने कोई भी काम किया, शारीरिक या मानसिक, वह अगर समाज के लिए मुफीद है, तो वह एक नैतिक वस्तु बन जाती है, जिसका आर्थिक मूल्य के साथ कोई सम्बन्ध नही है। आर्थिक मूल्य का सम्बन्ध हर शख्स की भूख से है। जिसे दो रुपये की भूख है, उसे दो रुपये का खाने का हक है और उसे दो रुपये देना समाज का कर्तव्य है। फिर वह बढई है या किसान है या शिक्षक, इससे उनका कोई ताल्लुक नही।

आर्थिक पहलू

हम इस बात के लिए हैरान हैं कि सरकार नई तालीम को कबूल तो कर रही है, परन्तु वह जो तालीम चलायेगी, उसमे तो दर्जे रहेंगे। यह सरकार का दोष नही, समाज का है। इन सब दर्जों को अपनानेवाली तालीम परिस्थिति के साथ समझौता कर लेगी, नई तालीम यह नही कर सकती। उसे तो समाज का सारा ढाचा बदलना है। कांग्रेस ने 'सोशलिस्ट पैटर्न आफ सोसायटी' की बात कही, जो एक अच्छी चीज है। परन्तु हमने देखा कि पूजीपति उसके साथ समझौता कर लेते हैं। जहा पर यह प्रस्ताव हुआ वहा मौलाना आजाद ने तो यही समझाया कि उसमे कोई बहुत बडी उथल पुथल नही होनेवाली है। वैसे हिटलर भी कहता था कि हमारा नेशनल सोशियालिज्म राष्ट्रीय समाजवाद है। इसीलिए मैंने कहा कि 'सोशियालिज्म' खतरे मे है। उन्होने एक ऐसा गोल-मोल शब्द चुन लिया है कि उसे जो भी स्वरूप देना चाहे, दे सकते हैं। आजकल 'सर्वोदय' शब्द का भी कुछ ऐसा ही उपयोग किया जा रहा है। उसी तरह अगर 'नई तालीम' का अर्थ होने लगे, तो इस विचार को समझनेवाले यही कहेंगे कि नई तालीम एक स्वतन्त्र वस्तु है, जिसका, आज जो चल रही है, उसके साथ कोई ताल्लुक नही है। मैं कहना चाहता हूँ कि नई तालीम का आर्थिक पहलू यह है कि *शारीरिक परिश्रम और मानसिक परिश्रम*, इस तरह के दर्जे टूटने चाहिए।

आध्यात्मिक पहलू

नई तालीम का *आध्यात्मिक* पहलू, जैसा कि मैंने पहले कहा, यह है कि ज्ञान और कर्म दो चीजें नही, बल्कि एक ही चीज है। ज्ञान से कर्म श्रेष्ठ या कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ, कहना गलत है। ज्ञान और कर्म एक हैं, इस बुनियाद पर जो तालीम दी जायगी, वह नई तालीम होगी। उसमें पता ही नहीं चलता कि कोई परिश्रम हो रहा है। काम होता है, शिक्षण मिलता है और साथ-साथ स्वच्छ, सुन्दर हवा भी मिलती है। आजकल कारखानो में मजदूरो को बन्द जगह में आठ घण्टे काम करना पडता है, जहा उन्हें न खुली हवा मिलती है, न आनन्द। उस काम का ज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नही। नई तालीम में इस तरह काम का एक घण्टा और आनन्द का एक घण्टा नहीं रहेगा। नई तालीम में तो सतचित्-आनन्द होगा, कर्म ज्ञान और आनन्द एक रूप होगा। ज्ञानप्राप्ति का एक स्वाभाविक तरीका यह है कि हम जो भी कार्य करते हैं, उसके साथ साथ ज्ञान भी हासिल होता रहे। हम बीमार की सेवा करेंगे, तो साथ साथ प्रयोग भी करेंगे। याने सेवा और अध्ययन दोनों करेंगे। कोई डाक्टर शोध करना चाहता है परन्तु रोगी की सेवा नहीं करना चाहता, तो कैसे चलेगा? जैसे शोध से आप काम को अलग नही कर सकते, वैसे आनन्द से भी काम को अलग नही कर सकते। काम और आनन्द को अलग अलग किया जायगा तो आनन्द सदोष होगा और काम रूखा-सूखा बनेगा। मुझे बचपन की एक बात याद आती है। बादशाह का जन्मदिन हो, तो हमारे स्कूल की छुट्टी होती थी और बादशाह मरा तो भी छुट्टी! हम लडकों को तो छुट्टी का आनन्द था, इसलिए हम तो बिल्कुल वेदान्ती बन गये थे। हम समझते थे कि जन्म और मृत्यु

मिथ्या है, छुट्टी सत्य है। हमारी समझ में नही आता था कि जो 'छुट्टी' जन्म से होती है, वही मृत्यु से कैसे होती है? बच्चो को छुट्टी में आनन्द आता था। इसके मानी ये कि वे स्कूल को जेल समझते थे। हम तो चाहते हैं कि बच्चो को हफ्ते में सिर्फ एक ही दिन नही, बल्कि सातो दिन आनन्द मिलना चाहिए। जहा यह अनुभव आयेगा कि कर्म, ज्ञान और आनन्द, याने सत्, चित्, आनन्द, तीनों मिलकर एक ही वस्तु है, वह नई तालीम है।

सामाजिक पहलू

नई तालीम का सामाजिक रूप यह है कि मनुष्य मात्र समान है। इसलिए भिन्न-भिन्न सामाजिक भेद वर्ग-भेद आदि सब मिथ्या है। इस बात को हम कबूल करेंगे, तो आज के राष्ट्रीयवाद आदि सब भेद मिट जायेंगे। नई तालीम के साथ ये सारे भेद नहीं रह सकते। भूदान-यज्ञ का जो दावा है कि जमीन सबकी है, उसका कोई मालिक नही हो सकता है, यह दावा यहा तक जा सकता है कि किसी एक देश की जमीन उसी देश की है यह मानना गलत है। दुनिया में जितनी जमीन है वह कुल मानवो की है। नई तालीम में हम इन्सान में कोई सामाजिक फर्क नही करते हैं। आज का समाज का ढाचा अनेक प्रकार के भेदो पर खडा है। इसलिए नई तालीम से हिन्दुस्तान के सामाजिक क्षेत्र में बडी भारी उथल-पुथल होनेवाली है। यहा पर सब बच्चे एक साथ खायेंगे, खेलेंगे और पढेंगे। हम भिन्न-भिन्न धर्मों की खराबिया छोडेंगे और खूबिया लेगें। कुछ लोग गलत समझे हैं कि 'सर्व-धर्म-समन्वय' के मानी हैं, सब धर्मों की सब चीजो को अच्छा कहना। 'सेक्युलर एटिट्यूड' याने 'भौतिक वृत्ति' के मानी यह समझे जाते हैं कि धर्म के बारे में कुछ नही बोलना चाहिए। लेकिन धर्म के नाम पर जो गलत चीजें चलती हैं, उन सब के खिलाफ नई तालीम खडी है। हम तो समझते हैं कि नई तालीम का डटकर विरोध करना सनातनियो का कर्तव्य है और अगर वे विरोध नही करते हैं तो या वे नई तालीम को समझे नही हैं या आज की नई तालीम वास्तव में नई तालीम नहीं है। उसी तरह 'स्टेटस को' (यथा स्थिति) रखनेवालों को भी नई तालीम का विरोध करना चाहिए।

नयी तालीम के शिक्षण और विद्यालय से अपेक्षा

नई तालीम के विद्यालय से हम हमेशा यह आशा करते हैं कि उसमे विचारो का खूब अध्ययन चले और उसका आचरण भी हो। उस चिंतन, मनन या सह-चिंतन और सह-आचरण से, जो गुरु और शिष्य, दोनों मिलकर करते है, दुनिया को अनुभवयुक्त ज्ञान मिलता है। जहा विचार-मथन और प्रयोग, दोनो एक हो जाते हैं, घुल-मिल जाते हैं, उसे ही 'नई तालीम' कहते हैं। जहा कुछ विचार-मथन चलता है परन्तु उसे आचरण का आधार नही मिलता, वहा पर पुरानी तालीम चलती है, जो आज सर्वत्र चल रही है। जहा पर प्रत्यक्ष आचरण चलता है, आचरण के प्रयोग चलते हैं, परन्तु विचार-मथन, चर्चा आदि नहीं चलते, वह है कर्मयोग, जो आज असख्य किसान सचाई से कर रहे हैं। इस तरह इधर से यह किसान और उधर से वे तत्वज्ञानी, दोनो मिलकर जो चीज बनती है, वह है नई तालीम का शिक्षक और विद्यार्थी।

शिक्षक सारे गाव का सेवक भी होना चाहिए। गाव की शाला सेवा का केन्द्र होगी। गाव को औषधि देनी है तो वह स्कूल की मार्फत दी जायगी और लडके उसमे मदद देंगे। गाव मे सफाई करनी है, तो शाला उसका केन्द्र बनेगी और स्कूल के लडके तथा शिक्षक गाववालो की मदद करेंगे गाव मे अगर कोई झगडे होते हैं, तो उनका निर्णय करने के लिए भी लोग गाव के शिक्षक के पास पहुचेंगे। गाव में कोई उत्सव करना है, तो उसकी योजना भी शाला करेगी। इस तरह गाव का केन्द्रस्थान विद्यालय रहेगा और जो चीज गाव मे नही है, उसकी स्थापना करेगा।

मेरा सुझाव है कि गांव में एक घण्टे की पाठशाला हो

गाव-गाव में सरकारी नहीं, ग्रामीण स्कूल चले, और रोज सिर्फ एक घण्टा, सुबह के समय, चले।

(शेषाश पृष्ठ ९३ पर)

बुनियादी तालीम एक सर्वोच्च शिक्षा पद्धति है

डा० जाकिर हुसेन

एक राज्य के सामने–जो अपने नैतिक भविष्य के बारे में चिन्ता करता है–दो लक्ष्य रहते हैं, पहला. आतरिक शाति और सुरक्षा, बाह्य आक्रमण के प्रति रक्षा और अपने नागरिको के भौतिक तथा नैतिक स्वास्थ्य की देखभाल, दूसरा : जगत में एक मानव-परिवार या मानव जाति के एक *सयुक्त सघ की स्थापना*, जिसके लिए कारगर साधन है–तुल्य विचार वाले लोगो का सहयोग । अगर यह राज्य अपने सब नागरिको के सब बच्चो की शिक्षा का भार अपने ऊपर लेता है तो ऐसा माना जा सकता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार इन ध्येयो की पूर्ति में अपना हिस्सा अदा करने की शिक्षा देगा । नही तो वह सब लडके-लडकियो की शिक्षा की जिम्मेदारी क्यो लेगा और क्यो ही सब लडके-लडकियो से यह शिक्षा पाने की अपेक्षा करेगा ? एसे अच्छे और उपयोगी नागरिको के निर्माण के लिए ही राज्य शिक्षा देता है जो इस दुहरे ध्येय की प्राप्ति में सहायक होगे । वह शिक्षा का आयोजन उपयोगिता और नैतिकता दानो दृष्टियो से करता है ।

इस दुहरे ध्येय को सामने रखते हुए अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा के ये उद्देश्य हम मान सकते हैं–

पहला काम हरएक नागरिक को किसी-न-किसी उपयोगी धन्धे की शिक्षा देना होगा, याने वह अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार समाज में कोई निश्चित काम करेगा । पहला उद्देश्य औद्योगिक शिक्षा होगी–या अनिवार्य शिक्षा में निर्धारित वय की मर्यादा के अन्दर *उसकी तैयारी की अच्छी-से-अच्छी शिक्षा* । यह एक उपयोगिताप्रधान उद्देश्य जरूर है, लेकिन वही स्कूल के नैतिक तथा शैक्षणिक काम की बुनियाद भी है ।

दूसरा उद्देश्य इस औद्योगिक शिक्षा को सिर्फ औद्योगिक न रखकर उसे नैतिक स्तर पर ले जाना होगा और विद्यार्थी के मन में बिलकुल स्पष्ट रूप से यह बोध पैदा करना होगा कि उद्योग केवल आजीविका कमाने का साधन नही है, बल्कि एक सहकारी समाज में सार्वजनिक सेवा का माध्यम है । और एक नीतिनिष्ठ समाज व्यवस्था की स्थापना और विकास के लिए उसका उपयोग होना चाहिये ।

अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा का तीसरा ध्येय समाज के बालको के मन में अपने ही चारित्र्य के निर्माण की इच्छा और क्षमता पैदा करने और उसके द्वारा समाज के नैतिक जीवन स्तर को ऊचा उठाने के मार्ग पर उन्हे अग्रसर करने का है । उसे यह अनुभूति होनी चाहिये कि

एक उत्तम नीतिनिष्ठ समाज की कल्पना नैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकती है ।

अब हम इस पर विचार करें कि इन ध्येयों को प्राप्त करने के लिए हमें कैसी शालाएं चलानी होंगी । विद्यार्थियों को अपनी आजीविका के उपयुक्त काम सिखानेवाले उद्देश्य को शाला कैसे पूरा करेगी ? अगर आज की हमारी समाज व्यवस्था पेस्टलोजि के समय की स्विट्जरलैण्ड की समाजव्यवस्था की जैसी सरल होती या गांधीजी के आदर्शों के अनुसार होती तो विद्यार्थी को एक उपयुक्त उद्योग सिखाने में शाला बहुत कुछ कामयाब होती । लेकिन देश में औद्योगिक विकास की बढ़ती हुई लहर ने इस प्रश्न को ज्यादा जटिल बना दिया है । इस जटिलता के कारण हमें रास्ता भूल नहीं जाना चाहिये । फिलहाल शिक्षा की अवधि सात या आठ साल की ही है और इतने अर्से में कोई भी शाला अपने विद्यार्थियों के लिए आवश्यक पूरा औद्योगिक शिक्षण नहीं दे सकती । इसलिये इस अवधि में ठीक मानसिक वृत्तियों और शारीरिक कुशलताओं के निर्माण का प्रयत्न ही प्रधान रहेगा जो कि समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण करने के लिये बालक को समर्थ बनायगा । इन स्कूलों में से निकलने वाले अधिकतर बालकों को तो स्वाभाविक ही ऐसी प्रवृत्तियों में लगना होगा जिनमें शारीरिक परिश्रम की प्रधानता होगी ।

अब यह बात बिलकुल सर्वमान्य हो चुकी है कि आज के स्कूलों की किताबी तालीम इन बहुसंख्यक लड़के-लड़कियों के लिए उनके व्यावहारिक जीवन में किसी काम की नहीं होती है । उनके लिए कोई-न-कोई हाथ का काम ही सब शैक्षणिक प्रवृत्तियों का माध्यम बनना चाहिये । केवल बौद्धिक काम में लगने वाले अल्पसंख्यक बालकों के लिए और कोई माध्यम सुझाया जा सकता था, लेकिन बुद्धिजीवी वर्ग के इस संशयास्पद दावे के अलावा कि उनके बच्चे भी बुद्धिप्रधान होंगे, ऐसे बच्चों को अलग करके छांटने का कोई आसान उपाय तो नहीं है । यह बात बिलकुल साफ है कि अधिकतर बच्चे तो सक्रिय प्रवृत्तियों में ही रुचि रखते हैं ।

इसलिए हमारा मदरसा तो एक काम का मदरसा होगा । बौद्धिक काम हाथ से किये जाने वाले शैक्षणिक काम का अभेद्य अंग है ही । यह काम का मदरसा बुद्धिप्रधान तथा श्रमप्रधान दोनों प्रकारों के लिये शिक्षा की बुनियाद तैयार करेगा । अगर ठीक प्रकार से संगठित की गयी तो वह देहातों तथा शहरों दोनों के लिए उपयुक्त होगा, कृषि संबन्धित व औद्योगिक धन्धों के लिए और बौद्धिक एवं शारीरिक प्रवृत्तियों के विकास के लिए भी उपयुक्त पाठशाला होगी । उसमें से निकलने वाले विद्यार्थी अच्छा काम करने तथा युक्तियुक्त विचार करने के आदी होंगे, अपने काम से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने से उनकी विचारशक्ति पुष्ट होगी ।

वे जो भी काम हाथ में लेंगे उसे करने के उत्तम तरीके ढूंढेंगे, पूरी श्रद्धा और मेहनत से उसे करेंगे और काम पूरा होने पर उसकी खामियों और खूबियों को परखेंगे, उनके बारे में सोचेंगे, आत्मसमीक्षा करेंगे । इन सब अनुभवों से उन्हें स्वतन्त्र और वस्तुनिष्ठ रीति से सोचने की आदत होगी । हम लोगों

में से अधिकतर को इससे कही अधिक लबे समय में उससे भी कम शिक्षा मिली है जो हम अपने इन काम के मदरसो के द्वारा बालकों का देना चाहते हैं। मुझे इस बात पर कोई शका नही कि एक अच्छा काम का मदरसा इन लक्ष्यो को पूरा करेगा। अगर अभी तक काम के मदरसे आम तौर पर इन नतीजो तक नही पहुच पाये हैं तो उसका यही कारण है कि हमारी पीढी को शिक्षा काम के जरिये नही मिली है।

मैं आशा करता हू कि अब यह बात साफ हो गयी होगी कि हमारा पहला ध्येय शैक्षणिक शारीरिक काम को इस शिक्षा का मुख्य पहलू बनाने से ही प्राप्त हो सकता है। मेरा निवेदन है कि दूसरे ध्येय की प्राप्ति, याने इस सारी प्रक्रिया को एक नैतिक अनुभव और नैतिक शिक्षण बनाना, शालाओ को सहजीवन पर आधारित, कर्मनिष्ठ समाजो के रूप में सगठित करने से ही हो सकती है। ये समाज उसके सदस्यो के आदर्शो के मूर्तरूप बनने चाहिये। अज्ञात की खोज में, प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक सत्यो के अध्ययन में, सुन्दरता के सर्जन और उससे आनन्द पाने में, स्वस्थ, स्वच्छ जीवन में, असहाय की सहायता करने में, अपने कर्त्तव्य को यथासभव उत्तम तरीके से निभाने में, साथियों के साथ कन्धा मिला कर काम करने में और कितनी ही बातो में ये समाज सहकारी जीवन के सुन्दर नमूने हो सकते हैं। ऐसे समाज में काम अपने आप सेवा बन जाता है, वह चारित्र्य-निर्माण की बुनियाद होता है। उसके कार्यव्यस्त वातावरण में बच्चो के अन्दर वे सामाजिक बोध और परस्पर सहयोग की भावनाएँ विकसित होगी जो कि उच्च चारित्र्य के निर्माण में मूल्यवान साधन होती है।

जिन बच्चो ने ऐसे वातावरण में जीने व काम करने के अवर्णनीय आनन्द और तृप्ति का अनुभव किया हो, वे बाद के जीवन में भी उसे पाने का प्रयत्न अवश्य करेंगे। सारे विश्व में आज ऐसे शाला-समुदायो के प्रयोग हो रहे हैं। हम अगर अपने आगे के काम को गभीरता के साथ लेते है तो हमें भी इस ओर प्रयत्न करना पडेगा। वल्कि प्रयोग कुछ खास-खास खर्चीले पब्लिक स्कूलो तक सीमित न रखकर इस देश के सब बच्चो के लिए हमें इस तरह के स्कूल चलाने होगे। हमारे अच्छे-से-अच्छे शिक्षाशास्त्रियो को इस अनिवार्य शिक्षा के सब स्कूलो को सच्ची कर्मनिष्ठ समाजो का रूप देने के बारे में दिमाग चलाना चाहिए।

तीसरा ध्येय है विद्यार्थी में शिक्षा को प्राप्त करने की प्रेरणा पैदा करना, उसकी आवश्यकता महसूस कराना, जिससे वह अपने चरित्र को और समाज की नैतिकता को ऊचा उठा सके। इतनी छोटी उम्र में उसका आरभ मात्र ही हो सकता है। और अगर १४ साल के पहले उसकी पढाई बन्द करने दिया तो आरभ करने का भी मौका नही रहता।

हमारे सविधान में अनिवार्य शिक्षा की अवधि चौदह साल तक निश्चित की गयी है। प्रारभ कब होना चाहिये उसके बारे में कोई निर्देश नही दिया गया है। मैं सात से चौदह साल की शिक्षा को न्यूनतम आवश्यक अवधि मानता हू हालाकि उससे पहले शुरू करने का पक्ष काफी मजबूत है। लेकिन कहा जाता है कि देश के सब बच्चो के लिए इतने काल की अनिवार्य शिक्षा का भार उठाने की आर्थिक शक्ति आज हमारे पास नही है। इस दलील से मैं सहमत नही हू। अगर हमने निश्चित रूप

से मान लिया कि यह काम हमे करना है तो उसके लिए रास्ता भी निकाल ही सकते हे। फिर भी मान लिया कि फिलहाल ऐसी लाचारी है कि हम पाच साल की ही अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध कर सकते हे तो यह अवधि नौ से चौदह तक की होनी चाहिये न कि छ से ग्यारह तक की। चौदह साल के पहले उस बन्द करना एक स्वतत्र समाज में अनिवार्य शिक्षा चलाने के उद्देश्यो को ही परास्त करना होगा।

हमारे देश में ऐसे काम के मदरसे जिन्हे बुनियादी विद्यालय कहते हैं शुरू करन का जो प्रयत्न हुआ है, उसके बारे में अब कुछ कहना चाहता हू। मैंने इन स्कूलो का काफी निरीक्षण किया है और जो प्रभाव मेरे मन पर पडा है उसी के आधार पर मैं ये विचार प्रगट कर रहा हू। यह नही कि मैंने इस देश के सब विद्यालय देखे हो और उनका कोई व्यवस्थित अध्ययन किया हो। लेकिन बुनियादी शालाओ से क्या अपेक्षा की जा सकती है और उनके सफल होने की कितनी आशा है, इसकी मुझे कुछ कल्पना है और मैंने ऐसे नमूने भी देखे है। मेरी राय है कि जो सफलता सुसगठित काम के मदरसो से आसानी से प्राप्त होनी चाहिए थी वह इनमे नही मिल पायी है। इसके कई कारण हैं। उनमें से अधिकतर सगठन से सबधित हैं, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक कारण है–काम के प्रति जिस शैक्षणिक वृत्ति और तैयारी की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है, वह आम तौर पर दृष्टिगत नही रखी गयी। हमने तथा–कथित वाचिक शिक्षा के स्कूलो को भी लडको से रटा-रटा कर कुछ बाते–उनका मतलब समझे बिना ही–याद कराने के स्थान बनाये हे। किसी ने उसकी चिन्ता नही की। एक कुत्ता तक नही भौंका और–खुदा हाफिज–इन स्कूलो की सख्या हजारो की तादाद में बढती ही गयी। इसी प्रकार हमने कई बुनियादी विद्यालयो को भी मात्र यान्त्रिक काम का स्थान बनाने में सफल हुए हैं। काम बाहर से और सब के लिए एक जैसा निश्चित किया हुआ होता है, उसमें बच्चे की स्वय प्रेरणा का आभास मात्र नही है। उस काम के व्यक्तिगत या सामाजिक उद्देश्यो के बारे में वह एकात अज्ञता में रहता है। काम शुरू करने में कौतूहल या हाथ से कुछ करने के मजे के अलावा उसे कोई प्रेरक तत्व नही दीखता। जैसे बताया जाता है वैसे वह करता है। उसके सामने कोई समस्या नही कि जिसे सुलझाने में उसे दिमाग लडाने की जरूरत पडे। उस काम से निकलनेवाली समस्याओ के बारे में वह सोचता भी नही। आखिर सोचेगा ही क्यो, क्योकि उसके सामने समस्या है ही नहीं। उसे अमुक तरीके से करने के लिए कहा जाता है, शिक्षक के साथ कोई नया तरीका ढूंढ निकालने का आनन्द भी उसे नही मिलता। उसको कभी-कभी काम करना होता है (कभी-कभी–नियमित रूप से नही) और जो उससे काम कराते हैं वे काम अच्छा हुआ या बुरा, इसकी चिन्ता ही नही करते। इस तरह के काम का नतीजा यही होता है जो हो रहा है। जैसे कि मैं कह चुका हू शिक्षा का काम इन प्रवृत्तियो को अधिकाधिक सुन्दर और सुचारु बनाना है और जबतक काम उत्तम रीति से सपन्न नही होता है तबतक सतोष नही मानना है।

यान्त्रिक रूप से किया जानेवाला काम, जिसमें बुद्धि का उपयोग नही है, उन्नति के लिए कोई प्रेरणा नही है–वह काम जिसमें आत्मसमीक्षा और प्रगति नही है, किसी भी

मायने में शैक्षणिक नही होता है। जिन शालाओ में ऐसा काम होता है उन्हे बुनियादी विद्यालय नही कह सकते हे।

और भी कई मुश्किलात हैं जिनका सगठन से वास्ता है। यहा मै दो का ही जिक्र करू। भारतीय शिक्षा के शान्त-सुप्त अन्तरीक्ष में कई दफे ये बुनियादी स्कूल अनामत्रित आगन्तुक माने जाते हे। बुनियादी विद्यालयो से निकलन वाले लडके-लडकियो को प्रचलित उच्चविद्यालयो में प्रवेश मिलना कठिन या असभव ही होता है। इस कारण उनके लिए विशेष उत्तर बुनियादी विद्यालय चलाने पडते हैं और वे सख्या में बहुत कम हे। और जब यह बालक उत्तर बुनियादी शिक्षा खतम करता है तो भी उसे किसी विश्वविद्यालय म प्रवेश नही मिलता है। जिस शिक्षा पद्धति के बारे में सरकार घोषणा करती है कि वह राष्ट्र की सारी प्राथमिक शिक्षा में पूर्ण रूप से और माध्यमिक शिक्षा में आशिक रूप से मानी गयी है, उस पद्धति से और सरकार ही के द्वारा चलाय जानवाले विद्यालयो में १२ साल शिक्षा प्राप्त करने के बाद एक लडका विश्वविद्यालय में नही जा सकता है। क्यो ? क्योंकि सरकार विश्वविद्यालय से उसे प्रवेश देन के लिए नही कह सकती। विश्वविद्यालय स्वतत्र सस्थाएँ है और मै भी उनके स्वयनिर्णयाधिकार का समर्थक हू। लेकिन जो विद्यार्थी हजारो की तादाद में प्रचलित माध्यमिक शिक्षा पूरी करके निकलते हे और जैसे कि विश्वविद्यालयो के सचालक स्वय कहते है कि जिनमें से अधिकाश विश्वविद्यालय की शिक्षा से कोई लाभ उठा लेने योग्य नही होते, उन्हे तो प्रवेश का निषेध होते हुए नही दिखाई देता है। उत्तर बुनियादी विद्यालय का स्नातक, जिसने उनसे दो वर्ष अधिक शिक्षा पायी है, उसे यह हक हासिल नही होता है। क्यो ? क्योकि विश्वविद्यालय स्वतत्र सस्थायें है। यह स्थिति देश की शिक्षा व्यवस्था में समन्वय का दु खद अभाव दिखाती है।

फिर भी ये बुनियादी विद्यालय दूसरे विद्यालयो की तुलना में अच्छे शिक्षा स्थान हैं। उसका कारण यह है कि आसपास के समाज से और जिन्दगी से वे उतने विच्छिन्न नही रहते हैं और क्योकि छोटे छोटे शैक्षणिक समुदायो के रूप में कुछ विशिष्ट मूल्यो को दृष्टिगत रख कर उनका सचालन होता है। उनका काम शैक्षणिक कमियो के बावजूद भी कुछ हद तक उस उम्र के बच्चो की जरूरतो के अनुसार है, इसलिए वे उन बच्चो में कुछ गुणो का विकास कर पाते हैं। लेकिन जब तक हम इन्हे शैक्षणिक काम के द्वारा सच्चे शिक्षा स्थान नही बनाते हैं तब तक हमें सतोष नही मानना चाहिए। इसके लिए दृढनिश्चय और उस निश्चय को अमल में लाने की इच्छाशक्ति हमें तैयार करनी है। हमें इस आदर्श को सामने रखना चाहिए-"सोचना और करना, करना और सोचना"-जो कि काम के स्कूल का उसूल है। भारतीय शिक्षा जगत में गाधीजी के जैसे महापुरुषने बुनियादी तालीम का विचार पेश करके आज बाईस लबे साल बीत गये हे, फिर भी क्या यह अत्यन्त दु खद बात नही है कि हम वहा पहुच नही पाये हे। उसका कारण यह है कि जो नीति को तय करते हे और जिनके ऊपर उस नीति को अमल में लाने का भार है वैसे लोग-सभाओं में नही, पर साधारण बातचीत में ऐसी बाते कह देते है-या कुछ कहते नही, जिससे यह शका होती

है कि क्या हमें यह शिक्षापद्धति सचमुच मान्य है ! अगर हम बुनियादी तालीम को कारगर और सफल बनाना चाहते हैं तो इसके बारे में सब को गंभीरता से सोचना पडेगा ।

अगर हम ऐसा मानते हैं कि इन स्कूलो से हमें कोई मतलब नही और यह पद्धति व्यावहारिक और अच्छी नहीं है, तो हम निश्चित रूप से यह कह दें और इस झगडे को खतम करें । वह एक नेक कदम होगा । मुझे विश्वास है कि अगर यह तय हुआ तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था में काम के मदरसे अधिक शक्ति और स्फूर्ति के साथ लौट आएगे, उनका काम ज्यादा जल्दी भी होगा । खतरा उन्हे इनकार करने में नही, जितना सैकडो मानसिक गुत्थियों के साथ उन्हे स्वीकार करने में है ।

मेरे साथी शिक्षकों, हमारे सामने आज एक बडी चुनौती है । हम साहस के साथ उसका सामना करें । ऐसा न हो कि हम चुपचाप बैठे रहें, जब तक दूसरे कोई हमारे लिए सोचे और तय करें, फिर हम यांत्रिक, निष्प्राण रूप से उसे करने लगें । हम अपने काम के बारे में स्वस्थ, स्वतंत्र रीति से सोचें और अपने ऊंचे कर्त्तव्य का बोध हमें हो । हमें इस काम के द्वारा केवल अपनी आजीविका नहीं कमाना है–जैसे कि करोडों देशवासी थकानेवाली ऊबने वाली कडी मेहनत से, जिसका उनके लिए कोई प्रयोजन नहीं है, जिसका उनकी जिन्दगी में कोई मतलब नहीं है, कर रहे हैं । हमें इस हाथ के काम में बुद्धि की तेजस्विता, ऊंचा चरित्र और सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने की शक्ति भर देनी है और बौद्धिक काम को ठोस उद्देश्यपूर्ण बुनियाद देनी है ।

धर्म की शिक्षा

धर्म-शिक्षा के लिए ऐसे आश्रमों की आवश्यकता है, जहा विश्व प्रकृति के साथ मानव-जीवन के संयोग में कोई व्यवधान नहीं है, जहां तरु-लता, पशुपक्षियों के साथ मनुष्य का आत्मीय संबंध स्वाभाविक है, जहां भोग का आकर्षण और उपकरण की बहुलता से मनुष्य का चित्त क्षुब्ध नहीं होता; जहां साधना सिर्फ ध्यान में विलीन नहीं है, लेकिन त्याग और मंगल कार्य के द्वारा हो नित्य अपने को प्रकट करती है; जहां संकीर्ण देश, काल और पात्र के भेद के द्वारा कर्तव्य-बुद्धि खंडित नहीं है; जहां विश्वजन के आदर्श का अनुष्ठान गंभीर रूप से विराजित है; जहां परस्पर के प्रति व्यवहार में श्रद्धा है, ज्ञान की चर्चा में उदारता और सब कालों के महापुरुषों के चरित्र के पुण्य स्मरण से भक्ति की साधना से मन सरस रहता है ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उच्च शिक्षा का स्वरूप

गांधीजी

उच्च शिक्षा के विषय मे मेरे जो विचार हैं उन्हें मैं पहले से भी अधिक पूर्णता के साथ फिर से व्यक्त कर दू ।

अपनी मर्यादाओ का मैं स्वीकार करता हू । मैंने विश्वविद्यालय की कोई नाम लेने योग्य शिक्षा नही पायी है । मेरा स्कूली जीवन भी औसत दर्जे से अधिक अच्छा न रहा । मैं तो यही बहुत समझता था कि किसी तरह इम्तहान मे पास हो जाऊ । स्कूल मे डिस्टिंक्शन पाना ऐसी बात थी जिसकी मैंने कभी आकाक्षा भी नही की । मगर फिर भी शिक्षा के विषय मे जिसमे कि वह शिक्षा भी शामिल है, जिसे उच्च शिक्षा कहा जाता है, आम तौर पर, मैं दृढ विचार रखता हू । और देश के प्रति मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू कि मेरे विचार स्पष्ट रूप से सबको मालूम हो जाय और उनकी वास्तविकता सब के सामने आ जाय । इसके लिए मुझे अपनी उस भीरुता या सकोच भावना को छोडना ही पडेगा जो लगभग आत्मदमन की हद तक पहुच गयी है । इसके लिए न तो मुझे उपहास का भय करना चाहिये न लोक प्रियता या प्रतिष्ठा की ही चिन्ता होनी चाहिए । क्योंकि अगर मैं अपने विश्वास को छिपाऊगा तो निर्णय की भूलो को भी कभी दुरुस्त न कर सकूगा । लेकिन मैं तो हमेशा उन्हे ढूढने और उससे भी अधिक उन्हें सुधारने के लिए उत्सुक हू ।

अब मैं अपने उन निर्णयों को बता दू जिन पर कि मैं कई बरसो से पहुचा हू, और जब भी मौका मिला है मैंने उनको अमल मे लाने की कोशिश की है—

१. दुनिया में प्राप्त हो सकनेवाली ऊची-से-ऊची शिक्षा का भी मैं विरोधी नहीं हू ।

२. राज को जहां भी निश्चित रूप से इसकी ज्यादा जरूरत हो वहां इसका खर्च उठाना चाहिये ।

३. साधारण आमदनी द्वारा सारी उच्च शिक्षा का खर्च चलाने के मैं खिलाफ हू ।

४. मेरा यह निश्चित विश्वास है कि हमारे कालेजों मे साहित्य की जो इतनी सारी तथाकथित शिक्षा दी जाती है वह सब बिलकुल व्यर्थ है और उसका परिणाम शिक्षित वर्गों की बेकारी के रूप मे हमारे सामने आया है । यही नहीं, बल्कि जिन लडके-लडकियो को हमारे कालेजो की चक्की मे पिसने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी इसने चौपट कर दिया है ।

विदेशी भाषा के माध्यम ने, जिसके जरिये कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुचाया है । अभी हम अपने इस जमाने के इतने नजदीक हैं कि इस नुकसान का निर्णय नहीं कर सकते । और फिर, ऐसी शिक्षा पानेवाले हम को ही इसका शिकार और न्यायाधीश, दोनो बनना है, जो कि लगभग असम्भव काम है ।

अब मेरे लिए यह बतलाना आवश्यक है कि मैं इन निष्कर्षों पर क्यो पहुचा । यह शायद अपने कुछ अनुभवो के द्वारा ही मैं सबसे अच्छी तरह बतला सकता हू ।

१२ बरस की उम्र तक मैंने जो शिक्षा पायी वह अपनी मातृभाषा गुजराती मे पायी थी । उस वक्त गणित, इतिहास और भूगोल का मुझे थोडा थोडा ज्ञान था । इसके बाद मे एक हाईस्कूल म दाखिल हुआ । इसमें भी पहिले तीन साल तक तो मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम रही । लेकिन स्कूल मास्टर का काम तो विद्यार्थियों के दिमाग मे जबरदस्ती अंग्रेजी और उसके मनमाने हिज्जों तथा उच्चरण पर काबू पाने में लगाया जाता था । ऐसी भाषा का पढना

हमारे लिए कष्टपूर्ण अनुभव था जिसका उच्चारण करना एक अजीब-सा अनुभव था। लेकिन यह तो मैं प्रसगवश कह गया, वस्तुतः मेरी दलील से इसका कोअी सबध नही है। मगर पहिले तीन साल तो तुलनात्मक रूप मे ठीक ही निकल गये।

जिल्लत तो चौथे साल से शुरू हुई। बीज-गणित, रसायनशास्त्र, ज्योतिष, अितिहास, भूगोल हरेक विषय मातृभाषा के बजाय अग्रेजी में ही पढना पडा। कक्षा में अगर कोई विद्यार्थी गुजराती, जिसे कि वह समझता था, बोलता तो उसे सजा दी जाती। हा, अग्रेजी को, जिसे न तो वह पूरी तरह समझ सकता था और न शुद्ध बोल सकता था, अगर वह बुरी तरह बोलता तो भी शिक्षक को कोई आपत्ति नही होती थी। शिक्षक भला अिस बात की फिक्र क्यो करे? क्योकि खुद अुसकी ही अग्रेजी निर्दोष नही थी। अिसके सिवाय और हो भी क्या सकता था? क्योकि अग्रेजी उसके लिए भी उसी तरह विदेशी भाषा थी जिस तरह कि उसके विद्यार्थियो के लिए। इससे बड़ी गडबड होती थी। हम विद्यार्थियो को अनेक बातें कण्ठस्थ करनी पड़ती, हालाकि हम उन्हें पूरी तरह नही समझ सकते थे और कभी-कभी तो बिलकुल ही नही समझते थे। शिक्षक के हमे ज्योमेटरी (रेखागणित) समझाने की भरपूर कोशिश करने पर मेरा सिर घूमने लगता। सच तो यह है कि यूक्लिड (रेखागणित) पहली पुस्तक के १३ वे साध्य तक जब तक न पहुच गये, मेरी समझ म ज्योमेटरी बिलकुल नही आयी। और पाठकों के सामने मुझे यह मजूर करना ही चाहिये कि मातृभाषा के अपने सारे प्रेम के बावजूद भी मैं यह नही जानता कि ज्योमेटरी, अलजबरा आदि की पारिभाषिक बातो को गुजराती मे क्या कहते हैं। हा, यह अब मैं जरूर देखता हू कि जितना गणित, रेखा गणित, बीजगणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने मे मुझे चार साल लगे अगर अग्रेजी के बजाय गुजराती मे मैंने उन्हे पढा होता तो उतना मैंने एक ही साल मे आसानी से सीख लिया होता। उस हालत मे मैं आसानी और स्पष्टता के साथ इन विषयों को समझ लेता। गुजराती का मेरा शब्द-ज्ञान कहीं समृद्ध हो गया होता, और उस ज्ञान का मैंने अपने घर मे उपयोग किया होता। लेकिन इस अग्रेजी के माध्यम ने तो मेरे और मेरे कुटुबियों के बीच, जो कि अग्रेजी स्कूलो मे नही पढे थे, एक अदम्य खाई पैदा कर दी। मेरे पिता को यह कुछ पता न था कि मैं क्या कर रहा हू। मैं चाहता तो भी अपने पिता की इस बात मे दिलचस्पी पैदा नही कर सकता था कि मैं क्या पढ रहा हू। क्योकि यद्यपि बुद्धि की उनमे कोई कमी नही थी, वह अग्रेजी नही जानते थे। इस प्रकार अपने ही घर मे मैं बडी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था। निश्चय ही मैं औरो से अूचा आदमी बन गया था। यहा तक कि मेरी पोशाक भी अपने आप बदलने लगी। लेकिन मेरा जो हाल हुआ वह कोई असाधारण अनुभव नही था, बल्कि आधिकाश का यही हाल होता है।

अेक दो शब्द साहित्य के बारे में भी—अग्रेजी गद्य और पद्य की कभी किताबें हमें पढनी पड़ी थी। इसमें शक नही कि यह सब बढिया साहित्य था। लेकिन सर्व साधारण की सेवा या उसके सम्पर्क में आने में उस ज्ञान का मेरे लिए कोई उपयोग नही हुआ है। मैं यह कहने में असमर्थ हू कि मैंने अग्रेजी गद्य और पद्य न पढा होता तो मैं एक बेशकीमत खजाने से वचित रह जाता। इसके बजाय, सच तो यह है कि अगर ये सात सालो में गुजराती पर प्रभुत्व करने में लगाये होते और गणित, विज्ञान तथा सस्कृत आदि विषयो को गुजराती में पढा होता, तो अिस तरह प्राप्त किये हुअे ज्ञान में मैंने अपने अडोसी-पडोसियो को आसानी से हिस्सेदार बनाया होता। अुस हालत में मैंने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया होता, और कौन कह सकता है कि अमल में उतारने की अपनी आदत तथा देश और मातृभाषा के प्रति अपने बेहद प्रेम के कारण सर्व-साधारण की सेवा मे मैं और भी अधिक अपनी देन क्यो न दे सकता?

यह हर्गिज न समझना चाहिये कि अग्रेजी या उसके श्रेष्ठ साहित्य का मैं विरोधी हू। "हरिजन" मेरे अग्रेजी प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है। लेकिन उसके साहित्य की महत्ता भारतीय राष्ट्र के लिए उससे अधिक उपयोगी नहीं, जितनी कि उसके लिए अिग्लैण्ड की समशीतोष्ण जलवायु या वहा के सुन्दर दृश्य हैं।

भारत को तो अपने ही जलवायु के दृश्यों और साहित्य मे तरक्की करनी होगी–फिर चाहे वे अंग्रेजी जलवायु, दृश्यो और साहित्य से घटिया दर्जे के ही क्यो न हों। हमे और हमारे बच्चो को तो अपनी खुद की ही विरासत बनानी चाहिये, अगर हम दूसरो की विरासत लेगे तो अपनी नष्ट कर बैठेंगे। सच तो यह है कि विदेशी सामग्री पर हम कभी उन्नति नही कर सकते। मैं तो चाहता हू कि राष्ट्र अपनी ही भाषा का कोष भरे और इसके लिए ससार की अन्य भाषाओ का कोष भी अपनी ही देशी भाषाओ मे सचित करे।

हमारे कालेजो मे जो समय की बर्बादी होती है उसके पक्ष मे दलील यह दी जाती है कि कालेजों मे पढने के कारण इतने विद्यार्थियो मे से अगर एक जगदीश बोस भी पैदा हो सके तो हमे इस बर्बादी की चिंता करने की जरूरत नही। अगर यह बर्बादी अनिवार्य होती तो मैं जरूर इस दलील का समर्थन करता, लेकिन मैं आशा करता हू कि मैंने यह बतला दिया है कि यह न तो अनिवार्य थी, और न अभी ही अनिवार्य है। क्योंकि जगदीश बोस वर्तमान शिक्षा की उपज नही थे। वे तो भयकर कठिनाइयो और बाधाओ के बावजूद अपने परिश्रम की बदौलत ऊचे उठे, और उनका ज्ञान लगभग ऐसा बन गया जो सर्वसाधारण तक नहीं पहुच सकता। बल्कि ऐसा मालूम पडता है कि हम यह सोचने लगे हैं कि जब तक कोई अग्रेजी न जाने तब तक वह बोस के सदृश महान् वैज्ञानिक होने की आशा नहीं कर सकता। यह ऐसी मिथ्या धारणा है जिससे अधिक की मैं कल्पना ही नही कर सकता। जिस तरह हम अपने को लाचार समझते मालूम पडते हैं, उस तरह एक भी जापानी अपने को नही समझता।

यह बुराई जिसका कि मैंने वर्णन करने की कोशिश की है, इतनी गहरी पैठी हुओ है कि कोई साहसपूर्ण उपाय ग्रहण किए बिना काम नही चल सकता।

विश्वविद्यालयो को स्वावलबी जरूर बनाना चाहिए। राज्य को तो साधारणत उन्ही को शिक्षा देनी चाहिए जिनकी सेवाओ की उसे आवश्यकता हो। अन्य सब शिक्षाओं के अध्ययन के लिए उसे खानगी प्रयत्न को प्रोत्साहन देना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत में बदला जाना चाहिए, और प्रान्तीय भाषाओं को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिए। यह जो काबिले सजा बर्बादी रोज-ब-रोज हो रही है इसके बजाय तो अस्थाई-रूप से अव्यवस्था हो जाना भी पसद करूगा।

प्रान्तीय भाषाओ का दरजा और व्यावहारिक मूल्य बढाने के लिए मै चाहूगा कि अदालतों की कार्रवाई अपने-अपने प्रान्त की ही भाषा मे हो। प्रान्तीय धारासभाओ की कार्रवाई भी प्रान्तीय भाषा या जहा एक से अधिक भाषा प्रचलित हो, उनम होनी चाहिए। धारासभाओं के सदस्यो से मै कहना चाहता हू कि वे चाहें तो एक महीने के अन्दर अपने प्रान्तो की भाषाएँ भली-भाति समझ सकते हैं।

मेरी सम्मति मे यह कोई ऐसा प्रश्न नही है कि जिसका निर्णय साहित्यज्ञो के द्वारा हो। वे इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि किस स्थान के लडके-लडकियो की पढाई किस भाषा मे हो। क्योकि इस प्रश्न का निर्णय हरेक स्वतत्र देश मे पहिले ही हो चुका है। न वे यही निर्णय कर सकते हैं कि किन विषयों की पढाई हो, क्योकि यह उस देश की आवश्यकताओ पर निर्भर रहता है जिस देश के बालकों को पढाई होती है। उन्हें तो बस यही सुविधा प्राप्त है कि राष्ट्र की इच्छा को यथासम्भव सर्वोत्तम रूप मे लायें। अत जब हमारा देश वस्तुतः स्वतत्र होगा तब शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल एक ही तरह से हल होगा। साहित्यिक लोग पाठ्यक्रम बनायेंगे और फिर उसके अनुसार पाठ्य पुस्तके तैयार करेंगे, और स्वतत्र भारत की शिक्षा पानेवाले विदेशी शासकों को करारा जबाब देंगे। जब तक हम शिक्षित वर्ग इस प्रश्न के साथ खिलवाड करते रहेंगे, मुझे इसका बहुत भय है कि हम जिस स्वतत्र और स्वस्थ भारत का स्वप्न देखते है उसका निर्माण नही कर पायेंगे। हमें तो सतत प्रयत्न पूर्वक अपनी गुलामी से मुक्त होना है, फिर वह चाहे शिक्षणात्मक हो या आर्थिक अथवा सामाजिक या राजनैतिक। तीन चौथाई लडाई तो वही प्रयत्न होगा जो कि इसके लिए किया जायगा।

अिस प्रकार में अिस बात का दावा करता हूं कि में उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूं। लेकिन उस उच्च शिक्षा का में जरूर विरोधी हूं जो कि इस देश मे दी जा रही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक सख्या मे और अच्छी रसायन शालायें और प्रयोगशालायें होंगी। उसके अन्तर्गत हमारे पास अैसे रसायन-शास्त्रियों इजिनियरों तथा अन्य विशेषज्ञों की फौज-की-फौज होनी चाहिए जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हों और उस प्रजा की बढती हुई विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके जो अपने अधिकारों और अपनी आवश्यकताओं को दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करती जा रही हैं। और ये सब विशेषज्ञ विदेशी भाषा नहीं बल्कि जनता की ही भाषा बोलेंगे। ये लोग जो ज्ञान प्राप्त करेंगे वह सबकी संयुक्त सम्पत्ति होगी। तब खाली नकल की जगह सच्चा असली काम होगा, और उसका खर्च न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजित होगा।

(पृष्ठ ८३ का शेषांश)

नई तालीम याने एक घण्टे की पाठशाला, ऐसा मेरा समीकरण करीब-करीब बन गया है। यह हुई हमारी सबेरे की मौलिक पाठशाला।

एक घंण्टे का महाविद्यालय : इसी प्रकार एक घण्टे का महाविद्यालय होगा। वह रात को चलेगा। पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बच्चे सुबह के स्कूल में जायेंगे। पन्द्रह वर्ष समाप्त होकर जिसे सोलहवा लगा, वह महाविद्यालय में जाने का अधिकारी होगा, फिर वह पाठशाला मे पढा हो या न हो। पाठशाला में चलेगा—लेखन, वाचन, गणित आदि। और महाविद्यालय में चलेगा-श्रवण, कीर्तन, भजन आदि।

लडके-लडकिया दिनभर माता-पिता के काम मे सहायता करेंगे। गुरुजी भी अपना काम करने के लिए मुक्त रहेंगे। गुरुजी को वेतन नहीं मिलेगा। साल के अन्त में प्रत्येक किसान से उन्हें दो-चार सेर अनाज मिलेगा।

अब तक शिक्षा-पद्धति का केन्द्र-बिन्दु भौतिक विद्याओं द्वारा समाज का सामर्थ्य बढाने का रहा है। सादगी अथवा सदाचार के प्रति यह हृदय में आदर नहीं उत्पन्न करती। नई तालीम का सन्देश इससे उल्टा है। वह सामर्थ्य का नहीं, भलाई का विकास करना चाहती है।

—किशोरलाल मशुवाला

उच्च शिक्षा व्यक्ति और राष्ट्र का निर्माण करें

आर्थर मॉर्गन

आज भारत की सर्व सामान्य मुख्य शैक्षणिक आवश्यकताएं क्या है ? विश्वविद्यालयो की वर्तमान व्यवस्था उन आवश्यकताओ की कहा तक पूर्ति करती है ? इन प्रश्नो के उत्तर पाने के लिए इस सारी व्यवस्था को भारत के समग्र जीवन के एक हिस्से के रूप में देखना जरूरी है।

अगर भारत को एक प्रजातत्र राष्ट्र के रूप में विकास करना है तो प्राथमिक शालाओ से लेकर विश्वविद्यालयो तक ऐसी एक शिक्षा व्यवस्था कायम करनी होगी जो देहात में रहने वाली बहुसख्यक जनता की जरूरता के अनुसार हो। इसके दो कारण है। पहला एक शिक्षित और सुज्ञ जनता के द्वारा ही सच्चा प्रजातत्र कायम हो सकता है। दूसरा जब सारी जनता देश की शासन व्यवस्था में भाग लेने लगेगी तो स्वाभाविक ही वह सब तरह की प्रगति के मौको की ज्यादा ज्यादा माग करेगी और उसमें शिक्षा की सहूलियते प्रधान होगी।

आज भारत को अपनी नीति तय करनी है। क्या उसकी आबादी छोटे ग्राम समाजो में फैल कर रहेगी ? क्या इन गावो को ऐसे समृद्धिशाली और सस्कार सपन्न स्थान बनाने है जिससे इस देश के नवयुवक आकृष्ट होंगे, जहा उनकी शक्तियो और सामर्थ्यो के विकास का मौका मिलेगा ? या हम केन्द्रित उद्योगो को खडा करना चाहते है—चाहे वे निजी हो या राज्य के द्वारा सचालित—जहा पर कर्मियो को बडी सख्या में जमा हो कर रहना पडेगा ? करीब सभी चिन्तनशील लोग पहला रास्ता पसद करते हैं, लेकिन सरकार की और उद्योगपतियो की नीति हमें दूसरी ओर ले जा रही है। विश्वविद्यालय भी यही कर रहे हैं। उनकी आखें शहरो की तरफ हैं, गावो की तरफ नही, और उनका काम एसा है कि उनमें से निकलनेवाले सभी विद्यार्थी गावो से मुह मोड लेते है। जहा तक शिक्षा का सवाल है, भारतीय जीवन के इस ८५ प्रतिशत को शिक्षा विभाग के कुल खर्च के एक प्रतिशत से भी कम ही मिलता है।

ग्रामीण भारत के विकास और शिक्षा के काम में कदम-कदम पर उच्च स्तर के नतृत्व और कुशलताओ की जरूरत है। किसी भी देश के सभी लडके लडकिया विश्वविद्यालय की शिक्षा नही पा सकते हैं, न ही उसकी आवश्यकता है। शालाओ से निकले हुए कुछ विद्यार्थियो को माध्यमिक शालाओ म अधिक उच्च शिक्षा मिलेगी, और उनमें से चुने हुए कुछ को विश्वविद्यालयो में आगे की शिक्षा मिलनी चाहिए।

ग्रामीण विश्वविद्यालयो का स्वरूप यह हो सकता है कि कुछ कॉलेजों का एक समूह हो

और उनके केन्द्रस्थान पर विशेष अध्ययन और अनुसन्धानो के लिए उपयुक्त इमारते और उपकरण इत्यादि हो। इन कॉलेजो में विद्यार्थियो की सख्या मर्यादित रखना अच्छा होगा। तीन सौ की सख्या शायद ठीक होगी। विश्वविद्यालयो के दाखिलात जिनमें इन कॉलेजो के विद्यार्थी भी शामिल है—ढाई हजार या तीन हजार से ज्यादा नही होनी चाहिये। बहुत बडे-बडे विश्वविद्यालयो में प्रावैधिक उपकरण व सामग्रियो पर ज्यादा खर्च करने की शक्ति होगी, लेकिन उनमें मानवीय स्वरूप और गुण नष्ट होते है।

विश्वविद्यालय का विद्यार्थी, जो यन्त्र-विद्या का विषय लेता है, यन्त्रो में सुधार, नये यन्त्रो को बनाना और उसकी सारी प्रक्रियाएँ सीखेगा। छोटे-छोटे उद्योग माल खरीदने-बेचने में, अनुसन्धान के काम में, आर्थिक व्यवस्था में और सचालन के काम में एक दूसरे का सहयोग कैसे कर सकते है और ऐसे सहयोग से उनका क्या लाभ होगा, इसका वह अध्ययन करेगा। खेती का विद्यार्थी उत्पादन, वितरण, माल का आयात व निर्यात, सहकारी खेती इत्यादि विषयो का विशेष अध्ययन करेगा। खेती पर आधारित ग्रामनिवासो की योजना और पुनर्निर्माण का विषय वह सीखेगा। ग्रामीण जीवन से सबन्धित और भी कई बाते उसके अध्ययन के विषय होगे।

स्कूल और कॉलेज में जैसे, विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी अध्ययन और प्रत्यक्ष काम में अपना समय लगाएगे। वे अपने विशेष विषय के क्षेत्र में ही प्रत्यक्ष काम करेगे और उसमें व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करेगे।

अगर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो की एक टोली देहातो में पानी की व्यवस्था की योजना और काम कर रही हो तो वह जल-सबन्धी इजीनियरिंग सीखेगी। ऐसे कामो में मानवीय सबन्धो के जो सवाल उठते हैं उनका भी उन्हें समाधान करना होगा। कर्मियो को इकट्ठा करने का, अधिकृतो की सम्मति पाने का, खर्च का अन्दाज पत्रक बनाने का, साधन सामग्री खरीदने का और इस तरह के कितने ही काम इनके जिम्मे आएगे। उन्हे गहरे कुए खोदने होगे, डाम बनाने होगे। ये सब अनुभव व्यावहारिक काम से ही मिलेगे, केवल औपचारिक शिक्षाक्रम पूरा करने से नही।

एक विद्यार्थी नीतिशास्त्र, धर्म या दर्शन में रुचि रखता होगा। वह पूछ सकता है, "देहातो में जलवितरण के काम का इन विषयो के साथ क्या सबध है ?" जब कि वह विद्यार्थी वर्ग के कमरे में नीतिशास्त्र का अध्ययन मात्र कर सकता है, व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग करने से ही वह उसे सीखेगा, समझेगा। गावो में जल व्यवस्था की योजना बनाने और प्रत्यक्ष काम करने में उसके सामने नीति-शास्त्र के कई प्रश्न खड़े होगे और योग्य मार्गदर्शन में उनका हल करने से वह कही ज्यादा शिक्षा प्राप्त करेगा, बनिस्बत पुस्तको को पढ़ने और व्याख्यान सुनने से।

महज काम शिक्षा के लिए पर्याप्त नही है। *अगर ऐसा होता तो काम करने वाला कोई* भी आदमी—जिसमें साधारण बुद्धि हैं-शिक्षित होगा। शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी को मानवजाति के सचित ज्ञान और अनुभव का फायदा पहुचाना है। क्रमबद्ध तात्त्विक शिक्षा से बहुत समय और शक्ति का बचाव होता है। उससे विद्यार्थी सामान्य सिद्धान्तो के बारे में जानकार होता है जिससे वह ज्यादा

अच्छी तरह से सोच सकता है, उसे एक पृष्ठ-भूमि और विशाल दृष्टि मिलती है।

सात्विक अध्ययन करना है कि प्रत्यक्ष काम—यह सवाल नही, सवाल यह है कि शिक्षा के कार्यक्रम में इन दोनो का समन्वय सब से अच्छी तरह से कैसे हो। दोनो जरूरी है और सच्ची शिक्षा के लिए दोनो एक दूसरे के ऊपर निर्भर करते हैं। अकेले एक से शिक्षा नही होती। कैंची के दोनो बाजू हो तभी वह काट सकती है। प्रचलित शिक्षाप्रणाली में एक ही बाजू है, तात्विक शिक्षा वाला।

इन विश्वविद्यालयो की इस शिक्षाप्रणाली से दूसरा भी एक बडा फायदा होगा, वह सामान्य जनता की जिन्दगी की तरफ ध्यान खीचेगी। उसे सुधारने का प्रयत्न होगा। विद्यार्थियो का काम जनता की आर्थिक तथा सास्कृतिक जीवन को ऊचा उठाने से सबधित होगा और दोनो एक दूसरे के साथ ऐकात्म्यबोध महसूस करेगे। जनता इस शिक्षा की उपयोगिता और मूल्य को पहचानेगी, उसका समर्थन करेगी। एक प्रजातत्र में शिक्षा को जनता का अनुमोदन और सहारा मिले, तभी वह पनप सकती है।

ग्रामीण विश्वविद्यालयो का शिक्षाक्रम विद्यार्थियो की व्यक्तिगत योग्यताओं और रुचियो के अनुसार होना चाहिए, इसके लिए जरूरी है कि उसमें अनाम्यता न हो, आवश्यकता के अनुसार बदलने की उसमें गुजाइश रहे।

विश्वविद्यालय तक पहुचते-पहुचते विद्यार्थी ने आम तौर पर यह तय किया होगा कि उसे अमुक काम करना है। शिक्षकों की मदद से उसे उसकी अच्छी से अच्छी तैयारी करने का मौका मिलना चाहिए।

बुनियादी तालीम एक ऐसा शिक्षाविचार है, जिसका पूरा विकास श्रद्धापूर्ण सतत प्रयत्न से ही हो सकता है। श्रद्धा का मतलब यह नही कि पहले तय किये कार्यक्रम से कोई व्यतियान ही नही हो सकता है। इसमें प्रत्यक्ष अनुभव, सोचविचार और विकास की बहुत जरूरत है। नये अनुसन्धान और शोध, नई कुशलताओ का विकास, इनमें बहुत शक्ति लगेगी। एक चीज ठीक तरह से करना सीखने के पहले हम कई गलतिया कर बैठेंगे। इसलिए परिचित तरीको को ही पकडकर रखने की वृत्ति होती है। इस शिक्षापद्धति पर आधारित विश्वविद्यालय छोटे पैमाने पर शुरू हो और काम और पद्धतियो के विकास के साथ-साथ वे बढें, यह अच्छा होगा। इस पद्धति की चिरस्थायी सफलता कर्मियो की श्रद्धायुक्त निश्चयबुद्धि तथा व्यावहारिक काम की त्रुटियो व कमियो को पहचानने और सुधारने की तैयारी पर निर्भर है।

बुनियादी शिक्षा के बाद की तालीम

राधाकृष्ण

सेवाग्राम आनन्द निकेतन से और विहार की बुनियादी शालाओं से जब विद्यार्थियों की पहली टोलिया आठ साल का बुनियादी शिक्षा-क्रम पूरा करके निकली तब हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के सामने स्वाभाविक ही यह सवाल उठा कि इनकी आगे की तालीम का स्वरूप क्या हो। बुनियादी तालीम के बारे में देश में शिक्षाशास्त्रियों के बीच काफी चर्चा और विचार-विमर्श हो चुका था, उसके उद्देश्य, पद्धति और रूपरेखा के बारे में विचार काफी स्पष्ट हो चुके थे। लेकिन आगे का काम अज्ञात समुद्र में यात्रा करने के जैसा था। बुनियादी तालीम में उद्योग, सामाजिक जीवन तथा प्राकृतिक वातावरण को माध्यम बना कर शिक्षाक्रम तैयार किया था, उत्तर बुनियादी तालीम में भी ये ही माध्यम केवल उपयुक्त ही नही, आवश्यक भी प्रतीत हुए। किशोर अवस्था में तो बालक अपनी आजीविका के लिए उपयुक्त दस्तकारी या पेशे के बारे में सोचने लगता है। इस उम्र में उसकी शिक्षा का एक मुख्य अग उस काम का प्रशिक्षण होना चाहिए।

अठारह साल में तो वह एक नागरिक की हैसियत से समाज में अपना स्थान लेगा, इसलिए जीवन के प्रत्यक्ष प्रसगो से सामाजिक बोध का विकास और सहजीवन के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने का मौका उसे मिलना चाहिए। इतना ही नही, आम तौर पर सभी देशों में ७०-८० प्रतिशत लडके माध्यमिक शिक्षा से ही अपना विद्यार्थी-जीवन समाप्त करते हैं। इसके बाद ज्यादातर अपने जीवन के काम में लग जाते हैं। कुछ थोडे-से अपने काम में ही उच्च शिक्षा पाते हैं और एक बहुत छोटी संख्या विश्वविद्यालयो में प्रवेश करके उच्च प्रावैधिक तथा अन्य शिक्षा ग्रहण करती है। इस वस्तु-स्थिति को ख्याल में रख कर माध्यमिक शिक्षा की योजना ऐसी बनानी चाहिए जिससे कि ज्यादातर विद्यार्थियों की औपचारिक शिक्षा की परिसमाप्ति वहीं हो सके; कुछ के लिए वह उच्च शिक्षा की तैयारी के रूप में हो और सब के लिए ऐसा स्थान हो जहां वह अपने परिवार, धन्धे और समाज के साथ सामंजस्य के साथ रह सके और उसमें अपना पूरा-पूरा हिस्सा बटा सकें। यानी नई तालीम के कार्यकर्ताओं के सामने प्रश्न था कि वे ऐसे शैक्षणिक कार्यक्रम बनायें जो स्वय में सपूर्ण हों और बुनियादी तालीम की पद्धति के सिद्धान्तों पर आधारित हों, साथ-साथ हर बालक के व्यक्तिगत गुणों का ख्याल रखते हुए उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

गाधीजी ने कहा था, उच्चशिक्षा का संयोजन करते हुए हम नई तालीम के उद्देश्यों को पूरा तभी कर सकेंगे जब कि उसे एक

सहयोगी स्वावलम्बी समाज के आधार पर गढ़ने की कोशिश करेंगे। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए इस शैक्षणिक परिवार में बालकों और शिक्षकों की संख्या कम-से-कम एक सौ होगी। जब इस प्रकार के सहयोगी स्वावलंबी समाज में एक साथ काम करेंगे तभी जीवन के सभी पहलुओं की समुचित शिक्षा सम्भव होगी और तभी समाज की आवश्यकताएँ भी पूरी होंगी।

उत्तर बुनियादी शाला का चित्र

तालीमी संघ ने उत्तर बुनियादी शाला को इसी प्रकार की सहकारी समाज के रूप में कल्पित किया है। उसमें जीवन में काम आने वाले उद्योगों और धन्धों का उचित स्थान होगा। शिक्षक और विद्यार्थी एक साथ रहेंगे और उसके दैनिक कार्यक्रम का सगठन ऐसा हो कि जिससे लडके-लडकिया सामाजिक कामो को जिम्मेवारी के साथ उठाना सीखें। समाज के सास्कृतिक जीवन के द्वारा उनकी अपनी सास्कृतिक और मनोरंजन के पहलुओ का विकास हो, उसका उन्हें मौका मिले। इस समाज का आर्थिक ढांचा पैसों पर केन्द्रित नही होगा। उसका आधार अपनी सभी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के कार्यक्रम पर होगा। उससे विद्यार्थियों का समग्र और सन्तुलित विकास होगा—व्यक्तियों और स्वेच्छा से बने समाज के सदस्यों के नाते। यह समाज आसपास की जनता के जीवन की समस्याओ के समाधान के लिए उनके साथ मिलकर काम करने से और विशेष सेवाओं के द्वारा अपने पडोसी समाज के साथ गहरा सबन्ध स्थापित करेगा। सह-शिक्षा और विद्यार्थियों के लिए छात्रावास जीवन होगा और यह सहकारी समाज अपने परिश्रम के द्वारा अपने पूरे आवर्त्तक व्यय का भार स्वयं उठायगा। इसके बगैर हम किशोर-अवस्था के सब लडके लडकियो की शिक्षा की अपेक्षा नही कर सकते हैं। वह माता-पिता या राज्य के ऊपर बोझ नही होना चाहिये, बल्कि राष्ट्र के अन्न, वस्त्र, स्वास्थ्य और संस्कृति तथा शिक्षा की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होगी और अच्छे कार्यकर्ता तैयार करेगी।

इस उत्तर बुनियादी विद्यालय का स्वरूप क्या होगा? वह स्फुर्तिले, क्रियाशील, सुप्रसन्न लड़के-लडकियो और शिक्षको का एक समुदाय होगा जो अनवरत एक सोद्देश्य जीवन की प्रेरणादायी प्रवृत्तियों में लगे हुए हैं। हर दिन कुछ समय के लिए वे सब खेत में दीखेंगे—वैज्ञानिक खेती के प्रयोगो में तल्लीन। इसमें उन्हें मात्र उत्पादन का लाभ नही होता है। प्रकृति के साथ तन्मयता, सूर्योदय का उज्जवल दृश्य, पौधो का निरीक्षण और अध्ययन, मवेशियों की देखभाल और उनके साथ प्रेम सबन्ध, बछडो की परिचर्या, ये सब जीवन को समृद्ध और सुन्दर बनाते रहेंगे। एक विद्यार्थी दूध की वैज्ञानिक जॉच कर रहा है तो और एक बीमार गाय की सेवा में लगा है। कुछ लोग सारे कूडे कचरे और गोबर को अति मूल्यवान खाद के रूप में परिणत कर रहे हैं। और कोई कर्मशाला में काम कर रहे हैं, नये-नये औजार बना रहे हैं, ज्यादा अच्छे साधनो की शोध कर रहे हैं। यह कर्मशाला एक बिलकुल जरूरी स्थान है। नयी पीढी को यन्त्रो का ज्ञान और उनकी ठीक इस्तेमाल की कला हासिल होनी है। ग्रामोद्योग विभाग एक बृहत्तर समाज की

आवश्यकताओं के सामान बना रहा है। स्थानीय साधनों का उपयोग करके यहा विद्यार्थी उद्योगों में प्रवीणता पा रहे है और उनके उत्पादन का उपभोग ज्यादातर उसी क्षेत्र में होगा। अच्छी-से-अच्छी खादो बुनी जा रही है। केवल सफेद खादी नही, रंगाई छपाई आदि सब काम होते है और सुन्दर सुरुचिपूर्ण वस्त्र तैयार होता है। सामूहिक रसोईघर अन्नशास्त्र की प्रयोग शाला है, वहां वैज्ञानिक ढंग से स्वादिष्ट और संतुलित भोजन तैयार किया जाता है। पाकशास्त्र में नई शोधें होती हैं। इधर लडके-लडकिया विज्ञान की प्रयोग शाला में तन्मयता के साथ अनेक ऐसे प्रयोगों में लगे है जो उनके जीवन में आनेवाली अनेक बातों के वैज्ञानिक रहस्यों और सिद्वातों का ज्ञान उन्हे देंगे। भौतिक, रासायनिक, वनस्पति शास्त्र आदि के प्रत्यक्ष प्रयोग करने का इन्हे मौका मिल रहा है। इस समाज के लडके-लडकियो और शिक्षकों को अपने कलात्मक आत्म-प्रकटन का मौका कलाभवन की प्रवृत्तियों के द्वारा मिलता है। चित्रकला, मूर्तिकला, उत्सव-त्योहारो का संयोजन और सजावट का काम, कुम्हार काम, वास्तु कला आदि के अनुभव विद्यार्थी अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार पाते है। पुस्तकालय के द्वारा उन्हें स्वाध्याय में और साहित्यिक अनुभवो को पाने में पूरी-पूरी मदद मिलती है। शिक्षक उनके अध्ययन की योजना बनाने में मदद करते हैं। इस तरह के अध्ययन और अध्यापन के वातावरण में खेल कूद और मनोरंजन का बडा स्थान है, क्योकि अनेक भावनाएँ ऐसी होती है जो केवल "अनुत्पादक" कार्यों को करने से ही विकसित होती है। साथ-साथ खेलकूद के जरिये लडकों को टोली में काम करने (टीम वर्क) का अनुभव भी मिलता है।

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की एक उप-समिति ने उत्तर-बुनियादी शिक्षा के ध्येयो का यह विवरण दिया था—

१. बुनियादी शिक्षा के जैसे ही उत्तर बुनियादी शिक्षा भी एक उद्योग के माध्यम के जरिये होनी चाहिए।

२. यह शिक्षाक्रम अपने में एक समग्र इकाई हो।

३. एक व्यक्ति की हैसियत से और समाज के सदस्य की हैसियत से भी विद्यार्थी का सर्वतोमुख विकास उत्तर बुनियादी शिक्षा का ध्येय है।

४. शिक्षाक्रम में विविधता होनी चाहिए, जिससे कि विद्यार्थियों की विभिन्न वृत्तियों और योग्यताओं के विकास का मौका हो।

५. शिक्षा क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से होनी चाहिए।

६. शिक्षा की अवधि विषयविशेष के अनुसार कम ज्यादा हो सकती है, सामान्यतः तीन से चार साल तक की होगी।

७. उत्तर बुनियादी स्तर की शिक्षा का संगठन ऐसा हो जिससे कि शिक्षा की अवधि में विद्यार्थी अपने परिश्रम से अपनी जरूरत का खर्च निकाल सके।

८. हमारा अन्तिम ध्येय यह है कि देश के हर एक लडके-लडकी को उत्तर बुनियादी शिक्षा पूरा करने का मौका मिले।

आज की परिस्थिति

जैसे-जैसे देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्तर बुनियादी विद्यालयों का विकास होता गया

हमारे सामने कुछ प्रश्न खडे हुए। सभी विद्यालयो में स्वावलंबन का कुछ न कुछ प्रतिशत सध पाया जो कि शिक्षा के तरीके से स्वाभाविक ही निकलता है तथा उद्योगो के प्रकार और व्याप्ति के अनुसार कम ज्यादा होता है। आम तौर पर खेती ही मुख्य उद्योग रहा। हमारा दावा यह है कि सच्ची नई तालीम देश की तात्कालिक आवश्यकताओं और प्रश्नो का समाधान करेगी और तभी वह सार्थक होगी। आज देश भूखा है। सब से बडी समस्या अन्न की है। इसलिए अन्न के उत्पादन में ज्यादा समय और शक्ति लगानी थी। हर एक विद्यार्थी से अपेक्षा थी कि वह अपने लिए पर्याप्त भोजन तो पैदा करे ही, यथासभव दूसरो की आवश्यकताओ की पूर्ति में भी हाथ बटाये। पशुपालन, वस्त्र उद्योग, लकडी का काम और अन्य ग्राम उद्योगो को भी केन्द्रित करके शिक्षाक्रम बनाये गये।

इन विद्यालयो के सगठन में सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा। उत्सव त्योहारो तथा अन्य सास्कृतिक कार्यक्रमो को शैक्षणिक रूप से मनाने की एक परपरा भी बनी। कई जगह आसपास के गावो के साथ सपर्क स्थापित करने और उनकी समस्याओ के समाधान में सक्रिय भाग लेने का प्रयत्न हुआ।

इन विद्यालयो में भाषाओ का अध्ययन—जिसमें अग्रेजी भी शामिल है—समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान आदि मुख्य-मुख्य विषयो के शिक्षाक्रमो का विकास किया गया। उद्योग तथा सामाजिक एव प्राकृतिक वातावरण के साथ शिक्षा का समवाय साधने का भी प्रयत्न हुआ है, चाहे वह पूरी तरह से सफल न हुआ हो। कई विद्यालयो में विषयो का एक समान्वित पाठ्यक्रम बन भी गया। कइयों ने अपनी-अपनी समीक्षा पद्धतियों का भी विकास किया है।

सामान्य तौर पर इन विद्यालयो में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियो का चारित्र्यबल और आत्म विश्वास बढा है, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही है। लेकिन यह बात भी हमें साफ मान लेना चाहिये कि कइयो में परिस्थिति की वजह से एक न्यूनता का भाव पैदा हुआ है। बाईस साल के काम के बाद और सरकारी मान्यता प्राप्त होने पर भी नई तालीम लोक प्रिय नही बनी है, यह एक वस्तुस्थिति है। आज हमारे उत्तर बुनियादी विद्यालय का छात्र एक मामूली मैट्रिक पास किये विद्यार्थी से न्यूनता ही महसूस करता है, उसके मन में सतोष नही है। इसका मुख्य कारण तो यही है कि उन्हे मैट्रिक पास विद्यार्थी की सुविधाए और मान्यता प्राप्त नही है। वह कोई काम ढूढता है तो लोग कहते हैं, "यह उत्तर बुनियादी क्या चीज है, हम नही जानते।" विश्वविद्यालय का रास्ता उसके लिए बन्द है। अगर उसमें प्रवेश पाना हो तो उसे फिर से हाईस्कूलो की परीक्षाओ में बैठना पडेगा। सभव है कि कोशिश करने पर खादी आयोग या ग्रामसेवा कार्य के कुछ कामो के लिए वह योग्य समझा जाय, लेकिन वह एक सीमित क्षेत्र होता है। उद्योग में उसे कोई सृजनात्मक तृप्ति अनुभव नही होती है। औजारो और पद्धतियो का ठीक विकास नही होने के कारण आर्थिक दृष्टि से भी वह पर्याप्त नही होता है। ये सब परिस्थितिया विद्यार्थी के मन में निराशा पैदा कर देती है।

विज्ञान की शिक्षा के बारे में विशेष तौर पर सोचने की जरूरत है। हमारी शालाओ के बारे में यह टीका की जाती है कि उनमें

विज्ञान की शिक्षा विधिवत् और व्यवस्थित नही होती है। नई तालीम के सिद्धात और पद्धतियो के अनुसार हमारी प्रयोग शालाए अब तक बन नही पायी है। आज के साधारण स्कूलो की नकल करने से हमारा काम नही बनेगा, न ही उस रीति से ठीक वैज्ञानिक शिक्षा देने की हम आशा रख सकते है।

नई तालीम को राष्ट्र की शिक्षा पद्धति बनाने की अगर हम ख्वाहिश रखते है तो अभी काफी रास्ता तय करना बाकी है। आज तक की प्रगति से कतई सतोष नही मान सकते है।

उत्तर बुनियादी शिक्षा के सामने चुनौती

उत्तर बुनियादी तालीम जब प्रारभिक अवस्था में थी तो हम लोग कहा करते थे कि बुनियादी तालीम की परीक्षा उत्तर बुनियादी में होगी। आज जिस ढग की माध्यमिक शिक्षा का प्रसार देश में हो रहा है, उससे समस्याओ का समाधान होगा नही, बल्कि नई समस्याएँ खडी होती है। विश्व विद्यालयो की शिक्षा की हालत तो हम सब भली भाति जानते ही है। अब सोचा जा रहा है कि हाइस्कूल के बाद भी विद्यार्थी की बौद्धिक शक्तियो और सामाजिक वृत्तियो का विकास पूरा नही होता, इसलिए गावो में भेज कर अनिवार्य "राष्ट्रीय सेवा" करायी जाय। अब हम एक अजीब परिस्थिति में अपने आप को पाते है। जो नही होना चाहिये, वह हम जानते है, लेकिन जो चाहिए वह कर नही पाते।

हमारे उत्तर बुनियादी विद्यालयो के सामने एक बडी भारी चुनौती है। आज समय है कि हम अपने काम के बारे में फिर से सोचे, कार्यक्रमो को परखें, उसके गुणदोषो को समझें। हमारे कार्यक्रम ऐसे होने चाहिये कि अपने नवयुवकों की वैयक्तिक तथा मनोवैज्ञानिक मागो को पूरा करे, उनसे समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति हो। हम चाहते है कि विद्यार्थियो की व्यक्तिगत विशेषताओ का आदर हो। उन्ही विशेषताओ के द्वारा वे समाज की पुनर्रचना में सक्रिय भाग ले, देश की सेवा में उनके व्यक्तित्व की उच्चतम भावनाओ का विकास हो। हम चाहते है कि हमारे बच्चो को भाषा, कला, दस्तकारी सगीत आदि माध्यमो द्वारा आत्मप्रकटन करने की निपुणता हासिल हो, वे प्रकृति में, मानवहृदयो में और मानवीय सबन्धो में भी सुन्दरता को पहचानें, उसका आदर करे। सच्चे और झूठे, अच्छे और बुरे, जरूरी और गैर-जरूरी समझने का उनमें विवेक हो। वे ईमानदार, नि स्वार्थ और स्थिरप्रयत्न शील हो, स्वतत्रता के प्रेमी हो, सहिष्णुताशील हो, अपना और दूसरो का भी सम्मान करना जाने, सामाजिक जिम्मेदारियो का बोध और सेवाभाव उनमें हो। हम चाहते है कि उनमें भद्रता और विनय की कमी न हो, फिर भी प्रचलित मूल्यो और परपराओ के बारे में वे स्वतत्र बुद्धि से सोचे। इसके लिए समझ और श्रद्धा के साथ उनमें धीरता भी हो। ऐसे गुणो से विशिष्ट और सुशिक्षित समुदाय हमारी परपराओ में जो भी अच्छा है, उसे केवल बनाये रखेगा ही नही, जीवन के तरीको को भी सुधारेगा।

इस चुनौती का हम कैसे सामना करे?

पाठशाला एक स्थाई संस्था है।

जी. रामचन्द्रन

मैं पहले ही कह दूं कि शाला हर युग और हर काल के बच्चों की शिक्षा का प्रतीक और साधन है। यहां तक कहा जा सकता है कि किसी सभ्यता का माप उसकी पाठशाला के स्वरूप से होगा। शिक्षा की अनेक पद्धतियां बनीं और बरती गयीं। जगत की किसी चीज के बारे में आप आखिरी बात चाहें कह दें पर शिक्षा एक ऐसी चीज है जिसके बारे में कभी भी आखरी बात नहीं कही जा सकती। तिसपर भी यह तो पूरी दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि शाला हमेशा ही बालकों की शिक्षा के साधन के तौर पर बनी रहेगी। हां, उसका स्वरूप और ढांचा अलबत्ता समय के साथ बदलता रहेगा।

विनोबाजी ने कहा है कि गांव ही शाला है। मैसूर के एक गांव में मैंने स्वयं उनका यह वाक्य सुना था—"हर गांव को एक विश्वविद्यालय बनना चाहिए।" उनकी इस बात से कई लोगों के मन में एक भ्रम पैदा हो गया है। उन्होंने यह समझा कि शिक्षा के विचार और कार्यक्रम के लिए शाला की अब आवश्यकता नहीं रही। मैं समझता हूं कि महर्षि विनोबा के इस वाक्य को इस प्रकार समझना उनपर अन्याय करना होगा। क्या पंडित नेहरू ने हाल ही में यह नहीं कहा कि इमारतों और मेज-कुर्सियों के लिए क्यों रुके, शिक्षकों को चाहिए कि वे पेड़ों के नीचे बालकों के बीच बैठकर अध्यापन कार्य करें। तो भी उन्हीं की सरकार करोड़ों रुपया खर्च करके स्कूल के लिए संस्थाओं के रूप में इमारतें, फर्नीचर, रहने के मकान, साधन आदि तैयार करा रही है। दरअसल बात यह है कि चिन्तनशील व्यक्ति कभी-कभी परिस्थिति की आवश्यकता के कारण किसी एक पहलू पर अधिक जोर दे देते हैं। हमें याद है कि एक समय विनोबा जी प्रार्थना कुवें पर रहट चलाते-चलाते या खेत में काम करने के साथ ही किया करते थे। प्रार्थना का स्वरूप चाहे बदला हो पर क्या उन्होंने प्रार्थना करना छोड़ दिया? इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि हमें शब्दों को गलत अर्थ में नहीं समझना चाहिए।

स्कूल एक संस्था है और वह शिक्षा की एक इकाई है। इसमें स्थान, मकान, शिक्षक, साधन, किताबें, काम आदि सभी एक समन्वित कार्यक्रम के द्वारा बालकों के मानस में ज्ञान का प्रकाश फैलाने का काम करते हैं। मुझे याद है कि मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य के मंत्रिमंडल के समय शाला के समय को घटा कर ढाई घण्टे कर दिया गया था। उन्होंने कहा था कि बाकी समय की जिम्मेवारी माता-पिताओं को उठानी चाहिए। यह सुझाव विनोबा जी के उस सुझाव से तो कहीं नरम था जिसमें उन्होंने कहा था कि शाला केवल एक घण्टे की होनी चाहिए। किन्तु ढाई घण्टे के अलावा बाकी समय की शिक्षा पालक दें, राजाजी के इस सुझाव को जनता ने नामंजूर कर दिया। मुझे याद है कि केरल में एक महिलाओं के सम्मेलन में राजाजी का यह सुझाव एकदम अस्वीकार कर दिया गया। एक महिला ने खड़े हो कर कहा कि जैसा एक शिक्षक मां का स्थान नहीं ले सकता वैसे ही मां शिक्षक का स्थान नहीं ले सकती। शिक्षक या गुरु विशेषज्ञ होता है और उसकी आवश्यकता युगों से रहती आयी है। मेरा अपना अनुभव यह है कि बालक जो कुछ अच्छी शाला में शिक्षकों के पास सीखते हैं वह अच्छे-

से-अच्छे माता पिता भी नही सिखा सकते । कभी-कभी परिस्थितियों के कारण माता पिता जरूर कुछ कर लेते हैं, किन्तु वह शिक्षा के प्रश्न का हल हमेशा के लिए नही हो सकता । आज अगर शाला का दायरा सारे गाव में फैल जाता है तो वह देश और शाला दोनो के लिए वांछनीय है । स्कूल के घण्टे कम या अधिक करें पर शाला की अपनी हैसियत तो रहेगी । अगर समाज मे शाला खतम हो जाती है तो उससे शिक्षा को ऐसा नुकसान होगा जो कभी भी दुरस्त नहीं हो सकेगा ।

इसके बाद प्रश्न यह उठता है कि हमारी शालायें कैसी हो ? गाधीजी ने तो इसका उचित मार्ग बताया था, किन्तु अभी तक उसके अनुसार कुछ हुआ नही । हमे नई तालीम के स्कूल चाहिए । इमारत सस्ती हो, स्थानिक वस्तुओ से बनी हो, सुन्दरता के स्थानिक मापदड पर आधारित और स्थानिक आर्थिक स्थिति के साथ मेल खानेवाली हो । और यह सम्भव भी है । अच्छे प्रशिक्षित शिक्षक हो । शिक्षा के साधन स्थानिक हो और स्थानीय आवश्यकताओ के आधार पर बने हों । स्कल का जीवन गाव से और गाव का जीवन स्कूल से जुडा हो । बालक काम करते हों और उसके द्वारा सीखते हो । काम के वास्ते ज्ञान और ज्ञान के वास्ते काम की अवहेलना न की जाय । यह सब स्कूल के एक सस्था बने बिना सम्भव नही हो सकता । सस्था शब्द से हम डरना नही चाहिए । हमे तो अपना विचार रखना चाहिए और साहस के साथ सस्था को समुचित प्रकार से तबदील करने की कोशिश करनी चाहिए ।

मैंने पहले ही कहा कि कोई भी घर अच्छी शाला का स्थान नही ले सकता । घर का वातावरण कुछ खास प्रकार के व्यक्तिगत आत्मीयता के सम्बन्धो से बाध्य रहता है । इसीलिए माता पिताओ के द्वारा दी गयी शिक्षा की यही कमी है कि वह अति-व्यक्तिगत हो जाती है। शाला घर से अधिक अव्यक्तिगत होती है । कुछ ऐसे मूल्य होते हैं जो केवल स्कूल के द्वारा ही निर्मित हो सकते हैं । इसका अर्थ यह नही कि स्कूल मे व्यक्तिगतता नही चाहिए। अनेक प्रकार के अभौतिक मूल्यो और उनको व्यावहारिक विषयो मे उपयोग करने की शिक्षा केवल स्कूल के द्वारा ही सम्भव होती है । हमने कई माता पिताओं को अपने बालको को स्वय शिक्षा देते देखा है। मैं स्वय इसका शिकार हुआ था । यह तरीका अकसर माता-पिताओ और बालको, दोनो के लिए सजा बन जाता है, क्योकि अधिकतर माता पिता ऐसे समर्थ नही होते। घर मे ही दी गयी शिक्षा से बालक के व्यक्तित्व का विकास एक हद तक तो होता है किन्तु उसके बाद वह अटक जाता है । पूरा-पूरा घर की ही शिक्षा पाया हुआ बालक बाद मे जगत में अपना स्थान ग्रहण करने में कठिनाई महसूस करता है । उसी तरह केवल स्कूल ही की शिक्षा पाये हुए बालक का व्यक्तित्व घरेलू आत्मीयता के अभाव के कारण गलत ढग से विकसित हो जाता है। किन्तु अच्छे वैज्ञानिक ढग से सगठित किया हुआ स्कूल सम्भवत शिक्षा का अधिक अच्छा माध्यम होता है ।

गाधीजी के द्वारा बताई गई नयी तालीम की पाठशाला एक मौन सामाजिक क्रांति का साधन बन जाता है । इसका कारण यह है कि स्कूल एक सगठित सस्था है । घर इस काम को कुछ हद तक ही कर सकता है और हम उसकी इस शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग भी करे ।

साराश में मैंने यह कहने की कोशिश की कि स्कूल एक ऐसी विशेष सस्था है जिससे हम आगे या पीछे भाग नहीं सकते । वह कभी भी समाप्त होनेवाली नहीं है । हर चीज की तरह उसका भी ढांचा और स्वरूप बदलता रहेगा । पर इसका अर्थ यह नहीं कि किसी युग के चित्र में उसका स्थान ही न रहे । अन्त मे फिर एक बार ऊचे स्वर से कह दू "शाला एक स्थाई सस्था है ।"

आशादेवी

शिक्षक कैसा हो ?

बहुत पुराने जमानो से हमारे देश में गुरु या शिक्षक ही शिक्षा का प्राण समझे गये हैं। संस्कृत में स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालय का नाम ही था गुरुकुल। शिक्षा की उम्र प्राप्त होने पर बालक अपने पिता का घर छोड़कर गुरु के घर आता था। इसके बाद से उसकी सिर्फ शिक्षा की ही नहीं, उसका पालन-पोषण, खेल-कूद, सुख-दुख की, उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक हर तरह के विकास की सारी जिम्मेवारी गुरु पर ही रहती थी। शिक्षा पूरी होने के बाद उस युवक को समाज का एक कामकाजी अंग बनाकर गुरु फिर उसे समाज को लौटा देते थे। इस कठिन काम के लिए न उन्हें कोई वेतन मिलता था, न पारिश्रमिक। इतना ही नहीं, उनके लिए ऐसा पारिश्रमिक या दान लेना ही पाप समझा जाता था। शहरों से दूर एकान्त स्थान में झोंपड़िया बांधकर वे रहते थे और शिक्षा से अपना, अपने परिवार का और विद्यार्थियों का निर्वाह करते थे। लेकिन समाज में सबसे बड़ा सम्मान का स्थान होता था इन गरीब गुरुओं का। बड़े-बड़े राजा और सेठ भी नम्र होकर अपने एश्वर्य का सब ठाट पीछे छोड़कर सलाह और उपदेश के लिए इनके पास आते थे। और उनकी कुछ सेवा करने का मौका मिलने से अपने को कृतार्थ समझते थे।

जब हम मानव समाज के इतिहास पर गौर करते हैं, तो देखते हैं कि सिर्फ प्राचीन भारत में ही नहीं, चीन में, यूनान में जहां कहीं एक बड़ी संस्कृति या सभ्यता का विकास हुआ है, जिसने मानव-संस्कृति को आगे बढ़ाने में हाथ बंटाया है, वहीं हम पाते हैं कि समाज के सब कामों में शिक्षा के काम को सबसे बड़ा काम समझा गया है और शिक्षक या गुरु को समाज में सबसे बड़ा सम्मान का स्थान दिया गया है।

यह मानी हुई बात है कि समाज के काम में शिक्षा का स्थान और समाज में शिक्षक का मान इन दो बातों पर से उस समाज के जीवन की पहचान होती है। जिस सभ्यता में प्राण है, उस समाज में शिक्षा और शिक्षक अपने में माननीय होते हैं और समाज से भी सम्मान पाते हैं और जैसे-जैसे समाज की प्राणशक्ति घटती जाती है, गुरु का स्थान भी गिरता जाता है।

इस ऐतिहासिक सत्य का सबसे ज्यादा दुखदायी उदाहरण तो हमें अपने देश के इतिहास में ही मिलता है। जिस देश में किसी जमाने से गुरु या शिक्षक समाज के शीर्षस्थान समझे जाते थे, उसी देश में आज देहाती शिक्षक सबसे नीचे के स्तर पर पहुंच गये हैं। वे गरीब हैं उनके पास अपने जीवन निर्वाह के लिए काफी सामान नहीं है, यह बात सच है। लेकिन हमारे देश में शिक्षक या ब्राह्मण या गुरु बराबर गरीब रहे हैं। इससे बड़ी बात यह है कि इस गरीबी के साथ उनकी जो प्रतिष्ठा थी, वह आज नहीं है। पुराने दिनों में शिक्षक खुद निःसबल होते थे, लेकिन समाज का सारा ऐश्वर्य और सारी शक्तियां उनके पीछे रहती थीं। इसलिए दरिद्र होकर भी समाज में सबसे शक्तिशाली प्रभाव उन्हीं का था। पुराने दिनों में ब्राह्मण का दारिद्र्य शक्तिशाली का दारिद्र्य था आज देहाती शिक्षकों का दारिद्र्य दुर्बल का, निःसहाय का दारिद्र्य है।

इसका भी कारण है। उन दिनों के ब्राह्मण बाहर के उपकरणों में दरिद्र होते थे, लेकिन आज के शिक्षक अन्दर और बाहर दोनों तरह से निर्धन हैं। आज उनके पास वह चारित्र्य का बल नहीं, वह ज्ञान का गौरव नहीं, अपने काम के लिए वह श्रद्धा निष्ठा नहीं। आज हमारे शिक्षक जीवन के लिए बच्चों को तैयार नहीं कर रहे हैं। आधा पेट वेतन के लिए मजदूरी कर रहे हैं।

बुनियादी तालीम को हमने शिक्षा मे अहिंसक क्रान्ति माना है। इसके जरिये हम अपने राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन मे एक नया युग लाने की आशा रखते हैं। लेकिन यह तभी सभव हो सकता है, जब हमारे शिक्षको के जीवन मे साथ-ही-साथ एक क्रान्ति पैदा हो। वे आज के जैसे वेतन भोगी शिक्षक न होकर सच्चे गुरु बनकर समाज मे अपना स्थान फिर से ले ले।

इसके लिए कुछ तो समाज और राष्ट्र की ओर से तैयारी की आवश्यकता है। शिक्षको की आर्थिक और सामाजिक स्थिति मे सबसे पहिले सुधार करना हैं। वे सम्मान के साथ जीवन-निर्वाह कर सके और अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके, इसका आर्थिक प्रबंध करना है। उनके बौद्धिक और सास्कृतिक जीवन म प्रगति होती रहे, इसके लिए जरूरी मसाला और साहित्य उन्हे पहुचाते रहना है और हमारे राष्ट्र के साहित्य, कला, विचार-धारा आदि के प्रवाह को शहरो से हटाकर देहात की ओर ले जाना है। सामाजिक और राष्ट्रीय हर अनुष्ठान मे, हर त्योहार उत्सव मे सबसे बडा सम्मान का स्थान शिक्षको को देना है।

लेकिन इससे भी अधिक तैयारी की आवश्यकता है शिक्षकों की अपनी ओर से। समाज का और राष्ट्र का यह सब बाहरी आयोजन निष्फल रहेगा अगर शिक्षको के अन्दर वह शक्ति और आत्मविश्वास पैदा न हो, जिसके बल से उन्होंने हमारे समाज म एक समय सब से ऊचा स्थान लिया था। इसके लिए उनको अपने काम मे श्रद्धा की जरूरत है। सम्मान के लिए, पुरस्कार के लिए, वे औरो की तरफ न देखें, अपने विवेक और कर्तव्य-बुद्धि पर ही निर्भर रहें। उन्हें अपना आदर्श ऊचा रखना है और इस आदर्श की ओर उन्हें दिन-प्रति दिन आगे बढना है और इसके लिए अपने बीच सगठन करना है। उनकी सगठित शक्ति की बुनियाद पर ही कोई नई तालीम या नये समाज की इमारत खडी हो सकती है।

शायद हमारे हिन्दुस्तान के देहातो के गरीब शिक्षक सोचते हो कि यह उनका अकेले का सवाल है, इसलिए उनके सामने मै एक इग्लैंड के शिक्षक की अपील रखना चाहती हू। आज इग्लैंड में तालीम के काम करनेवालो मे, जिन्होंने नई राह दिखाई है, ए. एस. नील का नाम मशहूर है। शिक्षा के क्षेत्र के क्रान्तिकारियो में ये एक बडे क्रान्तिकारी माने जाते हैं। इन्होंने अपना जीवन एक गरीब देहाती स्कूल-मास्टर के घर में शुरू किया। वे अपने बचपन की बात कहते हैं, "मेरे पिताजी स्कॉटलैण्ड के एक देहाती स्कूल के शिक्षक थे, इसलिए जीवन की शुरूआत से ही मैं अच्छी तरह से समझ गया कि समाज मे हमारे परिवार का कोई भी स्थान नहीं है।" देहाती शिक्षको की सामाजिक हीनता का ही नही, गरीबी का भी उन्हे अनुभव हुआ।

कुछ शिक्षको के साथ मिलकर उन्होने 'समर हिल' नाम का एक स्कूल स्थापित किया। इस स्कूल में बरसो से ये अपने आदर्श के मुताबिक बच्चों को शिक्षा देने की कोशिश कर रहे हैं। उनका आदर्श यह है कि बच्चो के ऊपर बाहर से या अन्दर से किसी तरह का दबाव न हो, पूरी आजादी और सचाई के वातावरण में बच्चों का स्वाधीन और सपूर्ण विकास हो। इस प्रयोग को चलाते हुए शिक्षक, बच्चो के मा-बाप, तालीम के काम करनेवाले या शिक्षा में दिलचस्पी रखनेवाले सबो के लिए वे अपना अनुभव पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करते आये हैं।

अपनी पुस्तक "प्राब्लम टीचर" (यानी जो शिक्षक खुद ही एक समस्या है) में वे कहते हैं, "सच्चा शिक्षक सच्चा दानी होता है। वह अपने को निरन्तर देता है। वह जो कुछ देता है, उसका स्वरूप है प्रेम। प्रेम यानी सराहना, दोस्ती। प्रेम वह प्रकाश है जिसे पाकर बच्चा पनपता है। और शासन वह अधेरा है, जिससे बच्चा डरता है और उसका विकास बन्द हो जाता है। वह आजाद और सुखी नहीं बनता।"

इसलिए शिक्षक के लिए सबसे पहिली आवश्यकता है कि वह बच्चो का सच्चा प्रेमी और सुहृद् हो और यह प्रेम उसमे सहजात हो। लेकिन सिर्फ बच्चों के प्रेम से ही वह सच्चा शिक्षक नहीं बन सकता। सभी बडे कामो के लिए जिस तरह साधना की

होती है, सच्चा शिक्षक बनने के लिए भी वैसी ही साधना और तपस्या की जरूरत है।

सबसे पहिले उनके दिल में जो बच्चों के लिए स्वाभाविक प्रेम है, उसे ज्ञान के प्रकाश से सच्चा और शुद्ध बनाना है। इसलिये बच्चो की मनोवृत्ति समझने के लिए उन्हे बालमानस-शास्त्र के शास्त्रीय ज्ञान की जरूरत है। जिस तरह चिकित्सा-शास्त्र के शास्त्रीय ज्ञान के बिना कोई चिकित्सक नही बन सकता, उसी तरह बालमानस-शास्त्र के शास्त्रीय ज्ञान के बिना कोई शिक्षक नही बन सकता।

बच्चे को जो सिखाना है, शिक्षक को उस ज्ञान की जरूरत है। उसके बारे मे नील कहते हैं कि शिक्षक कोई एक खास विषय म विशेषज्ञ न होकर सब विषयो मे थोडा-बहुत ज्ञान रखता हो। और यह ज्ञान सजीव हो। इसलिए छोटे देहाती स्कूलों के शिक्षक बडे बडे हाईस्कूलो के बडे बडे शिक्षको से अच्छे निकलते हैं। हाईस्कूलो मे भूगोल का शिक्षक सिर्फ भूगोल ही जानता है। लेकिन देहाती स्कूल के शिक्षक को अकेले ही सब विषय पढाने पडते है और एक साथ तीन-चार दरजे के बच्चो को सम्हालना पडता है। इसलिये एक विषय के शिक्षक मे जो सकीर्णता आने का डर है, उससे देहाती शिक्षक बच जाता है। शिक्षक का ज्ञान बहुमुख हो, सजीव हो और सरस हो।

इसके बाद शिक्षक के अपने व्यक्तित्व के विकास की बात आती है, क्योकि शिक्षक का अपना व्यक्तित्व जब तक विकसित न हो, तब तक बच्चो के विकास मे वह कभी सहायक नही हो सकता। इसलिए नील कहते हैं कि सबसे पहले शिक्षक का अपने बडप्पन का झूठा मोह छोडना है। शिक्षक का हमेशा छोटे-छोटे अपरिणत बच्चों के साथ काम करना पडता है, उनके ऊपर उसका सपूर्ण अधिकार रहता है। इसलिए उनके सामने अपने को बडा सर्वज्ञ दिखलाने का मोह शिक्षको के लिए एक भयकर मोह है। इस मोह से बचने के लिए उन्हे सतर्क रहना है। जहा उनकी कमजोरिया हैं, अज्ञानता है, उन्हे उनके सामने प्रकट करने मे सकोच न करना चाहिए। नही तो शिक्षक और बच्चो के सबध मे सचाई नही रहेगी और जहा एक बार झूठ का प्रवेश हुआ, वहा कभी सच्ची शिक्षा नहीं मिल सकती। आज की पूरी शिक्षा-पद्धति मे गुरु-शिष्य का सबध इसी झूठ पर प्रतिष्ठित है।

इसलिए नील बडे जोर से शिक्षकों से कहते हैं, सच्चे बनो, निडर बनो। अपने अन्दर जहां-जहा अधेरे मे कमजोरिया, भय, असत्य छिपे हुए हैं, उन्हें बुद्धि के प्रकाश मे खीचकर ले आओ। उन्हे छिपाने की कोशिश न करो। उन्हे समझने की कोशिश करो, उन्हें जीतने की कोशिश करो। जो शिक्षक सच्चा है, वही सच्ची पीढी तैयार कर सकता है। जिसके अन्दर असत्य छिपा है, भय छिपा है, समाज का भय, परिवार का भय, इन्स्पेक्टर का भय, हेडमास्टर का भय-किसी तरह का भय क्यो न हो, उससे कभी सच्ची, निडर पीढी तैयार नही हो सकती।

सच्चा शिक्षक वही हो सकता है, जो सच्चे होने की, निडर होने की निरन्तर साधना करे, जिसके हृदय मे प्रेम हो, ऐसा प्रेम जो ज्ञान से योगयुक्त हो। गान्धीजी की भाषा मे, जो सत्य और अहिंसा का सच्चा पुजारी हो।

और आखिर मे नील कहते हैं कि हर एक शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह नए समाज की रचना मे हाथ बटाए। सबसे पहले वह समझ ले कि आज का समाज और राष्ट्र-व्यवस्था किस तरह असत्य और अन्याय पर प्रतिष्ठित है और आज की सारी शिक्षा व्यवस्था किस तरह इसी समाज-व्यवस्था और राष्ट्र-व्यवस्था का एक अग है। इसलिए जितने शिक्षक इसी मौजूदा पद्धति के अग होकर शिक्षा का काम कर रहे हैं, वे इस अन्याय को कायम रखने मे मदद कर रहे हैं। इस असत्य की इमारत को तोडकर उसकी जगह नई इमारत उठाना शिक्षको का ही काम है।

आज तक हम मानते आये हैं कि शिक्षा और राजनीति दो अलग चीजें हैं। नील यह बात नही मानते। वे जोरो से कहते हैं कि शिक्षक का सबसे बडा काम तो राष्ट्र की सेवा है, समाज की सेवा है।

नील इग्लैंड के शिक्षको से, जिन्हें हम आज तक स्वतन्त्र मानते आये हैं, कहते हैं—"मैं चाहता हू

कि आप अपने से यह सवाल पूछें कि जिस तालीम का काम आप कर रहे हैं, उसमें कितनी सचाई है ? या दूसरे शब्दो मे, क्या हमारी जिन्दगी केवल एक झूठ तो नहीं है ?

"मै कहता हू कि हमारे शिक्षको का जीवन एक झूठ ही है। *आनेवाली पीढी की तालीम हमारे* हाथ मे है और हम उन्हें कोई सत्य वस्तु नहीं दे रहे हैं। हम ऐसा करते हैं इसलिए कि हमने कभी शिक्षा के सवाल पर गहराई से विचार नहीं किया है। हमारा दृष्टिकोण सकीर्ण रहा है। हममे इतनी ताकत ही नहीं रही है कि हम आगे की तरफ देखें।"

"दोस्तो, अपना वक्त दशमलव, भिन्न और ऐसी फिजूल-बातो में मत जाया करो। बच्चो को यह बतलाओ कि समाज क्या है और जो कुछ वे देख रहे हैं, उसके पीछे क्या है ? शिक्षकों, क्या तुम यह नहीं देख सकते कि तुम्हारी सारी शिक्षा-प्रणाली जमाने से बहुत पीछे है। जो कुछ स्कूलो में पढाया जा रहा है, उसका जीवन से कोई भी सम्बन्ध नहीं ?

"अगर हम सच्चे हो, सचाई मे हमारा विश्वास पक्का हो, तो हमें एक साथ मिलकर इस मौजूदा तालीम की इमारत तोड देनी चाहिये। हमें छोटे बच्चों को आज ही से उस आनेवाली दुनिया के सच्चे और आजाद नागरिक बनने की तालीम देना शुरु करना चाहिये।

"लेकिन हम बच्चो को एक नई दुनिया बनाने की आजादी किस तरह सिखा सकते हैं, जब कि हम खुद आजाद नहीं हैं। इसलिए मैं कहता हू कि आपके काम का क्षेत्र सिर्फ स्कूल के चार दीवारो के अन्दर नही है, बल्कि सारा समाज और सारा राष्ट्र ही आपका कर्मक्षेत्र है। अपने काम के अलावा आपको अपनी सामाजिक आजादी ढूढनी होगी। नहीं, यह गलत है कि आपको अपनी सामाजिक आजादी तभी मिलेगी, जब आपको अपने काम के लिए इतना प्रेम और इतना आदर हो कि आप उसी के लिए जिंदा रहना चाहे, उसी के लिए सब कुछ खोने को तैयार हो। जितनी आपकी निगाह में आपके काम की कद्र बढेगी, उतना ही समाज में भी आपका स्थान ऊचा रहेगा। जब तक आप गुलाम पैदा करते रहेंगे, आप खुद भी गुलाम रहेंगे।

"मै भली भाति जानता हू कि हम लोग अपनी परिस्थिति के कितने गुलाम हैं। समाज में हमारी कोई कद्र नही, हमारे अपने में काफी शिक्षा नही, योग्यता नही, आजादी हमसे कोसो दूर है—वेतन हमें कम-से-कम मिलता है। लेकिन मैं यह मानने को तैयार नही हू कि किसी भी करोड़पति से हम छोटे हैं। जोर से कहता हू कि उनके काम से हमारा काम कहीं बडा और कठिन है। शिक्षक समाज के खम्भे हैं, उनका काम सबसे बडा काम है। शिक्षको के लिए भोग-विलास के सामान हम नही मागते। हम उनके काम के लिए, उनके पेशे के लिए सम्मान चाहते हैं, उनके लिये समाज के, राष्ट्र के और शिक्षा के नये निर्माण मे अधिकार चाहते हैं।

"मैं जानता हू कि आज नवीन शिक्षको मे बहुत से ऐसे सच्चे दिल के भाई और बहनें हैं, जो अपनी पूरी ताकत बच्चो को सच्ची तालीम देने की कोशिश में लगा रहे हैं। आज की तालीम में और आज के समाज और राष्ट्र में जो असत्य है, उसे वह समझते हैं। उनसे मैं इतनी ही प्रार्थना करता हू कि उनके सामने कठिनाइया बहुत हैं, लेकिन इन कठिनाइयो से डरकर, हाथ-पर-हाथ रखकर कोई एक भावी आदर्श समाज या नेता की राह देखते हुए वे बैठे न रहें। आज से ही वे उस नई तालीम और नये समाज की तैयारी में लग जाय, जहा हरएक बच्चे और हर एक शिक्षक को सच्चा और सुखी होने की पूरी आजादी मिले।" हमारे नई तालीम के शिक्षकों से भी हमारी यही प्रार्थना है।

पाठशाला समाज का केन्द्र बिन्दु है

के. एल. भार.

कुछ महीने पहले हमारे एक नेता ने कहा था कि पंचायत, सहकारी संस्था और स्कूल वह त्रिकोण है जो समाज के नवनिर्माण का आधार होगा। यह हमारे समय की विशेषता है कि अब इनम से हर एक अपने अपने छोटे दायरों में सीमित न रह कर समाज की सभी प्रवृत्तियों के साथ गहरा सहयोग और समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न में है। खास कर स्कूल की प्रवृत्तियां अब परंपरागत सीमाओं में बद्ध नहीं रहीं, उसका कार्यक्षेत्र स्थानीय जनता और उनकी समस्याओं तक व्याप्त हो गया है। समाज की आवश्यकताएँ, उपलब्ध सामग्रियों का विनियोग, अधिक उत्पादन की संभावनाएं ये सब शिक्षा के माध्यम होते हैं। इन प्रश्नों का हमेशा समाधान करना स्कूल का कर्तव्य नहीं है—लेकिन समाज में उनके बारे में सचेतता पैदा करना, समाधान के मार्गों की खोज, चर्चाएं और विचारविमर्श शिक्षा के मूल्यवान् साधन हैं और कार्यरूप में उसकी सब से बड़ी सफलता समाज में आत्मनिर्भरता पैदा करने में है।

इस कार्यक्रम के प्रत्यक्ष परिणाम क्या होंगे? शाला अब चारदीवारी में सीमित नहीं रही, विद्यार्थी अपने गांव की भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सभी परिस्थितियों से परिचित रहेंगे। इसका असर शिक्षाक्रम पर होगा, हमारा प्रचलित "छपा हुआ" शिक्षाक्रम नहीं चलेगा। उद्योग के साधन स्कूल में ले आने का विचार भी अब बदलना पड़ेगा। एक सामूहिक कर्मशाला और सामूहिक खेत होगा जहां बच्चे जा कर काम करेंगे और सीखेंगे। आज भी कई संगठनों द्वारा गांवों में अच्छी कर्मशाला, परिश्रमालय और नमूने की खेती शुरू करने का प्रयत्न हो रहा है। इनमें अच्छे नये औजार और प्रशिक्षित निपुण कारीगर आ रहे हैं। गांव के बच्चे वहां जा कर सब चीजों में "क्यों?" "कैसे?" सीखेंगे। शिक्षक भी उनके साथ जा सकता है। इससे स्कूल में उद्योग के साधन खरीदने और उनकी मरम्मत का बड़ा भारी खर्च बच सकता है। आज विभिन्न संगठनों द्वारा ऐसी संस्थाएं शुरू करने के लिए जो पैसा लगाया जा रहा है वह एकत्र करके समाज के समग्र विकास के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है और इस विकास के कार्यक्रम का एक मुख्य हकदार स्कूल होगा। तभी हम स्कूल में कई प्रकार के उद्योग और विविधता दाखिल कर सकते हैं जिससे कि बच्चों की सृजनात्मक प्रवृत्तियों के लिए एक विशाल क्षेत्र मिल सके और वह तृप्तिजनक हो। समाज स्कूल के लिए अध्यापन की प्रयोग शाला है और वह समाज के केन्द्र बिन्दु के रूप में काम करेगा।

कुछ ऐसी प्रवृत्तिया है, जिनमें बडे और बच्चे एक साथ मिल कर काम कर सकते हैं, जैसे सामूहिक सफाई और सास्कृतिक कार्यक्रम। मकान बनाने के काम में भी बच्चे उत्साह के साथ योग देंगे। इस प्रकार मिल कर काम करने से समाज के साथ स्कूल का घनिष्ठ सपर्क स्थापित होगा। सामूहिक कार्यक्रमो के लिए—जैसे सम्मेलन, मनोरजक कार्यक्रम, इत्यादि-स्कूल के मकान और अन्य सुविधाओ का उपयोग हो सकता है। सब से ज्यादा जरूरी यह है कि गाव का शिक्षक, ग्रामसेवक और दूसरे विशेषज्ञ मिल कर एक टोली के रूप में काम करे। बच्चो की शिक्षा केवल स्कूल की नही, पूरे समाज की जिम्मेदारी होगी, तब वह ज्यादा कारगर होगी।

इस प्रकार के विद्यालयो का विचार—जिसमें पूरे समाज का हिस्सा है—नया नही। कई समुदायो में इसके प्रयोग हुए हैं और परिस्थितियो के अनुसार कम ज्यादा सफलता भी मिली है। किसी भी समुदाय के विकास का काम उसके अगीभूत वयस्क स्त्री-पुरुषो की ही जिम्मेदारी है। विकास के काम को जिम्मेदारी स्पष्टत स्कूल की नही हो सकती, क्योकि उसकी अपनी मर्यादाए, और विशिष्ट उद्देश्य हैं। लेकिन समाज में जो विकास के काम चल रहे है उनके *ज्ञान और उनमें भाग लेने के अनुभव से बच्चो* को वचित रखना मूल्यवान् शैक्षणिक मौको को खो देना होगा। वह एक अदूरदर्शी शिक्षक होगा जो औपचारिक शिक्षण के चक्कर में—पाठ्यक्रम पूरा करने के फिक्र में—बच्चो को इन प्रवृत्तियो से अलग रखता है। प्रौढावस्था में पहुचते ही आप उस आज के विद्यार्थी से अपेक्षा रखेंगे कि वह इन कामो में हिस्सा ले। और वह उस काम से होनेवाले लाभ का हकदार भी है। फिर क्या कारण है कि इन योजनाओ और वृत्तियो में वह शुरू से ही हिस्सा न ले और उनसे पुस्तको से सीखने से कही ज्यादा रुचिकर रीति से शिक्षा ग्रहण करे।

नई तालीम के बारे मे हमारा दावा है कि वह नई समाज व्यवस्था का सूत्रपात करेगा। इसका यह मतलब नही कि शालाए क्राति की सृष्टि करेंगी बल्कि उनमें बच्चो के अन्दर उन वृत्तियो, गुणो तथा चारित्र्य बल के निर्माण का प्रयत्न होगा जो कि एक न्यायनिष्ठ समाज-रचना के लिए अनिवार्य हैं। अहिंसा पर आधारित शैक्षणिक प्रक्रिया के जरिये ही हम इस आर्थिक-सामाजिक क्राति को साध सकते हैं। इस अर्थ में नई तालीम और अहिंसा एक चीज हो जाती हैं। अगर हमारी शिक्षा बच्चो को अहिंसा की तरफ नही ले जाती तो हम इस युग की चुनौती *का सामना करने में असमर्थ होंगे।*

शिक्षकों को पहले आचार्य कहा जाता था। आचार्य यानी आचारवान्। स्वय आदर्श जीवन का आचरण करते हुए राष्ट्र से उसका आचरण करा लेनेवाला हो आचार्य है। ऐसे आचार्यों के पुरुषार्थ से ही राष्ट्रों का निर्माण हुआ है। आज हिन्दुस्तान की नयी तह बैठानी है। राष्ट्र निर्माण का काम-काज हमारे सामने है। आचारवान् शिक्षकों के बिना वह सम्भव नहीं।

—विनोबा

तृतीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा की व्यवस्था

के. अरुणाचलम्

प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा पर विचार करते हुए श्री कुमरप्पाजी ने कहा था–'यह रिपोर्ट शिक्षा पद्धति के बारे में द्वैतबुद्धि दिखाती है। उसकी न कोई निश्चित नीति है न विचार। और सब बातों से भी ज्यादा यह बात जरूरी है कि शिक्षा का एक निश्चित उद्देश्य हो जिससे कि राष्ट्र के विकास की दिशा साफ हो सके। यह रिपोर्ट तो एक ही अध्याय में गांधीजी से निर्दिष्ट बुनियादी तालीम का और कुप्रसिद्ध मेकॉले पद्धति की माध्यमिक शिक्षा का जिक्र करती है और विश्व-विद्यालय की शिक्षा के लिए साम्राज्यवादी पद्धति का समर्थन करती है। और इन सब की तुल्यरूप से सिफारिश करती है, जैसे कि वह किसी एक का पक्ष लेना नहीं चाहती हो।"

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सामान्य शिक्षा के अध्याय की जो रूप रेखा प्रकाशित हो गयी है, उसके बारे में भी करीब-करीब यही कहा जा सकता है। ऐसी मान्यता है कि छ से ग्यारह तक की उम्र के बच्चों के लिए सार्वजनिक शिक्षा, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के स्तर में वैज्ञानिक शिक्षा और सभी स्तरों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष जोर दिया गया है। लेकिन जो कार्यक्रम अपनाया है वह समस्या के समाधान में सहायक नहीं होता है। यह तो सर्वविदित है कि ब्रिटिश सरकार से हमें ऐसी एक शिक्षा व्यवस्था विरासत के रूप में मिली है, जो एक उपनिवेश की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रख कर बनायी गयी थी। इसकी तीन विशेषताएँ थीं–१. शिक्षा–खासकर उच्च शिक्षा एक विदेशी भाषा के माध्यम से होती थी। २. जनता तक पहुचनेवाली एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का अभाव। ३. इसमें मुख्यतः किताबी तालीम का ही इन्तजाम था।

भारतीय स्वतन्त्रता के जन्मदाता महात्मा गांधी ने इस शिक्षा व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता को पहचाना। उन्होंने कहा कि सारी शिक्षा–चाहे वह प्राथमिक या विश्व-विद्यालय की हो–स्थानीय भाषा में होनी चाहिये। उन्होंने ऐसी एक शिक्षा व्यवस्था की योजना बनायी जिससे वह केवल साक्षरता मात्र नहीं रहेगी और देश के प्रत्येक नागरिक की पहुँच की होगी। उसे उन्होंने "बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा" का नाम दिया। हालांकि इसे देश के प्रमुख नेताओं का अनुमोदन मिला है फिर भी, उसको खुले दिल से कार्यान्वित करके नहीं देखा गया है।

गांधीजी का कहना था कि यह प्राथमिक या बुनियादी शिक्षा एक समन्वित इकाई है और उसे सात या आठ साल तक चलना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यवश योजना बनानेवालों

ने प्राथमिक शिक्षा की अवधि पाच साल की रखी है, हालाकि वे जानते हैं कि जो ऐसी शिक्षा पाते हैं उनमें से बहुतेरे बालक थोडे ही सालो में अपना अक्षरज्ञान तक भूल जायगे। शायद समय और शक्ति के इस अपव्यय की वे परवाह नही करते। फिर भी–शिक्षा की अवधि पाच साल की रखन पर भी–यह सार्वजनिक नहीं होगी। कहा जाता है कि अस्सी प्रतिशत बच्चे इस योजना के अनुसार स्कूल जायगे। तृतीय पचवर्षीय योजना समाप्त होने तक सब लडको के लिए तालीम का इन्तजाम होगा, लेकिन लडकियो में साठ प्रतिशत ही स्कूल में पहुचेगी। इसलिए तृतीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति पर भी हमारी शिक्षाव्यवस्था पूरी तरह से सार्वजनिक नहीं होगी।

गाधीजी की "बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा" व्यापकता की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि विषय-वस्तु के लिहाज से भी राष्ट्रीय थी। उन्होने इस देश के लिए एक अहिंसात्मक प्रजातत्र की कल्पना की थी। ऐसे प्रजातत्र का नागरिक दूसरो के परिश्रम पर नही जीयेगा। उसे समाज की सपत्ति को बढानेवाली उत्पादन कलाओ की निपुणताए प्राप्त होगी। बुनियादी तालीम की विशेष योजना यह है कि जब से बच्चा स्कूल में पहुचेगा, उसी दिन से उसके व्यक्तित्व का विकास उत्पादक काम के माध्यम से होगा। शिक्षा-शास्त्र के विशेषज्ञो ने माना है कि यह मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक, समाजशास्त्रीय सभी दृष्टियो से एक उत्तम योजना है। लेकिन जब उसे प्रयोग में लाने की बात होती है तब कुछ कोनो से प्रतिषेध के स्वर ऊचे उठते हैं। जन-सामान्य के परिश्रम के फलो का जो उपभोग ही करते आये हैं, वे वर्ग उस स्थिति को बदलना नही चाहते हैं। वे भूतकाल के स्वप्नो से चिपके रहते हैं। फिर भी जमाने का तकाजा ऐसा है कि वे वास्तविकता की ओर से पूरी तरह से आखें मूद भी नही सकते हैं। इसलिए वे भी एक पद्धति के तौर पर बुनियादी तालीम को मान्यता देते हैं, लेकिन उसके क्रातिकारी रूप को भुलाना चाहते हैं।

अगर इस देश में सच्ची लोकशाही चलनी है और "अत्योदय" हमें साधना है तो बुद्धिजीवी और श्रमजीवो का यह द्वैत मिटाना ही पडेगा। काम को केन्द्रित करके स्कूल की सब प्रवृत्तिया चलेगी, परिश्रम के गर्भ से ही ज्ञान का जन्म होगा।

हजारो सालो से मानवजाति के बच्चो ने एक समुदाय में रहने, उसकी सब प्रवृत्तियो में भाग लेने और उससे परपरागत सस्कार को प्राप्त करने से ही शिक्षा पायी है। लेकिन आज की हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था लडके लडकियो को अपने समुदायो के जीवित सस्कार से अलग करके उनके अन्दर पुस्तको द्वारा कुछ जानकारिया डाल देने का प्रयास करती है, जिनका उनके जीवन से कोई सबध नही। इस तरीके से–समाज के किसी काम में हिस्सा लिए बिना ही–हमारे लडके-लडकिया जिम्मेदार नागरिक बनेंगे, ऐसी अपेक्षा कतई नही की जा सकती है। गाधीजी ने हमें एक रास्ता दिखाया। उनके मार्गदर्शन में ऐसी एक शिक्षा पद्धति का विकास हुआ जिसमें निष्ठावान् योग्य स्त्री पुरुषो की देख रेख में बच्चे स्वाभाविक आनन्द पूर्ण सामाजिक जीवन बिताते हैं और उससे अप्रयास ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। जिसे औपचारिक शिक्षण कहते हैं उसे छोडा नही गया, लेकिन वह इस जीवन में ही घुल-मिल गया।

किशोरावस्था की शिक्षा उत्तर बुनियादी शिक्षा हुई। लेकिन तृतीय पचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में *बुनियादी तालीम और बुनियादी* पद्धति का ही जिक्र है, उत्तर बुनियादी शिक्षा का नाम तक उन्होंने नहीं लिया है। शायद उनको कर्मकेन्द्रित शिक्षापद्धति में आस्था नही है। ऐसे भी लोग हैं जिन्हे काम को शिक्षा का माध्यम बनाने में खतरा दिखायी देता है। उन्हें डर है कि इससे बच्चो का शोषण होगा। उद्योग या काम को व्यक्तित्व के विकास में कोई हिस्सा है, ऐसा उन्हे दीखता नही, हालाकि वे भी शिक्षा में "सृजनात्मक प्रवृत्तियो" के महत्व को मानते हैं।

वैसे तो पचवर्षीय योजना में माध्यमिक शिक्षा को औद्योगिक या व्यावहारिक बुनियाद देने की जरूरत को पहचाना गया है। उच्च माध्यमिक विद्यालयो में प्रत्यक्ष काम के जरिये तथा बहुउद्देश्यीय शालाओं के द्वारा यह साधने का विचार है। तृतीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति तक कुल माध्यमिक विद्यालयो में से आधे ही ऐसी शालाओं में परिणत होगे, बाकी तो पुराने तरीके की मैट्रिकुलेशन के लिए ही विद्यार्थियो को तैयार करेंगे।

विश्वविद्यालय के स्तर की शिक्षा को सुधारने की दृष्टि से इन दिनो कई कार्यक्रम शुरू किये हैं। इनमें से अधिकतर इतने में ही निष्फल सिद्ध हो चुके हैं। अब विश्वविद्यालयो के अधिकारीगण सर्वसम्मति से इस नतीजे पर पहुचे हैं कि शिक्षित वर्गों का स्तर—खास कर *उनका अनुशासन और चारित्र्य—तब तक नही* सुधर सकता जब तक कि उन्हे कम-से-कम एक साल के लिए सैनिक अधिकारियों के हाथ में सुपुर्द न किया जाय और इसको अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा का नाम दिया गया है। यह समझना कठिन है कि जो आम शिक्षा नही कर सकी वह सैनिक शिक्षा कैसे करेगी। क्या यह देश जिसने अहिंसात्मक तरीको से अपनी स्वतत्रता हासिल की और जो सब देशो के साथ मित्रता और शान्ति से रहना चाहता है-अपनी शिक्षाव्यवस्था में ऐसी पुनर्रचना की कोशिश तक नही करेगा, जिसमें सैनिक तरीको की जरूरत नही हो, कम-से-कम जबरदस्ती से अनुशासन लादने और एकरूपता चाहनेवाले तरीके न हो।

योजना में प्रचलित शिक्षाव्यवस्था की तीन मुख्य कमियो को दूर करने का जिक्र ही नही है—याने उसका पुस्तकीय रूप, उसकी सकुचितता और विदेशी माध्यम।

योजनाबद्ध विकास की तीन पचवर्षीय अवधियो के बाद भी हम अपने आपको वही पायेंगे, जहा ब्रिटिश सरकारने हमें छोडा था। योजना में शिक्षा के चित्र में वैचारिक ऐक्य नही है और एक जीवन दर्शन का उसमें अभाव है।

सम्पादकीय

यह विशेष अंक क्यों ?

शिक्षक को भारतीय संस्कृति में गुरु कहा है। आज भी उसके बारे में चर्चा चलती है तो उसे जनता का मार्गदर्शक और राष्ट्र का निर्माता जैसे विशेषणों से सुसज्जित किया जाता है। यानी समाज को अगर नये कदम उठाने हैं तो उनके अगुवा शिक्षकों को ही होना चाहिए। एक तरफ तो यह बात और दूसरी तरफ इससे भी बडा सत्य यह दीख रहा है कि अधिक-से-अधिक कंजरवेटिव, तबदीली को नापसंद करनेवाले अगर कोई हैं तो शिक्षक ही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी शोध हुई है। समाजपरिवर्तन के बारे में भी मनुष्य ने क्रांतिकारी कदम लिये हैं। और उससे भी बडी बात तो यह है कि हमारे सामने शैक्षणिक और सामाजिक क्रान्तियों का एक समन्वित कार्यक्रम नई तालीम के रूप में आया है। अगर यह बात होती कि उसे किसी भी आधुनिक चिंतक और शिक्षाविद् ने अच्छा न माना होता तो हम कहते कि चलो, शायद विचार ही ठीक नहीं था। पर हमने तो यह देखा और समझा है कि आज के शिक्षण विचार की दिशा ही नई तालीम के साथ मेल खानेवाली बनती जा रही है। और उसे अधिक-से-अधिक शिक्षा पर चिन्तन करने वालों की सम्मति प्राप्त हो रही है। इसीलिए बात अजीब-सी लगती है। आजादी मिले हुए बारह साल बीत चुके, पर आज भी राष्ट्र की शिक्षा का स्वरूप, प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक, मूलतः वही पुराना जो आजादी के पहले था बना है, जब कि, जैसा विनोबाजी ने कई बार कहा, "आजादी मिलते ही शिक्षा प्रणाली को जैसे राष्ट्रीय पताका बदली, उसी तरह और उसी क्षण बदल देना चाहिये था।" ऐसा क्यों ?

बात सादी है। नई तालीम की कल्पना एक तरफा दृष्टि रख कर नहीं बनी। वह केवल पढने लिखने की पद्धति या अधिक-से-अधिक काम के द्वारा पढने लिखने की प्रणाली के तौर पर कल्पित नहीं की गयी। वह तो समाज के मूल्यों में आमूल परिवर्तन आये और समाज के ढांचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन हों, इसलिए दुनिया के सामने आयी। यही कारण है कि लोग, खास तौर पर ऊंचे तबके के लोग उसे लेते हुए घबराते हैं। वह जात-पांत को तोडती है, छुआछूत को मिटाती है, धर्मों का भेद हटाती है, अमीर-गरीब, दोनों को समान करती है, श्रमिक और बुद्धिवादी को एक ही ऊंचाई पर बिठाती है, सारांश में कहे तो समाज में समता का आदर्श कायम करती है। भला ऐसी शिक्षा को वैसे लोग क्योंकर अपनायेंगे जो समाज में यथा-स्थिति चाहनेवाले हों। और आज के अधिकतर लोग जो समाज में मान्य कहे जाते हैं शायद स्थिति को बदलने के लिए आसानी से तैयार न हो, इसलिए जिस कठिनाई का नई तालीम को आज सामना करना पडता है, वह उसके सामाजिक क्रान्ति के पहलू के कारण ही है, जो पहलू उसका प्राण है। जो लोग नई तालीम को भला-बुरा कहकर टाल देना चाहते हैं वे अपने आपसे पूछें कि वे असल में उस परिवर्तन के डर के कारण ही तो ऐसा नहीं करते।

वैज्ञानिक दृष्टि और आत्मसमीक्षा के ख्यालसे इस चित्र का दूसरा बाजू भी रखना आवश्यक होगा। पर उसे रखने के पहले एक और बात कहना उचित होगा कि चीज भले ही अच्छी-से-अच्छी हो, उसे हमेशा फौरन अपना लिया गया हो, ऐसा तो नही पाया जाता। अैसी क्रान्तियों को भी, जिनके प्रति आम तौर पर आकर्षण होना स्वाभाविक होता है, अपनाने में बीसियों बरस लगे हैं। हम स्वयम् भी कहते हैं कि अगर नई तालीम का हमारा काम उत्तम होता तो उसे देश नि सकोच अपना लेता। अब एक प्रश्न उठता है–देश ने कितनी चीजो को नि सकोच अपनाया है ? दर असल बात यह है कि नई तालीम को अपनाने और उसके काम की गुणात्मक सफलता का आपस में कोई खास सम्बन्ध नही दीखता। अच्छा विचार, अच्छी योजना कभी असफल नही होती, उसकी असफलता भी सफलता की ओर अेक कदम होता है। अगर शिक्षा जगत् यह मानता है कि आज तक का नई तालीम का काम अपनाने योग्य सफलता प्राप्त नही कर पाया है, तो वह उसे छोडेगा नही, उसे सफल बनाने के लिए तहेदिल से जुट पडेगा और जिन्होंने अभी तक काम किया है, उनकी त्रुटिया दिखाकर उनका हाथ पकडकर आगे ले जायेगा। अगर नई तालीम अभी तक सफल नही हुई है तो राष्ट्र के हर शिक्षा का काम करनेवाले के सामने वह चुनौती के तौर पर खडी है। वे उस चुनौती को स्वीकार करे और उसको सफल बनाकर दिखायें। और अगर नई तालीम ने जो आजतक हुआ है उसके जरिये यह दिखा दिया है (और जो स्पष्ट तौर पर सचमुच दिखा ही दिया है) कि इस शिक्षा के अन्दर वे सम्भावनायें है जो अच्छी-से-अच्छी शिक्षा पद्धति में हो सकती है तो फिर सकोच किस बातका ? अगर मूल्यो में परिवर्तन होने से हम डरते नही है तो फिर क्यो ऐसा नैराश्य ?

चित्र की दूसरी बाजू यह है कि नई तालीम ने अपनी सम्भावनाओं का केवल आभास मात्र ही दिया है। हमने पूर्व बुनियादी से लेकर उत्तम बुनियादी तक का ढाचा मात्र खडा किया। *मूर्ति पर अभी तक मास और चमडी नही बनी।* उसे पूरा करना होगा। यहा कमियो के पीछे जो कारण है उनमें जाने की आवश्यकता नही, पर इसमे कोई शका नही कि जितना काम होना चाहिये था हम अभीतक कर नही सके है। *यहा तक होना चाहिये था कि गावो के घरो में* जाते तो पाठशाला का प्रकाश नजर आता। बच्चे आनन्द और सृजनात्मकता में लिपटे हुए होते। वैज्ञानिक सृजनात्मकता में, कलात्मक सृजनात्मकता में और नैतिक और सामाजिक सृजनात्मकता में। काम केवल यान्त्रिक नही बल्कि सोलह आना शैक्षणिक होता। तभी तो *उसमें आनन्द और उत्पादन अपनी अधिकतम* मात्रा में मिल पाते।

काम और शिक्षा को एक दूसरे का आधार मिले, इस दृष्टि से आगे बढना है। वह तभी होगा जब शिक्षा में वैज्ञानिकता और विज्ञान दोनो आयेंगे। साथ-साथ शिक्षा और काम को लोकजीवन से जोडना होगा। हालाकि नई तालीम का आधार ही लोक जीवन माना है, तो भी, चालू शालाओ जितना तो नही, पर हमारी शालायें भी कुछ हद तक स्कूल के दायरे में ही सीमित हो गयी थी। पिछले अनुभवो को लेकर अब हमें आगे बढना है और शाला सारे गाव में फैलेगी तभी तो वह नित्य-नई तालीम के नाते समाज की समस्याओ का उत्तर दे सकेगी।

पिछले कुछ महीनों से श्री धीरेन भाई हमारा ध्यान तालीम के कुछ मूलतत्वों की तरफ खींच रहे हैं। वे ऐसी चीज प्रस्तुत कर रहे हैं जिसके बिना नई तालीम गहराई तक नहीं पहुंच सकती। हमारे सब कामों में अन्त्योदय का महत्व सर्वोच्च माना गया है। तालीम की भी यही बात है। जो बच्चा सुबह से शाम तक ढोर चराता है वह शिक्षित हो। शाला में वह आ नहीं सकता, तो फिर शाला को ही यानी शिक्षा को ही यानी शिक्षक को ही उसके पास जाना होगा। उसके स्तर पर उतरना होगा। धीरेन भाई यही कह रहे हैं। गांधीजी ने यही कहा था। हमें इस चीज को भलीभांति समझना है। नहीं तो नई तालीम उस क्रान्ति से दूर हट जायगी जिसकी दुहाई वह देती है।

हमारे काम का एक और पहलू है। बरसों के बाद भी लोगों को जिस शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों की जानकारी नहीं हुई। शायद कुछ लोग जान-बूझ कर के भी, जैसा कि पहले ही कहा, नई तालीम के क्रान्तिकारी स्वरूप के कारण उससे मुंह मोड़े रखते हैं। इस प्रश्न को भी हमें उठाना होगा। साहित्य और अन्य उपयुक्त साधनों से विचार प्रचार तो करना ही होगा, साथ-साथ शिक्षा विभाग के सामने आग्रह के साथ कुछ बुनियादी बातें रखनी होंगी। बारीकी में जाने की जरूरत नहीं, मान्यता, परीक्षा और भाषा इत्यादि जैसे प्रश्नों को लेकर आग्रह के साथ पेश आना होगा। यह प्रश्न भी कम महत्व का नहीं है।

इस अंक का उद्देश नई तालीम की मूल-कल्पना, आज के संदर्भ में उसकी आवश्यकता, उसकी शिक्षापद्धति तथा क्रान्तिकारी पहलू की ओर समुचित दृष्टि रखते हुए आज हमारा कर्तव्य, इन विषयों को सामने लाना था। आशा है इससे कुछ विचार सामग्री मिलेगी और चित्र अधिक स्पष्ट होगा।

उत्सव शास्त्र

देवीप्रसाद

धीरे-धीरे हमने यह महसूस किया कि हम उत्सवों को ऐसे नहीं मना सकते जैसे आम तौर पर वह मनाये जाते हैं। उनका पारम्परिक रूप ऐसी समाज की उपज थी जिसे हम बदलना चाहते हैं। उसे आज हम एक ऐसा रूप देना चाहते हैं जिसकी बुनियाद गांधीजी के बताये पथ की है। हिन्दोस्तान के आधुनिक इतिहास में यह सौभाग्य की बात है कि उत्सव कला की भी साधना करने वाला एक गुरु (रवीन्द्रनाथ) जन्मा। उसने हमें विशाल दृष्टि, केवल विशाल दृष्टि ही नहीं बल्कि विशाल हृदय का दर्शन दिया। गांधीजी और गुरुदेव, दोनों ने कहा कि तुम्हारा जगत एक निराला जगत हो। वह ऐसा जगत हो जिसमें एक होने के मंत्र का हर समय दर्शन होता रहे। सौंदर्य-साधना हमें एक बनाये।

नई तालीम को क्रान्ति करनी है

नई तालीम का प्रश्न अत्यन्त जटिल बन गया है। लेकिन इसीलिए उसे सुलझाना दिनोदिन अधिक जरूरी होता जा रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि हमारे आन्दोलन ने शिक्षा का समाज के सामने कोई साफ और ग्राह्य चित्र न पेश किया तो उसे गहरा धक्का लगेगा और हमारी राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति को जो भी यश मिला है वह कम हो जायगा। तत्काल सबसे अधिक सम्भावना हमारी शिक्षानीति मे ही है। इतना मानते हुए मैं श्रमभारती मे १९५८ मे ही इस नतीजे पर पहुच गया था कि सस्था की नई तालीम ज्यादा से ज्यादा अच्छी तालीम हो सकती है, नई तालीम नहीं हो सकती। नई तालीम समाज की चीज है, सस्था की नही। सस्था और समाज मे बहुत अन्तर है। इसलिए मैं धीरेन भाई के विचार को मूलत सही मानता हू। यह विचार उनके और मेरे दोनो के मन मे १९५८ से ही चल रहा है। मैंने आज की नई तालीम को वर्ग-सघर्ष के विकल्प के रूप मे देखा है। धीरेन भाई इस वक्त एक गाव मे बैठकर उसी विकल्प की तलाश कर रहे हैं। मैं भी उसी टोह मे हू। ४-६ महीने मे कुछ ठोस कदम उठ सकेगा, ऐसी आशा मन म लिए घूम रहा हू। साथी मिल जाय तो सब कुछ हो सकता है। मुझे कुछ साथी मिलने लगे हैं, यह एक शुभ लक्षण है। मुझे ऐसा लगता है कि नई तालीम का यशस्वी प्रयोग ग्रामदानी और भूदानी किसानों के ही क्षेत्र मे शुरू किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उत्पादन, बौद्धिक विकास, चरित्र-निर्माण आदि के लिए आवश्यक और अनुकूल मसाला तो वहा मिलेगा हो; साथ ही भारतीय समाज की नैसर्गिक परिस्थितियाँ मिलेगी जिनमें मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व विकसित होता है। यह सब सस्था म सम्भव नही है। इस प्रयोग को हमे हाथ में लेना ही चाहिए। लेकिन सस्था का प्रयोग हाथ मे नहीं लेना है, ऐसी बात नही है। लेना है और लेना पड़ेगा क्योंकि सस्था की नई तालीम मध्यमवर्ग की प्रक्रिया के अन्तर्गत है जिसके बिना वर्गसघर्ष का विकल्प हाथ नही आयेगा।

चिट्ठी-पत्री

मेरा मन भी कहता है कि देश भर मे एक, दो तो नमूने के विद्यालय चले, लेकिन व्यावहारिक कठिनाईयो के सामने सिर चकराने लगता है। मैं एक बात जानना चाहता हू। देशभर मे कुल कितने मित्र होंगे जो नई तालीम के कार्यकर्ता कहे जा सके, मैं देखता हू कि बहुत अधिक सख्या मे लोग ऐसे हैं जो नई तालीम के भी हैं, नई तालीम के ही कितने हैं? शिक्षण की साधना बहुधधीपन से नही हो सकती। नई तालीम सर्वोदय की क्रान्ति का वाहन है। क्रान्ति का विकास आज जिस मजिल पर पहुच गया है वहा नई तालीम और अहिंसक क्रान्ति मे वस्तुतः कोई अतर नही रह गया है। अगर अतर है तो या तो क्रान्ति अधूरी है, यह तालीम एकांगी और अधकचरी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि नई तालीम का काम सर्वोदय के नाम मे होने वाले हर काम के साथ निभ सकता है। सर्वोदय के काम और सर्वोदय की क्राति मे अतर है। यह अतर स्पष्ट नही है इसलिए बेचारी तालीम पानी की तरह हर दूध मे मिला दी जाती है जो दूधको फीका करने के सिवाय और कुछ नही कर पाती।

मैं खुद नई तालीम के प्रश्न को लेकर बेहद चिंतित हू। मैं मानता हू कि क्रान्ति दबाव की मजिल छोड चुकी है, अब उसे अनुभव और शिक्षा का माध्यम स्वीकार करना है। हमारी तालीम क्रान्ति के माध्यम का सामर्थ्य कैसे विकसित करे, यह प्रश्न है।

खादीग्राम पोस्ट
जिला मुगेर।

सस्नेह भापका,
राममूर्ति

हमारे सामने कुछ प्रश्न हैं

इस समय नई तालीम एक दुर्घट सधि से गुजर रही है। उसके सामने दुहरा खतरा है। (१) वह सरकार की अनिश्चयात्मक वृत्ति के कारण शिक्षा के क्षेत्र में एक कनिष्ठ स्थान पर ढकेल दी गयी। (२) कुछ श्रद्धालु व्यक्तियों के छोटे-छोटे दायरो में सीमित हो

गयी । मुझे लगता है कि परीक्षा और मान्यता के प्रश्न का इस सदर्भ पर बहुत बडा प्रभाव है ।

मान्यता का प्रश्न

मान्यता दो तरह की हो सकती है—पहली सरकार के द्वारा और दूसरी समाज के द्वारा । आज निर्भाग्यवश परिस्थिति ऐसी है कि न राज्य और न ही समाज नई तालीम को गभीरता के साथ ले रहे हैं । यह वस्तुस्थिति इतना स्पष्ट है कि उसको सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण उपस्थित करने की जरूरत ही नही रही ।

नई तालीम अपनी पद्धति और ध्येय दोनों में निराक्षेप रीति से श्रेष्ठ है, इसमें कोई शका नही हो सकती । लेकिन हम काम करनेवाले उसकी सभावनाओ को फलीभूत नही कर सके जिससे कि जनसामान्य की शकाओ का निवारण होता । सिद्धात और व्यवहार में एक बडी खाई है । हमारी कर्मशक्ति क्षीण रही, इसलिए अपेक्षित फल नहीं मिल पाया ।

प्रगति में कठिनाइयां आईं

पूर्व बुनियादी से उत्तर बुनियादी तक की शिक्षा का कुछ क्रमबद्ध विकास हुआ । उसके आगे हम विशेष नही बढ सके, जिससे हमारे विद्यार्थियो को कई कठिनाइया हुई । ऐसा लगता था कि यह रास्ता उन्हे कही पहुचाता नही । इसकी मानसिक प्रतिक्रिया बहुत ही नुकसानदेह हुई । विद्यार्थियो के मन में असन्तोष और न्यूनता का भाव पैदा हुआ, जो कि काम के सर्वतोमुख और सुचारु विकास के लिए बडा ही प्रतिकूल होता है । इस कारण पद्धति के सफल प्रयोग के लिए जैसे अच्छे विद्यार्थी मिलने चाहिए थे, वैसे मिल नही पाये ।

अब इस स्थिति को कैसे सुधारें ?

अब इस स्थिति को कैसे सुधारें ? नई तालीम के अनुसार शुरू से आखिर तक की शिक्षा का एक पूरा चित्र जनता के सामने आना चाहिए । देश भर इस तरह के कुछ नमूने खडे करे, इसके लिए गभीर प्रयत्न करना होगा । प्रचलित शिक्षा व्यवस्था युग की आवश्यकताओ की पूर्ति नही करती और इसलिए असफल सिद्ध हो चुकी है । इसलिए यह और भी जरूरी होता है कि एक नई शिक्षा व्यवस्था की पूरी तस्वीर हम उपस्थित करे, जो कि जमाने की मागो को पूरा कर सके । पुरानी सस्थाओ मे कुछ परपराए बन गयी हैं, इनका पुन सगठन और जहा परिस्थिति अनुकूल हो वहा नये केन्द्रो की स्थापना करनी होगी ।

माध्यमिक शिक्षा का उच्च-शिक्षा से सम्बन्ध

इस ध्येय को पूरा करने म कुछ समय तो लगेगा ही । मुझे लगता है कि साथ-साथ आज के उत्तर बुनियादी विद्यालयो का विश्वविद्यालयो के साथ सबन्ध जोड देना होगा । नई तालीम के विद्यार्थियो को इनसे कोई कृपा मागने की नौबत नही आनी चाहिये । अगर सरकारी शिक्षाविभाग और विश्वविद्यालय उत्तर बुनियादी शिक्षा को उपाधि परीक्षा की पूर्व तैयारी के रूप में मान लेते हैं और उत्तर-बुनियादी से निकले विद्यार्थियो को एक विधिवत् जांच के बाद प्रावैधिक तथा अन्य शिक्षाक्रमो में प्रवेश देते हैं तो उनके रास्ते से एक बडा भारी प्रतिबन्ध हट जायगा और उनके लिए उच्च शिक्षा के नये रास्ते खुल जायेंगे । जिनमें सचमुच योग्यता और सामर्थ्य है उनके लिए महज न्याय की ही माग है जिससे कि उनकी क्षमताओ का पूरा विकास हो पावे । जो सरकार अपनी शिक्षा पद्धति मे बुनियादी तालीम को स्वीकार करती है उसे नई तालीम के विद्यार्थियो को उनके हक के मौके देने मे हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये । रचनात्मक सस्थाओं के तत्वावधान म जो बुनियादी और उत्तर-बुनियादी विद्यालय चल रहे हैं, उन पर यह कदम बडा प्रभाव डालेगा । विद्यार्थियों की कमी और निरुत्साह के कारण उनमे जो रुकावट आयी है वह दूर हो जायगी, नई शक्ति का सचार होगा ।

हमारी शक्ति संग्रहीत हो

एक दूसरे महत्वपूर्ण पहलू पर भी साथ-साथ विचार होना चाहिये । विभिन्न राज्यो की नई तालीम सस्थाओ का सहयोग और सयुक्त प्रयत्न इसके लिए नितान्त आवश्यक है। उससे उनकी अपनी

(शेषांश पृष्ठ १२१ पर)

शान्ति समाचार

११ सितम्बर विनोबा जी का जन्मदिवस भू-जयन्ति के तौर पर मनाया जाता है। सारे देश ने उन्हें उस दिन अपनी श्रद्धा अर्पित की। शान्ति सैनिकों और क्रान्तिकारियों के लिए यह एक महान दिवस है। नई तालीम परिवार ने भी, जहां-जहां उसके सदस्य रहते हैं, इस दिन को बडी सौम्यतापूर्वक ग्राम-संपर्क, सूत्रयज्ञ और प्रार्थनामय ढंग से मनाया। भाई डोनाल्ड ग्रूम द्वारा लिखे विनोबाजी के नाम एक पत्र को यहां उध्दृत करते हुए हम सब उनकी भावनाओं में शामिल होते हैं–

विनोबाजी! आज दुनिया बडे दुलार के साथ आपको अपनी बाहों में भरती है और अपना मानकर आपको वहीं उठाए रखती है। जब आपने अपनी यह आशा प्रगट की कि आपके अन्तर में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो, तो आप उन सबके दिलों में पैठ गये, जो प्रेम को जानते-समझते हैं। जो भी कोई व्यक्ति या समूह आपको देखता या सुनता है, वह अनुभव करता है कि आप उसी के हैं। राष्ट्रीयता की कोई सीमा इसमें बाधक नहीं बनती, इसलिए आज के इस जन्मदिन पर आपकी आवाज में अपनी आवाज मिलाकर बुलन्दी के साथ पुकारते हैं–जयजगत्!

विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के इस जमाने में प्रेम के अन्तर से निकला हुआ विचार मन को बहुत धीमी गति से भेद पाता है। जिनके मन में यह विचार पैठ जाता है, वे तो नाच उठते हैं और उनकी आंखों के सामने नए युग का प्रभात खडा हो जाता है। इसलिए आनेवाले अनेक वर्षों तक आप विचार के इस प्रवाह को बहता रखिए। जो लोग दुनिया के दूर-दूर के कोनों से आपके पास पहुंचते हैं, वे उन लोगों में से कुछ हैं, जो अपने में सत्य, प्रेम और करुणा की भावना को प्रेरित कर एक अहिंसक संसार की रचना में अपना हिस्सा अदा करना चाहते हैं। विनोबाजी, जयजगत्!

(भूमिक्रान्ति से) डोनाल्ड ग्रूम

युद्ध विरोधक अंतर्राष्ट्रीय का १० वां त्रैवार्षिक सम्मेलन

इस महत्वपूर्ण सम्मेलन की खबरें "नई तालीम" के पाठकों तक हम नियमित पहुंचाते आ रहे हैं। सम्मेलन की तैयारी के लिए एक भारतीय स्वागत समिति का निर्माण किया गया है, जिसकी बैठकें समय-समय पर होती रही हैं। हाल ही में एक बैठक अगस्त को हुई जिसमें अंतर्राष्ट्रीय के मंत्री आर्लो टाटम उपस्थित थे।

गांधी ग्राम के सुन्दर और स्नेहमय वातावरण में यह बैठक तीन दिन चली और इसमें सम्मेलन से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों की विस्तृत चर्चायें हुईं। अलग-अलग कार्यों के लिए उपसमितियां बनाई गईं। सम्मेलन में किस-किस विषय पर चर्चा हो और चर्चा करने की पद्धति कैसी हो, इन बातों पर निर्णय लिये गये।

स्वागत समिति ने एक पत्रिका तैयार की जिसमें युद्ध विरोधक अंतर्राष्ट्रीय के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को समझाया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय की सदस्यता के लिए व्यक्ति घोषणा-पत्र पर

हस्ताक्षर करता है। यह पत्रिका उसी घोषणा-पत्र के आधार पर तैयार हुई है। यहा उसे इसलिए प्रस्तुत कर रहे हैं कि जिससे उस विचारधारा से अधिकाधिक लोग परिचित हो और हमारे अधिकाधिक साथी भी उसी तीव्रता के साथ हिंसा को मिटाने की तैयारी में लगें।

घोषणा

"युद्ध मानवता के प्रति महान अपराध है। इसलिए मैं किसी भी प्रकार के युद्ध में सहयोग नही दूगा और युद्ध के सभी कारणो के निवारण के लिए सतत प्रयत्न करूगा।"

यह घोषणा अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध प्रतिरोधक सघ का आधारभूत सिद्धात है। इस सघ का एक अधिवेशन १९६० के दिसबर माह में गाधीग्राम में होनेवाला है। सघ की स्थापना १९२१ में चार यूरोपीय देशो के शान्तिवादियो द्वारा की गयी और वह युद्ध के निराकरण के लिए एक अतर्राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में हुई। आज बयासी देशों में इसके सदस्य और शाखाए हैं। तीन साल में एक दफे सघ का अधिवेशन होता है। गाधीग्राम में यह दसवा अधिवेशन है और पहली दफे यूरोप के बाहर के किसी देश में हो रहा है।

"युद्ध प्रतिरोधक" इस शब्द से शायद कुछ लोग सोचेगे कि यह एक नकारात्मक प्रतिपक्ष-मात्र है और इसलिए मर्यादित महत्त्व का है। लेकिन यह ऐसा नही है, जैसे कि उपरोक्त घोषणा और उसके स्पष्टीकरण के लिए सघ ने जो वक्तव्य निकाला है, उससे स्पष्ट होता है।

"स्थिर विश्वास वाले शान्तिवादियो को एक नकारात्मक वृत्ति लेने का अधिकार नही है, बल्कि उनके ऊपर अहिंसात्मक, कार्यक्षम उपाय ढूढने की जिम्मेवारी है—सुव्यवस्था कायम करने के लिए, हमारे घरो की रक्षा के लिए, सामाजिक न्याय के लिए।"

युद्ध के प्रधानतम कारण, जिनके निवारण के लिए सघ के सदस्य प्रतिज्ञाबद्ध है, ये हैं :

औपनिवेशिक तथा आर्थिक साम्राज्यवाद।

वश, धर्म और राजनैतिक मान्यताओ के कारण मानव प्राणियो के प्रति भेद बुद्धि।

सभी प्रकार के आर्थिक शोषण और अन्याय। राष्ट्रो के असीमित अधिकार और सैनिक तैयारिया।

प्रत्येक सदस्य अपने ही तरीके से काम करने के लिए स्वतत्र है—अपने ही आन्तरिक विश्वासो के अनुसार युद्ध के पाप का प्रतिरोध करने के लिए और मानवीय सबधो में अहिंसा की स्थापना के लिए। अन्तर्राष्ट्रीय किसी विशेष धार्मिक या राजनैतिक सिद्धान्त का अनुयायी नही है और इसलिए वह सभी वशो और धर्मो के स्त्री-पुरुषो के लिए समान रूप से खुला है जो कि उसकी आधारभूत घोषणा को स्वीकार करते हैं और उसके उद्देश्यो के लिए काम करने के लिए तैयार हैं। इन ध्येयो का इस प्रकार विवरण किया है :

मानव व्यक्तित्व का आदर मनुष्य समाज का आधारभूत सिद्धात होना चाहिए और सारे राष्ट्रों का भाई-चारा अन्तर्राष्ट्रीय सबधों की बुनियाद। युद्ध विरोधक सघ इस प्रयत्न में है कि शका के बदले आशा की, द्वेष के बदले सहिष्णुता की और अविश्वास के बदले आशा की स्थापना हो जिससे कि समाज का रूप बदले और विश्वभ्रातृत्व एक जीवन्त वास्तविकता बन जाय।

हमारी आकांक्षा अपने विश्वासों को व्यावहारिक रूप देने की है। युद्ध के निरुपाधिक निराकरण तथा जो व्यक्ति या संघ युद्ध निवारण के काम के लिए अपने आपको अर्पित करता है उनको समर्थन और सहारा देकर हम इसकी शुरूआत करते हैं।"

आज बाईस देशों में कुल मिलाकर तीस शांतिवादी संगठन हैं जो युद्ध प्रतिरोधक संघ के साथ संबन्धित हैं। बाकी देशों में अभी तक कोई स्थानीय संगठन नहीं है, लेकिन ऐसे व्यक्ति हैं जो संघ के ध्येयों को अपनाते हैं। पर इन्हें अपने काम में अकेलापन अनुभव होता है।- अपने विश्वासों के कारण उनके ऊपर कई कठिनाइयां और मुसीबतें आ पड़ती हैं। युद्ध प्रतिरोधक संघ उन्हें स्थानीय शाखाएं खोलकर सहायता पहुंचाने का तथा अकेले पड़े हुए युद्ध विरोधियों के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है। खासकर उन देशों में जहां सरकार की सैनिक नीति का विरोध करना खतरनाक होता है, ऐसे व्यक्तियों को हर तरह की मदद और प्रोत्साहन देने की भरसक कोशिश की जाती है।

भारत में युद्ध प्रतिरोधक संघ का जो सम्मेलन हो रहा है, उससे विभिन्न परंपराओं और पृष्ठभूमिवाले शांतिवादियों का आपस में संबंध और समझ बढ़ाने का एक महान अवसर उपस्थित होता है। कई भारतीयों ने महात्मा गांधी और विनोबाजी के साथ अहिंसा के प्रयोगों में हिस्सा लेने का अनुभव पाया है। यूरोप के और अन्य देशों के भी कई सज्जनों ने अपने-अपने देशों में हिंसा, आतंक और अन्याय का विरोध करने में बहुत पीड़ाएं तथा कष्ट सहन किये हैं। अपने विचारों और अनुभवों के आदानप्रदान से प्रत्येक दल को पुष्टि और शक्ति प्राप्त हो सकती है।

(भारतीय सम्मेलन समिति)

जो गलत है वह कभी भी यह कहकर ठीक नहीं हो सकता "क्योंकि दूसरे भी वैसा ही करते हैं।"

—मारिस सोबिल

सत्य तो यह है कि जो गलत है वह कभी भी ठीक नहीं हो सकता "क्योंकि दूसरे भी वैसा ही करते हैं।" आखिर ये "दूसरे" कौन हैं? ये तो हम स्वयं ही हैं और निर्णय लेना तो हमारे ही हाथ में है। अगर युद्ध बुरी चीज है तो उसे कोई भी शक्ति अच्छी नहीं बना सकती। अगर बुरी बात को छोड़ना है तो युद्ध को भी छोड़ना है। यही सत्य जिसके खिलाफ कुछ भी नहीं कहा जा सकता, शांतिवाद का सिद्धांत है।

(पीस-न्यूज से)

आसाम में शांति कार्य

देश के लगभग एक सौ शांति-सैनिक शांति सेना मंडल, सर्व सेवा संघ की अपील पर आसाम गये हैं। वे श्री अमल प्रभा और श्री आशादेवी के साथ आसाम में प्रादेशिक भाषा के प्रश्न से उपस्थित तनातनी को हटाने या और हजारों ऐसे लोगों को पुनर्वासित कराने में सहायता करेंगे जो उन घटनाओं के कारण घर-बार खो बैठे हैं।

केरल

सन् १९५९ में कम्यूनिस्ट सरकार पदच्युत हुई। उस दौरान में केरल में काफी हदतक

अशान्ति का वातावरण पैदा हुआ। गाधी निधि ने उस स्थिति का अध्ययन करने के लिए टोली भेजी थी, जिसकी रिपोर्ट के आधार पर अब गाधी निधि की ओर से शाति कार्य प्रारभ किया गया है। फिलहाल उस कार्य को निधिने भाई चेरियन थामस को सौपा है। वे केरल चले गये है और उन्होने कार्यारम्भ भी कर दिया है।

× × × ×

सुप्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक बर्टरन्ड रसल और आफ्रिका के उत्थान के लिए सदा लगे रहने वाले अग्रेज पादरी माइकल स्काट ने इग्लैण्ड में आणविक युद्ध के विरोध में एक अहिंसक आदोलन प्रारभ करने का तय किया है। वे दो हजार स्वय सेवको की माग करेगे। उन्होने अपनी इच्छा प्रकट की है कि ब्रिटेन को मनुष्य परिवार के इस सकट को खतम करने में नेतृत्व करना चाहिय।

× × × ×

"ईसा की सीख और आणविक शस्त्र का कोई मेल नही।" ३ सितम्बर को प्रारम्भ हुई एडिन-बर्ग से लण्डन तक चार सौ मील की पद यात्रा, जो आणविक शस्त्रो के खिलाफ सयोजित की गयी है, ८ सितम्बर को प्रेस्टन पहुची। तब एक प्रवक्ता ने उपरोक्त वाक्य कहा। जहा-जहा पद-यात्रा पहुचती है वहा-वहा स्थानिक शान्ति सस्थाओ के प्रचार के कारण खूब लोग इकट्ठे होते है। यह महायात्रा २४ सितम्बर को लण्डन पहुचकर समाप्त हुई।

(पृष्ठ ११७ का शेषाश)

अपनी तथा सब की तरीक्की मे मदद होगी। गुण विकास और समेकन (कन्सालीडेशन) के लिए देवी भाई ने जो सुझाव* दिये हैं वे व्यावहारिक और आज की जरूरतो को पूरा करनेवाले हैं। हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के सगम के बाद सर्व सेवा सघ ही वह अखिल भारतीय सगठन है जिससे विभिन्न प्रान्तो की सस्थाओं को सहायता और मार्गदर्शन मिलने की अपेक्षा है। गुण और स्तर बढाने के लिए काम की विश्लेषणात्मक जाच तथा समीक्षा आवश्यक है। सब सेवा सघ की तरफ से एक छोटी समिति की नियुक्ति होनी चाहिये जो समय समय पर ऐसी समीक्षाए करे। अगर इन समीक्षाओ के आधार पर सर्व सेवा सघ की तरफ से विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र दिया जाय तो उसका निश्चय ही सम्मान होगा और विद्यार्थियों के मन मे विश्वास पैदा होगा। जब समर्थ मार्गदर्शन मे स्थानीय प्रयोगों का समन्वय होगा तो अपनी-अपनी विशेषताओ को रखते हुए भी इन सस्थाओ में ऐक्य का बोध निर्माण होगा।

बलरामपुर, जि० मिदनापुर। सप्रेम आपका
१५-९-६० क्षितीश चौधरी

*सम्पादकीय "नई तालीम" अक १२ वर्ष ८

टिप्पणियां

शिक्षक की स्वतंत्रता

भारत ने स्वतन्त्रता हासिल की और एक स्वतंत्र प्रजातन्त्र बनने का निश्चय किया। प्रजातंत्र का मायना चुनाव करके कुछ जन-प्रतिनिधियों को लोक सभा में भेजना मात्र नहीं है, उसका मायना यह है कि सर्व-साधारण आदमी जिम्मेदारी के साथ राष्ट्र के कार्यों में हिस्सा ले। इसलिए हमारे बच्चों को जिम्मेदार स्वतंत्र नागरिक बनने की शिक्षा मिलनी चाहिए।

आम तौर पर आज के हमारे स्कूल इतने सत्ता अधीन हैं कि वे ऐसी स्वतन्त्रता की शिक्षा देने में असमर्थ हैं। शिक्षक का विद्यार्थियों के साथ सम्बन्ध अधिकार का है। उसका एक मुख्य कारण यह है कि उसको खुद भी अपने पेशे में स्वतन्त्रता और जिम्मेदारी के साथ काम करने का मौका नहीं मिलता। उसे क्या-क्या करना है और कैसे-कैसे करना है, इसके विस्तृत निर्देश "उच्च अधिकृतस्थानों" से मिलते हैं। पाठ्यक्रम निश्चित किया हुआ है, पाठ्यपुस्तकें चुनी गई हैं, यहां तक कि एक-एक विषय की पढ़ाई इतने घण्टे होनी चाहिए यह भी तय किया हुआ है। कहीं कोई गलती हुई तो उसे सुधारने का उपाय अधिक नियम बनाना है जो शिक्षक को और ज्यादा बन्धन में डाल देते हैं। सब से गंभीर बात यह है कि शिक्षक स्वयं इस बन्धन के इतने आदी हो गये हैं कि अगर अचानक उन्हें अपनी बुद्धि का उपयोग करके काम करने की स्वतंत्रता दी भी जाय तो वे असमंजस में पड़ जायेंगे कि अब क्या करें? अगर आज एक शिक्षक से कहा जाता—"ये बच्चे बुद्धिमान, स्वतन्त्रविचार और सहयोग करनेवाले नागरिक बनें, इसकी जिम्मेदारी आपकी है। जब आप जरूरत महसूस करें तब ज्ञानी अनुभवशील शिक्षक आपकी मदद के लिए खुशी से आयेंगे। लेकिन जो बात आपको अच्छी और ठीक लगे, वही आप इन बच्चों को सिखाइये; अपने ही तरीके, किताबें, साधन सामग्रियां और दूसरे माध्यम चुनने की स्वतन्त्रता आपको है। आप और इन बच्चों के मां-बाप मिल कर देश के भावी नागरिक तैयार करें—यह आपकी जिम्मेदारी है।" तो हमारे ज्यादातर शिक्षक ऐसी जिम्मेदारी और ऐसी स्वतन्त्रता से क्या घबड़ा नहीं जायेंगे? और जब मार्ग दर्शक शिक्षक ही स्वतन्त्रता और जिम्मेदारी से डरते हैं तो बच्चों में इन गुणों का विकास कैसे होगा?

अगर हम अपने प्रजातन्त्र को स्थायी बनाना चाहते हैं, उसको अधिक सच्चा और गहरा बनाना चाहते हैं तो यह स्थिति बदलनी पड़ेगी। स्वतंत्रता देने से अगर खतरा है तो उसे उठाना ही होगा क्यों कि ऐसा न किया तो उसमें भी कहीं बड़ा खतरा सामने है।

मार्जरी साइक्स।

शान्ति सेना और नई तालीम

स्वराज्य प्राप्ति की लड़ाई में गांधीजी ने जनता को जागृत करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रमों को ही विशेष महत्व दिया था। 'सूत के तार में स्वराज्य' इस मंत्र में बापू की विधायक शक्ति की रामायण लिखी हुई है,

कांग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं को इसका बहुत कम ख्याल था। अहिंसा के रास्ते स्वराज्य प्राप्ति तो हुई लेकिन धीरे-धीरे अहिंसा का तेज कम होता गया। इस मत्र की शक्ति से अज्ञ होने के परिणामस्वरूप यह हुआ कि राज्यतत्र की लगाम देश के अगुवाओ के हाथ में तो आयी लेकिन अहिंसात्मक तरीके से होनेवाला जनता का गठन इनके हाथो से फिसलता गया। बापू के बाद दुखद बात यह हुई कि अहिंसा द्वारा मिले स्वराज्य का हिंसा के तरीको से रक्षण किया जाने लगा। उधर हिंसाग्रस्त दुनिया को पडितजी अहिंसा का सदेश देकर वैर-विष के वातावरण को शात करने के लिए प्रयत्नशिल है, इधर देश में हम इसी वैर-द्वेष के वातावरण के बारे में ठीक तरह से विचार भी नही करते। क्या हमारे नेताओ को इसका ख्याल है!

स्वराज की गरमाहट लाखो देहातो की झोपडियो में पहुचाने के लिए ही गाधीजी ने लोक सेवा सघ की योजना बनायी थी। काग्रेस की शक्ति को इस रास्ते मोडने और विकसित करने का वह उनका आखिरी सदेश था। स्वराज का तत्र सभालनेवाले नेताओ को बापू का सदेश नही पटा। ब्रिटीश सरकार की सामन्तशाही विरासत में से हमारा राज्यतत्र नही निकल सका। नई तालीम, खादी, ग्रामोद्योग, दारूबदी, इत्यादी जैसे सर्वोदय समाज की नीव पक्की करनेवाले कार्यक्रम के बदले, यत्र सस्कृति, केन्द्रभूत राज्यतत्र और अग्रेजी शिक्षा के मायाजाल में हम फसते जा रहे हैं।

विनोबाजी ने इस स्थिति को परख लिया है। वे प्रेम और शाति के सदेश को व त्याग और परिश्रम की ओर ले जानेवाले बहुविध कार्यक्रम को जनता के सामने रख रहे है। अणुयुग में फौज-पुलिस के बल पर स्वराज्य का सरक्षण एकदम खोखला साबित होगा, यह समझकर ही उन्होंने शान्तिसेना की प्रवृत्ति देश के सामने रखी है।

नई तालिम में आदि से अत तक अहिंसा की शिक्षा देने और शाति का वातावरण तैयार करने की शक्ति है। एक शाति सैना का गठन करने की अमोघ शक्ति उसमें निहित है। जनसपर्क के आधार पर खडी और जनकल्याण की प्रत्यक्ष सेवा प्रवृत्तियो के साथ सम्बन्धित होने के कारण वह शाति सैनिक को उत्तम शिक्षा प्रदान करती है। श्रम जीवन में से होनेवाले स्वावलबन में स्वाधीनता का खमीर प्रगट होता है। जीवन की विविध प्रवृत्तियो में परस्पर सहकार्य में से अटूट जनसगठन निर्माण होता रहता है। इसीलिए नई तालीम के केन्द्र शाति सैनिक की उत्तम तालीम देनेवाली सस्थाएँ बनती हैं।

दिलखुश दिवाण

विदेशी भाषा का भूत

अग्रेजी का विष हमारे जीवन में गहराई तक उतरा हुआ है। हम सब पढे लिखे लोग अति सामान्य बातचीत में भी अनावश्यक अग्रेजी बोलते हैं, स्वभाषा में बोलते हैं तब भी उसमें अनावश्यक अग्रेजी शब्दो का मिर्च-मसाला लगाते हैं। किसी पारिभाषिक शब्द का गुजराती शब्द याद न आता हो तब परिचित अग्रेजी शब्द का प्रयोग करे, तो यह हम समझ सकते है, और वह योग्य भी कहा जायगा। लेकिन कोई शास्त्रीय नही मामूली ही बात हो, जैसे-कैसे हो? कब आये? आपको चिट्ठी

मिली, ऐसी दैनंदिन व्यवहार की बातो में भी अनावश्यक अग्रेजी का उपयोग समझ में नही आता है। कई लोग दो शब्द अपनी भाषा में बोलते है, तो फिर उसको अग्रेजी में भी कहना आवश्यक समझते है। कौन जाने स्वभाषा में बोला गया वाक्य भूल हो न हो! गलत अग्रेजी बोलने में भी हमें सतोष होता है, कुछ प्रतिष्ठित कृत्य किया ऐसा लगता है। कई दफा अग्रेजी नही लिखे पढे लोग भी इस तरह गलत शब्दो का प्रयोग कर अपना नाम सभ्य समाज में लिखा लेते है।

जब साधारण व्यक्ति भी इस तरह का बर्ताव करते है तब कॉलेज के प्राध्यापक और शाला शिक्षक अग्रेजी में ही व्याख्यान देना पसद करे और देशी भाषाओ में पढाने में न्यूनता महसूस करे तो उसमें उन्हे कैसे दोष दे सकते है।

इस तरह हमारे यहा अधिकारियो की आपस में बोलने की भाषा अग्रेजी ही बन गयी है। कोई अधिकारी प्रात के बाहर का हो और उसे स्थानीय भाषा न आती हो तब अग्रेजी में बोले, या वैसे अधिकारियो के साथ दूसरे अग्रेजी में बातचीत करे यह तो समझ में आता है, परन्तु दो एक भाषीय अधिकारी भी आपस में अग्रेजी ही बोलते है।

कई वक्त बहुत मजेदार प्रसग आ जाते है। दो-चार अधिकारी एकत्रित हुए होते है और जनता के साथ बातचीत चलती रहती है, तब वे उनके साथ तो प्रातीय भाषा में बातचीत करेगे परन्तु आपस में अग्रेजी में बोलेगे।

इस रिवाज की धारा में हमारी समितियो के पदाधिकारी, लोकल बोर्ड जैसी अर्धसरकारी सस्थाओ के अध्यक्ष वैसे ही सरकार के मत्री-गण भी बहते दिखायी देते है। प्रजा मत्रीगण और अधिकारियो की मिलीजुली टोलिया कार्य-प्रसगवश एकत्रित होती है तब हमारे समाज में चल रहा यह रिवाज कितना विचित्र रूप धारण करता है! मत्री महाशय जनता के साथ जनता की भाषा में बोलेगे लेकिन अधि-कारियो के साथ अग्रेजी में ही बोलेगे। और अधिकारी, जिलाधीश प्रजा के साथ स्वभाषा में बाते कर लेगें और मत्री महाशय के साथ अग्रेजी में ही बोलेगे। और उनका देखकर हम प्रजाजन भी मत्रीजी के साथ स्वभाषा में बोलेगे परन्तु जिलाधीश के साथ तो अग्रेजी में ही चलायगे, क्योकि अधिकारियो की भाषा तो अग्रेजी ही है न?

अभी तक भी सरकारी अदालतो और महा-विद्यालयो के वर्गो से अग्रेजी क्यो नही गई, यह समझ में नही आता। जब तक वह नही जाती, तब तक अधिकारियो और पढे-लिखे और सामान्य जनता के बीच की खाई मिटेगी नहीं। और अगर यह खाई नही मिटी तो देश मे जनशक्ति का विकास नही होगा।

जुगतराम दवे

आत्मज्ञान की बुनियाद चाहिए

मनमोहन चौधरी

अहिंसक समाज रचना के आधार-स्वरूप नई तालीम की योजना हुई। गाधीजी के बीसो रचनात्मक कार्यक्रमो का समावेश इसमे हुआ। शिक्षण मे कार्य-शीलता, कोरिलेशन, सात साल का न्यूनतम बुनियादी शिक्षण जैसे अद्यतन तत्वो का भी आधार इसम लिया गया। इस तरह से एक सर्वांगीण सुन्दर शिक्षण योजना बनी। इसम कुछ ऐसे तत्व थे जो सारी दुनिया के प्रगतिशील विचारको को, सार्वभौम शिक्षण विज्ञान को मान्य थे। कुछ ऐसे भी और तत्व थे जो उस समय नये थे, जिनका सर्वमान्य होना बाकी था, अब भी बाकी है। कुछ ऐसे तत्व थे जो एक अहिंसक रचना के लिए आवश्यक होते हुए भी अहिंसा को स्वीकार करना आवश्यक नही था। मसलन—कोरिलेशन का तत्व। इस तत्व का आधार बीस साल पहले ही सोवियत राज्य की कम्युनिष्ट शिक्षण प्रणाली के लिए लिया गया था, जहा अहिंसा की कोई खास कीमत नही थी।

हमने विकेंद्रित अर्थ-व्यवस्था, खादी और ग्रामोद्योग को इसी प्रकार अहिंसा के लिए अनिवार्य शर्तें माना।

समाज को कैसे सुधारा जाय? इस सवाल के दो जवाब आज दुनिया म मौजूद हैं। एक जवाब पुराने जमाने से दिया जा रहा है कि व्यक्ति को सुधारने से ही समाज सुधर सकता है। समाज आखिरकार व्यक्तियो की समष्टि ही है। दूसरा जवाब पिछले सौ एक साल से बुलद हुआ है कि समाज को सुधारने से व्यक्ति भी सुधरा जाता है। समाज व्यक्तियो की समष्टि मात्र नही है। उससे भी बढकर एक स्वतत्र हस्ती उसकी है। समाज व्यवस्था का—राजनीतिक तथा आर्थिक रचना का—असर व्यक्ति के जीवन पर होता है। मानव-समाज के वैज्ञानिक अध्ययन मे से इस दृष्टि का विकास हुआ है।

गाधीजी की यह खूबी थी कि उनके विचार तथा कार्य योजना म इन दोनो दृष्टियो का समावेश था। दरअसल इन दोनो दृष्टियो मे विरोध नही है—दोनो एक दूसरे के परिपूरक हैं। व्यक्ति अपने परिवेश से प्रभावित भी होता है तथा परिवेश को प्रभावित भी करता है। जहा चैतन्य का आविर्भाव अचेतन मे से, मानव का विकास मानवेतर प्राणियो मे से हुआ है, वहा मानव का एक हिस्सा बाहरी परिवेश के प्रभाव से, जडसृष्टि के नियमों से प्रभावित होनेवाला है और दूसरी तरफ जहा वह सक्रिय, सृजनशील, चैतन्यमय सत्ता है, वहा वह परिवेश के प्रभाव से ऊपर उठ सकता है, अपने आपको बदल सकता है, परिवेश को बदल सकता है। गांधीजी ने एक तरफ मानव को बदलने या नये मानव के निर्माण के लिए सत्याग्रह-विज्ञान की नीव डाली और दूसरी तरफ समाज रचना के नये स्वरूप का ढाचा रचनात्मक कार्यक्रम के मार्फत बतलाया।

देश गरीबी और भुखमरी में डूबा हुआ था, आज भी है। इसलिए आर्थिक सुधार के कार्यक्रमो को अधिक महत्व मिलना स्वाभाविक ही था। उसके साथ-साथ समाज रचना के अमुक प्रकार के विकेन्द्रित ढाचे को भी अधिक महत्व मिला। यहां तक कि हम करीब-करीब मानने लगे कि अमुक प्रकार की विकेन्द्रित रचना एक बार कायम हो जायगी तो फिर

हिंसा का प्रादुर्भाव असंभव ही हो जायगा। इस तरह से हम एक प्रकार के मूल-भूत रचना के चित्र को लेकर मशगूल रहे।

दूसरी ओर सत्याग्रह का जो प्रयोग राष्ट्रीय आजादी के लिए हुआ, उसमें उसके प्रतिकारात्मक पहलू को अधिक महत्व मिला। हिंसक युद्ध के विकल्प के रूप मे हमने अहिंसक प्रतिकार को स्वीकारा। अब युद्ध विद्या के आचार्यों के अनुसार युद्ध का ध्येय है 'प्रतिपक्ष से अपनी इच्छा मान्य करवाना"। तो लडाई मे जिस प्रकार दबाव से यह करने के लिए प्रतिपक्ष को मजबूर किया जाता है वैसे सत्याग्रह को भी हमने मुख्यतया दबाव डालने के अहिंसक तरीके के रूप मे देखा। अपने तथा प्रतिपक्ष को मानवता को खिलने की प्रेरणा देनेवाले सत्याग्रह के सूक्ष्म स्वरूप तथा प्रसग हमारे ध्यान से छूट गये।

मानव स्वभाव के बारे मे मुख्यतया दो दृष्टि-कोण दुनिया मे हैं। एक दृष्टि यह है कि मानव का स्वभाव हमेशा नीचे की ओर दौडनवाला, बुराई की ओर आकर्षित होनेवाला है और उसपर रोक लगाकर, उसके चारों ओर बाड चलाकर ही उसे सभ्यता, सामाजिकता की मर्यादाओ में रखा जा सकता है। दुनिया के अधिकतर धर्मों के विधि निषेध, राज्यो के कायदे कानून इसी मान्यता के अनुसार बने है। दबाव-वाले सत्याग्रह के पीछे भी यही मान्यता थोडी बहुत है—' बिना मार से देता नही।

इस विचार का यह तात्पर्य निकलता है कि जनता को हुकुम तामील करने के लिए तैयार करना ही तालीम का ध्येय होना चाहिये। आज बडे-बडे तानाशाहियो में इसकी कोशिश किस तरह हो रही है, यह हम देख रहे हैं। उनमे बच्चो के विचारों को भावनाओ को तग दायरो मे सीमित करने की कोशिश होती है। राष्ट्र को जो फायदेमंद मालूम हो वैसे संस्कार उनके मन मे दृढ हो जाय, उनके बारे में कोई शका या विचार मनमें उठे ही नही, संस्कारो की क्रिया बिल्कुल अटोमेटिक हो, इसकी कोशिश की जाती है। मगर यह चीज तानाशाहो की नयी उद्भावना नही है। अलबत्ता उन्होने उसमें नये नये सूक्ष्म तरीके जोडे हैं, मगर चीज तो सदियो से चलती आ रही है। उसमे बाह्य हिंसा नहीं के बराबर होती है। समाज करीब करीब अहिंसक ही दीखता है। मगर दरअसल इसकी बुनियाद सूक्ष्म मानसिक हिंसा, असत्य, पर ही होती है। इसमे मानव की सृजनशीलता कुंठित होती है। वह स्रष्टा नहीं बनता, ईश्वर के हाथ का जिम्मेवार औजार नही बनता।' बच्चे के जैसे निर्भरशील, गैर जिम्मेदार, पुरुषार्थहीन ही रह जाता है। दुनिया की चारो ओर नजर दौडायेंगे तो हर जगह यही दृश्य नजर आयेगा कि कही मानव का मन साम्प्रदायिक कर्म के शिकजे मे बदी है तो कहीं एकाधिनायकत्व के खप्पर मे। इनसे मानव की मुक्ति सिर्फ उसकी गहरी सृजन-शीलता की मुक्ति के जरिये ही मिल सकती है।

मानव स्वभाव के बारे मे दूसरी दृष्टि यह रही है कि वह मूलतः अच्छा है। असत् से सत् की ओर, अधेरे से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर जाना ही उसकी मूल प्रेरणा है। उपनिषद् आदि शास्त्रो ने, सतो ने, क्रान्तिकारियो ने इस दृष्टि का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार राह चलने की कोशिश की है। प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप मे जनतांत्रिक विचार के पीछे यही मान्यता है और सत्याग्रह विचार का तो यह मूल आधार है। इस विचार के अनुसार मनुष्य की प्रवृत्तियो के चारो ओर बाड लगाकर नहीं, परतु उसकी आतरिक प्रेरणाओ को पख लगवाकर ही हम महामानव-समाज के ध्येय को पहुच सकते हैं। उसकी सृजनशीलता के विकास से ही वह पूर्ण बनता है। स्रष्टा के रूप मे ही वह जिम्मेवार, अभिक्रमशील, प्रसन्नचित्त विश्व-नागरिक बन सकता है। मगर इस दृष्टि को आज तक दुनियावी लोगो ने अव्याव-हारिक माना है। पिछले जमानो मे सत महात्माओ ने इस दृष्टि के प्रयोग से जो कुछ करके दिखाया, उन् सबको असाधारण चमत्कार ही माना गया, जिसमे उन सत-महात्माओ की अलौकिक प्रतिभा अवश्य साबित होती है, मगर समाज के रोजमर्रा के कारोबार मे उनकी कोई कीमत स्वीकृत नही हुई।

पिछले पच्चीस-पचास वर्षों मे जब समाज, मानव तथा मानव के मन को लेकर वैज्ञानिक छानबीन

चली तो मानव-स्वभाव की गहराई की झलक मिलने लगी और दूसरी दृष्टि, शुभ-दृष्टि की पुष्टि वैज्ञानिक सत्य के द्वारा होने लगी है। छोटे बच्चो के शिक्षण क्षेत्र मे यह दृष्टि करीब करीब दुनिया भर मे मान्य हुई है। अपराधियो के सुधार के क्षेत्र मे इसके कारण नये नये आशाजनक प्रयोग हो रहे हैं और पुरानी दृष्टि बदल रही है। मानसिक व्याधियो के इलाज मे अभूतपूर्व सफलताएँ मिलने लगी हैं। ये सारे अहिंसक समाज-विकास की दिशा में बहुत ही आशाजनक लक्षण है।

नई तालीम सिद्धान्तत: इस दूसरी शुभ-दृष्टि पर आधारित है। बच्चो की शिक्षा के सम्बन्ध में, धन्धे, चित्रकारी, बागवानी, संगीत आदि के जरिये आत्म-प्रकाशन तथा सृजन को महत्व का स्थान दिया गया है।

नई तालीम में हमने बच्चो की सृजनशीलता को तो महत्व दिया, मगर वह एक हद पर आकर अटक गया। शरीरश्रम, स्वावलम्बन आदि पर अधिक भार दिये जाने के कारण स्थूल निर्माण को महत्व मिला, यह ठीक भी रहा, मगर जिसके सूक्ष्म पहलू बहुत दूर तक अवहेलित रहे। इसका एक परिणाम हम इसमें देख सकते हैं कि नई तालीम के बाईस सालो में साहित्य का निर्माण तथा वैज्ञानिक शोध तथा चिंतन का पैमाना बहुत ही कम, नगण्य जैसा रहा है।

चारित्र्य निर्माण शिक्षण का एक मुख्य काम है यह सबने माना है। मगर चारित्र्य निर्माण याने विधि-निषेध और अनुशासन के जंजीर में आत्मा का जकड़ना—इस पुराने विचार से नई तालीम बहुत दूर गयी है क्या? शायद नहीं। हाथ के काम, सहजीवन, स्वशासन आदि का उद्देश्य अलबत्ता यही है और उनके द्वारा नव चित्त-विकास की शुरुआत नई तालीम में हुई है। मामूली शाला के बच्चो की तुलना में बुनियादी शालाओं के बच्चो में कहीं अधिक स्वतंत्रता तथा स्वशासन पाये जाते हैं। मगर हम इससे आगे बढ़े नहीं हैं। इस समस्या की गहराई में हम गये नहीं हैं। इनका स्थूल बाह्य कर्मकाण्ड को ही हमने पर्याप्त मान रखा।

हमारी नई तालीम की संस्थाओ तथा दूसरे आश्रमो आदि संस्थाओं में इस पुरानी पद्धति का ही कोई न कोई रूप चलता है। संस्कारग्रस्त मानव बनाने की जो परंपरागत पद्धति है हम भी उसका उपयोग करते हैं, गांधीवाद या सर्वोदय का एक संस्कार उनमें कायम करने के लिये। पुराने संस्कार-ग्रस्त मन की जगह नये संस्कार-ग्रस्त मन के निर्माण की कोशिश हम करते हैं। इसलिये बीस साल में भी पुराने मूल्यो को चुनौती देनेवाली तीक्ष्ण बुद्धि, समाज के अन्यायो के खिलाफ बगावत करनेवाली तीव्र भावना नई तालीम में से कम ही पैदा हुई है।

अक्सर पाया जाता है कि सर्वोदयी सेवको के बच्चे अपनी माता-पिता के आदर्श के खिलाफ बगावत करते हैं। नई तालीम की संस्थाओ के लड़के संस्था के खिलाफ हो जाते हैं। ऐसा क्यो होता है? इसका कारण गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए। आजकल के लड़के वैसे वैसे हो गये हैं यह कहकर संतोष कर लेना मानसिक आलस्य है। जिसका एक मुख्य कारण यही है कि जिनको हम जीवन-निष्ठायें मानते हैं उनका हम गलत ढंग से प्रयोग करते हैं। उनका असर इस प्रकार होता है जिससे बच्चो को लगता है कि इनके द्वारा हम वंचित हो रहे हैं, एक नये पूर्णतर जीवन की दीक्षा उनको मिल रही है, वैसा उनको लगता नहीं है।

एक अंग्रेजी का उदाहरण लीजिये। इस बारे मे बहुत असंतोष है। लड़के चाहते हैं कि अंग्रेजी सीखें और हम उनको अटकाते है। मैं तो मानता हू कि उत्तर बुनियादी मे अंग्रेजी, रशियन आदि विदेशी भाषाओ के अध्ययन की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये थी और उन भाषाओ से मातृ-भाषाओ मे अनुवाद करनेवाले विद्वान तैयार किये जाने चाहिये थे। आज भी यह होना चाहिये, इस तरह से भी हम अपनी भाषाओ का सामर्थ्य बढा कर अंग्रेजी पर अवलंबन घटा सकेंगे।

एक बुनियादी शाला मे मैंने देखा कि लड़के वालीबाल खेल रहे थे और इस संबंध मे वहां के प्रधान बहुत ही खेद भावापन्न हैं कि यह एक अनीतिमय कार्य हो रहा है जिसमे लड़को के आग्रह के कारण

मजबूर होकर उन्हें सम्मति देनी पड़ी है । एक दूसरी शाला में वालीबाल खेलने पर सख्त मनाई थी। लड़के बाहर आकर खेलते थे और अपराधी की तरह मुंह बनाये लौटते थे।'क्या यह कोई तरीका है? दूसरे देशी खेल खेल सकते हैं, इसलिए उनके लिए रुचि पैदा की जा सके तो अच्छा है। इस प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, इस प्रकार के छोटे-छोटे आग्रहों में फंस कर हम बड़ी-बड़ी बातों को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। मुख्य शाश्वत गुणों का विकास एक बाजू रह जाता है।

राष्ट्रीयता भी इसका एक कारण है। राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण हमारी दृष्टि पीछे की ओर निबद्ध रही। अपने सारे विचारों की जड़ हमने अपनी प्राचीन परंपराओं में ही ढूंढने की कोशिश की। बाहर की दुनिया की कोई देन स्वीकार करने से इनकार करने की वृत्ति की प्रधानता रही। प्रचलित सरकारी शिक्षा में चारित्र्य निर्माण का अभाव रहा तो उस "पाश्चात्य" शिक्षा के खिलाफ हम "प्राच्य" परंपरा में चारित्र्य निर्माण के तरीके ढूंढने लगे। इसकी पराकाष्ठा हिंदु धर्म के संस्कार चाहनेवाले विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के द्वारा चलायी जानेवाली शालाओं में देखने को मिलते हैं जहां अनुशासन का स्वरूप एकनायकवादी राष्ट्रों को भी मात कर देता है।

इस प्रकार के कई कारणों से हम नये मानव के विकास की दिशा में आगे बढ़ नहीं सके हैं। अब हम आगे बढ़ने का रास्ता ढूंढना चाहिए। आज दुनिया में ऐसा मनुष्य चाहिए जो आत्मस्थ हो, अपने दिमाग को साबित रखे जिनके मन संस्कारों से जकड़े हुए न हों, जीवन में उत्साह हो, भावना उदार हो, सारी दुनिया से लोहा लेने की जिनकी हिम्मत हो। इस मानव विज्ञान का एक विभाग सामाजिक सत्याग्रह है, एक विभाग शिक्षण है। विभागों में इसकी खोज होनी चाहिए।

आज हमारे देश में विद्यार्थियों में एक चहल पहल, एक अशांतता का वातावरण है। नई तालीम के पास इसका कोई हल है क्या? इस विषय पर हमने कुछ सोचा है? कुछ प्रयोग किये हैं? यह एक चिंतनीय विषय है कि विनोबाजी को छोड़कर बाकी कई सर्वोदय-सेवकों ने इस समस्या के जो हल सुझाये हैं उनमें अधिकतर दबाव और रोक की बू आती है। विद्यार्थी संघ बंद करवाओ, राजनीतिक को शिक्षानुष्ठानों में घुसने मत दो। ये कोई अहिंसा के, स्वतंत्रता के तरीके हैं क्या? सामाजिक कारणों का दूर करना तो समाज-सुधार या समाज क्रान्ति का काम है, मगर शिक्षण में जो दोष हैं उनके बारे में छान-बीन करना, रास्ता बताना नई तालीम जैसे शैक्षणिक आंदोलन का काम है। अपनी शालाओं में से इस प्रकार के मानव तैयार करके हम बतायें। मगर इसके लिए हमें मानव मानस की गहराई में जाना होगा, जिसको विनोबा आत्मविद्या कहेंगे-उसकी गहराई में जाना होगा। नये प्रयोग करने पड़ेंगे। आज दुनिया में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं और मुझे लगता है कि वे लोग गहराई में हमसे कहीं ज्यादा आगे बढ़े हुए हैं जबकि अहिंसा की सौगन्ध खानेवाले हमीं लोगों को सबसे ज्यादा आगे बढ़ा हुआ होना चाहिए था।

बीस बाईस साल पहले कुछ मुख्य तत्वों का समावेश नई तालीम में हुआ। उनमें कुछ तत्वों का स्वीकार राष्ट्र की ओर से हुआ है जैसे सात साल की अनिवार्य और मुफ्त तालीम। कुछ तत्वों का स्वीकार तो सिद्धान्त हुआ है। लेकिन अमल में आनाकानी है जैसे शिक्षण में श्रम का स्थान। कुछ तत्वों को स्वीकार करने के बारे में ही आनाकानी या विरोध है, जैसे परीक्षा के बारे में ही हमारी दृष्टि। इन सबके बारे में प्रयत्न तो जारी रहेगा, मगर सिर्फ इनको ही पूंजी मानकर नई तालीम आगे नहीं बढ़ सकती है। जैसे मैंने शुरू में कहा है, गहराई में जाकर, सार्वभौम शिक्षण विज्ञान में नये-नये आविष्कारों का अंतर्भाव करते रहने में ही उसकी सजीवता और शक्ति कायम रहेगी।

पुस्तक परिचय

टु फीड द हग्री–लेखक, दानिलो दोल्ची

प्रकाशक मेकगिवन एड को, मूल्य–तीस शिलिंग।

विक्रेता–रूपा एण्ड कपनी, कलकत्ता–१२।

इस किताब से किस बात की अपेक्षा नहीं करनी है, यह शुरू में ही कह देना शायद ठीक होगा। दानिलो दोल्ची अक्सर "इटली के गांधी" कहलाते हैं। उन्होंने खुद भूखों को खिलाने के लिए क्या प्रयत्न किये हैं, इसका कोई वर्णन इस किताब में नही है। सिसिली के द्वीप में गरीब जनता जिस भयकर हालत में जिन्दगी बिताती है, उसके बारे में जनमानस को जाग्रत करने के लिए उन्होंने उपवास और सत्याग्रह किये हैं, लेकिन इसका भी कोई जिक्र किताब में नहीं है। न ही इसमें उन योजनाओ और कामो का कोई वर्णन है जो उन्होंने वहा की हमेशा की बेकारी और भूख का सामना करने के लिए शुरू किये थे।

दानिलो दोल्ची ने खुद इस किताब को "पालेमेरो की तलाश" नाम दिया है। पालेमेरो शहर में पाच लाख की आबादी है, उसमें से दो लाख करीब-करीब हमेशा ही बेकारी में रहते हैं। वहा के देहातों की हालत भी इससे कुछ विशेष भिन्न नहीं है। तलाश इस बारे में थी कि ये सब लोग जिन्दा रहते कैसे हैं? पुस्तक के पहले भाग में जिसको "गवाही" नाम दिया है, तीस स्त्री पुरुष अपनी जिन्दगी की करुण कहानी अपने ही शब्दो में कहते हैं। दूसरे भाग में जो कि पहले से बहुत छोटा है, कुछ प्रश्नों के पत्र से लोगो के द्वारा दिये गये उत्तर हैं। प्रश्न ऐसे थे–"तुम कबतक बेरोजगार होते हो?" "अपना निर्वाह कैसे करते हो? तुम्हारे विचार मे इस स्थिति को बदलने के लिए, राजनैतिक पार्टियों को और हम सब को क्या करना चाहिये।" कहानियो के पहले वहा की परिस्थितियो का सक्षिप्त वास्तविक वर्णन है–एक कमरे मे कितने लोग रहते हैं, कितने लोगो को एक ही बिस्तरे मे सोना पडता है, रोग, अज्ञता और निरक्षरता।

ऑलडस हक्स्ली पुस्तक के अग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना मे सच ही लिखते हैं कि "यह किताब ब्रह्माण्ड के पैमाने पर दुख और ग्लानि का अनुभव देनेवाली है।" लेकिन पालमेरो अपने मे कोई निराला नही है। कलकत्ता या बबई के गरीबों के जीवन की एक तलाशी हुई तो कैसा चित्र सामने आयेगा? या किसी भी गाव के भूमिहीन गरीबों की जिन्दगी का? ऐसी शासनव्यवस्था के—जिसका शासितो के साथ कोई मानवीय सबन्ध नही है, जिसमे कार्यक्षमता भी नही–दुष्परिणाम वहा क्या कम दीखने मे आएगें? अधिकारोन्मत्त, भावनाशून्य मालिको या भ्रष्टाचारी अधिकृतो के सामने दरिद्र जनता की गुलामी क्या कम भयकर है? दोल्ची की रोमाचकारी पुस्तक हम सब के लिए चुनौती है–जो अच्छे खाते-पीते और अच्छे घरो में रहते हैं, सिर्फ इटली के नही, दुनिया भर के। ये "गवाह" दया और भिक्षा नहीं चाहते हैं, उससे घृणा करते हैं–उनकी माग सच्चे, उपयोगी, नियमित काम की है और ऐसी समाज व्यवस्था की, जिसमें सब को काम मिले।

दानिलो दोल्ची इस जनता की आवाज सब को सुनाने में समर्थ हैं, क्योंकि वे उनके साथ रहते हैं, उनके कष्टो का अनुभव करते हैं। दोल्ची मे मानवीय सहानुभूति और वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टि–अहिंसा और विज्ञान–का मेल है।

–मार्जरी

मजबूर होकर उन्हें सम्मति देनी पड़ी है। एक दूसरी शाला में वालीबाल खेलने पर सख्त मनाई थी। लड़के बाहर जाकर खेलते थे और अपराधी की तरह मुंह बनाये लौटते थे। क्या यह कोई तरीका है? दूसरे देशी खेल खेल सकते हैं, इसलिए उनके लिए रुचि पैदा की जा सके तो अच्छा है। इस प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, इस प्रकार के छोटे-छोटे आग्रहों में फंस कर हम बड़ी-बड़ी बातों को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। मुख्य शाश्वत गुणों का विकास एक बाजू रह जाता है।

राष्ट्रीयता भी इसका एक कारण है। राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण हमारी दृष्टि पीछे की ओर निबद्ध रही। अपने सारे विचारों की जड़ हमने अपनी प्राचीन परंपरा में ही ढूंढने की कोशिश की। बाहर की दुनिया की कोई देन स्वीकार करने से इनकार करने की वृत्ति की प्रधानता रही। प्रचलित सरकारी शिक्षा में चारित्र्य निर्माण का अभाव रहा तो उस "पाश्चात्य" शिक्षा के खिलाफ हम "प्राच्य" परंपरा में चारित्र्य निर्माण के तरीके ढूंढने लगे। इसकी पराकाष्ठा हिन्दु धर्म के संस्कार चाहनेवाले विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के द्वारा चलायी जानेवाली शालाओं में देखने को मिलते हैं, जहां अनुशासन का स्वरूप एकनायकवादी राष्ट्रों को भी मात कर देता है।

इस प्रकार के कई कारणों से हम नये मानव के विकास की दिशा में आगे बढ़ नहीं सके हैं। अब हमें आगे बढ़ने का रास्ता ढूंढना चाहिए। आज दुनिया में ऐसा मनुष्य चाहिए जो आत्मस्थ हो, अपने दिमाग को साबित रखे जिनके मन संस्कारों से जकड़े हुए न हों, जीवन में उत्साह हो, भावना उदार हो, सारी दुनिया से लोहा लेने की जिनकी हिम्मत हो। इस मानव विज्ञान का एक विभाग सामाजिक सत्याग्रह है, एक विभाग शिक्षण है। विभागों में इसकी खोज होनी चाहिए।

आज हमारे देश में विद्यार्थियों में एक चहल-पहल, एक अशांतता का वातावरण है। नई तालीम में-काम इसका कोई हल है क्या? इस विषय पर हमने कुछ सोचा है? कुछ प्रयोग किये हैं? यह एक चिंतनीय विषय है कि विनोबाजी को छोड़कर बाकी कई सर्वोदय-सेवकों ने इस समस्या के जो हल सुझाये हैं उनमें अधिकतर दबाव और रोक की बू आती है। विद्यार्थी संघ बंद करवाओ, राजनीतिकों को शिक्षानुष्ठानों में घुसने मत दो। ये कोई अहिंसा के, स्वतंत्रता के तरीके हैं क्या? सामाजिक कारणों का दूर करना तो समाज-सुधार या समाज-क्रान्ति का काम है, मगर शिक्षण में जो दोष हैं उनके बारे में छान-बीन करना, रास्ता बताना नई तालीम जैसे शैक्षणिक आन्दोलनों का काम है। अपनी शालाओं में से इसी प्रकार के मानव तैयार करके हम बतायें। मगर इसके लिए हमें मानव-मानस की गहराई में जाना होगा, जिसको विनोबा आत्मविद्या कहेंगे-उसकी गहराई में जाना होगा। नये प्रयोग करने पड़ेंगे। आज दुनिया में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं और मुझे लगता है कि वे लोग गहराई में हमसे कहीं ज्यादा आगे बढ़े हुए हैं जबकि अहिंसा की सौगंध खानेवाले हमीं लोगों को सबसे ज्यादा आगे बढ़ा हुआ होना चाहिए था।

बीस बाईस साल पहले कुछ मुख्य तत्वों का समावेश नई तालीम में हुआ। उनमें कुछ तत्वों का स्वीकार राष्ट्र की ओर से हुआ है जैसे सात साल की अनिवार्य और मुफ्त तालीम। कुछ तत्वों का स्वीकार तो सिद्धान्त हुआ है। लेकिन अमल में आनाकानी है जैसे शिक्षण में श्रम का स्थान। कुछ तत्वों को स्वीकार करने के बारे में ही आनाकानी या विरोध है, जैसे परीक्षा के बारे में ही हमारी दृष्टि। इन सबके बारे में प्रयत्न तो जारी रहेगा, मगर सिर्फ इनको ही पूंजी मानकर नई तालीम आगे नहीं बढ़ सकती है। जैसे मैंने शुरू में कहा है, गहराई में जाकर, सार्वभौम शिक्षण विज्ञान में नये-नये आविष्कारों का अंतर्भाव करते रहने में ही उसकी सजीवता और शक्ति कायम रहेगी।

पुस्तक परिचय

टु फीड द हंग्री—लेखक, दानिलो दोल्ची

प्रकाशक मेकगिबन एंड को., मूल्य—तीस शिलिंग।

विक्रेता—रूपा एण्ड कंपनी, कलकत्ता—१२।

इस किताब से किस बात की अपेक्षा नहीं करनी है, यह शुरू में ही कह देना शायद ठीक होगा। दानिलो दोल्ची अक्सर "इटली के गांधी" कहलाते हैं। उन्होंने खुद भूखों को खिलाने के लिए क्या प्रयत्न किये हैं, इसका कोई वर्णन इस किताब में नहीं है। सिसिली के द्वीप में गरीब जनता जिस भयंकर हालत में जिन्दगी बिताती है, उसके बारे में जनमानस को जाग्रत करने के लिए उन्होंने उपवास और सत्याग्रह किये हैं, लेकिन इसका भी कोई जिक्र किताब में नहीं है। न ही इसमें उन योजनाओं और कामों का कोई वर्णन है जो उन्होंने वहां की हमेशा की बेकारी और भूख का सामना करने के लिए शुरू किये थे।

दानिलो दोल्ची ने खुद इस किताब को "पालेर्मो की तलाश" नाम दिया है। पालेर्मो शहर में पांच लाख की आबादी है, उसमें से दो लाख करीब-करीब हमेशा ही बेकारी में रहते हैं। वहां के देहातों की हालत भी इससे कुछ विशेष भिन्न नहीं है। तलाश इस बारे में थी कि ये सब लोग जिन्दा रहते कैसे हैं? पुस्तक के पहले भाग में जिसको "गवाही" नाम दिया है, तीस स्त्री पुरुष अपनी जिन्दगी की करुण कहानी अपने ही शब्दों में कहते हैं। दूसरे भाग में जो कि पहले से बहुत छोटा है, कुछ प्रश्नों के पांच सौ लोगों के द्वारा दिये गये उत्तर हैं। प्रश्न ऐसे थे—"तुम कबतक बेरोजगार होते हो?" "अपना निर्वाह कैसे करते हो? तुम्हारे विचार में इस स्थिति को बदलने के लिए राजनैतिक पार्टियों को और हम सब को क्या करना चाहिये।" कहानियों के पहले वहां की परिस्थितियों का संक्षिप्त वास्तविक वर्णन है—एक कमरे में कितने लोग रहते हैं, कितने लोगों को एक ही बिस्तरे में सोना पड़ता है, रोग, अज्ञता और निरक्षरता।

ऑल्डस हक्स्ली पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना में सच ही लिखते हैं कि "यह किताब ब्रह्माण्ड के पैमाने पर दुख और ग्लानि का अनुभव देनेवाली है।" लेकिन पालेर्मो अपने में कोई निराला नहीं है। कलकत्ता या बंबई के गरीबों के जीवन की एक तलाशी हुई तो कैसा चित्र सामने आयेगा? या किसी भी गांव के भूमिहीन गरीबों की जिन्दगी का? ऐसी शासनव्यवस्था के—जिसका शासितों के साथ कोई मानवीय संबन्ध नहीं है, जिसमें कार्यक्षमता भी नहीं—दुष्परिणाम वहां क्या कम दीखने में आएंगे? अधिकारोन्मत्त, भावनाशून्य मालिकों या भ्रष्टाचारी अधिकृतों के सामने दरिद्र जनता की गुलामी क्या कम भयंकर है? दोल्ची की रोमांचकारी पुस्तक हम सब के लिए चुनौती है—जो अच्छे खाते-पीते और अच्छे घरों में रहते हैं, सिर्फ इटली के नहीं, दुनिया भर के। ये "गवाह" दया और भिक्षा नहीं चाहते हैं, उससे घृणा करते हैं—उनकी मांग सच्चे, उपयोगी, नियमित काम की है और ऐसी समाज व्यवस्था की, जिसमें सब को काम मिले।

दानिलो दोल्ची इस जनता की आवाज सब को सुनाने में समर्थ हैं, क्योंकि वे उनके साथ रहते हैं, उनके कष्टों का अनुभव करते हैं। दोल्ची में मानवीय सहानुभूति और वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टि—अहिंसा और विज्ञान—का मेल है।

—मार्जरी

Regd. No. N-106

स्वावलम्बन के तीन अर्थ

स्वावलंबन के तीन अर्थ हैं। अपने निर्वाह के लिए दूसरों पर आधार रखना न पडे, यह उसका पहला अर्थ है। उसका दूसरा अर्थ यह है कि ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्र शक्ति जाग्रत हो और तीसरा अर्थ यह है कि मनुष्य में अपने-आप पर, मन इन्द्रियां आदि पर काबू रखने की शक्ति निर्माण हो। शरीर, बुद्धि और मन तीनों की पराधीनता मिटनी चाहिये।

श्री. सदाशिव भट, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

उत्तर बुनियादी शिक्षा
विशेषांक

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

नवम्बर १९६०
वर्ष : ९ अंक : ५

नई तालीम

[अ भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

नवम्बर १९६०

वर्ष ९ अंक ५.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मंगाने पर ६२ न पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष ९ अक ५ ★ नवम्बर १९६०

अेक समवाय पाठ की सभा

सभा में बच्चे भी थे, बहनें भी थी, बडे लोग भी थे। उन सब की तरफ देखकर विनोबाजी ने कहा, "यह गोलमाल सभा है।" इस पर सब हस पडे। फिर उन्होंने चद शब्द कहे।

विनोबाजी, "यह एक मिश्रित सभा है। इस तरह का मिश्रण दुनिया में सब जगह होता है। हमारी प्रार्थना के समय भी बच्चे, बूढे, बहनें सब एक साथ बैठते हैं। खाने के समय हम सब इकट्ठा बैठते हैं, यानी ज्ञान भी इकट्ठा पा सकते हैं। लेकिन कुछ लोगो को लगता है कि बच्चे और बूढे इकट्ठा ज्ञान कैसे पा सकेंगे? किन्तु हमने देखा है कि कई जगह रामायण गायी जाती है तो सब साथ गाते हैं, जिसमें बडे, बूढे, बच्चे रहते हैं। वही भजन सब गाते हैं और अपने-अपने ढग से उसका अर्थ समझते हैं। यह अलग बात है कि कालेज की तालीम में बच्चे नही बैठ सकते हैं। लेकिन जो तालीम सब के लिए है, वह सब को पसद है। मैं बच्चो से एक प्रश्न पूछता हू—मान लीजिये बहुत ठड है और सूरज उग रहा है, तो तुम धूप में जाओगे?"

सब बच्चो ने चिल्लाकर जवाब दिया, "हा जायेंगे।"

"बूढे जायेंगे?"

बच्चो ने कहा, "हा।"

"सूरज से सब को आनद होता है—बच्चो को भी और बूढो को भी। गरमी में बच्चे तालाब में नहाने जायेंगे?"

बच्चे चिल्लाये, "हा।"

"और बूढे जायगे? बहनें जायेंगी?"

बच्चो ने कहा, "हा"

विनोबाजी, "तालाब में नहाना सबको प्यारा लगेगा। क्योंकि गरमी है। ठड में धूप सब को प्यारी लगेगी। वैसे ही भगवान का

भजन सब को अच्छा लगेगा। लड्डू बच्चो को अच्छा लगेगा और बडो को भी। यह अलग बात है कि बूढा उसे हज्म नही कर पायेगा, इसलिए नही खायेगा। लेकिन लड्डू खाने का आनद जितना बच्चो को मिलता है, उतना ही बूढो को मिलता है। इसलिए ऐसी गोल-माल सभा में बोलने में हमें कुछ भी तकलीफ नही होती है।"

"अब हम आपको एक भजन सिखायेंगे। हम गाते जायेंगे और हाथ से ताली बजाते जायेंगे। मुह से गायेंगे, हाथ से ताली बजायेंगे और पाव से नाचेगे तो उत्साह आयेगा। क्या घटा भर ऐसे ही बैठा रहेगे तो अच्छा लगेगा?"

बच्चो ने कहा, "नही लगेगा।" विनोबाजी ने कहा, लोग कहते है कि हम आपसे बात करना चाहते है। हम कहते है कि घूमते घूमते बात करो। इस पर वे कहते है कि हम चार बजे कैसे उठेंगे और आपकी रफ्तार से कैसे घूमेंगे? लेकिन घूमना बहुत जरूरी है। बच्चो, मै तुम्हें एक शास्त्र-वचन सुनाऊगा। अपने शास्त्रकारो ने कहा है, "कलि शयानो भवति" जो सोता रहेगा, वह कलियुग में जायगा। "संजिहानस्तु द्वापर:"- जो बैठेगा वह द्वापर युग में जायगा। "उत्तिष्ठन् त्रेता भवति"- जो खडा रहेगा, वह त्रेतायुग में रामजी के साथ जायगा। और "कृत सपद्यते चरन्"-जो चलने लगेगा, वह सत्ययुग में जायेगा। इसलिए कलियुग में क्या रहते हो? अच्छी तरह से चल सकते हो, दौड सकते हो, तो दौडना चाहिए।"

विनोबाजी ने बच्चो से पूछा कि जो पाच मील से ज्यादा चले है, वे हाथ उठायें। इस पर कई बच्चो ने हाथ उठाया। उसके बाद पूछा कि जो दस मिल चले है, वे हाथ उठायें। इस तरह पंद्रह मील तक पूछा। और फिर कहा, "अपना हिंदुस्तान बहुत बडा देश है। दो हजार मील लबा है। दो हजार याने कितना? आप लोग दस तो जानते है। इस तरह दस-बार-दस किया तो सौ होता है। और दस बार सौ किया तो एक हजार। ऐसे उसका दो गुना याने दो हजार। इतना लबा और इतना ही चौडा देश है। ऐसे देश में हम पैदा हुए है तो खूब घूमने की आदत होनी चाहिए। उससे हम मजबूत बनेंगे और सारा देश देख सकेंगे। तुम भी रोज घूमा करो। मैदान में घूमोगे या टीले पर?"

बच्चो ने जवाब दिया, "टीले पर"।

इस वाक्य पर विनोबाजी ने कहा कि बच्चे तो ऊचे ही जायेंगे। और सभा से पूछा कि बच्चे ऊचे है या बूढे?

बच्चो ने जवाब दिया, "बच्चे।" यह सुन विनोबाजी ने कहा," "लोग समझते है कि बच्चे छोटे है, लेकिन बच्चे ऊचे है। क्योकि वे टीले पर जायेंगे। हम चाहते है कि सब बच्चे ऊपर चढें, खुली हवा में खूब खेलें। ऊपर चढने पर दूर का दीखता है, जो यहा से नही दीख सकता। हम जितने ऊचे जाते है, उतना दूर का देखते हैं। मनुष्य दूर का देखना तो चाहता है, लेकिन ऊचा चढना नही चाहता मैने ऐसे लोग देखे है जो बहुत सोचते है। मै उनसे कहता हू कि कितना लबा-चौडा सोचोगे? आचरण ऊचा करो तो लबा सोच सकोगे। मनुष्य आचरण ऊचा करता है, तो फिर बहुत दूर का देख सकता है।"

इसके बाद विनोबाजी ने कहा, "मै आपको एक भजन सिखाऊगा।"

(शेषाश पृष्ठ १३५ पर)

विश्वविद्यालय के स्तर की शिक्षा

मार्जरी साइक्स

इस लेख के विषय के बारे में उपयोगी चर्चा करने के लिए यह जरूरी है कि विश्वविद्यालय से हमारा क्या मतलब है, इसके बारे में पहले अपने मन में स्पष्ट चिन्तन करें। असल में आधुनिक विश्वविद्यालय कई पद्धतियों के अनुसरण कर रहे हैं, लेकिन इन सब के बुनियादी सिद्धान्त और उद्देश्य क्या होने चाहिये ?

अंग्रेजी में जो "यूनिवर्सिटि" शब्द है और भारतीय भाषाओं में आजकल जिसको "विश्वविद्यालय" कहते हैं उन दोनों शब्दों का प्रारंभिक तात्पर्य एक ही है। विश्वविद्यालय ऐसी एक शिक्षा का केन्द्र है, जो "वैश्व" है, याने अपनी दृष्टि में "विश्व व्यापक" है। उसमें किसी तरह की संकीर्ण दृष्टि, वर्गीय भावना या वास्तविकता के (सत्य के) अध्ययन और मनन में किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं होगा। "प्रान्तीय विश्वविद्यालय"—इस शब्द का प्रयोग इस दृष्टि से परस्पर विरोधी होता है। विश्वविद्यालय को एक स्थान तो चाहिये, वह किसी विशेष क्षेत्र में या नगर में बसा हुआ होगा। वह किसी विशेष दार्शनिक दृष्टि के विद्वानों से प्रभावित हो सकता है। लेकिन उसकी प्रवृत्तियां और उसका जीवन किसी मनुष्यकृत बन्धनों और सीमाओं से बंधा हुआ नहीं होना चाहिये। एक पुराने लेटिन लेखक का यह प्रसिद्ध वाक्य है—"जो भी मानवीय है, वह मेरे लिए गैर नहीं है," और यही विश्वविद्यालयों का आदर्श होना चाहिये। नहीं तो वह एक विद्वत्ता का स्थान हो सकता है, लेकिन विश्वविद्यालय का पूरा उद्देश्य उससे प्राप्त नहीं होगा।

विश्वविद्यालय के विचार के सारभूत सिद्धान्त उसके प्रारंभिक इतिहास के अध्ययन से ज्यादा स्पष्ट रूप से समझ में आएंगे। भारतीय तथा यूरोपीय विश्वविद्यालयों के प्रारंभिक इतिहास में कितना साम्य है, यह देखना एक बहुत दिलचस्प और मार्के की बात है। उदाहरणार्थ यूरोप में इटली के पाडुआ, फ्रान्स के पेरिस और इंग्लैण्ड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों से विद्यार्थी और विद्वान एक दूसरे विद्यास्थानों में खूब आते जाते थे, ठीक वैसे ही इस विशाल देश के बड़े विश्वविद्यालयों के बीच भी विद्वानों का यथेष्ट आवागमन होता रहता था। उनकी आत्मा वैश्व थी और राष्ट्रीय सीमाएं उनके लिए कोई बाधा नहीं होती थीं। लेकिन इस विश्वभावना के अलावा और भी दो प्रकार से यूरोप और भारत के विश्वविद्यालयों में सारभूत साम्य दिखाई देता है। इन सब का पहला साधारण गुणधर्म यह है कि विश्वविद्यालय वे स्थान हैं, जहां गुरु मिलते हैं। भारत में और यूरोप में

विद्यार्थियो ने विख्यात शिक्षकों के पदमूल में बैठने के लिए लबी और सकटपूर्ण यात्राए की और कठिनाइयो को सहन किया। विश्वविद्यालय का केन्द्र एक गुरु या गुरुओं का समूह था जो अपने शिष्यो के साथ निरतर ज्ञान प्राप्ति के काम में सलग्न रहता था। ये गुरु-शिष्य सत्य प्रेम के एक सूत्र में बधे हुए थे। गुरु से शिष्यो को सतत प्रेरणा मिलती थी और शिष्यो की विद्योपार्जन की उत्सुकता गुरु के लिए प्रेरणादायी होती थी। इस सम्मिलित साधना से उनके ज्ञान की सीमाए विशाल और उनकी समझ निरंतर गहरी होती जाती थी।

इन प्रारभिक विश्वविद्यालयो का दूसरा साधारण गुणधर्म पहले में से ही निकला और वह एक सादे अनुशासनयुक्त सामूहिक जीवन का विकास था, जिसमें गुरु और शिष्य दोनो भाग-भाक् होते थे। यूरोप में इन विद्वत्समुदायो का विकास विद्यार्थियो की उस समय की अनुशासनहीन उच्छृखलता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, इसलिए उनमें एक प्रकार की कट्टरता थी, नवयुवको की स्वाभाविक आवश्यकताओ और मागो का ख्याल इनमें नही रखा गया था। अकसर धनी परिवारो के लडको के लिए विशेष छूटें दी जाती थी। फिर भी कवि चौसर ने उस समय के "विद्वान" की जो वर्णना की है उससे साफ मालूम होता है कि "सादा जीवन और उच्च विचार" भारत के जैसे ही यूरोप के भी विश्वविद्यालयो का आदर्श था।

विश्वविद्यालयो के इन तीन आधारभूत आदर्शों के साथ-साथ अब हम देखें कि विनोबा जी नई तालीम में गुरुशिष्यो के सृजनात्मक सम्बन्ध के बारे में क्या कहते हैं।

"विद्यार्थियों के लिए गुरु सेवा और शिक्षकों के लिए विद्यार्थी-सेवा पर्याप्त ध्येय, एकमात्र ध्येय और अनन्य ध्येय होना चाहिए और दोनों मिलकर परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं, ऐसी अनुभूति होनी चाहिए।"

"इसके लिए कुछ बातें बहुत लाभदायक होती हैं जैसे अगर दोनो मिलकर खेती करना कपडा बुनना, सफाई आदि जैसा कोई उत्पादक कार्य करते हों और दोनो का सामूहिक जीवन बनता हो, तो बडी लाभदायी वस्तु हो जाती है। उसी तरह दोनो मिलकर अध्ययन-अध्यापन करते हैं, तो वह भी एक स्वतन्त्र ध्येय के लिए है। इसके जरिये हम समाज की सेवा कर रहे हैं, ऐसी अनुभूति होनी चाहिए। अगर इस तरह का अनुभव अध्यापन में और उद्योग में आता हो, तो आज पुस्तकों की जो समस्या है, वह नही उठेगी याने दोनो प्रकार के अनुभवो से जरूरी पुस्तक वहा पर निर्माण होगी।"

विचार-मन्थन और प्रयोग की एकता

"नई तालीम के विद्यालय से हम हमेशा यह आशा करते हैं कि उसमें विचारो का खूब अध्ययन चले और उसके आचरण से, जो गुरु और शिष्य, दोनों मिलकर करते हैं, दुनिया को अनुभवयुक्त ज्ञान मिलता है। जहा विचार-मन्थन और प्रयोग, दोनों एक हो जाते हैं, घुल-मिल जाते हैं, उसे ही 'नई तालीम' कहते हैं। जहा कुछ विचार-मन्थन चलता है, परन्तु उसे आचरण का आधार नही मिलता, वहां पर पुरानी तालीम चलती है, जो आज सर्वत्र चल रही है। जहा पर प्रत्यक्ष आचरण चलता है, आचरण के प्रयोग चलते हैं, परन्तु विचारमन्थन, चर्चा आदि नही चलती, वह है कर्मयोग, जो

आज असख्य किसान सचाई से कर रहे हैं। इस तरह इधर से यह किसान और उधर से वे तत्वज्ञानी, दोनो मिलकर जो चीज बनती है, वह है, नई तालीम का शिक्षक और विद्यार्थी।".

इन वाक्यो में विश्वविद्यालयो के वही ऐतिहासिक ध्येय मिलते है। विश्वजनीन दृष्टि और ध्येय, अनुसन्धान और ज्ञानोपासना के सृजनात्मक कर्म-मार्ग में गुरुशिष्यो की सहयात्रा, सयमपूर्ण और परस्पर घनिष्ठतायुक्त सामूहिक जीवन।

अब नई तालीम विश्वविद्यालय के कार्य-क्रम में इन सिद्धान्तो का साक्षात्कार कैसे सध सकता है? मैं इस लेख में बिना समझौते और शर्तो के मेरी समझ के अनुसार ऐसे एक कार्य-क्रम की रूपरेखा का चित्रण करने का प्रयास करूँगी। फिलहाल भारत की प्रचलित विश्व-विद्यालयों की व्यवस्था में यह कैसे बिठाया जा सकता है इसका विचार नही कर रही हू।

विश्वविद्यालय का सार उसके गुरु या गुरुओ में है। बिना विद्वान् शिक्षक के न शिक्षा हो सकती है, न ज्ञानोपासना और न प्रेरणा मिल सकती है। पहले जगह चुन लेना, इमारतें बनाना और फिर शिक्षको को ढूढना, यह क्रम नहीं होना चाहिए। हमारा पहला काम गुरु को पाना है और फिर उसके लिए अध्ययन, अध्यापन और प्रयोग के लिए सब तरह की स्वतत्रता और सुविधाए उपस्थित करनी है। विनोबा की पदयात्रा एक चलता फिरता विश्वविद्यालय है; क्योंकि विनोबा वहा है। जहा भी रवीन्द्रनाथ गये वहा विश्वभारती थी, केवल शान्तिनिकेतन में नही। जहा भी एक गुरु अपने धर्म का पालन करता है, वही गुरुमन्दिर में विश्वविद्यालय होता है। वह किसी भी ग्राम, नगर या जगल में हो सकता है—जहा भी गुरु हो। इसलिये हमें सोचना यह नही है कि हम हर राज्य में नई तालीम विश्व-विद्यालय शुरू करे या यह तय करे कि ये विद्यालय देहातो में होने चाहियें या शहरो में। हमें प्रारभ इससे करना है कि हम देखें, ढूढें-हम सर्वोदय व नई तालीम के आधारभूत मूल्यो को माननेवालो में से कौन ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जिनके खुले दिल और विचारशील बुद्धि हो, उनमें अनुभवसपन्न ज्ञान हो और जो अपने विद्यार्थियो की और सत्य की सेवा में अपने आपको अर्पित करने के लिए तैयार हो। ये सख्या में बहुत हो या कम, वे ही हमारे नई तालीम विश्वविद्यालयो के न्यष्टि (न्यूक्लियस) हैं।

इसके बाद हमें विद्यार्थियो के—शिष्यो के बारे में सोचना होगा। यह जरूर गुरु का स्वभावसिद्ध अधिकार होना चाहिये कि अपने ही विषय विशेष तथा कर्म प्रणाली के आवश्यक योग्यताओ के आधार पर अपने विद्यार्थियो को चुनने की उन्हें स्वतत्रता हो। एक निर्धारित, अवैयक्तिक, और अक्सर यात्रिक जाच से किसी भी विश्वविद्यालय के किसी भी शिक्षा-क्रम के लिए विद्यार्थी को योग्य ठहरा देने की आज की प्रचलित व्यवस्था नई तालीम के लिए सर्वथा अस्वीकार्य है। विनोबा ने इससे बिलकुल विभिन्न एक समीक्षा के सिद्धान्त को सुझाया है: क्या विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन में आत्मनिर्भर और स्वावलबी है? अगर उसके अन्दर ज्ञान उडेल देने की जरूरत है और वह हर कदम पर शिक्षक के ऊपर निर्भर रहता है, जिस बात को उसे जानने के लिये वह स्वय-प्रवृत्त नही होता है, तो चाहे उसकी उम्र कितनी भी हो, एक विश्वविद्यालय के जीवन

से फायदा उठाने की बौद्धिक परिपक्वता उसमें नहीं है। अमुक जानकारियां शामिल करने मात्र से कोई विश्वविद्यालय के काम के लिए योग्य नहीं होता है, कई अच्छे-अच्छे शिक्षक यह पसन्द करते हैं कि चाहे विद्यार्थी को विषय के बारे में कोई भी जानकारी न हो लेकिन वह ताजी खुली बुद्धि से विश्वविद्यालय में प्रवेश करे। विद्योपार्जन में आत्मनिर्भरता तभी सभव है जब कि विद्यार्थी ने ज्ञानोपार्जन के उपकरणो पर प्रभुत्व पाया हो, वह आत्म-विश्वास के साथ भाषा और गणित की मूलभूत प्रक्रियाओं का व्यवहार कर सके। और उपयुक्त। पुस्तकों से विषय की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हो। अध्ययन में प्रगति तब होती है जब कि जानने, समझने और सेवा तथा कर्म करने की इच्छा और तैयारी हो। इस बात पर साधारणतया सभी सहमत है कि गुरु की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन में आत्मशिक्षा की बौद्धिक तैयारी सोलह-सत्रह साल की उम्र में हो जानी चाहिये।

नई तालीम विद्यालयो को चाहिये कि वे किशोर अवस्था के विद्यार्थियों को इसके लिए तैयार करे। लेकिन जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, विद्यार्थी को प्रवेश देने या न देने का आखिरी निर्णय विश्वविद्यालय के शिक्षकों को खुद करना चाहिये।

विश्वविद्यालयो के स्थान, मकान इत्यादि कैसे हो यह कोई मुश्किल सवाल नहीं है। सादे स्वस्थ सामूहिक जीवन के लिए उपयुक्त घर हो, जहा एकान्त और शान्त अवकाश सभव हो, साथ-साथ सब के मिलकर काम करने और रहने की भी सुविधाएं हो। कर्मशालाएं, प्रयोग शालाएं और अच्छे पुस्तकालय हो। विश्व विद्यालय की अपनी जमीन हो, यह बहुत अच्छा है, क्योंकि वह भी एक प्रकार की कर्मशाला है, और है भी बहुत महत्वपूर्ण, लेकिन हर परिस्थिति में वह अनिवार्य नहीं होती। विश्व-विद्यालय का छोटा-बडा होना एक स्थान पर रहनेवाले गुरुओं की सख्या तथा प्रशिक्षण के ऐसे विद्यार्थियों की सख्या पर निर्भर करेगा जिन्हें गुरु प्रशिक्षण के योग्य समझते हैं। हो सकता है कि कई उत्तम विश्वविद्यालय बहुत छोटे समाज हो, बडा होना वास्तविक सफलता का कोई मापदण्ड नहीं होना चाहिए। जब सख्या बढती है तो वैयक्तिक घनिष्ठता और गुरु शिष्य सबन्ध कम न हो इसका ख्याल रखना पडेगा। एक ही स्थान पर कई प्रकार की "फेकल्टी" काम करे, यह कोई जरूरी नहीं है, जरूरी यह है कि हर विषय का अध्ययन अर्थ गभीर हो और मानवता की समग्र अनु-भूतियो के सबन्ध की दृष्टि उसमें हो।

यहां विश्वविद्यालयो के सिद्धान्तो की रूप-रेखा मात्र पर विचार किया जा रहा है, फिर भी इसके बारे में कुछ कहना आवश्यक है कि आज की परिस्थिति में क्या ऐसी सस्थाओं के काम होने की कोई सभावना है, जब कि प्रचलित विश्वविद्यालयो ने बिलकुल दूसरा ही रूप धारण किया है। दो बातें हैं, जो कर सकते हैं और जिन्हें करना भी चाहिए-चाहे शिक्षा पद्धति कोई भी हो, जिससे कि नई तालीम विश्वविद्यालयो का असली शैक्षणिक आधार पर मूल्याकन हो सके। पहला: विद्यार्थियो को चुनने की पद्धति है, दूसरा विश्वविद्यालय की डिग्री व सर्टिफिकेटों का दुरुपयोग।

पहली बात हर एक शिक्षा केन्द्र को, चाहे वह उच्चविद्यालय हो, प्राविधिक स्कूल

हो, परिचारिकाओ के प्रशिक्षण का अस्पताल हो या अन्य कोई भी उच्चविद्या का केन्द्र हो, जिनकी कार्यक्षमता के लिए प्रशिक्षणार्थियो की मानसिक तथा नैतिक परिपक्वता आवश्यक है, उन्हे अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार अपने विद्यार्थियो को चुनने का अधिकार होना चाहिए। स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट ज्यादा-से-ज्यादा विद्यार्थी की अब तक की सफलता का ही सूचक होता है, भविष्य में स्वतंत्रता और जिम्मेदारी के साथ किसी भी क्षेत्र में काम करने की उसकी योग्यता का वह कोई निर्देशक नही हो सकता। खास कर ये सर्टिफिकेट उसके पहले के काम तथा कुछ जानकारियो की परीक्षा पर ही आधारित होने के कारण भावी सभावनओ का अनुमान करने के आधार नही हो सकते हैं। ऐसी एक लडकी को जो कि चरित्र, वृत्ति और साधारण बुद्धि से परिचारिका के काम के लिए सुयोग्य है, उस काम से क्यो रोकना चाहिये, मात्र इस कारण से कि वह कुछ अन्य विषयो मे, जिनका इस काम के साथ कोई सबन्ध नही है, वह "फेल" हो गई। यह तत्व अब पहचाना जाने लगा है। कुछ इंजिनियरिंग कालेज ऐसी प्रवेश-परीक्षाए चलाते हैं जिनमें उस विशेष विषय के अध्ययन के लिए उम्मीदवार की योग्यता जानने का प्रयास होता है। यह एक नियम के तौर पर सर्वत्र होना चाहिए, न कि अपवाद स्वरूप। उससे आज स्कूल फाइनल परीक्षा के लिए जो भीड और दौड-धूप होती है, वह कम हो जायगी और आत्मनिर्भरता, स्वतंत्र विचार तथा दृष्टि की परिपक्वता को समुचित महत्व मिलेगा।

दूसरी बात असल में इस पहलीवाली बात से ही निकलती है। वह यह कि विभिन्न प्रकार के कामो के लिए स्त्री-पुरुषो को चुनने का कार्य जिन्हे सौंपा है, चाहे वह सरकारी सेवा में हो या किसी अन्य क्षेत्र में, वे इन्ही सिद्धान्तो के अनुसार अपना चुनाव करे। उस विशेष कार्य के लिये उपयुक्त कुशलताओ और वृत्तिया के आधार पर चुनाव हो न कि यूनिवर्सिटी की डिग्री के आधार पर। अवश्य ऐसे कुछ विशेष प्रकार के काम हैं जिनके लिए एक विशेष प्रकार का युनिवर्सिटी-प्रशिक्षण अवश्यक होगा, पर वह एक छोटा प्रतिशत ही होगा। ऐसी नीति आज की यूनिवर्सिटी-डिग्री के कृत्रिम महत्व को हटायगी। उसका मतलब यह होगा कि ज्ञानोपार्जन के बदले केवल मात्र काम मिलने के लिए युनिवर्सिटी में जाने का प्रलोभन नही रहेगा। क्योकि विश्वविद्यालय ऐसे स्थान हैं जहा सत्य और ज्ञान की शुद्ध भाव से उपासना होती है, नही तो वे सच्चे विश्वविद्यालय ही नहीं रहेंगे।

इन दो बातो से सब शिक्षकों के लिए रास्ता खुल जायगा और नई तालीम विश्वविद्यालयों का महत्व स्पष्ट नजर आयेगा।

(पृष्ठ १३० का शेषांश)

तीन स्वरो में, जिसमें लगातार स्वर ऊंचा चढ रहा था, उन्होने बच्चो से, बहनो से और बडों से वही भजन अलग-अलग गवाया और फिर उसका अर्थ बतलाया।

"सब गाइए, परहित बस जिनके मन

सम्पादकीय

बुनियादी शिक्षा का स्वाभाविक अगला कदम : उत्तर बुनियादी शिक्षा

राष्ट्र के सब बच्चों के लिए सात से चौदह साल तक की शिक्षा की योजना के तौर पर महात्मा गाधी ने १९३७ में बुनियादी तालीम की कल्पना देश के सामने रखी। सन् १९३८ के मार्च महीने में हरिपुरा काग्रेस ने उसे राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के तौर पर स्वीकार किया। हरिपुरा अधिवेशन में ही हिन्दुस्तानी तालीमी सघ का निर्माण हुआ और व्यावहारिक शिक्षाक्षेत्र में इस कल्पना को अमल में लाने तथा प्रयोग करने का काम सघ को सौप दिया गया। सेवाग्राम में एक स्कूल खोल कर काम शुरु किया गया। इस योजना में देशभर में बडी दिलचस्पी पैदा हुई, कई प्रान्तीय सरकारो तथा निजी शिक्षण सस्थाओ द्वारा बुनियादी विद्यालय खोले गये। कुछ दिन काम चला, किन्तु देश की राजनैतिक हालत के कारण सरकारी काम बन्द हो गये। १९४२ के आदोलन में गैर सरकारी सस्थाओ में से भी कईयो को काम बन्द कर देना पडा।

१९४४ में गाधीजी रचनात्मक कार्यक्रम में नई तालीम के स्थान तथा उनकी सभावनाओ का एक नया दर्शन लेकर जेल से निकले। उन्होने कहा : हमें अभी तक के काम से सन्तुष्ट होकर रहना नही है। हमें बच्चों के घरों में प्रवेश करना है, उनके मां-बाप को शिक्षा देनी है। नई तालीम को अक्षरश: जिन्दगी के लिए तालीम होनी है–हर उम्र के हर एक को शिक्षा उसमें आनी चाहिये।

सारे देश में बुनियादी तालीम की संभावनाओ के बारे में दिलचस्पी पुन: जागृत हुई। सेवाग्राम में १९४४-४५ में एक शिक्षा सम्मेलन हुआ जिसमें बुनियादी शिक्षा के बाद की शिक्षा के बारे में भी विचार विनिमय हुआ। इसी के फलस्वरूप उत्तर बुनियादी शिक्षा की योजना देश के सामने आयी। सेवाग्राम की बुनियादी पाठशाला की पहली टोली के बच्चो ने अपना शिक्षाक्रम पूरा किया था, तो स्वाभाविक ही प्रश्न खडा हुआ कि जो बालक आगे की शिक्षा लेना चाहते हैं और उसके योग्य भी हैं, उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जाय। आठ साल की शिक्षा एक विशिष्ट ढग से पाने के बाद साधारण हायर सेकन्ड्री स्कूलो में बालक चले जायें, यह विचार गाधीजी को भला कैसे भा सकता था। तब बनी यह उत्तर बुनियादी शिक्षा की योजना।

इस योजना के आधार पर पिछले १४ वर्षों में कई जगह काम हुआ। फिलहाल पचास से भी अधिक उत्तर बुनियादी शिक्षा के विद्यालय देश में सरकारी और स्वतन्त्र ढग से चल रहे हैं। संकडो विद्यार्थी इस शिक्षा को पूरा

कर चुके है। केवल सेवाग्राम के उत्तर बुनियादी भवन से ही लगभग १०० विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर निकले हैं और उनमें से अधिकाश काम-धन्धो में लगे हुए हैं।

अभी तक जो कार्य हुआ उसे चलाने का आधार १९४६ में बनी योजना था। जैसे-जैसे अनुभव बढता गया वैसे-वैसे सम्बन्धित केन्द्र अपने कार्य का ढाचा तैयार करते गये। सभी ने अपनी आवश्यकता के अनुसार उत्तर बुनियादी शिक्षा के लिए शिक्षाक्रम बनाये, जो धीरे-धीरे स्पष्ट और पक्के होते गये। सेवाग्राम, बिहार राज्य, मद्रास राज्य और गुजरात आदि में अलग-अलग शिक्षाक्रम चलते रहे। इस प्रकार के काम में यह आवश्यक होता है कि बीच-बीच में अखिल भारतीय स्तर पर विचार विनिमय हो, अपने-अपने अनुभव की तुलना की जाय और उसके आधार पर एक सर्वमान्य खाका तैयार किया जाय। इस प्रकार का एक प्रयास १९५६ में सेवाग्राम में **प्रथम उत्तर बुनियादी शिक्षा सम्मेलन** के तौर पर हुआ था। उसके बाद गाधीग्राम में एक उत्तर बुनियादी शिक्षा विचार गोष्ठी हुई। इन दोनो सम्मेलनो के परिणामस्वरूप उत्तर-बुनियादी शिक्षा का चित्र काफी हदतक स्पष्ट हुआ है। परन्तु जिस तरह बुनियादी शिक्षा का ढाचा तैयार हुआ, उस प्रकार उत्तर-बुनियादी का ढाचा देश के आम शिक्षक के सामने अभी तक नही आया है। शिक्षा-जगत् की दकियानूसी के कारण और हमारी अपनी मर्यादाओ की वजह से भी, जितना असर समाज पर होना चाहिए था, हो नही पाया है। उत्तर बुनियादी शिक्षा बुनियादी शिक्षा की स्वाभाविक ही अगली सीढी है, इस तथ्य को लकीर पर चलनेवाले शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकार न करने के कई कारण है, पर एक छोटा-सा कारण तो यह भी है कि हमने उत्तर बुनियादी शिक्षा का खाका स्पष्ट ढग से लिखित रूप में अभी तक नही रखा। इस बात को ध्यान में रखकर और उत्तर बुनियादी शिक्षा का काम करनेवाले साथियो की माग के कारण यह महसूस किया गया कि १४ वर्षों के काम के ऊपर बारीकी से नजर डालते हुए ऐसा खाका—शिक्षाक्रम, तैयार किया जाय जो माध्यमिक शिक्षा का काम करनेवालो के लिए मार्गदर्शन का काम कर सके। सर्व सेवा सघ की तरफ से इस कार्य के लिए सेवाग्राम में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। यह गोष्ठी अक्तूबर की ४ तारीख से लेकर ९ तक हुई और इसमें पाठ्यक्रम तैयार करने की बुनियादी बातो पर गहरी चर्चा हुई। गोष्ठी ने चर्चा को तीन हिस्सो में बाट कर काम किया :

१. सैद्धान्तिक बुनियाद।

२ माध्यमिक शिक्षा के अलग-अलग पाठ्यक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन।

३ उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम तैयार करना।

जो सैद्धान्तिक विषय शिक्षाक्रम तैयार करने से सम्बन्ध रखते है और जो उत्तर बुनियादी शिक्षा की विशेषता दर्शाते हैं, उनपर परचे पढे गये। उन विषयो पर जो निर्णय लिये गये उन्हें गोष्ठी ने स्वीकृत परचो के तौर पर पेश किया है। उनमें से अधिकतर परचे इसी अक में दिये जा रहे हैं। चर्चा के विषय निम्नलिखित थे :

१ उत्तर बुनियादी शिक्षा के ध्येय और उससे अपेक्षायें।

२. उत्तर बुनियादी शिक्षा में उद्योगो का चुनाव और मूलोद्योगो व सहायक उद्योगो का मेल।

३. विद्यालय का सगठन, व्यवस्था और शिक्षक-विद्यार्थी समाज का स्वरूप

४. उत्तर बुनियादी शिक्षापद्धति कैसी हो? *समवाय पद्धति की आवश्यकता।*

५. उत्तर बुनियादी शिक्षा में स्वावलम्बन का अर्थ और उसका महत्व।

६. उत्तर बुनियादी विद्यालय का समाज के साथ क्या और कैसा सम्बन्ध होना चाहिए?

७ उत्तर बुनियादी शिक्षा में समीक्षा का प्रश्न और उसकी पद्धति।

८ *उत्तर-बुनियादी विद्यालय की न्यूनतम* अपेक्षित बाते और उसकी विशेषतायें।

गोष्ठी में हुई चर्चाओ और तैयार किये गये शिक्षाक्रम को हम क्रमश· "नई तालीम" में प्रकाशित करने का प्रयास करेगे। जो बात *विशेष ध्यान* देने की है वह यह है कि *अन्य* शिक्षाक्रमो के साथ तुलना करने पर स्पष्ट देखने में आया कि खास बात शिक्षाक्रम की विषयवस्तु नही बल्कि दृष्टि और दर्शन होती है। क्या यह आवश्यक नही है कि हम परिस्थिति को जरा वास्तविकता की नजर से देखें? किशोर अवस्था की शिक्षा पाने के बाद देश के नौजवान क्या करेगे? क्या सभी *विश्वविद्यालय की शिक्षा में जायेंगे? अगर* जीवन-यात्रा को समुचित ढग से साधने को तैयारी करानी है तो किशोर अवस्था की शिक्षा में दो बातो पर ध्यान देना होगा: १) क्योंकि अधिकतर नवयुवक काम चाहेंगे, इसलिए उद्योग-धन्धो की तालीम को एक प्रमुख स्थान मिले। २) समाज में उपयोगी और सहयोगी सदस्य के नाते रहें, इसलिए शिक्षा अवधि में ही उसकी दृष्टि और अभ्यास देना होगा।

शिक्षा विभाग और सभी शिक्षा का काम करने वालो के सामने आज सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न माध्यमिक शिक्षा का है। अगर उसे ठीक तरह से नही सम्भाला और "शिक्षा शास्त्र" और "डेमोक्रेसी" का जपमात्र ही करते रहें तो न तो प्राथमिक शिक्षा का स्तर ऊचा उठेगा और नही ही विश्वविद्यालयो की समस्या जो आज राष्ट्र के सामने भूत बन कर खडी है, हल हो सकेगी।

राष्ट्र ने बुनियादी तालीम को राष्ट्रीय शिक्षा माना है, तो क्या राष्ट्र से यह अपेक्षित नही है कि वह स्वाभाविक ही उससे अगला कदम उठाये। *उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम विचार गोष्ठी* ने जिन बातो को पेश किया है उनसे आशा है शिक्षा जगत को स्पष्ट हो जायगा कि उत्तर बुनियादी शिक्षा केवल "गाव के पिछडे हुए बालको को उद्योग सिखा देने की शिक्षा" नही है। वह किशोर अवस्था की समग्र शिक्षा की समुचित योजना और पद्धति है। हा, अगर अभी तक हुए काम से किसी को दिशा-दर्शन नही *मिला हो, तो हमें और सबको चाहिए कि कमर* कसकर लगजाय और जो 'होना चाहिए था' वह करने का स्वय प्रयास करे।

उत्तर बुनियादी शिक्षा में उद्योग और उनका चुनाव*

बनवारीलाल चौधरी

उत्तर बुनियादी शिक्षा स्वाभाविक ही बुनियादी शिक्षा के मूलतत्वों के आधार पर किशोर अवस्था की मांगों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सयोजित की जानी चाहिए। उसका स्वरूप बुनियादी शिक्षा में डाली गयी नीव पर खड़ी हुई इमारत की तरह होना चाहिए तभी उसे नई तालीम की किशोर अवस्था की शिक्षा कह सकते है।

इस अवस्था की अनेक आवश्यकताओं में से एक महत्वपूर्ण आवश्यकता सृजनात्मक श्रम भी होती है। जब हम इस सृजनात्मक श्रम के, जिसे उत्पादक श्रम भी कहा गया है, स्वरूप की बात सोचते है तो सामने कुछ इस तरह के प्रश्न आ जाते हैं—यह उत्पादक कार्य क्या हो? इससे बालक के विकास में क्या अपेक्षा रखनी चाहिए? उसका संगठन किस प्रकार किया जाय?

उत्तर बुनियादी में उद्योग क्यों और उन्हें चुनने में किन बातों का ख्याल रखा जाय?

क्योंकि उत्तर बुनियादी शिक्षा की अवस्था (१४ से १८ वर्ष) बहुत सृजनात्मक और शक्ति से परिपूर्ण होती है, किशोर-किशोरियो के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने के लिए किसी-न-किसी उद्योग का रहना आवश्यक है। इसलिए उद्योगों का शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। उद्योगों की अपनी-अपनी शैक्षणिक सम्भावनाएं होती हैं। उद्योग को शिक्षा का माध्यम बनाने से शिक्षा असलियत और स्थायित्व ग्रहण करती है।

अधिकतर बालको को १७-१८ वर्ष की आयु में ही घरबार की जिम्मेवारियां सम्भाल लेनी पड़ती हैं। इसलिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हे उत्तर बुनियादी की अवस्था में कुछ-न-कुछ उद्योग-धन्धे सिखा दिये जायें। जिससे कि वे जीवन में अपने पैरों पर खड़े रह सके। समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध बालकों में विकसित हो, इसलिए उन्हें स्वयं बोझ न बनकर समाज का एक उपयोगी सदस्य बनने की शिक्षा देना उत्तर बुनियादी अवस्था की शिक्षा का एक ध्येय है। शिक्षा की अवधि में ही वह उत्पादक कार्य करना सीखे, इसलिए उद्योगों का और भी महत्व हो जाता है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उद्योगों का चुनाव करना चाहिए। जो भी उद्योग चुने जायें उनमें निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति करने का माद्दा होना चाहिए:

१. उद्योग में अधिक-से-अधिक शैक्षणिक सम्भावनायें हों।

* गोष्ठी में स्वीकृत परचा

२. बालक की रुचि और मनोवैज्ञानिकआवश्यकताओं का ख्याल रखकर उद्योग चुने जायँ।

३. समाज की स्थाई और तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की शक्ति उस उद्योग में हो।

४. उद्योग ऐसा हो जिसे लेकर बालक उत्तर बुनियादी शिक्षा पूरी करने के बाद एक धन्धे के बतौर अपना सके।

उत्तर बुनियादी शिक्षा में उद्योगों को जिन शैक्षणिक सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर चुना जाना चाहिए वे निम्नलिखित हैं:

१. विद्यार्थी को सृजनात्मकता की तृप्ति का बोध अनुभव हो।

२. बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो।

अ. उसमें स्वाश्रयिता आये।

आ. उसमें सामाजिक वृत्तियों का निर्माण हो।

उद्योगों को सफलतापूर्वक सीखने पर उनके द्वारा निम्नलिखित कुशलताओं और आदतों की बुनियाद पडनी चाहिए:

१. श्रम करने की आदत।

२. काम को साफ-सुथरे ढंग से करने का अभ्यास।

३. काम की योजना बनाने की कुशलता और शक्ति।

४. अन्दाज-पत्रक आदि बनाने का ध्यान और अभ्यास।

५. अपने और साथियों के काम की शुद्ध समीक्षा करने का गुण।

६. टोली में रहकर काम करने की वृत्ति।

७. व्यक्तिगत योजनायें लेकर काम करने की शक्ति।

८. प्रयोग करने में रुचि और जिज्ञासा वृत्ति।

९. टेकनीकल बातों को समझने और उनको प्रकट करने की शक्ति।

१०. समय की पाबन्दी

११. साधनों को साफ और सुरक्षित रखने की आदत।

कुछ ऐसे उद्योग होंगे जो मुख्य उद्योगों का स्थान ले सकते हैं और कुछ ऐसे होंगे जिन्हें सहायक उद्योगो के बतौर लेना होगा। हर उद्योग मुख्य उद्योग नही हो सकता और हर मुख्य उद्योग के साथ कुछ ऐसे सहायक उद्योगों की व्यवस्था करनी होगी जो काम और शिक्षा की दृष्टि से अनिवार्य होंगे, जैसे, खेती अगर मुख्य उद्योग है तो उसके साथ ओजारों की दुरुस्ती की दृष्टि से बढ़ई कार्य अत्यन्त उपयोगी साबित होता है।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर और पिछले १५ वर्षों में मिले अनुभव के आधार पर निम्नलिखित मूलोद्योग और उनके साथ चलने वाले सहायक उद्योगों की व्यवस्था उत्तर बुनियादी विद्यालयों में की जा सकती है:

मुख्य उद्योग: कृषि गोपालन

सहायक उद्योग: फलों की काश्त: सागभाजी की काश्त, खाद्य वस्तुओं का संरक्षण, पशु पालन, पशु-चिकित्सा, मधुमक्खी पालन, तेलघानी, बढई और लुहारगिरी, वनविज्ञान, ईंट और कवेलू बनाना।

२. मुख्य उद्योग : खादी-ग्रामोद्योग

सहायक उद्योग : वस्त्रविद्या, रंगाई-छपाई, दर्जीगिरी, कसीदे का काम, बढई और लुहार-गिरी, ताडगुड, कागज बनाना, रेशों और रस्सी का काम, कुम्हार काम, तेल-घानी, साबुन साजी, माचिस बनाना, बास व बेंत का काम, चर्म-उद्योग।

३. मुख्य उद्योग : गृहविज्ञान

सहायक उद्योग : खाद्य शास्त्र, खाद्य वस्तुओं का संरक्षण, साग-सब्जी की खेती, फूल बगीचा, मातृमंगल व शिशुसंगोपन, रोगीसेवा और शुश्रूषा, सिलाई और कसीदे का काम, गृह-व्यवस्था और सजावट, व ललित कलायें।

४. मुख्य उद्योग : कर्मशाला और इन्जिनियरिंग कार्य

सहायक उद्योग : सिविल इंजिनियरिंग, कृषि इंजिनियरिंग, रेडियो इंजिनियरिंग, सफाई शास्त्र, सेनिट्री इंजिनियरिंग।

५. मुख्य उद्योग : सफाई विज्ञान

सहायक उद्योग : कम्पोस्टिंग, बढई और लुहार कार्य, सेनिट्री इंजिनियरिंग।

उपरोक्त सूची में जानबूझ कर नये-नये उद्योगों का जिक्र नहीं किया गया है। उसका कारण है कि अभी तक के काम में जिन उद्योगों को लेकर अनुभव हुआ है, उनका ही विश्वास के साथ जिक्र करना उचित समझा; किन्तु हमारी यह मान्यता है कि अब कुछ सुसगठित विद्यालयों को नये उद्योगों को लेकर प्रयोग करना चाहिए और उनकी शैक्षणिक सम्भावनाओं की खोज करनी चाहिए।

परिस्थिति और शक्ति के हिसाब से हर शाला अपने-अपने उद्योगों का चुनाव करेगी और जैसे-जैसे उत्तर बुनियादी शालाओं की संख्या बढेगी वैसे-वैसे शालाओं की अपनी-अपनी विशेषतायें भी अलग होंगी। किन्तु देश और परिस्थिति की मांग को देख कर ऐसा लगता है कि कुछ काल तक उत्तर बुनियादी शालाओं में खेती-गोपालन का प्रामुख्य रहेगा, यानी खेती-गोपालन मूलोद्योगवाली शालाओं का प्रतिशत फिलहाल कुछ अधिक रहेगा।

एक बात व्यावहारिक दृष्टि से जो अनुभव में आयी है वह यह है कि एक शाला में कम-से-कम दो मुख्य उद्योगों की शिक्षा का इंतजाम अवश्य होना चाहिए। किन्तु इसके विपरीत यह भी न हो कि शाला में 'अधिक-से-अधिक' संख्या में उद्योगों की व्यवस्था करने की वृत्ति हो। जितने अधिक मूलोद्योग होंगे उतनी ही *अधिक व्यवस्था और सरंजाम* की जरूरत होगी और सामान्य तौर पर एक शाला की शक्ति इतनी नहीं होती कि वह २-३ मूलोद्योगों से अधिक का इन्तजाम कर सके।

उत्तर बुनियादी विद्यालय में और दो प्रकार के कार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक तो वे कार्य जिन्हें आज के मूल्यों के आधार पर, सेवा-के कार्य कहा जाता है जैसे, भंगी, नाई, धोबी इत्यादि। यह कार्य विद्यार्थियों को निपुणता के साथ सिखाये जाने चाहिए, किन्तु यह साफ है कि ये कलायें हमारे नये जीवन-मूल्यों के हिसाब से धन्धों के तौर पर नहीं लिये जा सकते। इसी तरह वकील या व्यापार के धन्धों की बात भी है। जिन धन्धों का स्थान हमारे नये समाज में नहीं होना चाहिए उनको शिक्षा में भी धन्धों के बतौर नहीं रखा जाना चाहिए।

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

विद्यालय का समाज के साथ सम्बन्ध *

देवी प्रसाद

बालक शाला में समाज से आता है और उसे फिर समाज में ही उसका एक कारगर अंग बनकर रहना होता है। इसलिए उसकी शिक्षा-अवधि में भी यह सम्बन्ध टूटना नही चाहिए।

उत्तर बुनियादी शिक्षा के समय बालक की उम्र १५ से १८ के बीच होती है, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गतिशील और सृजनात्मक तो होती ही है, साथ-साथ जिम्मेवारी महसूस करने और उसे उठाने की भी होती है। 'समाज के प्रति मेरा क्या फर्ज है,' यह प्रश्न हर किशोर विद्यार्थी के सामने हमेशा रहना ही चाहिए। विद्यालय में विद्यार्थियो और शिक्षको का सम्मिलित परिवार शक्तिशाली सेना की एक टुकडी की तरह बन जाता है। उसकी शक्ति का उपयोग केवल शाला के आन्तरिक कार्यों और सगठन तक ही सीमित नही होना चाहिए, उसका फैलाव आसपास के क्षेत्र तक पहुचना चाहिए जिससे कि उसकी ताकत का समुचित उपयोग हो सके।

जो खेती और उद्योग, शाला में वैज्ञानिक ढग से चलेगे, उनका प्रकाश स्वय तो बाहर फैलेगा ही, किन्तु उसे फैलाने के लिए शाला की तरफ से भी सचेष्ट प्रयत्न होना चाहिए। जिले में कई तावते विकास आदि का कार्य कर रही होती है। शाला को इन सगठनो के साथ योगदान करके अपनी शक्ति के अनुसार क्षेत्र के विकास में सहायता देनी चाहिए।

ज्ञान-विज्ञान के बढते हुए जमाने को ध्यान में रखते हुए शाला के कार्यक्रम को इस प्रकार सगठित किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अगले २०-२५ वर्षों में होने वाले विकास व परिवर्तनो का विवेक के साथ उपयोग कर सके। विद्यार्थियों को निकट भविष्य में आने वाले यत्र आदि को समझने और उनकी अच्छी जानकारी देने की जिम्मेदारी विद्यालय को उठानी चाहिए।

सच्चा सम्बन्ध सेवा और करुणा का होता है। विद्यालय और समाज का सम्बन्ध इसी विचार पर आधारित होना चाहिए। "शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति" का यह आन्दोलन मुख्य तौर पर नैतिक आन्दोलन है। इसके साथ-साथ नई तालीम शान्ति के लिए शिक्षा भी है। इसलिए उत्तर बुनियादी विद्यालय का जो सम्बन्ध समाज के साथ हो उसकी प्रेरणा का मूल सेवा और शान्तिस्थापना होना चाहिए। सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए विनोबाजी ने दो बाते कार्यक्रम के रूप में रखी है—एक तो गाव के झगडे गाव में ही निपट जायँ और दूसरा, गांव में पुलिस की आवश्यकता न रहे। यह काम विद्यालय को उठा लेना चाहिए,

* विचार गोष्ठी में स्वीकृत परचा

इतना कहना तो उचित नहीं होगा, किन्तु क्षेत्र की सभी शक्तियां अगर अपना सम्मिलित प्रयत्न इस ओर करती हैं, तो विद्यालय इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। बुनियादी बात तो यह है कि विद्यालय की सेना का समाज के प्रति पहला कर्तव्य है कि वह अपने आप को सेवा-सेना का रूप दे। मैसूर में जब नई तालीम के कार्यकर्ताओं ने विनोबाजी से पूछा कि वे उनसे और विद्यालयों से क्या अपेक्षा रखते है, तो उन्होंने कहा था, " नई तालीम के जहां-जहां केन्द्र होंगे वहां यह उसूल लागू होता है कि उस-उस केन्द्र के बच्चे और शिक्षक सिर्फ अपने आप में संतुष्ट न रहें बल्कि आसपास के लोगो को, आसपास के गांवों की कुछ सेवा करें, उनके पास पहुंचें–यह मानी हुई बात है। जैसे दूसरे विद्यालयों में विद्यार्थी और शिक्षकों के कर्तव्य सीमित माने जाते हैं वैसे नई तालीम के शिक्षक और विद्यार्थियों के कर्तव्य सीमित नहीं माने गये हैं। आसपास के लोगों की सेवा में शिक्षक और विद्यार्थियों को हिस्सा लेना चाहिए, यह नई तालीम का एक अंग है ऐसा ही माना गया है।"

-सेवा सैनिक के नाते शिक्षक का कर्तव्य बताते हुए विनोबाजी ने कहा था–

"वह सेवा-सैनिक है, यूं समझकर लोगों के दुःख समझ ले, जरूरत हो तो अपनी डायरी में भी लिख ले और फिर उसके निवारण के वास्ते जिन-जिन की मदद लेना उचित समझे वह ले और दुःख निवारण करने का प्रयत्न करे।

"जैसे मां को बच्चे की मदद की जरूरत होती है कि फलाना काम करना है तो बे-खटके उसकी मदद लेती है, वैसे किसी भी परिस्थिति में लोग इस सेवक की मदद लेना चाहें, तो लेंगे। इतना विश्वास पैदा होना चाहिए कि लोगों को लगे कि यह हमारा सेवक है और वे उसकी कभी भी मदद ले सकते हैं। यह विश्वास सैनिक की बारूद है।"

किशोर अवस्था की शिक्षा में दृष्टि और वृत्ति तैयार करना मुख्य है, इसलिए अधिक महत्व सेवावृत्ति और सेवा की पद्धतियों के अभ्यास पर होना चाहिए। इस सिलसिले में क्षेत्र के विकास कार्य के साथ जो सहयोग किया जा सकता है, वह शाला के कार्यक्रम में आना चाहिए।

स्कूल और समाज के आपसी सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन बातें आयेंगी–

अ. शाला में आये हर बालक के परिवार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम किया जाय। उसके परिवार के सुखदुःख के साथ परिचय और सम्वेदना का सम्बन्ध स्थापित करना स्कूल के कार्यक्रम का अंग बनाना चाहिए।

आ. क्षेत्र के आर्थिक, समाजिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रकाश शाला पर और शाला का प्रकाश क्षेत्र पर पडे, कार्यक्रम बनाते समय इसका हमेशा ख्याल रहे।

इ. समाज के साथ शाला के सम्बन्ध की भूमिका जयजगत् की हो। गांव के साथ सीधे सम्पर्क व विद्यार्थियों के अन्दर विश्वपरिवार की भावना विकसित करने का प्रयत्न हो रहा है, इसकी झलक मिले। "शाला चार दीवारों में से निकल कर गांव में फैल जाय", इस विचार को आचार में लाने में ही शिक्षा के कार्यक्रम की कुशलता और सफलता है। अपने-अपने सन्दर्भ और पद्धतियों से उसे साधा जाना चाहिए।

उत्तर बुनियादी शिक्षा के आदर्श और उद्देश्य

राधाकृष्ण

जब विद्यार्थियो की पहली टोली ने आठ साल का बुनियादी शिक्षाक्रम पूरा किया तो इन्ही सिद्धान्तो के आधार पर उनकी आगे की शिक्षा की योजना क्या हो, यह प्रश्न उठा।

उत्तर बुनियादी शिक्षा की एक ठोस योजना बनाने के लिये हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने एक समिति की नियुक्ति की। समिति के मार्गदर्शन के लिए एक मेमोरेन्डम् तैयार किया गया, जिसमें ये महत्वपूर्ण मुद्दे थ

१ उत्पादक प्रवृत्तियो के द्वारा शिक्षा का सिद्धान्त उत्तर बुनियादी तालीम का आधारभूत माना गया, क्योकि यह बुनियादी तालीम के एक स्वाभाविक विकास के रूप मे है। बल्कि इस अवस्था में उसका दुहरा महत्व है–एक, चारित्र्य और व्यक्तित्व के विकास के लिए, दूसरा, किसी उपयोगी धन्धे में व्यावहारिक कुशलता बढाने के लिए।

२. मेमोरेन्डम् में किशोर अवस्था की शिक्षा के सामाजिक पहलू को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना। उसमें यह बात आग्रहपूर्वक पेश की गयी कि विद्यार्थियो की उत्पादक प्रवृत्तियो का सगठन समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति को दृष्टिगत रख कर किया जाना चाहिये। मेमोरेन्डम् में कहा गया "वह कुशलतापूर्वक दुनिया में अपना हिस्सा अदा करने के समर्थ होना चाहिये, केवल एक व्यक्ति के रूप में नही, समाज के एक उपयोगी सदस्य के नाते भी।"

३ मेमोरेन्डम् में इस ओर भी इशारा किया गया कि अगर इस स्तर पर एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का विकास हुआ तो माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा के बारे में जो प्रचलित विचार है, उनमें एक बडा परिवर्तन अवश्यभावी है। आज की शिक्षा के साहित्यिक व बौद्धिक आधार की जगह एक ज्यादा सतुलित क्रम अपनाना होगा जिसमें दूसरी कुशलताओ के भी विकास व पूर्ति की गुजाइश हो।

मेमोरान्डम् में यह घोषणा की गयी कि काम के द्वारा शिक्षा का मतलब विद्वत्ता या तात्विक शिक्षा के स्तर में कमी नही होनी चाहिये। उल्टा, इस पद्धति से इनके ज्यादा वास्तविक और ऊचे स्तर का होने की अपेक्षा है। "व्यक्ति और समाज दोनो का भौतिक विकास तथा आत्मीय उत्कर्ष हमारी शिक्षा की कसौटी है।" उत्तर बुनियादी शिक्षा के ये उद्देश्य बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो से ही निकले है। इस शिक्षा के ये दो निश्चित ध्येय है–

अ इस देश के सब लडके-लडकिया एक नयी समाजव्यवस्था के नागरिको के रूप में, सहकारी काम के आधार पर शिक्षा प्राप्त करे

और उन्हें इस समाज में अपने अधिकारो जिम्मेदारियो और कर्त्तव्यो का बोध हो।

२. हरेक बच्चे को अपनी सारी शक्तियो के सतुलित और सुसमजस विकास के लिए पूरा मौका मिले, उन्हे जीवन के हर एक पहलू में आत्मनिर्भरता का अभ्यास हो, वे एक शुद्ध, स्वस्थ, सुसस्कृत जीवन बिताने के समर्थ हो और उस जीवन के सामाजिक व नैतिक परिणामो को समझें।

किशोर अवस्था के बालको के लिए "स्वावलबन के द्वारा शिक्षा" का सिद्धान्त अपनाया गया। एक आवासीय गुरुशिष्य समुदाय के रूप में इसकी कल्पना की गयी जहा समाज के निर्वाह के लिए तथा विद्योपार्जन के माध्यम के रूप में उपयुक्त कई प्रवृत्तिया चलती रहेंगी। यह शिक्षा स्वाभाविक ही अच्छे गृहस्थ जीवन तथा किसी उत्पादक धन्धे के लिए अथवा, जिन्हें उसकी योग्यता और अभिरुचि हो, उन्हें विश्व-विद्यालय की उच्च शिक्षा के लिए तैयार करेगी।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यो का इस प्रकार वर्णन किया था—

१. हरेक विद्यार्थी में एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए आवश्यक नागरिकत्व तथा एक विशाल राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का विकास हो, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ की समझ और शान्ति के लिए अनुकूल हो।

२ औद्योगिक और उत्पादक क्षमता बढाना, जिससे कि देश की आर्थिक स्थिति सुधरे और जनता का जीवन स्तर ऊचा उठ सके।

३ सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग के द्वारा व्यक्तित्व का विकास, जिससे विद्यार्थी अपनी सास्कृतिक परपरा को समझ सके और उसे आगे बढा सके।

४. नेतृत्व का निर्माण।

स्पष्टत इसमें और उत्तर बुनियादी शिक्षा के ध्येयो में बहुत साम्य है। यह एक जरूरी बात है कि देश की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तथा विद्यार्थियो की व्यक्तिगत वृत्तियो के अनुकूल होने के लिए कई प्रकार के माध्यमिक विद्यालय चले। सामाजिक तथा व्यक्तिगत विकास, औद्योगिक क्षमता की वृद्धि एव सास्कारिक तथा कलात्मक कुशलताओ के विकास की दृष्टि से इन्हे कई प्रकार से सगठित *किया जा सकता है। और इन विशिष्ट प्रकारों* के अनुसार उपरोक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उनमें निश्चित कार्यक्रम अपनाये जाने चाहिये।

सामाजिक विकास

१ न्याय और आपसी सहयोग पर आधारित एक समाज व्यवस्था की स्थापना में अपने कर्त्तव्य का बोध।

२ ऐसे समाज में अपनी व्यक्तिगत हैसियत से तथा समाज के एक उपयोगी सदस्य के नाते भाग लेने की क्षमता।

३. व्यक्तियो के आपस में तथा समाज के साथ के स्वस्थ सबन्धो की समझ, जैसे परिवार के साथ का अपना सबन्ध, स्कूल के साथ, गाव के साथ, राष्ट्र के साथ।

४. कौटुम्बिक जीवन की जिम्मेदारियों को समझना और परिवार के तथा समाज के कामो में अपना पूरा हिस्सा लेने के लिए आवश्यक कुशलताओ की प्राप्ति।

५. पडोसी धर्म के महत्व का बोध–दूसरों के साथ मैत्री व सवेदनापूर्ण संबन्ध स्थापित करने का अभ्यास; मानव मात्र के प्रति समान भावना।

६. सब के साथ, विशेष तौर पर ऐसे लोगों के साथ, जिनकी धार्मिक श्रद्धा सामाजिक परंपरा और संस्कार अपने से विभिन्न है, आदर और मैत्री की वृत्ति।

वैयक्तिक विकास

१. एक स्वस्थ, कर्मशील जीवन बिताने की क्षमता।

२. जिज्ञासा वृत्ति का विकास।

३. वैज्ञानिक दृष्टि का विकास–जिसका मतलब है सब बातो को, विचारो को और परंपराओ को सत्य के आधार पर ही जाचने के लिए आवश्यक तटस्थ बुद्धि, स्वतत्र विचार करने तथा अपने मत को बिना भय के प्रगट करने की धीरता, वैचारिक और नैतिक ईमानदारी।

४. आत्मनिर्भरता का अभ्यास।

५. फुरसत के समय का अच्छा और लाभप्रद उपयोग करने का अभ्यास।

६. सर्जनात्मक आत्मप्रगटन और सौन्दर्य-बोध का विकास।

७. आध्यात्मिक सत्यो पर मनन करने तथा प्रार्थना के विभिन्न प्रकारो में भाग लेने का अभ्यास।

८. समाज के तथा परिवार के सदस्य के रूप में जिम्मेदारी लेने की तैयारी तथा नेतृत्व के गुणो का विकास।

औद्योगिक विकास

१. एक शोषणहीन, स्वावलंबी, सहकारी समाज में सृजनात्मक एवं उत्पादक शरीरश्रम के महत्व का ज्ञान।

२. शाला-समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कारगर रीति से व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में ऐसे कामों में भाग लेने की क्षमता।

३. मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में भी ज्ञान और कर्म के अभेद्य संबन्ध को समझना और काम की प्रक्रियाओं में प्राविधिक कुशलता तथा शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना।

सांस्कृतिक विकास

एक स्वयनिर्भर सहकारी समाज में सांस्कृतिक तथा मनोरजक प्रवृत्तियों की आवश्यकता को समझना, उपलब्ध शक्ति और सामग्रियो से सास्कृतिक जीवन का विकास करने की क्षमता।

२. जीवन के सास्कृतिक तथा सौन्दर्य-बोधात्मक पहलुओं का विकास।

३. सामाजिक एव व्यक्तिगत जीवन में आनन्द और तृप्ति के लिए साहित्य, सगीत तथा विविध कलाओं के रसास्वादन की क्षमता का विकास।

माध्यमिक शिक्षा के विद्यालयो का प्रथम कर्त्तव्य किशोर अवस्था के बालको की स्वाभाविक मागो की पूर्ति करनी है, उनकी विशेष जरूरतो और समस्याओ के समाधान के लिए उपयुक्त एक कार्यक्रम उपस्थित करना है। इसलिए माध्यमिक शिक्षा का विचार करते समय इस अवस्था के बालकों की जरूरतो और सामाजिक परिस्थितियो को ठीक ठीक पहचान कर ही उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उपयुक्त योजना बनाई जानी चाहिए।*

* विचारगोष्ठी में स्वीकृत परचा

उत्तर बुनियादी में अंग्रेजी भाषा का शिक्षाक्रम

मार्जरी साइक्स

देश के तमाम बच्चों को उत्तर-बुनियादी तक याने १६ या १७ साल की उम्र तक नई तालीम द्वारा शिक्षण देना हमारा उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप हम आशा भी करते हैं कि उस उम्र के बाद वे छात्र स्वावलंबी बनेंगे, याने विनोबाजी के शब्दों में वे केवल उत्पादक कार्यों में स्वावलम्बी नहीं, बल्कि शिक्षा और स्वाध्याय में भी स्वावलम्बी बनेंगे, यानी स्वशक्ति से खुद योजना पूर्वक ज्ञान ग्रहण करने का सामर्थ्य रखेंगे। आशा है, हमारे साथी इन दो बुनियादी तत्वों को भली भांति समझते और मानते हैं।

अगर हम ऐसा मानते हैं तो फिर छात्रों की १६ साल की उम्र तक की शिक्षा की जांच इस बात से होनी चाहिये कि क्या छात्रगण इस अवधि में सीखने के साधनों का अच्छा उपयोग करना जान पाये। इन साधनों में भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है, यह तो मानी हुई बात है। प्रथम एक भाषा पर पूरा अधिकार प्राप्त करना होगा; अकसर यह छात्र की मातृ-भाषा ही होगी। इसे हम सार्वभौम आवश्यकता मानेंगे। फिर सवाल उठता है, क्या हरएक छात्र को दूसरी भाषा सीखना जरूरी है? इसमें मतभेद है। इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान जैसे गतिशील देशों में, जहां सब के लिए शिक्षा की व्यवस्था है, मातृ-भाषा को ही सब छात्रों के लिए लाजमी माना है।

इसलिये, यदि हमारा उद्देश्य देश के तमाम बच्चों को १६ साल की उम्र तक शिक्षण देना हो तो, हमें अंग्रेजी भाषा को एक ऐच्छिक विषय के रूप में ही स्थान देना होगा। और वह भी ऐसे छात्रों के लिए ही, जिनको अपनी आगे की योजना में उस भाषा की जरूरत महसूस होती हो और उसमें अभिरुचि भी हो। अंग्रेजी केवल अंतर्राष्ट्रीय भाषा ही नहीं, बल्कि वह भारत की चौदह भाषाओं में से एक भी है–कुछ लोगों की वह मादरी जबान भी है। भारत के स्कूलों में दूसरी प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं–फ्रेंच, जर्मन रशियन–के बनिस्बत अंग्रेजी का ज्यादा महत्व है।

हमारे देश में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनेक लोगों के लिए उपयोगी तो है, किन्तु सब के लिए अनिवार्य नहीं। अंग्रेजी एक खास माध्यम है–आम नहीं और जिनको उसकी जरूरत है उनको इसकी शिक्षा मिलनी चाहिए।

१४ से १६ साल की उम्र तक अंग्रेजी के अभ्यास का स्वरूप

इस विषय पर कारगर चर्चा शुरू करने से पहले हमें दो बातों का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

अ. उत्तर बुनियादी में प्रवेश के पहले बच्चे क्या अपनी मातृ-भाषा के अलावा कोई दूसरी

भारतीय भाषा सीखते हैं ? (अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी का अभ्यास और हिन्दी-उर्दू प्रदेशों में बंगाली, गुजराती, तमिल या किसी प्रदेश में संस्कृत या उर्दू ।)

आ. १४ साल की शिक्षा अवधि में ही क्या अंग्रेजी शुरू कर दी गई है ?

अंग्रेजी शुरू करने की वांछनीय शर्तें :

अ. शुरू से ही बच्चों को अपनी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा का सुदृढ अभ्यास प्राप्त हुआ होना चाहिये ।

आ. १० साल की उम्र से, याने चौथे वर्ग से एक दूसरी भारतीय भाषा का अभ्यास भी हो जाना चाहिये ।

इ. इस अवधि में (१४ उमर) उनको अंग्रेजी का अभ्यास शुरू होना चाहिये ।

ई. शिक्षकों को, चाहे वे मातृभाषा के हों, दूसरी भारतीय भाषाओं के या अंग्रेजी के, भाषा सिखाने की शास्त्रीय पद्धतियों का तथा नई तालीम का भी प्रशिक्षण मिलना जरूरी है ।

इस बात को विशेष ध्यान देकर समझने की आवश्यकता है कि शिक्षक के उचित प्रशिक्षण की ओर लापरवाही रखने के कारण ही शिक्षा का यह पहलू अत्यन्त कमजोर रह जाता है। हम यह मान बैठे हैं कि जो कोई हिन्दी या अंग्रेजी बोल लेता है, वह उस भाषा को पढाने के भी काबिल है । लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है ।

पाठ्यक्रम का उद्देश्य

छात्रों में नीचे लिखी बातें आयें :

१. *अंग्रेजी भाषाको समझने की शक्ति*— बोली गयी और लिखी हुई ।

२. अंग्रेजी भाषा का उपयोग करने की शक्ति, याने बातचीत करने की और लिखने की ।

मातृ-भाषा तथा दूसरी भाषा के समान अंग्रेजी में भी सुनने और पढने से भाषा को समझ लेना पहला उद्देश्य है । उसके बाद आता है उसे उपयोग करना और अपने विचार व्यक्त करना । पढाई की हमारी योजना में हमें इन दोनों पहलुओं पर ध्यान रखना तो चाहिए, पर तुलना में उपयोग की शक्ति से समझने की शक्ति के विकास की तरफ अधिक ध्यान देना ठीक होगा ।'

अंग्रेजी की पढाई की खास दिक्कतें

अंग्रेजी भाषा पर अधिकार पाने के लिए दो बातों पर ध्यान देना जरूरी होता है :

१. *नये-नये शब्दों को सीखना और संग्रह करना* । यह बात कठिन नहीं है । अगर अंग्रेजी की शिक्षा को बालकों के अनुभवों और आवश्यकताओं के साथ समन्वय पद्धति द्वारा दिया; जैसा कि नई तालीम में होना चाहिए—तो, *समझने और आत्मप्रकटन के लिए जरूरी शब्दों* का संग्रह आसानी से हो जायगा ।

२. अंग्रेजी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं में निम्नलिखित भेद पाये जाते हैं ।

अ. वाक्य में शब्दों का क्रम (क्रियापद वाक्य के अन्त में नहीं, बीच में होता है) ।

आ. संज्ञाओं के आपसी संबन्ध का निर्देश करने के लिए प्रत्ययों के बदले उपसर्गों (शब्द) का प्रयोग । जैसे टु, फार, एट आदि-जो कि शब्दों के शुरू में आते हैं न कि बाद में । जिस विद्यार्थी को अपनी मातृभाषा पर पूरा अधि-

कार हो उसे अंग्रेजी में पैदा होने वाले इन भेदो को तुलनात्मक दृष्टि से तुरन्त पहचानने की शक्ति प्राप्त होगी। अगर एक दूसरी भारतीय भाषा का अभ्यास करते समय इस तुलनात्मक व्याकरण शक्ति का थोडा बहुत विकास हुआ हो (सहज ही हो भी जाना चाहिये) तो तीसरी भाषा, अंग्रेजी सीखते समय और भी आसानी होगी। इससे यह सिद्ध होता है कि अंग्रेजी के अध्यापक को बच्चो की मातृभाषा की भी अच्छी जानकारी होने से बहुत सुविधा होती है। तभी तुलना करने और कराने में सफलता मिलेगी।

५. अंग्रेजी के अध्ययन के लिए जरूरी सामग्री

१. साधारणतः किसी भी बुनियादी शाला में चलनेवाले कार्यक्रमो से अंग्रेजी को पढाने के लिए शब्द सामग्री और अभ्यास के लिए कई मौके अनायास ही मिलते रहेंगे। उदाहरणार्थ उनकी दैनिक प्रवृत्तियो में काम आनेवाले शब्द और छोटे वाक्य अंग्रेजी में बोल सकते हैं। थोडा आगे बढने पर अध्यापक किसी दैनिक काम-काज की एक छोटी सरल रिपोर्ट बच्चो को सुना दें। उस से बच्चो की समझने की शक्ति की जाच हो सकेगी।

२. अध्यापक को पहले सरल वाक्यो, और बाद में जरा कठिन रचनाओ को चुन लेने तथा उनको क्रम-बद्ध बना लेने में मदद के लिए किसी प्रामाणिक मार्गदर्शिका पुस्तक की जरूरत होती है। ऐसे कई प्रकाशन उपलब्ध हैं, जिनसे काफी मदद मिल सकती है। किताब चुनते समय इतना ख्याल रखना जरूरी है कि वह किसी विशेषज्ञ के द्वारा लिखी हो, जिसकी मातृभाषा अंग्रेजी है।

३. अक्सर ये पुस्तकें शालाओ की पाठ्य-पुस्तको के रूप में होती हैं। उनमें बच्चो के लिए पाठो के साथ-साथ अध्यापक के लिए जरूरी टिप्पणिया भी मिलती हैं। अभ्यास के लिए भी कुछ सामग्री रहती है। स्कूलो में इन पुस्तको के दो विभाग मिलते हैं—एक विस्तृत अध्ययन के लिए, दूसरा मामूली पढने के लिए, लेकिन यह प्रथा अनावश्यक और अवाच्छनीय है। सब से उत्तम तरीका तो यही होगा कि अध्यापक और छात्र मिलकर अपने अनुभवो के आधार पर अपनी पुस्तकें बना लें। अगर ये खुद करने में असमर्थ हो तो फिर एक पाठ्य पुस्तक की मदद ली जा सकती है। लेकिन उस पुस्तक को एकमात्र आधार न बना ले। भाषा सीखने-सिखाने के लिए जो पुस्तकें होगी वे कभी भी कठस्थ करने की नही होती हैं।

४. बच्चो के वाचन-अभ्यास को बढाने के लिए सरल और सुबोध छोटी-छोटी पुस्तको का एक सग्रह भी रखना जरूरी है। नीचे के वर्गों में अपनी भाषा या दूसरी भारतीय भाषा का अध्ययन करते समय अगर विद्यार्थियो को ऐसी पुस्तको का उपयोग करने का अभ्यास हो गया हो तो उन्हें पुस्तकालय से स्वाध्याय में काफी लाभ हो सकेगा।

५. बोलने की शक्ति को बढाने के लिए और शब्दो का ठीक-ठीक उच्चारण भी सहज ही आ जाय, इस उद्देश्य से कविताओ का संग्रह भी होना चाहिए। इन कविताओ को विद्यार्थी एक-एक करके तथा टोलो में भी गा सकते हैं। इसमें उनको आनन्द होगा और अंग्रेजी बोलने में उनका आत्मविश्वास भी बढेगा।

यहा एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। शुरू की अवस्था की अंग्रेजी शिक्षा से

साहित्यिक रसास्वादन शक्ति का कोई विशेष विकास नही होता है। शब्दो और विचारो की सुन्दरता को पहचानने और उसमें रस लेने की शक्ति अपनी मातृभाषा द्वारा ही प्राप्त की जानी चाहिए। सस्कृत के सरल, लेकिन अर्थगौरव में महान्, प्रसिद्ध वाक्यो तथा श्लोको का परिचय भी विद्यार्थी को इस ओर ले जाने में सहायक होता है। जब इस तरह साहित्य सौन्दर्य का आस्वादन करने की शक्ति विद्यार्थी को प्राप्त हो गयी हो, तो आगे चलकर वह अग्रेजी के भी उच्च साहित्य का रसास्वादन कर सकेगा।

६ शाला के पुस्तकालय में कई किस्म के अच्छे सरल अग्रेजी के कोष, और व्याकरण के सदर्भ-ग्रथ आदि होने चाहियें। शुरू से छात्रो को इस भाषा के अध्ययन में स्वावलम्बन की आदत डालनी चाहिए। स्वशक्ति, अपने ही अभिक्रम और अपनी तपस्या के बल पर वे आगे प्रगति करें। याने हर छोटी-मोटी बात के लिए वे अध्यापक पर निर्भर न रहे।

७. विद्यार्थियो से व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर भी गलतियो को सुधारने का और ठीक ठीक बोलने-लिखने का अभ्यास खूब कराना चाहिए। शब्दो के अर्थ, हिज्जे, क्रियापदो का सबन्ध, इत्यादि का अच्छा अध्ययन हो, इस ओर पूरा ध्यान देना जरूरी है।

६. प्रगति की जांच

ऊपर (तीसरे मुद्दे में) बताये उसूलो के आधार पर ही समीक्षा भी होनी चाहिए, याने।

(अ) समझने की शक्ति

(आ) आत्मप्रगटन की शक्ति :

पाठ्य पुस्तक के पाठो की कथा की जानकारी समीक्षा के काम में नही के बराबर है। हम विषय-ज्ञान की नही, भाषा पर काबू की जाच करना चाहते है, पाठ्य पुस्तक के किसी पाठ से कुछ कठ कर के लिखने को कहना या किसी वाक्य को देकर उसका व्याकरण सबन्धी पदच्छेद आदि के सवाल सर्वथा अनुपयोगी होगें। यह साफ है कि इन से भाषा-अधिकार की जाच नही हो पाती।

अ. समझने की शक्ति की जांच : लिखित तथा मौखिक या दोनो ही सकेंगी।

१. अग्रेजी में सरल प्रश्न पूछे जाय और छात्र जवाब अपनी भाषा में लिखें।

२ सीखे हुए शब्दो के आधार पर कोई कहानी सुनावे या पुस्तक से पढे और छात्र उसे अपनी भाषा में लिखे। कभी कभी अग्रेजी को दो या तीन बार सुनाना पडेगा जब छात्र ध्यान से सुनते रहे।

३ अनुवाद के लिए छोटे पैराग्राफ दिये जायें जो छात्र के लिए नये हो। एक-एक वाक्य का अनुवाद करें।

समझने तथा व्यक्त करनें, दोनों की समिलित जांच

४ गद्य का कोई खण्ड विद्यार्थी के हाथ में दे देना। उस पर प्रश्न पूछा जाय। यहा प्रश्न और जवाब दोनो अग्रेजी में हो। गद्याश जो दिया जाता है वह न अति सुलभ हो, याने उस दर्जे के लिए आसान भी नही हो, ज्यादा कठिन भी न हो।

आ. आत्मप्रकटन की समीक्षा

५. वर्ग के सामने एक तस्वीर रख कर उसके आधार पर विद्यार्थी अग्रेजी में सवाल

पूछें, जवाब बोलें और वर्णन लिखें। हर एक विद्यार्थी को अलग अलग तस्वीर देने का इन्तजाम भी हो सकेगा।

६. कोई प्रसिद्ध सरल कहानी अंग्रेजी में बताना।

७. खेती तथा अन्याय उद्योग के काम की या रसोडे में जो कार्य हुआ, उसकी एक छोटी रिपोर्ट तैयार करना (अंग्रेजी में)

८. व्यावहारिक चिट्ठी पत्री लिखना। बाजार से चीजें मँगाने के लिए, किताबें मंगाने, स्कूल से किसी जरूरी कार्य के लिए छुट्टी मांगने इत्यादि। सरकारी विभाग से सलाह मशविरा करने आदि आदि।

यहां एक बात हमेशा ख्याल में रहे कि विद्यार्थी की समझने को शक्ति पहले आती है और खुद व्यक्त करने की शक्ति बाद में बढती है।

कुछ आम बातें : इस सारी योजना में सफलता की कुंजी विद्यार्थी के पक्कापन, पढने की उत्सुकता तथा प्रयत्न में है। पहले वे यह अच्छी तरह सोच विचार कर संकल्प करें कि उन्हें अंग्रेजी सीखनी है और क्यों सीखनी है। याने उत्तर बुनियादी के बाद के उनके शिक्षण की योजना भी उनके सामने रहे। १३ साल की उम्र के ऊपर के छात्र यह बात भली भान्ती कर सकते हैं। जब ऐसा संकल्प हो जाय तो जल्दी ही सीख लेते हैं। सिखाने सीखने के कार्य में विस्तार को छोडकर गहराई पर ध्यान हमेशा रहना चाहिए। रोज ४५ मिनिट का एक वर्ग अखण्ड चले और साथ साथ छात्र स्वाध्याय में क्रम-बद्ध अभ्यास भी जारी रखें। छात्रों के अभ्यास की कसौटी यही है कि प्रगति जल्दी जल्दी दीखती है। बोलना लिखना आदि में भाषा की शुद्धता, व्याकरण आदि का माप कडा रखना चाहिये। जरा-सी गलती भी तुरन्त सुधार देनी चाहिए। विद्यार्थी को परिश्रमशील होने की वही कसौटी है। जिनमें ऐसी क्षमता नहीं पायी जाती, उनको अंग्रेजी में अपना समय बेकार नष्ट न करने देना भी हमारा कर्तव्य है। बिना मतलब के आज कल शिक्षा के नाम से जो चल रहा है, उसे रोकना भी जरूरी है। इस तरह क्षमता रखनेवाले छात्र इस तीन साल की अवधि में उतनी अंग्रेजी सीख लेंगे जिससे वे किसी भी कालेज में अंग्रेजी में सिखायी जाने वाली बात आसानी से समझ लेगा।

"शिक्षक को अत्यन्त नम्र और विनयवान व्यक्ति होना चाहिए, वह बालक में कुदरत की करामात का दर्शन करे, न कि उसे पढाने का एक मसाला समझे"

—फ्रांज् सिजेक

उत्तर बुनियादी शाला का स्वरूप कैसा होगा *

देवीप्रसाद

पिछले १३-१४ सालो में जो उत्तर बुनियादी शिक्षा का काम हुआ उसका सन्दर्भ अलग था। ४६-४७ में सेवाग्राम की बुनियादी शाला से बालक निकले थे, उनकी आगेकी शिक्षा का सवाल था। बुनियादी अवस्था के परे की तालीम का स्वरूप कैसा हो, यह प्रयोग करने की बात थी। ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही है कि उत्तर बुनियादी शिक्षा की जो शाला बने उसका ढाचा उस समय तय नही किया जा सकता था। उस शिक्षा को चलाने के लिए शाला में किस प्रकार के और कितने साधन होगे, शिक्षक कितने और कैसे प्रशिक्षित हो, किशोर अवस्था में काम, अध्ययन, खेलकूद, सास्कृतिक प्रवृत्तिया किस स्वरूप की हो और शाला का समाज के साथ कैसा सम्बन्ध हो, इन प्रश्नो के बारे में निर्णय केवल अनुभव के आधार पर ही लिया जा सकता था।

प्रारम्भ में जो शालायें स्थापित हुई, अगुआ होने के कारण अब तक उनके सामने कोई ऐसा सवाल नही खडा हुआ कि उनसे किसी न्यूनतम ढाचे और स्वरूप की अपेक्षा की जाय। प्रारम्भिक अवस्थाओ में अगुआ होना ही न्यूनतम मागो की पूर्ति से भी बढकर होता है। किन्तु आज जब उत्तर बुनियादी शालाओ की सख्या बढी है और उत्तर बुनियादी शिक्षा के सामने अपने शैक्षणिक स्तर को ऊचा उठाने की नितान्त आवश्यकता जान पडी है तो यह भी आवश्यक हो गया है कि अब उत्तर बुनियादी विद्यालयो में कम-से-कम क्या-क्या होने से और उनके विकास की दिशा क्या होने से उन्हे उत्तर बुनियादी विद्यालय कहलाने का अधिकार होगा, यह कुछ हद तक निर्धारित कर देना चाहिए।

उत्तर बुनियादी शिक्षा और उसके पाठ्यक्रम के बारे में, जो विचार गोष्ठी सेवाग्राम में हुई, उसमें इस प्रश्न पर चर्चा होने के बाद जो सुझाव रखे गये है वे इस प्रकार है :

उत्तर बुनियादी विद्यालय का स्वरूप और उसकी विशेषतायें

१ उत्तर बुनियादी विद्यालय जहा तक हो सके आवासिक होना चाहिए।

२ किशोर अवस्था की शिक्षा को स्वाभाविक ढग से चलाने के लिए यह जरूरी है कि वह सह-शिक्षा के आधार पर सगठित हो। कही-कही कुछ कारणो से सह-शिक्षा के लिए अडचनें आ सकती है, किन्तु जहा तक सम्भव हो उत्तर बुनियादी विद्यालयो में सहशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

* गोष्ठी म स्वीकृत प्रस्ता

३. उत्तर बुनियादी विद्यालय में नौकरों का स्थान नहीं हो सकता।

४. विद्यालय के परिवार में छुआछूत नाममात्र के लिए भी न हो और उसमें सर्वधर्म सर्वमत समभाव की साधना पूरी श्रद्धाके साथ चलती रहनी चाहिए। उत्तर बुनियादी विद्यालय का विद्यार्थी-शिक्षक समाज अध्ययन, ध्यान, उपासना आदि के द्वारा इस साधना को कर रहा है, यह स्पष्ट होना चाहिये।

५. विद्यालय में सफाई पर पूरा ध्यान रखा जाना चाहिये। वहां पाखाने पेशाब घरों की समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए।

६. उत्तर बुनियादी विद्यालय के विद्यार्थी-शिक्षक परिवार का संगठन स्वयं-प्रेरित सहयोगी आदर्शों के आधार पर होना चाहिए।

७ उत्तर बुनियादी विद्यालय में छात्र-संख्या ७५ से १०० के बीच होनी चाहिए। यह हो सकता है कि प्रारम्भिक वर्षों में विद्यार्थी-संख्या उससे कही कम होगी, किन्तु विद्यालय की योजना में इस संख्या तक पहुंचने की आवश्यकता को महसूस किया जाना चाहिए।

८. शाला के उद्योगों का संगठन—

अ. हरेक शाला में कम-से-कम दो मुख्य उद्योगों की व्यवस्था होनी चाहिए।

आ. उद्योग का ख्याल रखते हुए शाला के पास यथेष्ट प्रमाण में भूमि और आवश्यक साधन होने चाहिए।

इ. साल भर का उद्योगों में काम करने का रोजाना औसत ३ घण्टे का आना चाहिए।

ई. उत्तर बुनियादी शिक्षा स्वावलम्बन के द्वारा शिक्षा है, इसलिए उद्योगों को संगठित करने में इस सिद्धान्त पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

उ. उत्तर बुनियादी विद्यालय में एक सुव्यस्थित कर्मशाला जिसमें लकडी, और लोहे का काम चलता हो, रहनी चाहिए।

९. उत्तर बुनियादी शाला में एक सुसंगठित विज्ञान प्रयोग-शाला हो। प्रयोग शाला पुराने ढंग की हो, ऐसी भावना नही है, किन्तु किशोर किशोरियां अपने उद्योग और अध्ययन में वैज्ञानिक तथ्यों को भलीभांति जान सकें, उन्हें स्वयं प्रयत्न द्वारा प्रयोग करके नियमित देखें, और जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों में उनका उपयोग कर सकें इस दृष्टि को सामने रखते हुए प्रयोग शाला का संगठन किया जाना चाहिए।

१०. स्कूल-संग्रहालय भी शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। हर शाला अपने प्रयत्न से अपने चारों तरफ के प्राकृतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का संग्रहालय बनाये, यह शाला के शैक्षणिक कार्यक्रम का हिस्सा हो।

११. हर आवश्यक विषय पर अध्ययन और अध्यापन में सहायता के लिए एक अच्छा पुस्तकालय हो और उसके साथ वाचनालय में पत्र-पत्रिकाओं की व्यवस्था हो।

१२. विद्यार्थी चाहे कोई भी उद्योग सीखता हो, उसे भाजी-तरकारी और फूल बगीचे के काम का अभ्यास अच्छी तरह हो सके इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

१३. हर विद्यार्थी वस्त्र स्वावलम्बी हो। वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य व्यक्तिगत अथवा सामूहिक ढंग से किया जा सकता है। खादी उद्योग में अभी तक जो विकसित आधुनिकतम

औजार हैं उनका उपयोग किया जा सकता है। वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए हर विद्यार्थी साल में कम से-कम २० गज कपडे के लिए सूत काते।

१४. शिक्षा में जहा तक हो सकता है समवाय पद्धति का ही उपयोग करना चाहिए। शिक्षा के आयोजन में स्वाध्याय पद्धति का विकास करने का प्रयत्न होना चाहिए।

१५. *समीक्षा पद्धति।*

अ उद्योग कार्य, अध्ययन और बालक के चारित्रिक विकास की समीक्षाओ के लिए, उत्तर बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और पद्धतियो के आधार पर समीक्षा पद्धतियाँ बनाई जानी चाहिए।

आ विद्यार्थियो और शिक्षको, दोनो के *कार्यविवरण और रेकार्डस नियमित* वैज्ञानिक ढग से रखे जाने चाहिए।

इ शाला के जीवन में इस प्रकार के मौके विद्यार्थियों को उपलब्ध होने चाहिए जिनके द्वारा उनमें *आत्मसमीक्षा और सामूहिक समीक्षा* की स्वस्थ वृत्ति का विकास हो सके।

१६ खेलकूद किशोर अवस्था की शिक्षा का आवश्यक अग है, इसलिए उत्तर बुनियादी *विद्यालय में उसका स्थान शिक्षा के अग के तौर* पर ही नियमित ढग से सयोजित किया जाय। उसके लिए आवश्यक मार्गदर्शन और मैदान की *व्यवस्था होनी* चाहिए।

१७ शाला की दिनचर्या का खाका बनाते समय जीवन के अलग अलग कार्यों और पहलुओ में समतोल का ख्याल रखा जाना चाहिए। कार्यक्रम में ऐसा न हो कि एक पहलू को भूलकर या उसपर कम ध्यान देकर दूसरे किसी पहलू पर अधिक जोर दिया जाय। साथ-साथ यह ख्याल रहे कि दिन भर में विद्यार्थियो को कुछ ऐसा निजी स्वतत्र समय मिले जिसका उपयोग वे अपनी रुचि के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकें।

१८ उत्सव त्योहारो और अन्य मौकों पर सास्कृतिक कार्यक्रमों, जैसे नाट्य, सगीत, नृत्य, साहित्य सभाओ आदि का सयोजन शिक्षा का ही आवश्यक अग माना जाय। विद्यार्थिया की रुचि के अनुसार उनके लिए आत्मप्रकटन की प्रवृत्तियो, जैसे कला और सगीत की व्यवस्था होनी चाहिए।

१९ उत्तर *बुनियादी विद्यालय अपनी* ही दिनचर्या में डूबा रहे और समाज के साथ उसका सम्पर्क न हो यह नई तालीम के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। इसलिए यह आवश्यक है कि शाला के जीवन पर समाज का और समाज पर शाला का प्रकाश स्पष्ट पडे। इसके लिए शाला के कार्य को गाव के आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन तक प्रवेश करना चाहिए। शाला के कार्यक्रम में क्षेत्रीय जीवन के साथ योग है, इसका दर्शन होना चाहिए।

२० उत्तर बुनियादी विद्यालय के शिक्षक समुचित ढग से प्रशिक्षित और निर्धारित विषयो के लिए आवश्यक ट्रेनिंग पाये हुये होने चाहिए।

उपरोक्त विषयो के बारे में जो चिंतन हुआ है वह पिछले अनुभवो के आधार पर हुआ। हमारा ख्याल है कि किसी भी उत्तर बुनियादी विद्यालय की दिशा इन बातो की पूर्ति करने की ओर ही होनी चाहिए।

अमेरिका के पीस मेकर्स

आर्थर हार्वे

(शान्ति स्थापक)

[अमेरिका के कई शान्तिवादी मित्र आज यह महसूस कर रहे हैं कि युद्ध का विरोध करना ही पर्याप्त नही है, शान्ति की स्थापना के लिये व्यक्ति के जीवन में ही अहिंसा को उतारना पडेगा। पीस मेकर्स कुछ ऐसे व्यक्तियो का समूह है जिन्होने इस विचार को अपना जीवन दर्शन बनाया है। वे यह भी मानते है कि दुनिया में हिंसा को अगर खतम करना है तो आर्थिक-सामाजिक न्याय उसकी पहली जरूरी शर्त है। उनका दृढविश्वास है कि प्रतिहिंसा से नही, व्यक्ति के हृदय परिवर्तन से ही इस न्याय की स्थापना हो सकती है और इसी को उन्होने समाज पुनर्रचना का आधार माना है। "एक भी व्यकि अगर, जो बात उसे ठीक और सच्ची लगती है, उसके अनुसार अपने जीवन को बदलता है, तो वह दुनिया को बदलने का प्रारभ हो सकता है। और जब ऐसे कई व्यक्ति अपनी शक्तियो को एकत्रित करते हैं तो वह समाज पुनर्रचना का आधार भी बन जाता है।" इस मान्यता के अनुसार उन्होने अपना कार्यक्रम सिर्फ युद्ध का विरोध करना नही बनाया है—हालाकि वह सब से मुख्य है, क्योकि युद्ध से आज मानवजाति का अस्तित्व ही खतरे में है—बल्कि हिंसा, जबरदस्ती और अन्याय का ही वे समाज से निष्कासन करना चाहते हैं। उनके इस आन्दोलन के इतिहास, निष्ठाओ और प्रवृत्तियो का यह विवरण आर्थर हार्वे ने विशेष तौर पर "नई तालीम" के लिए लिख भेजा है। पीस मेकर सघ के बारे में पिछले कुछ अको में खबरे दी जा चुकी है, इसलिए "नई तालीम" के पाठको के लिए यह सघ परिचित ही है। —सम्पादक]

सन् १९४८ में चिकागो शहर में करीबन ३०० अमेरिकन् शान्तिवादियो की एक सभा हुई थी। तब तक अमेरिका में जो शान्तिवादी सघ काम करते थे, उनसे उन्हें सन्तोष नही था, युद्ध का विरोध करने के लिए एक ज्यादा सक्रिय तथा तीव्र कार्यक्रम वे अपनाना चाहते थे। उन्होने पीसमेकर्स (शान्तिस्थापक) नाम से अपने आपको सगठित किया। कुछ समय तक इनके काम के बारे में देश में काफी दिलचस्पी पैदा हुई और उनके मासिक मुख-पत्र "पीसमेकर" के दो हजार ग्राहक बन गये। लेकिन अगले कुछ सालो में सघ के सदस्यो में कुछ मतभेद प्रगट हुए और उनमें से कई सगठन को छोड कर दूसरे पुराने सघो में वापस चले गये। ड्वैट मकडलनाड, विनिफ्रेड रामिल, वयेई रस्टिन, ए-जे-मस्ते और लारेन्स स्कॉट ऐसे कुछ प्रख्यात शान्तिवादी हैं, जो उस समय पीसमेकर सघ से अलग हुए थे। फिर भी सघ ने अपना क्रान्तिकारी कार्यक्रम नही बदला, अपने मूलभूत सिद्धान्तो पर अटल रहा, लेकिन उसके सदस्य बदले और सख्या में कम होते गये। १९५७ के अन्त तक पीसमेकर्स के मुखपत्र के ग्राहक केवल

३७० रह गये और उनकी सभाओं में सिर्फ बीस पच्चीस सदस्य हाजिर रहते थे।

१९५८ में संघ का एक पुनर्गठन हुआ, जिसके फलस्वरूप उसमें नया जीवन आया, सदस्य संख्या बढ़ी। उसी समय अमेरिका में युद्ध विरोधक आन्दोलन ने एक नये पर्व में प्रवेश किया। कइयों की इस आदर्श के लिए जेल जाने की भी तैयारी हुई। पीसमेकर पत्रिका की ग्राहकसंख्या तब से तिगुनी हुई है।

पीस मेकर संघ के सभी सदस्य शान्तिवादी हैं। हम चार विशेष प्रकार की कर्मपद्धतियों के प्रयोग करते हैं—

१ सेना में आनिवार्य भरती (कन्स्क्रिप्शन) के लिए अपने नाम नहीं देना। अमेरिका में जो सेना में भर्ती होने के लिए तैयार नहीं होते हैं उन्हें उसके विकल्प के रूप में उतने काल के लिए कोई राष्ट्रीय सेवा कराने की प्रथा है। लेकिन पीस-मेकर संघ के सदस्य इसके लिए भी तैयार नहीं होते, क्योंकि वे मानते हैं कि युद्ध का प्रतिरोध उसकी जड़ों तक ले जाना चाहिए और कन्स्क्रिप्शन इसकी जड़ में है।

२ केन्द्रीय आयकर (फेडरल टेक्स) नहीं देना, क्योंकि इस कर का एक बहुत बड़ा हिस्सा युद्ध के कामों के लिए जाता है।

३ भौतिक संपत्तियों का बाट कर उपभोग करना। इस तरह बाटने का काम हमारे एक विशेष विभाग के द्वारा होता है और कुछ इन्टर्नेशनल कम्यूनिटीस के द्वारा भी।

४ समाज की पुनर्रचना के आधाररूप व्यक्ति का हृदय परिवर्तन। हम दुनिया को बचाने के लिए सरकार से प्रार्थना नहीं करते हैं। हम अपेक्षा करते हैं कि साधारण लोग एक-एक करके अपना निर्णय ले और उसके अनुसार काम करे।

सभी पीसमेकर्स इन सब आदर्शों का पूरा आचरण नहीं करते हैं, लेकिन वे उनको सिद्धान्त के बतौर मानते हैं और उन्हें व्यवहार में लाने का ज्यादा से ज्यादा प्रयत्न करते रहते हैं।

शान्तिवादियों के काम में कुछ ऐसे विवादास्पद मुद्दे थे जिनके बारे में पीसमेकर संघ ने एक निश्चित निर्णय लिया है।

१ स्थानीय संगठनों की स्वतन्त्रता—किसी भी कार्यक्रम का संचालन, विकास और समारोप वही करेंगे जो उसमें प्रत्यक्ष भाग ले रहे हों—दूर कहीं बैठी हुई एक नेताओं की समिति नहीं।

२ गिरफ्तारी के हुकुम के साथ असहयोग—कोई शान्तिवादी राज्य के किसी कानून को अगर गलत समझता हो और उसके साथ असहयोग कर रहा हो तो उस असहयोग को गिरफ्तार होने पर भी चालू रखना हम ठीक मानते हैं। इसलिए अगर वह चाहे तो गिरफ्तारी के समय, अदालत में और कैद में भी असहयोग कर सकता है।

३ अहिंसात्मक प्रतिबन्ध—युद्ध की सामग्रियों को ले जानेवाले वाहनों के सामने अपना शरीर रख कर उनको रोकना।

४ सर्व सम्मति—किसी भी सदस्य को आपत्ति हो तो संघ निर्णय नहीं लेगा।

संगठन

कई छोटे-छोटे पीसमेकर संघ विभिन्न स्थानों पर स्वतन्त्रतापूर्वक काम करते हैं, लेकिन हमारे वार्षिक अधिवेशन के प्रति जिम्मेदार हैं। संगठन के मुख्य हिस्से इस प्रकार हैं—१ कार्य-

कारिणी समिति, जो पीसमेकर के नाम से काम करती है। २. पत्रिका का सपादक मण्डल। ३. प्रशिक्षण समिति, जो हर ग्रीष्मकाल में अहिंसा के ऊपर तीन सप्ताह का एक अध्ययन सत्र चलाती है। ४. स्वास्थ्यसरक्षण समिति, जो कई परिवारो में स्वास्थ्य सबन्धी खर्च की सामूहिक *व्यवस्था करती है। और भी कई समितियाँ* आवश्यकता के अनुसार काम करती है।

कार्यक्रम

हमारे कार्यक्रम अक्सर एक ही व्यक्ति या एक छोटे सघ के दृढविचार और अन्त:प्रेरणा से निकले हुए होते है, जिसमें बाद में दूसरे भी शामिल होते है। इसलिए हमारी प्रवृत्तिया छोटे परिमाण में होती है। ज्यादा लोगो को *आकर्षित करने की दृष्टि से हम अपने कार्य के* किसी हिस्से को छोडते नही। यद्यपि हम जनमत आकृष्ट करने की भरपूर कोशिश करते है, फिर भी केवल लोकप्रिय बनने की दृष्टि से अपने सिद्धान्तो में परिवर्तन नही करते।

१९५१ में चार सदस्यो का एक दल जर्मनी में जो अमेरिकन् सिपाही है, उन्हे शीत-युद्ध में काम नही करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से गया था। वे लोग आस्ट्रिया के उस प्रदेश में, जो रूस के अधीन है, बिना अनुमति के गये और रूसी सिपाहियो के बीच इश्तहार वितरित किये। उसी साल तीन और सदस्य 'प्योर्टो रैको' नाम के द्वीप में औपनिवेशिक तथा मिलिटरी हुकूमत के खिलाफ जनमत जाग्रत करने के लिए गये और वहा जो लोग औपनिवेशिक हुकूमत के साथ लड रहे थे उनके पास अहिंसा का सन्देश पहुचाया। १९५८ में हमने 'केप कानवेरल' में आणविक शस्त्र निर्माण केन्द्र के सामने शान्तिपूर्वक सत्याग्रह किया। उसी समय 'चेयने' में अहिंसात्मक प्रतिबन्ध की पद्धति अपनायी गयी। १९५८ में ही बॉब लूइतवेलर, अल उहरिया और दूसरे मित्रो ने, जो कि हमारी कार्यकारिणी समिति के सदस्य है, शान्ति के लिये *पहली पदयात्रा शुरू की। इससे जो सैकडो नये* लोग एटम परीक्षणो के विरोध में आकृष्ट हुए वह एक आश्चर्यकारी सफलता थी। न्यूक्लियर परीक्षणों के विरोध में और भी कई प्रगटनो का हमने समर्थन किया और सहारा दिया। इसी सिलसिले में वाशिंग्टन के एटमिक शक्ति आयोग की इमारतो के सामने एक हफ्ते का बैठे-रहे सत्याग्रह और उपवास भी हुआ। १९५९ और १९६० में हमने मुख्यत कर नही देने का *आन्दोलन ही चलाया। रेवेरन्ड मारिस मक्काकिन* और इरोसियाना राबिंसन को इसके लिए *गिरफ्तार किया गया। युद्ध सामग्रियो के निर्माण* के विरोध में हममें से कइयो ने काम किया।

आन्दोलन के अन्तर्गत और कुछ बातें

हम व्यक्तिगत कर्म और व्यक्ति के अपने विश्वास को बहुत महत्त्व देते है। इससे कई अराजकतावादी और एकविश्वराज्य के समर्थक आकृष्ट होते है, लेकिन हम इसमें कोई पक्ष नही लेते है।

कई प्रकार के धर्म विश्वासवाले लोग हमारे अन्दर है। कुछ निरीश्वरवादी भी है। लेकिन अधिक सख्या ऐसे धर्मपरायण लोगों की है जो चन्द विश्वासो और मूल्यो को जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण समझते है।

हममें से कुछ लोग कई दफे कुछ विशेष विश्वासों और उद्देश्यो के लिए उपवास करते है।

(शेषाश कवर पृष्ठ ३ पर)

बच्चे की देखभाल और शिक्षा (१)

जानकी देवी
देवी प्रसाद

शिशु का मानस अत्यन्त निर्मल और कपट-रहित होता है, क्योंकि दिखावा और धोखा क्या है, यह तो उसने अभी सीखा नहीं है। वह अपनी आवश्यकताओं को बिना किसी संकोच के खुल्लम-खुल्ला प्रकट करता है, उसकी मांगें ऐसी हैं जो तुरन्त ही पूर्ति की अपेक्षा करती हैं, इन्तजार करना या कम ज्यादा करना वह नहीं जानता। वह एक बहुत ही स्वकेन्द्रित प्राणी है, एक डेढ साल तक भी उसके लिए दुनिया अपने से कोई अलग वस्तु नहीं है, धीरे-धीरे वह अपने आप को और वस्तुओं को अलग करके पहचानता है फिर भी दुनिया का केन्द्र बिन्दु तो वह स्वयं ही रहता है। इस दरमियान उसका सामाजिक बोध धीरे धीरे विकास पाता है। दूसरों की आवश्यकताओं को पहचानना, उनकी पूर्ति में मदद करना, अपनी बारी के लिए रुकना, यह सब तो बहुत बाद में ही वह सीख सकता है।

डेढ साल तक भी बच्चा अपने आप ही खेलता है। और यह खेल मुख्यत जो नयी-नयी चेष्टाएँ वह सीख रहा है, उन्हीं का दुहराना होता है। जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है, ज्यादा से ज्यादा वह अपनी मा को ही अपना खेल का साथी समझता है। डेढ दो साल के बाद ही उसे दूसरे बच्चों के साथ खेलने में मजा अनुभव होने लगता है।

भावनात्मक और सामाजिक जीवन। बच्चे की सामाजिक वृत्तियों का विकास बहुत हद तक उसके भावनात्मक जीवन से संबन्धित है। इस भावनात्मक जीवन का अधार मा के साथ का उसका सबन्ध है। उसमें अगर वह सुरक्षा और तृप्ति का अनुभव करता हो तो उसमें सामाजिक वृत्तिया ठीक तरह से विकसित होती हैं। लेकिन मा के प्रेम के बारे में उसे शका होती हो तो वह मन से बहुत परेशान होता है, फिर उस प्रेम को पाना और पकड कर रखना ही उसकी सर्वप्रथम आवश्यकता होती है। मा का ध्यान अपने ऊपर केन्द्रित रखने के लिए वह रोयगा, चिल्लायगा छोटी मोटी बातो के लिए तग करेगा, और भी कई अजीब चेष्टाए करेगा। पिता, भाई बहन या और भी जो कोई मां के पास आता हो, उनके प्रति उसके मन में अत्यन्त ईर्ष्या और क्रोध के भाव पैदा होते हैं। वह उन्हें अपने शत्रु समझने लगता है। इसलिए दूसरों के साथ के बच्चे के स्वस्थ सबध के लिए मा के प्रेम के बारे में सुरक्षा का बोध पहली आवश्यकता है, जिससे कि वह निश्चिन्त और प्रसन्न रह सके।

पिता के साथ सम्बन्ध मा के बाद स्वाभाविक ही उसका सब से निकट सबध अपने पिता के साथ होना चाहिए। लेकिन यह पिता के बर्ताव और सामीप्य के ऊपर

निर्भर करता है। कई पिता ऐसे हैं जो सोचते हैं कि इस उम्र के बच्चों की देखभाल तो स्त्रियों का काम है और उससे उनका कोई वास्ता नहीं है। वे खुद एक महान् भावात्मक अनुभूति और संतुष्टि से वंचित रहते हैं, अपने बच्चों को भी पितृलालन से प्राप्त सुरक्षाबोध से वंचित रखते हैं। इस अभावात्मक पहलू के अलावा ऐसे बर्त्ताव का एक परिणाम यह हो सकता है कि बच्चा अपने पिता से डरने लगे। उसकी भावना में पिता एक ऐसा प्राणी बन जाता है जिसका काम सिर्फ डांटने और सजा देने का है। पिता का खाना परोसने या दूसरे काम कर देने के लिये कभी-कभी मां को बच्चे को छोडकर जाना पडता है, जिससे बच्चे के मन में पिता के प्रति क्रोध और ईर्ष्या के भाव बैठ जाते हैं। फ्रॉयड और दूसरे भी कई मनोवैज्ञानिकों ने पिता के प्रति होनेवाले इस ईर्ष्या के भाव का –जिसका उन्होंने "ईडिपस कोम्पलेक्स" नाम दिया है–और प्रौढावस्था में भी बाल्य-काल का यह अनुभव आदमी की मनोवृत्ति पर जो प्रभाव डालता है, उसका बहुत वर्णन किया है। सौभाग्यवश आजकल पहले से कुछ अधिक पिता बच्चे के लालन-पालन में हिस्सा लेने लगे हैं। होना यह चाहिये कि अगर मां किसी जरूरी काम में व्यस्त हो और पिता को फुरसत हो तो वह बच्चे को उठायें, उसकी आवश्यक परिचर्या करें। इससे बच्चा समझ जायगा कि पिता भी मां के जैसे ही उसको प्यार करनेवाला एक व्यक्ति है और उस पर भरोसा किया जा सकता है। फिलिस होसलर अपनी किताब "दि चाइल्ड्स वर्लड्" में लिखती है, "अगर वह (पिता) समझदार है तो शुरू से ही मां के साथ बच्चे की देखभाल में हिस्सा लेगा, क्योंकि इस प्रकार बच्चा धीरे-धीरे मां के अलावा एक दूसरे प्राणी को पहचानेगा, जिसके ज्यादा बडे हाथ कभी-कभी उसको नहलाते और कपडे बदलते हैं, जिसकी गंभीर आवाज उसको सात्वना देती है"। देखा गया है कि जहां मां के बराबर पिता भी बच्चे की देखभाल में हिस्सा लेता हो तो बच्चा कभी-कभी पिता के पास ज्यादा सुरक्षा का अनुभव करता है; वह डर रहा हो, कहीं चोट लगने से रो रहा हो तो भी पिता की गोद में जा कर शान्त होता है। पिता की ज्यादा गंभीर, शांत और गहरी आवाज से और बलयुक्त बाहुओं से बच्चे को सांत्वना और विश्वास प्राप्त होता है जो कि उसके लिए मां की प्रेमल और मीठी आवाज और मृदुस्पर्श जितना ही जरूरी है।

भाई बहनों के साथ सम्बन्ध : नानी, दादी या धात्री, जो भी उसकी देखभाल में मदद करती हो, उनके साथ भी इस उम्र में बच्चे का गहरा संबंध बनता है। उसके बाद आते हैं उसके भाई बहन। उसकी दुनियां इस छोटे-से आन्तरिक वृत्त से धीरे-धीरे व्याप्त होती जाती है। लोगों से जैसा बर्त्ताव उसको मिलता है, उसके अनुसार दुनिया के प्रति उसकी भावना बनती है। अगर यह अनुकूल और प्रीतिपूर्ण रहा तो नये लोगों के पास भी बच्चा विश्वास के साथ चला जायगा, लेकिन नये लोगों से मिलने का अनुभव अगर उसको तकलीफ देनेवाला होता है, तो फिर वह संकोच करने और डरने लगेगा।

परिवार के मित्रों के साथ सम्बन्ध : परिवार के मित्रों का बर्त्ताव बहुत हद तक शिशु के साथ उनके सम्बन्ध के लिए जिम्मेदार

होता है। आम तौर पर मित्रगण परिवार के इस नये सदस्य के प्रति अपना प्रेम दिखाने के लिए उत्सुक रहते हैं, उनको ख्याल तक नही होता है कि इस प्रेम प्रदर्शन में बच्चे की सुख-सुविधाओ की तरफ भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यहा तक कि कई लोग सोये हुए बच्चे को भी उठा कर प्यार करना शुरू कर देते हैं। माता-पिता अगर समझते भी हैं कि इससे बच्चे को तकलीफ हो रही है तो भी सभ्यता की लिहाज से कुछ कह नही सकते। बच्चा अगर किसी प्रिय खेल में पूरी तन्मयता के साथ लगा हो तो भी लोग नही समझते हैं कि उसमें बाधा डालना कितना गलत काम है। जो सचमुच बच्चो से प्रेम रखते हैं, उन्हे तो चाहिये कि उसके आराम और सुख में कभी बाधा न आने देते हुए ही उसका अभिनन्दन करें, चाहे उसके लिए अपने प्रेमावेग को थोडा रोकना पडे। अपरिचित लोग आएँ और बच्चे को उठा कर गाल और ओठ पर चूमने लगें, यह सर्वथा अवाञ्छनीय है। इससे बच्चा भी घबराता है। स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से भी यह बहुत गलत है। सब का नाक, मुह इत्यादि हमेशा साफ नही रहता है, बच्चे के मुह पर अपने मुह की गदी हवा छोडना उसके लिए जुकाम इत्यादि रोगो का कारण बन सकता है। और बच्चा कोई गुडिया या खिलौना तो नही है। वह व्यक्तित्वपूर्ण है और उसकी भावनाओ की इज्जत करना जरूरी है।

एक दफे एक मा अपना अनुभव बता रही थी। उसका घर एक तीर्थस्थान के नजदीक था जहां एक मेला हो रहा था। मेले में उस परिवार के बहुत सारे मित्र आये थे, कई तो उनके घर पर ही ठहरे हुए थे। अशोक उस समय करीब दो साल का था और देखने में गोल-मटोल। बस, जो भी घर पर मिलने आते या रास्ते में ही मिल जाते वही उस बेचारे बच्चे की गालो को दबोचना शुरू कर देते या ठोडी पकड कर हिलाने लगते। आखिर बेचारे अशोक की यह हालत हुई कि वह किसी को देखते ही रोना शुरू कर देता। मा समझदार थी और जानती थी कि मित्रो के इस प्रेम प्रदर्शन से बच्चे को कितनी तकलीफ होती है, लेकिन वह परेशान थी कि इन शुभकाक्षियो को किस तरह समझायें।

कहीं बच्चा आपमें विश्वास न खो बैठे !

ऊपर कहा गया कि बच्चा निष्कपट होता है। वह मा-बाप के ऊपर पूरा-पूरा विश्वास करता है। लेकिन अकसर होता यह है कि अगर बच्चा कभी जिद करके रो रहा हो तो उसे तत्काल चुप करने की दृष्टि से मा-बाप ऐसे वायदे कर देते हैं जिन्हे पूरा करने का उनका कतई इरादा नही है। वे यह आशा करते है कि बच्चा उस बात को भूल जायगा। लेकिन बहुत दफे वह भूलता नही, इस आशा में खुश रहता है कि उसे फलाना खिलौना या मिठाई माता-पिता के वायदे के अनुसार मिल जायगी और बार-बार मा-बाप को उसकी याद दिलाता है। तब वे उसे डाट देते हैं या और आगे टाल देते हैं। बच्चा समझ लेता है कि उसे धोखा दिया गया है, मा-बाप ऐसे वायदे करते है जिसे वे पूरा नही करते, इससे उसके दिल को गहरी चोट पहुचती है। उनके ऊपर से उसका विश्वास हटता जाता है। बाद में जाकर अपनी सुविधा के अनुसार झूठ बोलना वह भी सीख जाता है। माता-पिताओ और पालको, इस तरह के वायदा न करे जिसे पूरा करने में आप असमर्थ हो। बच्चा विश्वासघात नहीं जानता, अगर आप उसे

वह सिखाना नही चाहते हैं तो ऐसी झूठी प्रतिज्ञाओ से बच कर रहे। वह थोडी देर रोये, चिल्लाये, तग करे, यह बहुत ही अच्छा है बनिस्बत इसके कि आपके ऊपर का विश्वास खो बैठे।

भाषा का विकास

बच्चे के लिए भाषा का उपयोग कब से शुरू होता है ?

भाषा की यह परिभाषा की गयी है कि "वह विचारो के आदान-प्रदान का माध्यम है।" इस दृष्टि से बच्चे के लिए भाषा का उपयोग जल्दी ही शुरू हो जाता है। भाषा के बारे में विचार करते समय बच्चे की समझने की और उसकी शब्दो के द्वारा अपनी भावनाओ को प्रकट करने की-दोनो प्रकार की शक्तियो के बारे में सोचना है।

दो-ढाई महीने का बच्चा भी यह समझ लेता है कि कोई उससे बोल रहा है और बोलने वाले के मुह की तरफ एकटक देखता है। तीन महीने का बच्चा अगर वह बोलने वाले को न देख रहा हो तो भी समझ लेता है कि कोई उससे बोल रहा है और वह रोना बन्द करके चुपचाप सुनता है। तीन चार महीने का बच्चा भी बोलने वाले के भाव को काफी समझ लेता है। अगर कोई उससे कोमल आवाज में बोले और हसे तो वह भी प्रसन्न होता है, "बोलता" है। लेकिन अगर कठोर आवाज से और गुस्से से बोले तो घबरा जाता है।

बच्चा शब्दो के अर्थ कब समझने लगता है, यह कहना मुश्किल है। अलग-अलग बच्चो में शब्दो के अर्थ समझने की शक्ति के विकास के बारे में बहुत विभिन्नता पायी जाती है। कोई बच्चा छ सात महीने में ही अपने नाम को पहचान लेता है, "हाँ" और "ना" का मतलब भी समझता है। कोई-कोई दस महीने में भी इतना नही समझते है। आम तौर पर एक डेढ साल तक बच्चा काफी बाते समझने लगता है।

इस अर्से में बच्चे की वे पेशियां विकसित होती है जो बोलने में काम आती हैं। ये पेशियां जीभ, गाल, कण्ठ और ओठो की होती हैं। लेकिन बच्चा अभी इन पर इतना नियत्रण नही कर पाता कि उनके सम्मिलित उपयोग से अमुक आवाज निकाल सके। वैसे दो तीन महीने में ही वह कुछ-कुछ आवाज निकालता रहता है। यह उसका एक खेल ही है। वह हाथ पाव भी हिलाता रहता है, साथ-साथ कुछ-कुछ "बोलता" भी रहता है।

कुछ बच्चे १० महीने में ही दो तीन शब्द बोल लेते हैं-अम्मा, बाबा, इत्यादि। लेकिन अधिकतर बच्चे एक साल के करीब होने पर ही बोलना शुरू करते हैं। लेकिन इस बोलने में बोलने का मजा ही है, अपनी आवश्यकताओ को बताने का उद्देश्य नही के बराबर है। इस अवस्था में वह अपनी आवश्यकताओ को इशारो के जरिये ज्यादा अच्छी तरह बता सकता है। दूध या खिलौना जो उसको चाहिये उसकी तरफ इशारा करेगा, बाद में इशारे के साथ-साथ वस्तु का नाम भी बोल देगा। बाद में जाकर इशारो का महत्व कम होता जाता है और शब्दो का उपयोग ज्यादा करने लगता है। लेकिन जैसे-जैसे नये शब्द सीखता जाता है, वह उनको कई दफे बोलता रहता है, जो बोलना उसके खेल का ही एक अग है। तीन-चार साल तक भी कोई-कोई बच्चा अपने आप बोलता रहता है। खेलते-खेलते अपनी उन चेष्टाओ का वर्णन करने वाले वाक्य बोलता

जाता है। दो साल का बच्चा छोटी-छोटी कविताएं और श्लोक भी छन्द में बोल सकता है।

पहले तीन-चार शब्द सीखने के बाद बच्चे का शब्द संग्रह जल्दी ही बढ़ता है। लेकिन उच्चारण बहुत स्पष्ट नहीं होता है। बच्चों के तुतलाने का कारण यह है कि अलग-अलग अक्षरों के उच्चारण के लिए आवश्यक सूक्ष्म चलन के लिए उसकी पेशियां अभी असमर्थ हैं। ढाई तीन साल तक वे काफी स्पष्टता से बोलने लगते हैं। लेकिन यहां भी अलग अलग बच्चों के विकास की रफ्तार में बहुत फर्क पाया जाता है। कोई-कोई अक्षरों का उच्चारण बच्चों के लिए ज्यादा कठिन होता है—जैसे अक्सर 'र' के बदले 'ल' बोलते हैं। संयुक्त अक्षरों का तो ठीक उच्चारण करने में उन्हें दो तीन साल और लग जाते हैं। जहां एक ही अक्षर का द्वित्व है जैसे 'त्त'–'म्म' या 'प्प' वह बच्चे के लिए आसान है, लेकिन 'त्न' 'स्म' और 'प्द्' उसके लिए मुश्किल है।

कई बच्चे शब्दों के अक्षरों का क्रम बदल कर भी बोलते हैं जैसे 'पुराना' 'पुनारा' और 'पकड़ना' 'कपड़ना' हो जाता है।

बच्चा वस्तुओं के नाम अपेक्षाकृत आसानी से सीख जाता है। मां, बाबा और दादा को भी वह जल्दी समझता है। लेकिन "मैं" और "तुम" तो बड़ा ही मुश्किल है। मुन्ना जब *"मैं" बोलता है तो वह मुन्ना है और मां "तुम"* है, और जब मां बोल रही हो तो "मैं" मां है और "तुम" मुन्ना। इतनी जटिल बात मुन्ना कैसे समझ सकता है? इसलिए वह अपने आपको काफी दिन तक मुन्ना ही कहता है।

कभी-कभी बच्चा बोलने में देरी करता है जो मातापिता के लिए बड़ी चिन्ता का कारण बन जाता है। ऐसे अवसर पर पहले यह अच्छी तरह परीक्षा करके देखना चाहिए कि बच्चे की सुनने की शक्ति ठीक है कि नहीं। बच्चा अगर बहरा है तो वह गूंगा होगा ही; क्योंकि शब्दों का जगत् उसके लिए अप्राप्य है। वह जो सुनता है वही सीखता है। अगर देखा गया कि उसकी श्रवण शक्ति ठीक ही है तो उसके कण्ठ, जीभ इत्यादि की डाक्टर से जांच करा कर देखनी चाहिए कि ठीक है कि नहीं। अगर यह सब ठीक है तो फिर ज्यादा चिन्ता करने का कारण नहीं है। वह धीरे-धीरे बोलना शुरू करेगा। माता-पिता में चिन्ता और तनाव का भाव दीखेगा तो वह बच्चे के स्वाभाविक विकास में बाधा दे सकता है, जब कि विश्वास और सन्तोष का वातावरण सहायक होगा।

अगर बोलना शुरू करने की उम्र में बच्चा किसी गम्भीर रोग से बीमार होता है या उसे कोई गहरी चोट आदि पहुंचती है तो भी उसके बोलने में देरी हो सकती है। मां से अलग होना आदि कोई मानसिक कष्ट हुआ तो भी उसका विकास कुछ समय के लिए रुक सकता है। एक लड़का दो साल का था और काफी बोलता था जब उसकी छोटी बहन की मृत्यु हुई। इस धक्के के बाद उसका बोलना बिलकुल बन्द हो गया और काफी अर्से के बाद ही उसने फिर बोलना शुरू किया। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ गेसल लिखते हैं कि अनाथालयों में पले बच्चे अकसर ठीक समय पर बोलना नहीं शुरू करते हैं, लेकिन देखा गया कि ज्यों ही उन्हें एक घर और परिवार में अपना लिया गया और वहां उन्हें प्रेम का वातावरण मिला तो उनकी प्रगति अच्छी होती है, वे ही बच्चे जल्दी बोलना शुरू कर देते हैं।

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

(पृष्ठ १४० का शेषांश)

दूसरे विषय वे हैं जिन्हे 'ललित कलायें' कहा जाता है, जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला आदि। गोष्ठी यह मानती है कि जीवन में इन कलाओ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और जिन विद्यार्थियो में उनके प्रति रुचि है उन्हे यथोचित मौका अपनी इन शक्तिया का विकास करने के लिए दिया जाना चाहिए। हा, ये कार्य मूलोद्योग के तौर पर उत्तर बुनियादी की अवस्था में नही लिए जा सकते क्योकि उस समय तक आमतौर पर बालक के निश्चित रुझान का पता नही चलता और आज की परिस्थिति में इन विषयो की पूरी-पूरी शैक्षणिक सम्भावनाओ का लाभ उठाया नही जा सकता है। किन्तु यह तो निश्चित है कि उत्तर बुनियादी अवस्था में इन कार्यों के लिए शिक्षा के कार्यक्रम में समुचित व्यवस्था हो, ताकि परे चलकर वे बालक जिनमें इस प्रकार की शक्तिया हैं, अपनी जीवन साधना के लिए उन्हे अपना सके।

(पृष्ठ १५७ का शेषांश)

पीसमेकर के कई सदस्य इस सघ को अमेरिका में गाधीजी की विचार धारा के वाहक के रूप में मानते हैं। हम गाधीजी का बिना सोचे समझे अनुसरण करने का प्रयत्न तो नही करते हैं, लेकिन जभी गाधी के बारे में सोचते हैं तो एक आत्मीय सवेदना और अनुभूति हमें मिलती है। गाधी की प्रेरणा न होती तो यह पीसमेकर सघ न होता।

हमारे सदस्यो में अत्यन्त विभिन्न उम्र के और स्तर के लोग हैं—जैसे स्कूल के बच्चे, माताए, पादरी और वयोधिक, सब एक साथ काम करते हैं।

और भी कई वृत्तिया सघ के अन्दर काम करती हैं जो व्यक्ति के जीवन में क्रान्तिकारी हैं। कई सदस्य तो शाकाहारी हैं। इस लेख का लेखक व्यक्तिगत तौर पर खेती से आर्थिक स्वावलबन साधने में लगा है।

(पृष्ठ १६२ का शेषांश)

बहुत अच्छी और सर्वथा अनुकूल परिस्थितियों में भी कोई बच्चा दो ढाई साल तक भी बोलना नही शुरू करता है। उसका बहुत एब्नॉर्मल नही समझना चाहिए। मातापिता धीरज रखें और उस विश्वास और प्रोत्साहन देते रहें तो वह अपने समय पर बोलना शुरू कर देगा और फिर जल्दी ही प्रगति करेगा। सभव है कि छ सात महीने के बाद वह उन बच्चो के बराबर हो जाय जिन्होने उससे कही पहले बोलना सीख लिया था।

Regd. No. N-106

तुलना असम्भव

ऐसी स्थिति पैदा हो जानी चाहिए कि सोलहवें साल में, यानी मौलिक पाठ्यक्रम के अन्त में, तैयार हुए बच्चे की तुलना गैर-नई तालीम स्कूल में पढे बालक के साथ करने की आवश्यकता ही प्रतीत न हो।

जहां अपना यह बच्चा अध्यात्म-विद्या-सम्पन्न रहेगा, वहां उसमें इस विद्या की गंध भी न होगी। यह एक उद्योग-धन्धे में कुशल रहेगा, वह सर्वथा निरुद्योगी। यह सभी व्यवहारों में दक्ष रहेगा, तो वह व्यवहारशून्य। इसके सामने पराक्रम के क्षेत्र खुले रहेंगे, तो उसकी आखों के सामने अंधेरा छाया रहेगा। यह संशोधक होगा, तो वह संशोध्य।

—विनोबा

श्री देवी प्रसाद अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

अहिंसा और शा
विशेषांक

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

जनवरी १९६१
वर्ष : ९ अंक : ७

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

जनवरी १९६१

वर्ष ९ अंक ७.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है । अिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है । चन्दा पेशगी लिया जाता है । वी. पी. डाक से मगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है । चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें । पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का अुल्लेख करे । "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते है । इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है । पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय ।

वर्ष ९ अंक ७ ★ जनवरी १९६१

कभी किसी की हत्या न करने के आदेश को तो तुम जानते ही हो। लेकिन मैं कहता हूं, मात्र हत्या ही हिंसा नहीं है। यदि तुम अपने भाई पर भी क्रोध करोगे, तो मैं कहता हूं कि तुम नरक के अधिकारी बनोगे; यदि तुम अपने भाई को गाली दोगे, तो भी तुम अधोगति ही पाओगे; और यदि तुम उसे मूर्ख कहोगे, तो भी उसका दण्ड तुम्हें भोगना ही होगा। यज्ञ की वेदी पर खडे होकर अपनी बलि चढाते समय यदि तुम्हें याद आये कि तुम्हें अपने भाई पर तनिक भी क्रोध है, तो मैं कहता हूं कि तुम बलि चढाना छोड कर पहले अपने भाई के पास जाना और उसे संतुष्ट करके फिर अपनी बलि चढाना। अपने विरोधी के साथ समझौता करने में तुम कभी देर न लगाना।

—बाइबल से

गांधीजी

कल की दुनिया

आज दुनिया के भविष्य के बारे में जितनी अटकलबाजी लगाई जा रही है उतनी पहले कभी नही लगाई गई होगी। क्या हमारी दुनिया में सदा हिंसा का ही बोलबाला रहेगा? क्या दुनिया में गरीबो, भुकमरी और दुख-दर्द का कभी अन्त ही नही होगा? धर्म में हमारी अधिक व्यापक और अधिक दृढ श्रद्धा होगी या दुनिया ईश्वरहीन बन जायगी? अगर दुनिया में महान परिवर्तन होना है, तो वह परिवर्तन कैसे होगा? वह युद्ध से होगा या क्रांति से? या वह परिवर्तन शान्तिपूर्ण मार्ग से होगा? अलग-अलग लोग इन प्रश्नों के अलग अलग उत्तर देते हैं। हर आदमी जैसी आशा और अभिलाषा रखता है वैसी ही वह कल की दुनिया के लिए अपनी योजना बनाता है। मैं इन प्रश्नों का उत्तर न केवल विश्वास के कारण देता हू, बल्कि पूरी श्रद्धा होने के कारण देता हू। कल की दुनिया ऐसे समाज की होगी, जो अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा होगा—होना चाहिये। अहिंसा सबसे पहला कानून है, उससे दूसरे सारे वरदानो का जन्म होगा। यह बड़ी दूर का ध्येय, अव्यावहारिक आदर्श मालूम हो सकता है, लेकिन यह ऐसा ध्येय अथवा आदर्श नही है, जो कभी प्राप्त हो न किया जा सके। क्योंकि इसे यही और इसी समय व्यवहार का रूप दिया जा सकता है। ऐक अकेला व्यक्ति दूसरों का रास्ता देखे बिना भविष्य का इस जीवन पद्धति को, अहिंसक मार्ग को अपना सकता है। और अगर एक व्यक्ति ऐसा कर सकता है, तो क्या व्यक्तियों के सम्पूर्ण समूह ऐसा नही कर सकते? और सम्पूर्ण राष्ट्र ऐसा नही कर सकते? मनुष्य कोई काम आरम्भ करने में हिचकिचाते हैं, क्योंकि उन्हे लगता है कि वे अपने ध्येय को सम्पूर्ण रूप में सिद्ध नही कर पायेंगे। यह मनोवृत्ति निश्चित ही हमारी प्रगति में सब से बड़ी रुकावट है- ऐसी रुकावट, जिसे चाहे तो हर आदमी दूर कर सकता है।

समान वितरण का कानून अहिंसा से ही निकलता और विकसित होता है, जो मेरी कल्पना की दुनिया का दूसरा बड़ा कानून है। इसका यह अर्थ नही कि दुनिया की चीजें मनमाने ढग से सब लोगों में समान रूप से बाट दी जायगी, इसका अर्थ यह है कि हर मनुष्य को अपनी कुदरती जरूरते पूरी करने जितने साधन मिलेंगे उससे अधिक नही। एक मोटा उदाहरण ले अगर एक आदमी को प्रति सप्ताह पाव रत्तल आटा चाहिए और दूसरे आदमी को पाच रत्तल की जरूरत हो, तो हरएक को मनमाने ढग से पाव रत्तल या पाच रत्तल आटा नही दिया जाना चाहिए, दोनो की जरूरते पूरी हो सकनी चाहिए।

यहा हम कल की दुनिया से सम्बन्ध रखनेवाले शायद सब से महत्वपूर्ण प्रश्न पर आते है। यह समान वितरण कैसे सिद्ध किया जाय? क्या धनी लोगों से उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली जाय?

अहिंसा उत्तर देती है—नहीं। कोई भी हिंसक वस्तु मानव-जाति के लिए स्थाई रूप से हितकारी साबित नहीं हो सकती। धनिकों की सम्पत्ति जबरदस्ती छीन लेने से समाज कई बड़े लाभों से वंचित हो जायगा। धनी आदमी किसी चीज का सर्जन करना और उसकी व्यवस्था करना जानता है, उसकी योग्यताओं को यों ही नहीं खो देना चाहिए। इसके बजाय धनी आदमी के पास उसका धन रहने देना चाहिए, ताकि अपनी उचित जरूरत पूरी करने के लिए जितना धन जरूरी हो उतना वह काम में ले और बाकी बचे धन का ट्रस्टी बन कर रहे। यह बाकी धन समाज के भले के लिए खर्च हो। अैसे मनुष्य दुनिया में पहले भी हुए हैं और आज भी मौजूद हैं। मेरे विचार से जब कोई आदमी अपने को समाज का सेवक मानने लगता है, समाज के लिए कमाता है और समाज के लिए ही खर्च करता है, तब उसकी कमाई अच्छी कमाई हो जाती है और व्यवसाय के लिए किया जानेवाला उसका साहस रचनात्मक साहस हो जाता है।

परन्तु क्या यह अहिंसा की सम्पूर्ण कल्पना मानव-स्वभाव में ही परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखती? और क्या इतिहास किसी भी जमाने में अैसे परिवर्तन का सबूत देता है? इतिहास जरूर इस बात का सबूत देता है। अनेक मनुष्य तुच्छ, व्यक्तिगत और परिग्रहवाले दृष्टिकोण को छोड़कर अैसे दृष्टिकोणवाले बन गए, जो सम्पूर्ण समाज को अपने सामने रखता है और उसके लिए काम करता है।

कल की दुनिया में मैं न तो गरीबी को देखता हूं और न युद्धों, क्रान्तियों और रक्त-पात को और उस दुनिया में ईश्वर के प्रति अैसी महान और गहरी श्रद्धा होगी, जैसी पहले कभी नहीं देखी गई थी। व्यापक अर्थ में दुनिया का अस्तित्व ही धर्म पर निर्भर करता है। धर्म को जड़ से उखाड़ने के सारे प्रयत्न असफल रहेंगे।

शरीर-बलका उपयोग करना, गोला-बारूद काम में लाना यह हमारे सत्याग्रह के कानून के लिए बाधारूप है। उसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमी से हम जबरन करवाना चाहते हैं। अगर यह सही हो तो फिर वह सामनेवाला आदमी भी अपनी पसंद का काम कराने के लिए हम पर गोला बारूद चलाने का हकदार है। इस तरह तो हम कभी बंदरगाह पर पहुंचेंगे ही नहीं। कोल्हू के बैल की तरह आंखों पर पट्टी बांधकर भले ही हम मान लें कि हम आगे बढ़ते हैं। लेकिन दरअसल तो बैल की तरह हम गोल चक्कर ही काटते रहते हैं। जो लोग ऐसा मानते हैं कि जो कानून खुद को नापसंद है उसे मानने के लिए आदमी बंधा हुआ नहीं है, उन्हें तो सत्याग्रह को ही सही साधन मानना चाहिये, वरना बड़ा विकट नतीजा आयगा।

—गांधीजी

विश्व-मानुष बनिये

विनोबा

हमारी वृत्ति पूरी तरह "वैश्वानर" की होनी चाहिए। ऋग्वेद के ऋषि ने दस हजार वर्ष पहले 'विश्व-मानुष' शब्द का प्रयोग किया है। वैसा हमें बनना है, क्योंकि वह इस युग की माग है और आत्मज्ञान का आश्वासन है। विज्ञान और आत्मज्ञान, दोनो सकीर्णता पर समान रूप से प्रहार करते हैं—यह विशाल दृष्टि हम अपना ले। फिर भले ही हम घर का काम करे या गलो की सफाई करे अथवा किसी राज्य का सचालन करे। हम यह भूमिका कायम रखेंगे, तभी ससार में टिक सकेंगे।

आध्यात्मिक संकट : आज समस्त ससार *में एक आध्यात्मिक सकट पैदा हो गया है।* मनुष्य का मन चक्कर में पड गया है। वह कुछ भयभीत हो गया है। उसे कुछ सूझ नही रहा है। एक के बाद एक, इस तरह वह शस्त्रो के अविष्कार कर रहा है। उसकी बुद्धि काम नही दे रही है। वह शस्त्रो के हाथो में चला गया है। शस्त्र उसके हाथो से निकल गये हैं। आज हिंसा पर से उसकी श्रद्धा टूट-कर गिर गई है, परन्तु अहिंसा पर अभी श्रद्धा जम नही पाई है। एक श्रद्धा थी, तो वह निश्चिन्त था। अब तो वह भी नही रही। फिर भी मानव शस्त्रास्त्र बढाता ही जा रहा है। यह एक बहुत बडी समस्या है।

संयुक्त हृदय बिना संयुक्त वस्तु का निर्माण असंभव : बहुत वर्षों पहले मैं जब पवनार में था, तो आजाद हिन्द सेना के कुछ लोग मुझसे मिलने आये। उन्होंने 'जय-हिन्द' कहा। मैंने उत्तर में कहा—"जय-हिन्द, जय दुनिया, जय हरि"! मतलब यह कि 'जय-हिन्द' में भी मुझे भय लगा। आज नही तो कुछ दिन बाद आपको भी समझ में आने लगेगा कि 'जय हिन्द' में क्या खतरा है। यह 'जय-जगत्' की भाषा मैंने कर्नाटक में शुरू की है। *संयुक्त हृदय के बिना संसार में कुछ भी संयुक्त नहीं हो सकता।* इसलिए सयुक्त हृदय के आन्दोलन के बिना हम जो कुछ भी दूसरी सयुक्त चीज करने जायगे, वह हमें वियुक्त ही करेगी।

प्रेम-व्यवहार से ही प्रश्न हल होंगे : किसी भी आदमी को देखते ही ऐसा प्रतीत होना चाहिए, मानो मेरी आत्मा ही आ रही है। तब हम एक साथ बैठेंगे और खायेंगे-पियेंगे। जिस प्रकार घर में प्रेम होता है, वैसा ही समाज में हो। मूल में प्रेम होगा, तो झगडो में भी मधुरता होगी। आप सिद्धात के लिए झगड रहे हैं, यह मै तभी समझूगा जब आप लडें और फिर भी एक-दूसरे को प्रेम से गले लगायें। एक भाई कहने लगे कि हमें किसी से द्वेष नही है। इस पर मेरा जवाब यह है कि मनुष्यता के लिए केवल द्वेष का न होना काफी नहीं है, प्रत्यक्ष प्रेम होना चाहिए। इतना होने के बाद हम चर्चा के लिए बैठें।

तब विचार-भेंट भी हो सकेगी। लिखा है--'मराठा तितुका मेलवावा, महाराष्ट्र धर्म वाढवावा।' यहा पर केवल एक ही धर्म है। हम सब एक-दूसरे को धारण करने वाले हैं। स्नेही-प्रेमी है। एक-दूसरे के दर्शन के बिना हमें नीद नही आनी चाहिए। रामायण में लिखा है कि जिस दिन राम लक्ष्मण का नही देखते थे उस दिन उन्हें नीद नही आती थी। "न च तेन विना निद्रा लभते पुरुषोत्तम' ऐसी प्रेम की अनुभूति हो। इस तरह के परस्पर के प्रति अन्योन्य अनुराग हो। फिर जितने भी वाद सामने आयेंगे, वे तत्व-बोध में मदद पहुचायेंगे। अपने हृदयों में ऐसी अनुभूति उत्पन्न कीजिये कि केवल इस भारत में ही नहीं, सपूर्ण पृथ्वीतल पर जितने भी मनुष्य है, वे सब मेरे रूप है और मैं उनका रूप हू। एक बार यह सिद्ध कर लीजिये, फिर जीभर लडते रहिये। प्रेम के बगैर झगडा हो ही नही सकता।

'वन्दे मातरम्' की तरह 'वन्दे भ्रातरम' भी यह प्रश्न हल हो जायगा, तो क्या दूसरे झगडे पैदा ही नही होंगे? जिस प्रकार एक दिन के बाद दूसरा दिन आता है, उसी प्रकार एक के बाद दूसरा, इस तरह प्रश्न पर प्रश्न उठते ही रहते हैं। कई लोग मुझसे पूछते है कि क्या आप जमीन की समस्या हल करने जा रहे है? मैं कहता हू कि मैं क्या हल करनेवाला हू। शायद मेरी ही समस्या हल हो जाय। रामचद्र ने बडा लोक सग्रह किया, फिर भी वह बाकी रह गया। फिर कृष्ण आये, बुद्ध आये, और अभी-अभी हमारी आखो के सामने गाधीजी आकर चले गये। उन्होने भी लोक-सग्रह किया। परतु इसका क्या कभी अत आनेवाला है? ये वाद तो चलते ही रहेंगे। ऐसा मान लीजिये और परस्पर प्रेम बढाइये। रवीन्द्रनाथ कहा करते थे कि ये लोग 'वन्दे मातरम्' तो कहते हैं, परतु 'वन्दे भ्रातरम्' कभी नही कहते। भाई-भाई आपस में लडते रहेंगे, तो क्या मा को अच्छा लगेगा? इसलिए हम सब भाइयो को प्रेम से रहना चाहिये। सब भाई भाई की तरह रहें। केवल इतना कहने से वेद को समाधान नही हुआ। भ्रातृत्व में भी समानता की कमी रह जाती है। इसलिए उन्होने एक सुन्दर शब्द रख दिया--

'अज्येष्ठास अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधु'

भ्रातृत्व में समानता भी हो : भाई भाई के बीच भी कोई बडा, कोई छोटा होता ही है। पर हम ऐसे भाई होगे कि हमारे बीच न कोई छोटा होगा और न कोई बडा। ऋग्वेद के इस मत्र में मुझे अत्यन्त प्रेम का दर्शन हुआ। जिस दिन हमें यह दर्शन हो जायगा, उस दिन हम तुकाराम की तरह नाचने लगेंगे। लोग कहते हैं कि तुकाराम को बडा दु ख सहना पडा। पर खुद उन्हें तो कोई शिकायत नही रही। उलटे उन्होने तो लिखा है--"आनदाचे डोहीं। आनद तरग आनदचि अग। आनदाचे काय झाले सागू। काही चिंता नाही।"

शान्ति-शिक्षा की बुनियाद

मार्जरी साइक्स

नई तालीम के पाठको को यह याद दिलाने की जरूरत नही है कि शिक्षा-विचारो में महात्मा गाधी की देन एक अच्छी पद्धति के अलावा और कुछ भी है । बच्चो की मेहनत से ही खर्च वसूल करके शिक्षा को सार्वजनिक बनाने के "पागलपन" से भी वह कुछ ज्यादा है । "जीने और करने" से सीखने की पद्धति का इस्तेमाल करने के लिए माफी मागने की कोई जरूरत तो नही है, वह ऐसी एक पद्धति है जिसे दुनियाभर के अनुभवी और ज्ञानी शिक्षको का समर्थन मिला है । आत्मनिर्भरता को शिक्षा की सफलता का मापदण्ड और कसौटी मानने के लिए भी हम किसी से माफी नही मागना चाहते हैं। यह बात हमेशा ही मानी हुई है कि आदमी को स्वावलबी बनाना शिक्षा का उद्देश्य है और वह आज भी मानी जाती है; हालाकि अब यह आम तौर पर किसी धन्धे और तनख्वाह की योग्यता दिखानेवाले सर्टिफिकेट मागने का नीचा रूप धारण करती है । लेकिन पद्धतियो का, चाहे वे कितनी ही अच्छी क्यो न हो—यान्त्रिक नियम के रूप में अध.पतन हो सकता है और परीक्षाएँ कई दफे पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने के बदले बाधारूप बन सकती हैं। इस अध.पतन से बचने का उपाय हमेशा यह याद रखना है कि पद्धतिया और परीक्षाए हमारे अन्तिम साध्य नही हैं, बल्कि शिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य की प्राप्ति के साधनमात्र हैं। पद्धतियो और परीक्षाओं का ठीक उपयोग तभी हो सकता है, जब कि हमारे सामने लक्ष्य स्पष्ट हो । नई तालीम का लक्ष्य ऐसा एक भारत है जिसका जीवन शान्तिपूर्ण और स्वतन्त्र हो; उसका मतलब है ऐसा एक भारत, जिसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था सत्य और अहिंसा पर आधारित है । आज की नई तालीम शालाओ का तात्कालिक उद्देश्य विद्यार्थियो को अपनी जिम्मेदारी समझ कर और स्वेच्छा से उस अहिंसक समाज रचना के निर्माताओ में अपना स्थान ग्रहण करने के लिए तैयार करना है ।

ऐसे लोग हैं जो पूरी सचाई के साथ मानते हैं कि आन्तरिक अव्यवस्था और बाह्य आक्रमण के प्रति रक्षा के लिए शस्त्रशक्ति की जरूरत है। यहा उनके साथ बहस करना हमारा उद्देश्य नही है । नई तालीम का काम वादविवाद करना नही, बल्कि अपने ही क्षेत्र में अहिंसा की शक्ति को प्रत्यक्ष करके दिखाना है । साधारण तौर पर शान्ति के काम के दो हिस्से हैं । पहला काम समाज की पुनर्रचना का है, जिससे कि अन्याय, भय और स्पर्धाओ का निराकरण हो, जो युद्ध और हिंसा की तरफ ले जाती हैं । दूसरा : आदमियो की वृत्तियो, आदतो और मूल्यो को ऐसे बदलना है जिससे कि वे शान्तिमय सहयोगी जीवन के लिए इच्छुक और समर्थ बने । पहला सारे सर्वोदय आन्दोलन का काम है, दूसरा शिक्षा का विशेष कार्य है । मे

दोनो पूरी तरह से अलग नही किए जा सकते, क्योंकि दोनो एक दूसरे की सफलता के लिए जरूरी हैं, फिर भी नई तालीम के कर्मियो को दूसरे मुद्दे पर विशेष करके अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है ।

यह शाति के लिए शिक्षा "दिमागी ज्ञान" का ही कार्य नही है, यह बात बहुत जोर के साथ कहने को है । नई तालीम शालाओ में भी हमें ऐसे शिक्षक मिलते हैं जो समझते हैं कि शाति-शिक्षा का मतलब उचित अवसरो पर—जैसे गाधीजी का जन्मदिन इत्यादि—उनके नेतृत्व में अहिसा से क्या-क्या कार्य हुआ, इस पर बच्चो को भाषण देना है । बौद्धिक ज्ञान का जरूर अपना स्थान है और दुनिया में शाति के वीरो ने क्या-क्या किया है, इसकी जानकारी बच्चा को मिलनी आवश्यक है । समाज शास्त्र की किताबें मानवता के परस्परावलबन और इतिहास के विधायक तथा सहयोगी पहलुओं पर जोर दें, यह अच्छा है । लेकिन इस तरह का "बौद्धिक ज्ञान" बच्चो के लिए वास्तविक और जीवन्त तभी बन सकता है जब वह 'जीवन के लिये' शिक्षा की एक सपूर्ण योजना के साथ समन्वित हो और जब वह भावनाओ का जगाये व इच्छाशक्ति का नियमन करे । ऐसी एक शाति की शिक्षा की योजना का विस्तार के साथ वर्णन करने के लिए तो एक पूरी किताब ही चाहिये । एक छोटे लेख में शिक्षक के लिए ऐसी कुछ साधारण, सरल कसौटियां सुझाना मात्र ही हो सकता है जिससे वह अपने स्कूल के दैनिक काम की योजना को जाच सके ।

सुना है कि चीन में इस तरह की एक कहावत है—

जब मैं सुनता हू तो भूलता हू,

जब मै देखता हू तो याद करता हूं,

जब मैं करता हू तो जानता हू ।

केवल "सुनने" के मर्यादित मूल्य के बारे में हम चर्चा कर चुके हैं । शाति की शिक्षा का पहला कदम बच्चे को यह देखने देना है कि उस समाज के जीवन में, जिसका कि वह एक सदस्य है, शातिमय अहिंसक तरीको का कैसे उपयोग किया जाता है, वैसे ही शिक्षको के आपसी सबन्ध में, शिक्षको के विद्यार्थियो के साथ के व्यवहार में, निर्णय लेने तथा मतभेदो को निपटाने में । और इस "देखने" के साथ-साथ बच्चे को उसका अभ्यास भी करने देना चाहिए, ताकि उस "करने" के अनुभव से वह शाति की बातो को सीखे ।

स्कूल की या वर्ग की एक अच्छी आम-सभा जिसमें बच्चे उनके लिए व्यावहारिक महत्व की बातो के बारे में स्वय निर्णय लेते हैं और उनको अमल में लाते हैं, उसके सदस्यो को जिम्मेदार, अहिंसक सहयोग का प्रशिक्षण देने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस सभा को एक सच्चा, जीवन्त स्थान बनाने के बारे में स्कूल के कार्यकर्त्ताओ को बहुत अच्छी तरह सोच-विचार करना चाहिये । इसके लिए कार्यकर्त्ताओ की तरफ से आत्म-सयम, सब्र और नम्रता एक जरूरी शर्त है । ऐसी शालासभा में हिस्सा लेने से बच्चा "देखता" और "करता" है ।

दूसरा मुद्दा है, सत्य की एकान्त निष्ठा । ऐसी भावुकता जो मानवीय स्वभाव और इतिहास के अरुचिकर सत्यो से अपनी आखें मूद लेती है, हमारे सारे काम को दूषित कर

क्योंकि हम ऐसे इतिहास को, जिसमें अधिकारों की छीनाझपटी और युद्ध की ही बातें हैं, पसंद नहीं करते हैं, दूसरी ओर उन वस्तु-स्थितियों को भुला कर हम इतिहास का झूठा रूप भी बना देना नहीं चाहते हैं। झगड़ों और स्पर्धाओं ने भी इतिहास में महत्वपूर्ण भाग लिया और वह भाग हमेशा सर्वथा पापिष्ठ भी नहीं रहा। हमारी इस स्वाभाविक इच्छा के कारण, कि बच्चे अहिंसा में पूरी-पूरी श्रद्धा के साथ बढ़ें, हम कहीं सर्वोदय और मानव समाज की व्यवस्था के बारे में दूसरे विचारों के बीच अन्यायपूर्ण तुलना न करें। अगर हम वैचारिक विभिन्नताओं और कठिनाइयों के बारे में न्याय्य और वस्तुनिष्ठ रूप से सत्य का पूरा-पूरा पालन नहीं करते हैं, तो दुनिया की दृष्टि में कोरे भावुक बन कर तिरस्कृत किये जाने के अर्ह बनेंगे। बच्चों के साथ व्यवहार में भी हमें उनके अन्दर की आक्रमण-वृत्ति के विधायक स्वरूप को पूरी तरह जानने-समझने की जरूरत है। बच्चा जो वीरता, निर्भयता और पराक्रम की पूजा करता है, वह एक स्वस्थ वृत्ति है। १९३८ में हिट्लर और नात्सियों को "मनाने" के प्रति जो जनमत उठ खड़ा हुआ वह एक अच्छी बात थी। "मनाना" शांति नहीं है। शान्ति के लिये निर्भयता और सत्य का मूल्य चुकाना पड़ता है। इसलिए बच्चे को शाला-समाज के नेताओं में इस धीरता, न्याय-वृति और सच्चाई को सक्रिय रूप में देखने की जरूरत है, उसे भी वैसा "करने" का मौका मिलना चाहिये।

तीसरी बात परस्पर प्रेम और आत्मनिर्भरता की आदत से उत्पन्न मौलिक मनोवैज्ञानिक सुरक्षा-बोध की है। यह एक मानी हुई बात है कि मानव प्राणियों में ही नहीं, जानवरों में भी भय और विपद् की आशंका हिंसा को जन्म देती है। जो लोग अपने आप को सुरक्षित महसूस करते हैं, वे "युक्ति को सुनने" स्वयं बदलने और समाज के साथ शांति से रहने के लिए तैयार होते हैं। यह मौलिक सुरक्षा-बोध दो परस्पर विरोधी न होते हुए भी विभिन्न बातों पर अवलंबित है–पहला यह अनुभव करना कि कोई उसे प्यार करता है और उसकी चिन्ता करता है। दूसरा व्यक्तिगत रूप से और समाज के अन्दर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता अनुभव करना। इसी कारण से किसानों के और कारीगरों के समुदाय, जो अपनी जरूरत की चीजों का उत्पादन करने की क्षमता महसूस करते हैं, शान्ति-प्रिय होते थे। उन लोगों में जो अपनी आजीविका के लिए ऐसी शक्तियों और परिस्थितियों पर अवलंबित होते हैं, जो उनके वश की नहीं होतीं, यह सुरक्षा-बोध नहीं पाया जाता, और वे जल्दी ही हिंसा के लिए उतारू हो जाते हैं। केन्द्रीकृत उद्योगों पर आधारित जिन्दगी में यह खतरा है।

इस प्रकार नई तालीम की उद्योग केन्द्रित शिक्षण पद्धति और शांति की शिक्षा के रूप में उसकी कार्यक्षमता का गहरा परस्पर संबन्ध है। लेकिन छोटे बच्चों के लिए प्रेम से उत्पन्न सुरक्षा बोध की पहली आवश्यकता है। इसलिए यह जरूरी है कि उन्हें आत्मनिर्भरता का शिक्षण ऐसे एक समाज में रहने से मिले जहां उन्हें प्रेम और देखभाल मिलती हो। यह उस समाज के जीवन का स्वाभाविक भाग हो। प्रेमपूर्ण मानवीय संबन्ध और प्रेमपूर्ण कारीगरि, दोनों एक साथ चलनी चाहिए। बच्चों को यह मालूम होना चाहिये कि समाज के बड़ों को उसमें पूरा विश्वास और श्रद्धा है।

अगर शिक्षा में उद्योगों का स्थान सीखने के एक माध्यम के रूप में ही माना जाता है, उससे अधिक उनका कोई मूल्य नही है, तो शान्तिप्रिय मानवों को बनाने में वह विशेष सफल नही होगा। अगर बच्चा को यह महसूस हो कि उन्हे उद्योग का काम ऐसे लोगो के द्वारा दिया जाता है जिन्हे उनके कल्याण की चिन्ता नही है तो उसका परिणाम उनमें अरक्षितता की भावना पैदा करना होगा। और उसकी प्रतिक्रिया हिंसा हो सकती है। विनोबाजी नई तालीम शिक्षकों को चुनौती दे रहे हैं कि वे आत्मनिर्भर हो, तनख्वाह निर्भर नही। इस चुनौती को हमें गभीरता के साथ समझना है। आत्मनिर्भर, शान्ति-प्रेमी शिक्षक ही बच्चों को समाज के शान्तिप्रिय सदस्य बनने में मदद कर सकते हैं।

सेवा जिन्हे किसी प्रकार की तगी है, उनके साथ बाट कर खाने की तैयारी, 'अन्त्योदय' के लिए अपने आपको देना, उनके साथ एकात्म्यबोध यह बहुत ऊचा आदर्श है। शायद हम उस तक पूरा-पूरा पहुच न पायें। लेकिन उस दिशा में सतत प्रयत्न करना शान्ति की शिक्षा का एक सारभूत अग है। विनोबाजी आग्रह के साथ कहते हैं कि शान्ति सैनिक को शुरू से आखिर तक और सब समय सेवा सैनिक होना चाहिये और उसका पहला गुण सब के लिए गहरी सवेदना का होना चाहिये। शान्ति का विद्यालय बनने के लिए नई तालीम समाज को एक शान्तिमय सृजनात्मक उत्पादक काम में लगे स्नेहपूर्ण परिवार ही नही बनना होगा, उसे सत्य के अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठ दृष्टि और खुला दिमाग रखना ही काफी नही, अपने सब कार्यों को शान्तिपूर्ण तरीके से चलाना भी पर्याप्त नही है, बल्कि इन सब बातों के अलावा अपने समाज से बाहरवाले लोगों से भी उसे सक्रिय सवेदना रखनी चाहिये—सहयोगिता में, सेवा में। ऐसा विद्यालय जिसका मतलब अपने से ही है, चाहे वह कार्य की सुचारुता की दृष्टि से हो, एक स्वार्थमय सस्था बन जायगा और बच्चा को स्वार्थ सिखायगा। स्वार्थ और शान्ति एक साथ नही चल सकतो है। विद्यालय में बच्चों को अपने ही कार्यों को नही, दूसरों की भी बात सोचने की आदत डालनी चाहिये। इग्लैण्ड और अन्य देशों के भी कई स्कूलों में कभी-कभी शिक्षक और विद्यार्थी मिल कर एक वक्त का खाना छोड दिया करते हैं, जिससे कि वह पैसा अन्य देश के भूखे बच्चों के लिए भेज सके। उससे इस तरह की शान्ति-शिक्षा का अभ्यास होता है। और भी कई प्रकार के व्यावहारिक काम हो सकते हैं। दर असल तरीके का नही, सिद्धान्त का महत्व है। जैसे कि शुरू में कहा गया, विद्यालय-जीवन अपने में कोई साध्य नही, वह साधन है, साध्य तो ऐसे स्त्री-पुरुषों का निर्माण है जो अपने ही शान्तिमय जीवन से दुनिया में शान्ति स्थापित कर सके।

सम्पादकीय

शिक्षा और बन्दूक का आज मेल नहीं हो सकता !

"शिक्षा का उद्देश्य और उसकी दिशा वह होगी कि जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो, उससे मानवीय अधिकारों और बुनियादी स्वातन्त्र्य के प्रति श्रद्धा की पुष्टि हो। शिक्षा राष्ट्रों, मानव वंशों और धार्मिक सम्प्रदायों में आपसी सहिष्णुता, सहानुभूति और मैत्री का विकास करेगी और राष्ट्रसंघ के द्वारा चलाये जाने वाली शान्ति स्थापना की प्रवृत्तियों को आगे बढायेगी।"

मानवीय अधिकारों के घोषणापत्र के खण्ड २६ का यह दूसरा पैराग्राफ है। 'शिक्षा क्या है', इसकी इतने कम शब्दों में और इतनी सुन्दर व्याख्या कम ही सामने आती है। इसे थोड़ा बारीकी से देखें

व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास

सम्पूर्ण विकास का क्या मतलब ? हम समझते हैं कि उसमें ज्ञान विज्ञान की शिक्षा, सेवा और सृजनात्मक शक्तियों का विकास और स्वस्थ व संयममय जीवन बिताने की कुशलता आदि बातें आती ही हैं। किन्तु क्या इन बातों से बढकर अधिक महत्व गुण-विकास को नहीं है ? कौन से गुण ? वे गुण, जो उपरोक्त बातों में कुशल व्यक्ति के भी अन्दर अगर न हों तो वह अपूर्ण सा ही रह जाता है, और यदि वे एक अनपढ के अन्दर भी हों तो उसे सम्पूर्णता की ओर ले जाते हैं। करुणा और प्रेम मनुष्यता के अत्यन्त आवश्यक संयोगांग होते हैं। क्या शिक्षा का यह फर्ज नहीं है कि व्यक्ति में वह इन गुणों को सर्वोच्च सिंहासन पर बैठाये ? हमें नहीं लगता कि कोई चिन्तनशील व्यक्ति इस बात से असम्मत होगा। फिर भी शिक्षा अपना यह कर्तव्य पालन नहीं कर पा रही है। इसका कारण यही है कि शिक्षा के ध्येय और उसकी पद्धति व साधनों के बारे में हमारा विचार स्पष्ट नहीं है।

करुणा साथी और पडोसी पर शंका नहीं करती। वह तो "चोर" और "डाकू" को भी निःशंक होकर बरतती है। जिस शिक्षा के कार्यक्रम में शंका और अविश्वास की, सूक्ष्मतम तरीकों से नींव डाली जाती है, वह मनुष्य समाज में करुणा और प्रेम की परम्पराएं नहीं डाल सकती है। शिक्षा तभी सफल होती है जब वह व्यक्ति या समूह को मन के ऊपर उठकर सोचना सिखाए, जिसे अंग्रेजी में आब्जेक्टिव दृष्टि कहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के पूरे कार्यक्रम को बडी बारीकी के साथ संयोजित किया जाय। जीवन की आम बातों, विज्ञान और इतिहास की बातों को ऐसे मन के लिए आब्जेक्टिवली (खुली दृष्टि से) देखना सम्भव नहीं है, जिसमें प्रतिकूल भावों की बुनियाद (प्रेजूडिसेस) पड चुकी हो। और फिर ऐसे मन के लिए हृदय से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर खुली दृष्टि से सोचना तो असम्भव ही है, जिसके अन्दर पहले से ही प्रतिकूल भाव निर्मित हो चुके हैं। शिक्षक सिखाता है, "सामान चोरी हो जाने का डर है, इसलिए तुम्हें हमेशा सतर्क रहना चाहिए और चोरों को पकडने के लिए तैयार रहना चाहिए।" ऐसी शिक्षा के वातावरण में क्या बालक करुणा और विश्वास के सद्गुणों को प्राप्त कर सकेंगे ? करुणा उन बालकों के हृदय में बसेगी जिन्हें यह बताया गया हो कि मनुष्य अभाव के कारण ही

चोरी करता है। यदि दुनिया से अभाव का निराकरण होगा तो चोरी भी चली जायगी। हाँ, एक और प्रकार के व्यक्ति होते हैं, चाहे बिल्कुल ही कम संख्या में क्यों न हों जो चोरी अभाव के कारण नहीं, बल्कि आदत के कारण करते हैं। मनोविज्ञान में उसे क्लेप्टोमेनियम की 'बिमारी' कहा गया है, जिसके इलाज का नुसखा सजा पर नहीं, बल्कि करुणा और सहानुभूति के उसूल पर बना हुआ बताया जाता है।

एकाध वाक्य में रखें तो, मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हुआ तब माना जायगा जब कि वह परिस्थिति को खुली नजर से देखना जाने और उसका मुकाबला अहिंसात्मक तरीकों से करे। तब यह गुण-विकास की शिक्षा होगी।

मानवीय अधिकारों और बुनियादी स्वातंत्र्य के प्रति श्रद्धा

क्या हैं ये मानवीय अधिकार और मानव की बुनियादी स्वतंत्रता? क्या शिक्षा इन "मानवीय अधिकारों" का वोट का अधिकार, "भाषण का अधिकार" और "पूरी तनख्वाह का अधिकार" इन "अधिकारों" तक ही सीमित रखेगी, या जीवन के कुछ नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर भी ध्यान देगी? अवश्य ही हम शिक्षा को इतने छिछले और संकीर्ण विचार तक ही सीमित नहीं रखना चाहेंगे, चाहे भौतिक जिन्दगी के लिए ये "अधिकार" कितने ही आवश्यक क्यों न हों। व्यक्ति में यह भाव जगाना है कि उसे अपने श्रम और बुद्धि द्वारा समाज की सेवा करने का अधिकार है और वह अधिकार उसकी रुचि, मनोवैज्ञानिक प्रकार और शक्ति के अनुसार मानव समाज के जीवन में सृजनात्मक योग-दान करने का है। और जब शिक्षा व्यक्ति और समूह में इस अधिकार की चेतना को जगायगी तभी 'अधि-कार' का सच्चा अर्थ सामने आयगा।

एक और मानवीय अधिकार है, जिसके बारे में हर चेतन व्यक्ति को जागरूक रहना होगा—"क्या मुझे किसी दूसरे के प्राण को लेने या उसे कष्ट देने का अधिकार है? क्या 'चोर-डाकू' को भी एक मनुष्य के नाते इस संसार में रहने का अधिकार उतना ही नहीं है जितना मुझे?

यही बात बुनियादी स्वतंत्रता की भी है। समुचित शिक्षा की योजना और कार्यक्रम में उन्मुक्त विचार-चिन्तन करने का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक होगा। आज शिक्षा मुक्त नहीं है, वह सरकारों के मातहत चलती है—जो विद्यालय 'गैर-सरकारी' कह-लाते हैं, वे भी। लगभग सभी सरकारी परीक्षाओं और पाठ्यक्रमों द्वारा जकड़े हुए हैं। ऐसी हालत में शिक्षकों को स्वतंत्रता नाम की चीज से परिचय भी नहीं होता। भला ऐसी परिस्थिति में मुक्ति का पाठ बालकों को कैसे मिल सकता है। सरकारें राष्ट्रीयता की प्रत्यक्ष मूर्तियाँ होती हैं। उनके द्वारा साँचे में ढाली हुई शिक्षा नवयुवकों को उड़ान, देश की सीमाओं के भीतर ही लेने देगी, और वह भी जिस राजनैतिक दल की सरकार होगी उसी दल की नीति को पोषण देने वाली उड़ान। "सीमाओं की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है" यह उस शिक्षा का एक नारा है।

घोषणापत्र के उपरोक्त वाक्य का अर्थ इससे बिल्कुल विपरीत है, ऐसा हम समझते हैं। उस वाक्य का सीधा-सादा अर्थ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और विनोबा का विश्व-मानुष निर्माण करना है। शिक्षा में किसी प्रकार की वैचारिक-आध्यात्मिक सीमाओं का बन्धन नहीं हो सकता। उसमें किसी प्रकार का "इनडाक्ट्री-नेशन" (बुद्धि को किसी एक विचारधारा के रंग में रंग देना) नहीं चल सकता।

घोषणापत्र के द्वारा राष्ट्रसंघ ने यह अपेक्षा व्यक्त की है कि शिक्षा का उद्देश्य सहिष्णुता, सहानुभूति और मैत्री का विकास करना हो। गांधीजी ने हमें सिखाया था कि जो तुम्हारे आदर्श हों उन्हीं के अनुकूल तुम्हारे साधन होने चाहिए। डंडा दिखाकर या डन्डे का जवाब डन्डे से देकर मैत्री की अपेक्षा नहीं की जा सकती। शिक्षा को यदि मैत्री का निर्माण करना है तो उसे हर प्रकार के वे साधन निकाल देने पड़ेंगे जो मनुष्य-मनुष्य के बीच, राष्ट्र राष्ट्र के बीच रुकावट डालते हैं, भय का, अविश्वास का वातावरण निर्माण

है। पर होता क्या है? उनका ज्यादातर समय निरर्थक प्रवृत्तियो में जाता है, जिनका उन्हे व्यक्तिगत तौर पर कोई प्रयोजन नही है, शालासमाज के सदस्यों के नाते कोई प्रयोजन नही। हमारे तेजस्वी नवयुवको के लिए दिमाग के भरपूर भोजन का आयोजन हो, यह मै भी चाहता हू, लेकिन आज तो उनकी शक्ति का कितनी अनावश्यक बातो में अपव्यय होता है। किशोर अवस्था की लडकिया घटो तक 'एब्स्ट्रेक्ट' गणितसीख कर क्या करेगी? सिर्फ परीक्षा पास होने के लिए लडका को कितना 'मृत' इतिहास उनके अनिच्छुक मतिष्क में घुसा देना पडता है। कलाकारो और लेखको को चित्र बनाने और लिखने के बजाय तारीखें और नाम रट-रट कर याद करने पडते है। और सुबह नौ बजे से शाम के चार बजे तक बच्चो को कमरे में बन्द करके रखना--इस सबका मैं प्रबल विरोध करना चाहता हू।

बीस साल से मैं भी एक स्कूल चला रहा हू और यह प्रयत्न करता रहा हूँ कि वह वस्तु-स्थितियो से कम-से-कम विच्छिन्न रहे। इस-लिए अब मेरी बुद्धि भी कुछ पक्व हो गई और १९४० में जैसे करता था, वैसे बडा-बडी बाते और दावे अब मै नही कर सकता। लेकिन एक बात मैं दृढता के साथ कहना चाहता हू, और वह यह कि हर एक विद्यार्थी को ऐसी परि-स्थिति मिले जहा उसे खुद सोचने का मौका हो। उन्हें ऐसी प्रवृत्तियों में लगना चाहिये जो उनके मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य को बढावा देने वाली हो। यह मानसिक स्वास्थ्य तभी मिल सकता है जब कि वे अर्थपूर्ण कामो में लगे हो और ऐसे बडो के सपर्क में आए जो खुद भी कुछ मतलब का काम करते हो।

एक सच्चे विद्यालय में सब तरह की प्रवृत्तियाँ चलनी चाहिए। वहा सगीत और नाच होगा, बच्चो को खेलने के लिए पानी और मिट्टी और अन्य सामान भरपूर होंगे। बाद में उन्हे कुम्हार काम का परिचय होना चाहिए। खूब चित्र बनाने के मौके हो। सब तरह के कामो में उन्हे प्रोत्साहन मिले। वे नाटक खेलेंगे कहानिया लिखेंगे, कविता बनायेंगे, क्योकि वे जवान है, जिन्दगी से भरे हे। और इसी उद्देश्य के लिये ही तो इस धरती पर भाषा का उदय हुआ था।

कलाए शिक्षा की आलकारिक वस्तुए नही है। वे उसकी आत्मा और आधार है। और जो शिक्षक उत्साह के साथ, गरमाई के साथ बच्चो को इसका परिचय दे सकता है वह किसी भी सभ्य समाज के लिऐ अमूल्य होगा। कलाकार के और बच्चे के बीच में तुरन्त ही सवेदना का सबन्ध बन जाता है। किशोर अवस्था मे हम इसको तोड देते है। इससे नुकसान हमारा ही होता है।

सास्कृतिक बातो में, जैसे व्यावहारिक बातो में भी, हमारी शिक्षा वास्तविक बननी चाहिए। बच्चो को अन्न के उत्पादन में मदद करनी चाहिए। बगीचे, खेत, मवेशी, गाय, बछडे, मुर्गी यह सब क्यो नही? सिर्फ खर्चीली प्रयोग शालाए ही क्यो?

बच्चो के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रवृत्तियो के साथ खेल के लिए भी खूब समय रहना चाहिए—ऐसा समय भी चाहिए जिसे वह 'बेकार' बिता सके, लेकिन इसका अर्थ उपेक्षा नही होनी चाहिये। बच्चा स्वतत्र हो इसका मतलब यह नही कि बडा उसके लिए चिन्ता न करे। बच्चे को यह विश्वास होना चाहिये कि जो बडे

उसकी देखभाल करते है, वे उसकी स्वाभाविक इच्छाओं और प्रवृत्तियों में रोड़ा नही अटकाएगे ।

ऐसी शिक्षा से बच्चे निर्भयता में पलेगे, उनमें हिंसा-वृत्ति नही होगी, वे बडों की इज्जत करेगे, लेकिन अधिकारवाद के प्रति उन्हें सच्ची अरुचि होगी । आज हमारे समाज में भय, हिंसा और अधिकारवाद है, और निर्भाग्यवश बहुतेरे स्कूलों में भी वैसा होता है ।

मै यह नही कह रहा हू कि यह कोई आसान काम है । मैं जानता हू कि स्वतन्त्रवृत्ति इतनी सरलता से प्राप्त नही की जा सकती । बच्चो को एकदम ज्ञानी तो नही बना सकते है, फिर भी अपनी ही शाला-समाज के कार्यों में जिम्मेदारी के साथ हिस्सा लेने के लिये उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है, जिसका लेशमात्र भी अभ्यास "नागरिकत्व" की ढेरों पाठ्यपुस्तकों से मूल्यवान् है । स्कूल के वास्तविक कार्यों में स्वय-शासन का अभ्यास "उच्च-शिखर" के नाटकों को दुनिया से खतम कर देगा, क्योंकि वही शिक्षा सहजीवन का सच्चा अभ्यास कराती है । समस्याओं का समाधान ढूढना मनुष्य-मस्तिष्क का विशेष कार्य है । आज हम अपने स्कूलों की समस्याओं को और जटिल बनाने का अभ्यास करा रहे हैं, उनके समाधान करने के लिए दिमाग को प्रशिक्षित और स्वतंत्र बनाने की शिक्षा नही दे रहे हैं ।

("वॉर रेजिस्टर" से)

हमेशा का नारा 'जय जगत्'

चार बातें ध्यान रखने योग्य हैं : १. आज का नारा जय जगत, २. हमेशा का नारा जय जगत्, ३. हमरा नारा जय जगत और ४. सबका नारा जय-जगत् । आज का, कल का और परसों का भी वही नारा है । उसी से उद्धार होगा । 'हमारा नारा' अलग नहीं, इसलिए 'सबका नारा, 'आज का नारा' और 'हमेशा का नारा' जब एक ही होगा, तभी सब लोग एक होंगे, नहीं तो अनेक कारणों से फूट पड़ेगी और धर्म-भेद, जाति-भेद, पंथ-भेद, देश-भेद, भाषा-भेद जैसे टुकड़े-टुकड़े ही जायंगे । समाज की गाड़ी यहीं अटकी हुई है ।

—विनोबा

प्यारेलाल नैयर

ऐसा है अहिंसा का रास्ता

पंजाब की भयानक घटनाओं के समाचार ने जनमानस को उत्तेजित कर दिया था। रावलपिन्डी और दूसरी जगहों से भी शरणार्थी हजारों की तादाद में आने लग थे और उनकी बताई कहानियां दिलों में आग लगा रही थी। प्रार्थना में कुरान का पाठ शुरू ही हुआ था, जब एक हिन्दु महासभा का नौजवान उठ खड़ा हुआ और उसने जोरों से चिल्लाकर कहा—"यह हिन्दु मन्दिर है। यहां आपको हम मुस्लिम प्रार्थना करने नहीं देंगे।' कुछ लोगों ने उस आदमी को जबरदस्ती वहां से हटाने की कोशिश की, लेकिन गांधीजी ने मना किया, "अगर एक भी शख्स को एतराज हो तो मैं *प्रार्थना आगे नहीं चलाऊँगा।* मैं चाहता हूं कि अल्पमत को परिपूर्ण स्वतन्त्रता हो।' उस नवयुवक ने मंच के पास जाने की कोशिश की। लेकिन लोगों ने उसे रोक लिया। इस पर गांधीजी यह कहते हुए कि "मेरे और इस नौजवान के बीच में कोई न आये", उससे मिलने के लिए आधा रास्ता खुद चल कर आये, जनसमूह प्रार्थना में विघ्न होने के कारण गुस्सा हो गया और वह युवक वहां से जबरदस्ती हटा दिया गया। गांधीजी ने गहरे दुःख के साथ लोगों से कहा "यह युवक गुस्से में था। गुस्सा एक पागलपन ही है। आपका और मेरा *कर्तव्य पागलपन का मुकाबला पागलपन से* नहीं, शांत बुद्धि से करना है। मैं बिहार से आ रहा हूं। लोग पागल होकर क्या-क्या कर डालते हैं, यह मैंने अपनी आंखों देखा है। उससे मेरा सिर लज्जाभार से झुक गया है।"

दूसरे दिन प्रार्थना शुरू करने के पहले *गांधीजी ने एकत्रित जनसमूह से पूछा कि क्या* उनमें कोई प्रार्थना के बारे में एतराज करनेवाला है? एक युवक कूद कर उठ खड़ा हुआ और उसने पिछले दिन के वाक्य फिर से दुहराये "यह एक हिन्दु मन्दिर है ."

गांधीजी—"यह *भंगियों का मंदिर है। केवल मन्दिर के अधिकृतों को ही आपत्ति करने* का हक है। उन्होंने तो आपत्ति नहीं की।"

युवक—"*यह* सार्वजनिक प्रार्थनास्थल है। अगर आपको कुरान से पाठ करना है तो और कहीं जाना होगा।"

गांधीजी—"मैं अत्यन्त नम्रता से निवेदन करता हूं कि स्वयं एक भंगी होने के नाते मुझे भंगियों की तरफ से बोलने का ज्यादा अधिकार है, बनिस्बत आपके, जिसने एक बार भी कभी पाखाना नहीं साफ किया होगा और अभी भी करने के लिए तैयार नहीं होंगे।

जनसमूह चिल्लाने लगा—"हम प्रार्थना चालू रखना चाहते हैं। सब की इच्छा के विरोध में एक व्यक्ति को उसे रोकने का क्या अधिकार है ? कृपा करके प्रार्थना शुरू करें।"

गांधीजी ने युवक से अपील की, "हजारों लोग चाहते हैं कि प्रार्थना शुरू करें। अगर आप इस बात पर अड जायगे तो वे सब लोग निराश होंगे। क्या यह आपके लिए उचित है ?"

युवक बैठ गया। दूसरा उसकी जगह आग बरसाते हुए खडा हुआ, "आप एक मस्जिद में जा कर गीता के श्लोक क्यों नहीं पढते ।"

लोगों का सब्र खतम हो रहा था। लेकिन गांधीजी ने कहा "ठीक है। कल मैं फिर से यह प्रश्न पूछूंगा और एक छोटा सा बच्चा भी 'ना' कहकर मुझे प्रार्थना से रोक सकता है।" इतना कहकर वे प्रार्थना भूमि से चले गये और अपने कमरे में ही प्रार्थना की, सिर्फ उनके साथी ही उसमें शामिल हुए।

तीसरे दिन गांधीजी प्रार्थना भूमि की तरफ जा रहे थे तो उनके हाथ में एक पत्र दिया गया, जो लगा कि भंगी संगठन के अध्यक्ष की तरफ से लिखा गया है। वे लोग नहीं चाहते थे कि बापु भंगी कॉलोनी में रहें, यह उस पत्र का तात्पर्य था। लेकिन पता चलाने पर यह झूठ साबित हुआ। गांधीजी ने जनसमूह से कहा "मेरे जैसे बूढे आदमी पर यह क्या मजाक है ? मुझसे कहा जाता है कि मुझे प्रार्थना चलाने देंगे, अगर मैं कुरान के पद्य न पढूं। मेरी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार प्रार्थना करने की भी स्वतंत्रता क्या मुझे नहीं है ?" उन्होंने अपने विचार का आगे स्पष्टीकरण किया- *अगर अेक बडा बहुमत अुनकी प्रार्थना रोकने का प्रयास करता तो वे जरूर अुसके क्रोध का जोखिम अुठा कर प्रार्थना चलाते। लेकिन रुकावट डालने वाले तो केवल अेक मुट्ठीभर ही हैं। अगर हम संख्याबल के आधार पर अुनकी अुपेक्षा करते हैं तो यह श्रद्धा की नहीं, शैतान की जीत होगी।* प्रार्थना का उद्देश्य आदमियों के दिलों *में शान्ति स्थापित करनी है, न्यून पक्ष को* संख्या बल से दबाना नहीं है।" इसके बाद उन्होंने फिर से पूछा कि क्या किसी को एतराज़ है। उसके जवाब में तीन लोग खडे हो गये।

गांधीजी ने कहा—"मैं प्रतिपक्ष के सामने सिर झुकाता हू-प्रार्थना नहीं होगी।"

जब वे उठ कर जाने लगे तो फिर से जनसमूह से चिल्लाहट हुई—लोगों ने आग्रह किया कि प्रार्थना चले।

गांधीजी ने कहा—"आज नहीं। विरोधियों की संख्या बढी है, यह अच्छा है।"

"नोआखाली में लोगों ने मुझे रामधुन करने से नहीं रोका था" उन्होंने दुःख से कहा, "जिनको आपत्ति थी वे लोग उठ कर चले जाते थे।"

इस तरह रोज अहिंसा की परीक्षा होती रही। "प्रार्थना सभा में यह विरोध अभी तक क्यों चल रहा है ?" उन्होंने मनु से कहा कि अहिंसा की उनकी साधना सिर्फ उनकी गल्ती से ही नहीं, उनके साथियों की कमियों से भी बिगड सकती है। मनु प्रार्थना चलाती थी, इसलिए उसे अपने आपको परख कर देखना चाहिए कि जिन पदों को वह बोलती थी वे उसके अन्तस्तल की पूरी श्रद्धा के साथ निकलते हैं कि नहीं। अगर प्रार्थना उसके हृदय से

निकलती थी तो प्रार्थना सभा के बारे में यह विरोध खत्म होना चाहिये।

आखिर उनकी तपस्या सफल हुई। उस दिन शाम को राष्ट्रीय स्वयं सेवक दल के एक नेता उनके पास आये और उन्होंने आश्वासन दिया कि अब प्रार्थना-सभा में इस तरह के विघ्न नहीं होंगे। लेकिन जब प्रार्थना भूमि में बापू ने फिर से पूछा कि क्या किसी को आपत्ति है, तो एक युवक ने हाथ उठाया। उसके कुछ कहने के पहले ही एक दूसरा युवक, जो हिन्दु-महासभा का सदस्य था, खडा हुआ और जन-समूह से निवेदन करने लगा—"महात्माजी ने हम से कहा है कि एक बच्चा भी एतराज करेगा तो वे प्रार्थना नहीं चलायेंगे। हमारे इस अभद्र व्यवहार के कारण तीन दिन से वे प्रार्थना नहीं कर सके हैं, यह लज्जाजनक बात है। मैं आप लोगो से प्रार्थना करता हू कि अब और बाधा मत डाले। अगर हमारा मतभेद है तो उसे प्रगट करने के अच्छे तरीके हो सकते हैं।

उनके बोलने के बाद गांधीजी ने फिर से कहा "अगर किसी को भी विरोध है तो वह अभी भी प्रार्थना को रोक सकता है।" जवाब में एकान्त नि:शब्दता थी। जिसने पहले विरोध किया वह बैठ गया—लेकिन दूसरा खडा हुआ।

गांधीजी "ठीक है। मैं हार मानता हू। लेकिन वह यहां एकत्रित लोगो की हार नही है। उनकी हार तो जब होती अगर वे सब्र रो बैठते, क्रोध प्रगट करते।"

हिन्दु महासभावाला मित्र फिर से उठा और उसने उस विरोध करनेवाले को फिर से समझाया। आखिर उसका भी दिल पिघल गया "मैं अपना विरोध वापस लेता हूं। आप प्रार्थना चलाइए।"

इस प्रकार चौथे दिन प्रार्थना हुई। गांधीजी ने प्रार्थना प्रवचन में कहा "हमने पिछले तीन दिन प्रार्थना नही की, ऐसा कोई न सोचे। हमने ओठों से नही, हृदयो से प्रार्थना की, जो प्रार्थना का बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें जिन्होंने विरोध किया, उनकी भी मदद थी, हालांकि वह अनजाने में थी। उनके विरोध ने मुझे पहले से भी कही ज्यादा अपने ही अन्दर कमी ढूंढने के लिए प्रेरित किया। आप पूछ सकते हैं कि मैं इन छोटी-छोटी बातो में क्यों इतना समय और शक्ति लगा रहा हू, जब कि लार्ड मोण्टबेटन के साथ महत्वपूर्ण बातचीत चल रही है, जिस पर राष्ट्र का भविष्य अवलंबित है। मैं आपसे कहना चाहता हू, मेरे लिए कोई छोटा या बडा नही है; सबका तुल्य महत्व है। नोआखाली में, बिहार में, पंजाब में, दिल्ली में और इस प्रार्थना भूमि में भी अखण्ड-भारत की लडाई रोज चल रही है, जय-पराजय रोज हो रहा है। यहां का यह अनुभव मुझे दूसरी जगह सफलता की कुंजी दे देता है।"

(लास्ट फेज़ से)

व्यापक मानव-धर्म के हमेशा अनुकूल रहा। इस विश्व-धर्म में और आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीयता में मूलभूत अन्तर है। अन्तर्राष्ट्रीयता में भिन्न-भिन्न राष्ट्रो का समन्वय है। व्यापक मानव-धर्म या विश्व-धर्म में सभी देशो के नागरिक ससार के नागरिक बनने के बदले निरुपाधिक मानव में परिणत हो जाते हैं, यही विनोबा का 'विश्व-मानव' है।

व्यापारवादियो और साम्राज्यवादियो की तरह दुनिया के साहसी प्रवासियो ने भी 'एक जगत्' (वन वर्ल्ड) की कल्पना, भावना और खोज की। जूलसवर्न ने अपनी 'अस्सी दिन में पृथ्वी-परिक्रमा' नामक पुस्तक में अखिल जगत् का स्वप्न देखा, तब से लेकर वेन्डेल विल्की की 'एक जगत्' (वन वर्ल्ड) तक मनुष्य की एक आकाक्षा और साधना रही। व्यापारियो और सम्राटो ने तथा अन्य साम्राज्यवादियो ने सिकन्दर और सीजर, मुसोलिनी और हिटलर की तरह इस भू-माता को पादाक्रांत करने और उसे अपनी भोग दासी बनाने की दुष्ट वासना रखी; लेकिन कालचक्र की गति से साम्राज्य-वाद और व्यापारवाद क्षीण होता गया और विल्की की तरह अब दुनियाभर के साधारण मनुष्य यह महसूस करने लगे कि अब या तो जगत् 'एक जगत्' बनकर रहेगा या फिर काल के विकराल उदर में लुप्त हो जायगा। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्र-धर्म यदि मानव-धर्म से पुनीत और परिष्कृत होगा, तभी वह ठहरेगा, नही तो जागतिक व्यापारवाद और साम्राज्य-वाद की तरह वह भी नामशेष हो जायगा।

ससार की आज परिस्थिति राष्ट्रवाद के सर्वथा प्रतिकूल है। विविक्त राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और निरपेक्ष राष्ट्रीय प्रतिरक्षण, जो कि राष्ट्रवाद के आवश्यक लक्षण माने जाते थे, आज भूतकाल की चीजें हो गयी हैं। प्रतिरक्षण के लिए राष्ट्रो के यूथ या गिरोह बन गए हैं और अन्ततोगत्वा सारा जगत् दो परस्परविरोधी वादो के शिविरो में बट गया है।

भारत की सांस्कृतिक परम्परा, आधुनिक समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का विकास और ससार की वर्तमान परिस्थिति—सभी की दृष्टि से एक मानवव्यापी सबोधन की आवश्यकता विनोबा को प्रतीत हुई, परिणाम 'जय जगत्' का अभिवादन-सकल्प है। इसमें 'जय हिन्द' अतर्भूत है। 'जयहिन्द' अपने में वस्तुत 'जय जगत्' का ही पर्याय हो सकता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और द्वारका से सदिया तक फैले हुए इस विराट् देश में जितनी विविधताए है, उन सबका समावेश जिस परस्पराभिवादन के सकेत में होता है, वह 'जय हिन्द' की जगह विनोबा को 'जय जगत्' से अभिवादन करने की प्रेरणा हुई। उसमें 'जय हिन्द' का निषेध नही, समावेश है।

भावना और सकल्प विश्वव्यापी, परन्तु आचरण क्षुद्र, सकीर्ण भेदो से प्रेरित, यह भारतीय मानव का विशिष्ट स्वभाव-दोष रहा है। वह स्वभावदोष 'जय जगत्' को भी क्षुद्र क्षेत्रवाद से नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। सम्बोधन में शक्ति नारेबाजी से नही आती, अन्त करण के प्रत्यय से और निष्ठायुक्त अनुष्ठान से आती है। भारत के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में 'जय जगत्' का तत्व प्रत्यक्ष रूप से यदि अभिव्यक्त होगा, तो 'जय जगत्' का सम्बो-धन उदात्त मानवीय भावना का प्रवर्तक सिद्ध होगा, अन्यथा हमारे दूसरे सारे उद्घोषो की तरह वह भी एक खोखला पाखण्ड मात्र रह जायगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व अहिंसा और शिक्षा

एन्थनी बोवर

अहिंसा के बारे में गहराई से अध्ययन करने बैठें तो हम तुरन्त ही तीन विभिन्न क्षेत्रों में विचार करने के लिये बाध्य होते हैं। पहला है, राजनैतिक। राष्ट्रीय इकाई और सत्ता का विचार आज की दुनिया में चल नहीं सकता। वह पुराना हो गया है। आज बर्लिन, इसराइल और काश्मीर की जो समस्याएं हैं वे राष्ट्रीय भावना के दायरे में सुलझायी नहीं जा सकती।

दूसरा आर्थिक क्षेत्र है। अगर दुनिया की संपत्ति का विकास करना है और उसे सब के लिये उपलब्ध भी करना है, तो सारी पृथ्वी को दृष्टिगत रख कर क्षेत्रीय योजनायें बनानी पड़ेंगी।

तीसरा उपरोक्त दोनों बातें ही जीवन के उद्देश्य के बारे में दार्शनिक व शैक्षणिक प्रश्न खड़ा कर देती हैं। क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि एक विश्वराज्य, जो इतने बड़े पैमाने पर योजनाएं बनाने के लिये जिम्मेवार होगा, कई गल्तियां कर सकता है या सत्तावादी बन सकता है।

अहिंसा सत्तारूढ दल या लोकतान्त्रिक सरकार की नीतियों के प्रति विरोध प्रदर्शित करने का एक तरीका मात्र नहीं है—जैसे अमेरिका के दक्षिण भागों में रंगविद्वेष के प्रति या ब्रिटेन में आणविक अस्त्रों के निर्माण के प्रति किया जा रहा है। बल्कि वह एक जीवनदर्शन है जो एक रोब्सपेरी या स्टालिन के आतंकों को जन्म ही नहीं लेने देता है, भले ही उनके द्वारा चलायी गयी क्रान्तियों के मूल आदर्श कितने ही ऊँचे क्यों न हों। और वह अपनी विशालता के कारण आगे की प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त बना देती है।

दूसरे शब्दों में कहें तो अहिंसा का अर्थ होगा—व्यक्ति की जिम्मेवारी, (जो सारा अधिकार राष्ट्रीय पार्टियों के ऊपर छोड़ देने की प्रवृत्ति को रोकेगी) आत्म-निर्भरता तथा साध्यों व साधनों का सामंजस्य।

शिक्षा का तात्कालिक कर्त्तव्य आगामी पीढ़ी को इस जीवनपद्धति के लिए तैयार बनाना है, जिससे कि वे केवल "शान्ति चाहते" ही नहीं—जैसे आज के सेनानायक भी "चाहते" हैं, बल्कि उसके लिए आवश्यक वृत्ति और व्यवहार को भी अपनाना चाहेंगे।

इसके उपायों को अब हम जानते हैं, लेकिन तहेदिल से वे अभी तक प्रयोग में नहीं लाये गये। इस शताब्दी के शुरू में राशेल मेक्मिल्लन और सुसान इसेक ने बालवाडी-शिक्षा में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये, उसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। उनके काम के परिणाम स्वरूप आज छोटे बच्चों की शिक्षा में सृजनात्मक प्रवृत्तियों का महत्व तथा किसी चीज में अभिरुचि पैदा करके ही उसे सिखाने

की पद्धति सबने मानी है। रूसो के समय से ही बालकेन्द्रित शिक्षा का विचार व्यापक हो गया है, और राबर्ट अव्रन, फ्रॉयबेल, ए एस. नील आदि शिक्षाशास्त्रियो ने उसका समर्थन किया है। हरबर्ट रीड अपनी किताब "एजुकेशन थ्रू आर्ट" ('कला के द्वारा शिक्षा") में उसे सूत्ररूप में रखते हे–"खेल युद्ध का निरोधक उपाय है।" एक पाश्चात्य के नाते मुझे गाधीजी की बुनियादी शिक्षा के विचार में इन मूलभूत सिद्धातो का समावेश दीखता है। विद्यालयो में उद्योग की प्रवृत्तिया अपने में ही तृप्ति देनेवाली है, वे ग्रामिणो को आर्थिक स्वावलम्बन की ओर भी ले जाती है।

ब्रिटेन में माध्यमिक शालाओ और बाद मे विश्वविद्यालयो में प्रवेश के लिए जो परीक्षाए होती हे, उसके कारण ८-९ साल की उम्र में ही बच्चो में एक स्पर्धा के भाव का समावेश होता है, जिसको शिक्षक चाहने पर भी नही रोक सकता है। आजकल कॉम्प्रिहेन्सिव स्कूल्स या मेसन लेस्टर योजना का जो विकास हुआ, जिसमें परिक्षाऍं होती ही नही, वह बच्चो की मनोवैज्ञानिक जरूरते समझकर तदनुसार शिक्षा की याजना बनाने की ओर एक बडा कदम है।

आवासीय शालाओ के सचालन का जिन्हें भी अनुभव हुआ है, उन सबो न ही मानसिक स्वास्थ्य के पुन. स्थापन में हाथ के काम का महत्व पहचाना है, अनुभव किया है–खास कर *जो बच्चे भावनात्मक तकलीफ से पीडित* हुए हे या जिन्हे किसी कारणवश अपने परिवार से अलग किया गया है, उनके लिए, जैसे १९१७ की शाति के बाद गोर्कि कॉलनी में मकरेंको ने, इसराइल के किबुत्स् में हेनुरियेट्टा पोल्ड ने और इग्लैन्ड में डेविड विल्स ने किया था। इन सब सस्थाओ में सजा का करीब-करीब निषेध ही था। उसके बदले अनुशासन सौम्य उपायो से सध जाता था। ज्यादातर वह किसी सामूहिक जिम्मेदारी में हिस्सेदार होने से स्वाभाविक ही हो जाता था और उस जिम्मेदारी में बच्चे और बडे दोनो एक दूसरे के पूरक होकर काम करते थे। अगर ऐसे कार्यक्रम "सामान्य" बच्चो के लिए भी हो और माध्यमिक शालाओ में भी अपनाये जाय तो बच्चो को आपसी झगडो और सघर्षो को अपने आप मिटाने में वे जरूर सहायक होंगे, जो उनके भविष्य जीवन के लिए अतिआवश्यक शिक्षण है।

विभिन्न देशो के बच्चे और नौजवान एक समाज में एक साथ बढ सकते है, और यह उनके लिए अच्छा ही होता है जैसे स्विट्जरलैण्ड के पेस्तलोजि शाला-समाजो में और इग्लैन्ड में ससेक्स में होता है। कही-कही तो एक शिक्षा अवधि के बाद विद्यार्थियो को एक दूसरे विद्यालयो में भेज देने के प्रयोग भी हुए है, वह राष्ट्रीय सीमाओ को तोडने की दिशा में बहुत कुछ मदद कर सकते है। लदन और ऑक्सफोर्ड के पुन प्रशिक्षण वर्गों का मुख्य कार्य आज इतिहास के अध्ययन-अध्यापन में राष्ट्रीय सकुचित भावनाओ से मुक्त वस्तुनिष्ठ दृष्टि निर्माण करना है। वर्तमान समस्याओ के अध्ययन में भी इन सकीर्ण विचारो के परे होकर सोचने की आदत डालना हमारा कर्त्तव्य है।

यहा तक कहा जाता है कि रूसी और अमे-*रिकन विद्यार्थियो के शिक्षाकाल को अमेरिकन* और रूसी विश्वविद्यालयो में बॉंटने की व्यवस्था अगर की जा सकती और यह काफी बडे पैमाने पर होती, व उसी समय उन्हे एक दूसरे के विचार तथा मनोगति समझने का मौका दिया जाता, तो वाशिंगटन के सैनिक अधिकृत मॉस्को पर एक बम डालने का आसानी से नही सोच सकते और न मास्को वाशिंगटन पर।

चुनौती और चुनाव

(पुस्तक-परिचय)

टुवर्ड्स ए सायन्स ऑफ पीस - लेखक—लेन्ट्ज

एज्यूकेशन फॉर पीस - लेखक—हर्बर्ट रीड

शिक्षण विचार - लेखक—विनोबा भावे

द कॉन्क्वेस्ट ऑफ वायोलेन्स - लेखक—बॉन डूरेन्ट

गांधी वील्डस द वेपन ऑफ मॉरल फोर्स - लेखक—जेने शार्प

चम्बल के बेहड़ों मे - लेखक—श्रीकृष्ण दत्त भट्ट

द वॉयज ऑफ द गोल्डन रूल - लेखक—बिगेलाव

अगस्त १९४५ मे हिरोशिमा शहर के ऊपर पहले अणुबम् के विस्फोट से दुनिया को एक बड़ा भारी धक्का लगा। वह भयभीत हो गयी। वह दिन (६ अगस्त) आज जापान मे और सारी दुनियाभर मे शान्ति के लिए आत्मसमर्पण, पश्चात्ताप और पुन प्रतिज्ञा के दिन के रूप म मनाया जाता है।

उस भयानक विस्फोट के दो सप्ताह बाद २० अगस्त को अमेरिका की प्रसिद्ध पत्रिका "लाइफ" मे ये वाक्य लिखे गये—'हम मानववश की शुरुआत की बर्बरता की स्थिति पर वापस न जायें, इसके लिए अब एकमात्र सुरक्षोपाय वह नैतिकता है, जो मानव व्यक्ति की आन्तरिक चेतना से प्रचोदित है, चाहे वह गलत रास्ते पर हो या सही रास्ते पर। अणुशस्त्र के प्रति व्यक्ति की चेतना हो, उसके अलावा आज कोई रास्ता नही।"

जेने शार्प गांधीजी के ऊपर अपनी नयी किताब की भूमिका मे इस विरोध को—मानवीय चेतना और अणुबम के बीच का विरोध—प्रगट करते हैं। वे कहते हैं—बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे हमने विश्व पैमाने पर सभ्यता के बढते हुए सघर्ष और सकट को देखा। जिन्दगी के प्रति दृष्टि और जीवन के तरीको के दो परस्पर विरोधी मार्ग इस सकट के बीच मे से स्पष्ट रूप से निकल रहे हैं। एक वह सर्वशक्तिशाली हिंसात्मक राज्यसत्ता है जो मानवीय जीवन और नैतिक मूल्यो के बारे मे लापरवाह है और आत्यन्तिक सघर्ष तथा ससार के विनाश की विभीषिका को दिखा रही है। दूसरा, जीवन्त प्रेम, अहिंसा और मानवीय गौरव का रास्ता है। आज मानवजाति के सामने इनमे से एक मार्ग को चुन लेने की चुनौती है, इस चुनौती को हम टाल नही सकते, क्योंकि उसका मतलब सर्वनाश होगा। पुराकाल मे एक महापुरुष ने प्राचीन यहूदी जनता को ऐसी एक चुनौती दी थी, *चुनौती भगवान की या शैतान की पूजा करने के बीच मे।* उनका आह्वान स्पष्ट और अनिवार्य था। *"आज तय करो, किस की तुम सेवा करोगे?"* हम भी इस चुनाव को टाल नही सकते हैं, उसे आज करना है। हिंसा या प्रेम, कौनसा रास्ता अख्तियार करना है?

हिंसा से क्या होगा, यह बिलकुल स्पष्ट है। हममे से अधिकतर लोगो के सामने यह स्पष्ट नही है कि सक्रिय प्रेम और अहिंसा का परिणाम क्या होगा। इस लेख का उद्देश्य चन्द पुस्तकों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना है,—कुछ पुरानी और कुछ नयी—जो कि इस चुनाव के नतीजो को समझने मे हमारी मदद कर सकती हैं। इस विषय पर उपलब्ध साहित्य म से ये किताबें सब से महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं, ऐसा अभिप्राय नही है। इनके बारे मे लिखने का कारण इतना ही है कि मैं इन दिनो इन किताबो का अवलोकन करती रही। ये पुस्तकें

और उनके लेखक एक दूसरे से बहुत ही विभिन्न हैं, फिर भी उन सबमे जो प्रश्न उठाये गये और जो कार्यपद्धतिया सुझायी गयी है उनमे सारभूत सादृश्य है। एक अपनी मानसिक दृष्टि मे एक भारतीय गाव की दलित, दरिद्र जनता को देखता है, दूसरा इग्लैण्ड के कल्याण राज्य के बच्चो को, तीसरा किसी राष्ट्रीय सैनिक शक्ति की असह्य, अधिकार मत्त धृष्टता को। लेकिन जब वे प्रेम के सिद्धांतो को इन विभिन्न परिस्थितियो मे कार्यरूप देने का प्रयत्न करते हैं तो उनके बनाये जानेवाले मार्ग एक न हो तो भी तुल्य तो हैं और उनके सामने के विघ्न और बाधाए भी बहुत कुछ एक जैसी हैं।

सब से पहले वे यह स्पष्ट करते हैं कि जिन्दगी के प्रति अहिंसक दृष्टि एक समग्र वस्तु है। वह या तो सब प्रकार की परिस्थितिया म लागू होती है या किसी पर भी नही। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो से सर्वथा अलग करके उसका प्रयोग केवल राजनैतिक क्षेत्र म सीमित नही रखा जा सकता। 'गोल्डन रूल' के नाविक एक अनैतिक सैनिक प्रवृति का— "ईनिविटोक" मे आणविक विस्फोट के प्रयोग का— प्रतिषेध करने के उद्देश्य से निकले थे। लेकिन उन्होने अपने आपको "होनोलूलू" जेल की समस्याओ का अहिंसात्मक समाधान ढूढने के प्रश्न का सामना करते हुए पाया। समाज अपने "बागियो', अपने असहाय, पगु सदस्यो की जिम्मेदारी टालनी चाहता है। इन का भी समाधान ढूढना उनका काम हो गया। उन्हे यह अनुभव आया कि इन प्रश्नो से वे मुक्त नही रह सकते। उन्हे यह भी अनुभूति हुई कि अधिक नैतिक बल प्राप्त करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को ज्यादा-ज्यादा समर्पण बनाने की जरूरत है।

फिर भी इस समग्र वस्तु के दो पहलू या अहिंसात्मक प्रवृत्ति के दो भाग हैं। एक उसका प्रत्यक्ष पहलू, याने नये समाज का निर्माण है, जिसमे मानवीय मूल्यो को अपने पूरे विकास का मौका मिले। दूसरा उसका नकारात्मक पहलू, पुरानी व्यवस्था के उन भागो को निकाल देना, जो नवनिर्माण के काम मे बाधा देते हैं। गाधीजी ने अपनी कार्यपद्धति मे इस तोड़ने के काम को प्राथमिक महत्व दिया था। भारत के लिए जिस पूर्ण-स्वतंत्रता को उन्होने आवश्यक समझा, ब्रिटिश साम्राज्यवाद उसके रास्ते मे खड़ा था, इसलिए उसे हटाना ही था। लेकिन उसी समय उन्होने स्पष्ट रूप से देखा कि एक नई आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक विधायक कार्यक्रम कम महत्व की चीज नही थी, जो कि राजनैतिक स्वतत्रता हासिल करने तक स्थगित रखी जा सके। उल्टा, वह उस आन्दोलन का एक अनुपेक्षणीय बाजू था जिसका दूसरा बाजू सविनय आज्ञा-भग और सत्याग्रह था। शान्ति के लिए काम करनेवाले हर एक स्त्री-पुरुष को इन दोनों बाजुओ को समझना और उन्हें सहारा देना है। क्योंकि ये दोनो बाजू एक स्वस्थ सामुदायिक जीवन के स्थाई अंग हैं। एक अच्छे समाज की निरतर सृष्टि होती रहती है, इतना ही नही, विच्छिन्न करने की शक्तियो के प्रति उसकी निरतर रक्षा करनी पड़ती है। विनोबा के शब्दों मे ग्रामदान से निकले सहकारी समुदाय के जैसा ही शाति सेना भी सर्वोदय समाज व्यवस्था का अंग है। फिर भी इन दोनो बाजुओ की अपनी-अपनी विशेषताए है कुछ लोग हमेशा ऐसे होंगे जो विधायक कामो में तत्पर रहगे और कुछ दूसरे सत्याग्रह या अन्य तरीको से अन्याय और अनैतिकता के प्रति जनमानस को जाग्रत करने के काम में अपनी शक्ति लगाएगे। इन दोनो प्रकार के कर्मियो को भी अपने उद्देश्यो का स्पष्ट बोध हो, इतना मात्र ही जरूरी नही, बल्कि जिन पद्धतियों को काम में ला रहें हैं, उन्हे और जिन रुकावटो को पार करना है, उन्हे अच्छी तरह समझ लेने की भी जरूरत है। उन्हें उसकी 'रणनीति' और पैंतरो, दोनों का ज्ञान होना जरूरी है। या यह कहें कि उनका 'कैसे" और 'क्यों" समझना है।

लेन्ट्ज की किताब "टुवर्डस ए सायन्स् आफ पीस" का यही विषय है। वह इस ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करते है कि युद्ध और अन्याय की जड़ें मानव के लोभ में ही है, इतना मात्र जानने से कुछ बड़ा व्यावहारिक प्रयोजन नही है, अगर हम उस लोभ को दूर करने के मार्गो को भी खोज नहीं निकालते हैं। तो छात्रालय म एक लोभी लड़के को या

समुदाय मे एक स्वकेन्द्रित लोभी परिवार को हम कैसे ठीक रास्ते पर ला सकेंगे ? अपने ही अन्दर लोभ को हम कैसे पहचानेंगे और उसका निवारण कैसे करेंगे ? इसी प्रकार दलबन्दी और पक्षपात के विनाशकारी परिणामो को हम सब भलीभाती जानते हैं। लेकिन उसका इलाज क्या है ? आज लोगों के मानसों पर "पार्टि" का जो प्रभाव है, उसे हटाने के लिए क्या क्या व्यावहारिक कदम उठाने चाहिये ? "पार्टि" का इतना प्रभाव क्यो है ? एक सहकारी गाव और सहकारी दुनिया के लिए लोगो से अपील करने से कोई बहुत व्यावहारिक फल नही मिल सकता है अगर हम सहकार के तरीको को जानते नही और सहकारी समुदाय को धीरे-धीरे निर्माण करने के लिए आवश्यक सामाजिक कुशलताए हमे हासिल न हो। इन बातो में निवारण इलाज से बेहतर है, यह तो सब जानते ही हैं। अहिंसात्मक दुनिया के लिए जरूरी मौलिक आवश्यकताओ में से एक यह है कि बच्चों की शिक्षा प्रेम की सक्रिय शक्ति को प्रकट करने वाली, उसे बालमानस मे गहरी उतारनेवाली हो। यह कोई भावुकता नही है, बल्कि शैक्षणिक सिद्धान्तो तथा शालाओ के दैनिक कामो में एक सुदूरगामी और अतिव्यावहारिक क्रान्ति की माग है। हर्बर्ट रीड की "शान्ति के लिये शिक्षा" और विनोबाजी का "शिक्षण विचार" इस विचार धारा को बहुत उद्दीपन देनेवाली किताबें हैं।

लेकिन बच्चो के लिये इस प्रकार की शिक्षा शालाओ तक ही सीमित नही रखी जा सकती। बच्चो की ज्यादा व्यापक शिक्षा चारों तरफ के समाज के द्वारा होती है और उसका उन पर ज्यादा गहरा प्रभाव भी पडता है, बनिस्बत शालाओं के। जैसे गाधीजी ने भी कहा था—शान्ति के लिए शिक्षा को पालने से कब्र तक फैलाना होगा। समाज के दैनिक काम और उसमे मिलने वाले अनुभवो मे ही स्त्री पुरुषो की आन्तरिक क्षमताओं का विकास और उनका उपयोग होना चाहिये।

यहा हम एक महत्वपूर्ण मुद्दे पर आते हैं। विदेश के समाज शास्त्रज्ञो के द्वारा और भारत में सर्वोदय कर्मियो के द्वारा भी अब यह बात मानी जा रही है कि एक स्वस्थ समाज-व्यवस्था की मौलिक इकाई छोटा समुदाय होना चाहिये, जहा हर एक व्यक्ति बाकी सब को जानता है, जो अपने ही कामो के द्वारा अपने सभी सदस्यों की विभिन्न कुशलताओ और सामर्थ्यों का पूरा-पूरा विकास और उपयोग करता है। आर्थर मॉर्गन अपने लबे अनुभव के आधार पर और स्फूर्तीले उत्साह के साथ इस "भविष्य के समाज" का विवरण करते हैं। स्टूवार्ट् चेस अपने "रोड्स टु एग्रीमेन्ट" मे व्यावहारिक निर्णया को लाने मे सामजस्य और स्वतन्त्रता को बनाये रखने के बारे मे कई सुझाव देते हैं। विनोबा जी आग्रह के साथ इस सर्वसम्मति की बात करते रहते हैं, वस्तुस्थिति को तटस्थ बुद्धि से और अच्छी तरह से समझ कर उसके आधार पर सब की सम्मति होनी चाहिये, न कि दलबदी के आधार पर "मत" ले कर—जिसको आजकल प्रजातत्र कहते हैं। लेकिन व्यवहार मे हम देखते हैं कि यह सर्वसम्मति मिलनी कई दफे बडा ही कठिन होती है। इसलिये दूसरो के अनुभवो और अध्ययन की मदद हम छोड नही सकते हैं। "गोल्डन रूल" का कप्तान दो बाते सुझाता है—व्यवस्था मे अनम्यता (रिजिडिटि) से बच कर रहना और यह बोध कि ऐसे सर्वमान्य निर्णयो का उद्देश्य छोटे-छोटे व्यक्तिगत विचारो से परे हैं, बाइबिल के शब्दो मे "प्रभु की आखो मे जो ठीक है वह करना।"

हमे कब सत्याग्रहियो के तौर पर काम करना है, इसका निर्णय करने की समर्थता प्राप्त करने के लिए अब तक हुए अहिंसक आन्दोलनो, डारेक्ट एक्शन या सत्याग्रहो का अध्ययन, विश्लेषण और समीक्षा करना भी उतना ही जरूरी है। यहा बताई गई पुस्तकों मे से चार ऐसे अध्ययन के लिए सहायक हैं। जोन बोन्डुरान्ट और जेने शार्प, दोनो गाधीजी के कुछ सत्याग्रह आन्दोलनो की मूल्यवान और विस्तृत चर्चा करते हैं। श्रीकृष्णदत्त भट्ट अपनी दिनचर्या के रूप मे चम्बल के बेहाडों के सशस्त्र डाकुओ के साथ विनोबा के व्यवहार की दिन प्रतिदिन की कहानी बताते हैं। एल्बर्ट बिगेलाव "गोल्डनरूल की यात्रा" का—जिसका वह खुद कप्तान था—पूरा-पूरा वर्णन करता है। ये सभी लेखक मुश्किल अवसरों पर, जब कि अपना

और उनके लेखक एक दूसरे से बहुत ही विभिन्न हैं, फिर भी उन सबमे जो प्रश्न उठाये गये और जो कार्यपद्धतिया सुझायी गयी है उनमे सारभूत सादृश्य है। एक अपनी मानसिक दृष्टि में एक भारतीय गाव की दलित, दरिद्र जनता को देखता है, दूसरा इग्लैण्ड के कल्याण राज्य के बच्चो को, तीसरा किसी राष्ट्रीय सैनिक शक्ति की असह्य, अधिकार मत्त धृष्टता को। लेकिन जब वे प्रेम के सिद्धातो को इन विभिन्न परिस्थितियो में कार्यरूप देने का प्रयत्न करते है तो उनके बताये जानेवाले मार्ग एक न हो तो भी तुल्य तो हैं और उनके सामने के विघ्न और बाधाए भी बहुत कुछ एक जैसी हैं।

सब से पहले वे यह स्पष्ट करते हैं कि जिन्दगी के प्रति अहिंसक दृष्टि एक समग्र वस्तु है। वह या तो सब प्रकार की परिस्थितियो म लागू होती है या किसी पर भी नही। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो से सर्वथा अलग करके उसका प्रयोग केवल राजनैतिक क्षेत्र म सीमित नही रखा जा सकता। 'गोल्डन रूल' के नाविक एक अनैतिक सैनिक प्रवृति का—"ईनिविटोक म आणविक विस्फोट के प्रयोग का—प्रतिषेध करने के उद्देश्य से निकले थे। लेकिन उन्होने अपने आपको "होनोलूलु' जेल की समस्याओ का अहिंसात्मक समाधान ढूढने के प्रश्न का सामना करते हुए पाया। समाज अपने 'बागियो', अपने असहाय, *पगु सदस्यो की जिम्मेदारी टालनी* चाहता है। इन का भी समाधान ढूढना उनका काम हो गया। उन्हे यह अनुभव आया कि इन प्रश्नो से वे मुक्त नही रह सकते। उन्हे यह भी अनुभूति हुई कि अधिक नैतिक बल प्राप्त करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को ज्यादा ज्यादा सयमपूर्ण बनाने की जरूरत है।

फिर भी इस समग्र वस्तु के दो पहलू या अहिंसात्मक प्रवृत्ति के दो भाग हैं। एक उसका प्रत्यक्ष पहलू, याने नये समाज का निर्माण है, जिसमे मानवीय मूल्यो को अपने पूरे विकास का मौका मिले। दूसरा उसका नकारात्मक पहलू पुरानी व्यवस्था के उन भागो को निकाल देना जो नवनिर्माण के काम मे बाधा देते है। गाधीजी ने अपनी कार्यपद्धति मे इस तोडने के काम को प्राथमिक महत्त्व दिया था। भारत के लिए जिस पूर्ण-स्वतत्रता को उन्होने आवश्यक समझा, ब्रिटिश साम्राज्यवाद उसके रास्ते म खडा था इसलिए उसे हटाना ही था। लेकिन उसी समय उन्होने स्पष्ट रूप से देखा कि एक नई आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक विधायक कार्यक्रम कम महत्त्व की चीज नही थी, जो कि राजनैतिक स्वतत्रता हासिल करने तक स्थगित रखी जा सके। उल्टा, वह उस आन्दोलन का एक अनुपेक्षणीय बाजू था जिसका दूसरा बाजू सविनय आज्ञा-भग और सत्याग्रह था। शान्ति के लिए काम करनेवाले हर एक स्त्री-पुरुष को इन दोनों बाजुओं को समझना और उन्हे सहारा देना है। *क्योंकि ये दोनो बाजू एक स्वस्थ सामुदायिक जीवन* के स्थाई अग हैं। एक अच्छे समाज की निरतर सृष्टि होती रहती है, इतना ही नही, विच्छिन्न करने की *शक्तियो के प्रति उसकी निरतर रक्षा करनी पडती* है। विनोबा के शब्दों म ग्रामदान से निकले सहकारी समुदाय के जैसा ही शाति सेना भी सर्वोदय समाज व्यवस्था का अग है। फिर भी इन दोनो बाजुओ की अपनी-अपनी विशेषताए है, कुछ लोग हमेशा ऐसे होगे जो विधायक कामो में तत्पर रहेगे और कुछ दूसरे सत्याग्रह या अन्य तरीको से अन्याय और अनैतिकता के प्रति जनमानस को जाग्रत करने के काम में अपनी शक्ति लगाएगे। इन दोनो प्रकार के कर्मियो को भी अपने उद्देश्यो का स्पष्ट बोध हो, इतना मात्र ही जरूरी नहीं, बल्कि जिन पद्धतियो को काम में ला रहे हैं, उन्हे और जिन रुकावटो को पार करना हैं, उन्हें अच्छी तरह समझ लेने की भी जरूरत है। उन्हें उसकी 'रणनीति' और पैतरो, दोनों का ज्ञान *होना* जरूरी है। या यह कहे कि उनका 'कैसे" और 'क्यो" समझना है।

लिन्ट्ज की किताब "टुवर्डस ए सायन्स आफ पीस" का यही विषय है। वह इस ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करते है कि युद्ध और अन्याय की जडें मानव के लोभ में ही है, इतना मात्र जानने से कुछ बडा व्यावहारिक प्रयोजन नहीं है, अगर हम उस लोभ को दूर करने के मार्गों को भी खोज नही निकालते हैं। तो छात्रालय मे एक लोभी लडके को या

समुदाय में एक स्वकेन्द्रित लोभी परिवार को हम कैसे ठीक रास्ते पर ला सकेंगे ? अपने ही अन्दर लोभ को हम कैसे पहचानेंगे और उसका निवारण कैसे करेंगे ? इसी प्रकार दलबन्दी और पक्षपात के विनाशकारी परिणामों को हम सब भलीभांति जानते हैं। लेकिन उसका इलाज क्या है ? आज लोगों के मानसों पर "पार्टि" का जो प्रभाव है, उसे हटाने के लिए क्या क्या व्यावहारिक कदम उठाने चाहिये ? "पार्टि" का इतना प्रभाव क्यों है ? एक सहकारी गांव और सहकारी दुनिया के लिए लोगों में अपील करने से कोई बहुत व्यावहारिक फल नहीं मिल सकता है अगर हम सहकार के तरीकों को जानते नहीं और सहकारी समुदाय को धीरे-धीरे निर्माण करने के लिए आवश्यक सामाजिक कुशलताएं हमें हासिल न हों। इन बातों में निवारण इलाज से बेहतर है, यह तो सब जानते ही हैं। अहिंसात्मक दुनिया के लिए जरूरी मौलिक आवश्यकताओं में से एक यह है कि बच्चों की शिक्षा प्रेम की सक्रिय शक्ति को प्रकट करने वाली, उसे बालमानस में गहरी उतारनेवाली हो। यह कोई भावुकता नहीं है, बल्कि शैक्षणिक सिद्धान्तों तथा शालाओं के दैनिक कामों में एक सुदूरगामी और अतिव्यावहारिक क्रान्ति की मांग है। हर्बर्ट रीड की "शान्ति के लिये शिक्षा" और विनोबाजी का "शिक्षण विचार" इस विचार धारा को बहुत उद्दीपन देनेवाली किताबें हैं।

लेकिन बच्चों के लिये इस प्रकार की शिक्षा शालाओं तक ही सीमित नहीं रखी जा सकती। बच्चों की ज्यादा व्यापक शिक्षा चारों तरफ के समाज के द्वारा होती है और उसका उन पर ज्यादा गहरा प्रभाव भी पड़ता है, बनिस्बत शालाओं के। जैसे गांधीजी ने भी कहा था—शान्ति के लिए शिक्षा को पालने से कब्र तक फैलाना होगा। समाज के दैनिक काम और उसमें मिलने वाले अनुभवों से ही स्त्री पुरुषों की आन्तरिक क्षमताओं का विकास और उनका उपयोग होना चाहिये।

यहां हम एक महत्वपूर्ण मुद्दे पर आते हैं। विदेश के समाज शास्त्रज्ञों के द्वारा और भारत के सर्वोदय कर्मियों के द्वारा भी अब यह बात मानी जा रही है कि एक स्वस्थ समाज-व्यवस्था की मौलिक इकाई छोटा समुदाय होना चाहिये, जहां हर एक व्यक्ति बाकी सब को जानता है, जो अपने ही कामों के द्वारा अपने सभी सदस्यों की विभिन्न कुशलताओं और सामर्थ्यों का पूरा-पूरा विकास और उपयोग करता है। आर्थर मॉर्गन अपने लंबे अनुभव के आधार पर और स्फूर्तिले उत्साह के साथ इस "भविष्य के समाज" का विवरण करते हैं। स्टूवार्ट् चेस अपने "रोड्स टु एग्रीमेन्ट" में व्यावहारिक निर्णयों को लाने में सामंजस्य और स्वतंत्रता को बनाये रखने के बारे में कई सुझाव देते हैं। विनोबा जी आग्रह के साथ इस सर्वसम्मति की बात करते रहते हैं वस्तुस्थिति को तटस्थ बुद्धि से और अच्छी तरह से समझ कर उसके आधार पर सब की सम्मति होनी चाहिये, न कि दलबंदी के आधार पर "मत" ले कर—जिसको आजकल प्रजातंत्र कहते हैं। लेकिन व्यवहार में हम देखते हैं कि यह सर्व-सम्मति मिलनी कई दफे बड़ा ही कठिन होती है। इसलिये दूसरों के अनुभवों और अध्ययन की मदद हम छोड़ नहीं सकते हैं। "गोल्डन रूल" का कप्तान दो बात सुझाता है—व्यवस्था में असाम्यता (रिजिडिटि) से बच कर रहना और यह बोध कि ऐसे सर्वमान्य निर्णयों का उद्देश्य छोटे-छोटे व्यक्तिगत विचारों से परे हैं, बाइबिल के शब्दों में 'प्रभु की आंखों में जो ठीक है वह करना।'

हमें कब सत्याग्रहियों के तौर पर काम करना है, इसका निर्णय करने की समर्थता प्राप्त करने के लिए अब तक हुए अहिंसक आन्दोलनों, डारेक्ट एक्शन या सत्याग्रहों का अध्ययन, विश्लेषण और समीक्षा करना भी उतना ही जरूरी है। यहां बताई गई पुस्तकों में से चार इस अध्ययन के लिए सहायक हैं। जोन बोन्डुरान्ट और जेन शार्प, दोनों गांधीजी के कुछ सत्याग्रह आन्दोलनों की मूल्यवान और विस्तृत चर्चा करते हैं। श्रीकृष्णदत्त भट्ट अपनी दिनचर्या के रूप में चम्बल के बेहड़ों के सशस्त्र डाकुओं के साथ विनोबा के व्यवहार की दिन प्रतिदिन की कहानी बताते हैं। एल्बर्ट बिगेलाव "गोल्डनरूल की यात्रा" का—जिसका वह खुद कप्तान था—पूरा-पूरा वर्णन करता है। ये सभी लेखक मुश्किल अवसरों पर, जब कि अपना

(भाग १) कुछ शान्ति-स्थापकों के विचार

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
लियो टालसटाय				
द किंगडम ऑफ गॉड एण्ड पीस एसेस	ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, न्यू यार्क	५९१	१९३६	फा हा
एच. डी. थोरो				
ऐसेज ऑन सीविल डिसओबीडिएंस	माडर्न लायब्रेरी, न्यू यार्क	३५७	१९५०	फा हा
जे. चेपीरो,				
इरेस्मस एण्ड अवर स्ट्रगल फॉर पीस	बीकन प्रेस, बॉस्टन	१९६	१९५०	फा
विलियम पेन				
वर्ल्ड गवर्नमेन्ट	सोसाइटी ऑफ फ्रेन्ड्स, लन्डन	–	१९३६	हा
रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्स				
द विज्डम ऑफ जॉन वूलमेन	जॉर्ज एलन एण्ड अनविन	१७०	१९४८	हा
तोयोहिको कागावा				
लव, द लॉ ऑफ लाइफ	विन्सटन, फिलेडेल्फिया	३१३	१९३९	फा हा
पीरो केरेसोड				
फॉर पीस एण्ड ट्रुथ	बेनिसडेल प्रेस, लण्डन	–	–	हा फा
मार्टिन ब्यूबर				
आई एण्ड दाऊ	स्क्रिबनर, न्यू यार्क	१३७	१९५८	फा हा
मॉरिस फिडमैन				
द कॉवनेन्ट ऑफ पीस	पेन्डल हिल, लण्डन	३२	–	हा
एलबर्ट स्वाइट्जर				
द प्रॉबलम ऑफ पीस	पीस न्यूज, लण्डन	–	१९५४	हा
जॉन फॉक्स				
जर्नल	डटन, न्यू यार्क	३८४	१९२४	फा हा
जॉन फर्गूसन				
एनव्रोनमेंट ऑफ लव	एफ. ओ. आर., लण्डन	१०३	१९५८	फा हा
रवीन्द्रनाथ ठाकुर				
रिलीजन ऑफ मैन	जॉर्ज एलन एण्ड अनविन	२३९	१९३२	हा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
मोहनदास करमचन्द गाधी				
हिन्द स्वराज्य (हिंदी)	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली	१२७	१९५३	सस्ता
„ (अंग्रेजी)	नवजीवन, अहमदाबाद	११०	१९५८	नव
सत्याग्रह	नवजीवन, अहमदाबाद	४०६	१९५१	नव
सर्वोदय का सिद्धान्त	„ „	६८	–	नव
मगल प्रभात	सर्व सेवा सघ, काशी	७६	१९५६	नव
लियो तालसताय				
हम करे क्या ?	सर्व सेवा सघ, काशी	–	–	सर्व
जीवन साधना	„ „	–	–	सर्व
प्रेम मे भगवान	„ „	–	–	सर्व
धर्म और सदाचार	„ „	–	–	सर्व
किशोरलाल मश्रुवाला				
गाधी विचार दोहन	सर्व सेवा सघ, काशी	१८८	१९५७	सर्व
विनोबा भावे				
कार्यकर्ता पाथेय	सर्व सेवा सघ, काशी	१०३	१९५६	सर्व

(भाग २) शान्ति-स्थापना और अहिंसक प्रतिरोध के आधुनिक प्रयोग

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
मोहनदास करमचन्द गाधी				
आत्म कथा	सस्ता साहित्य मडळ, दिल्ली	६००	१९५६	सस्ता
द स्टोरी ऑफ माइ एक्सपेरीमेन्ट्स विथ ट्रुथ	नवजीवन, अहमदाबाद	३९२	१९५९	नव
सत्याग्रह इन साउथ अफ्रिका	„ „	३५१	१९५०	नव
दक्षिण आफ्रीका मे सत्याग्रह	„	–	–	नव
सत्याग्रह आश्रम का इतिहास	„	९८	१९४८	नव
प्यारेलाल नैयर				
द लास्ट फेज	„ „	७५०+८८७	१९५८	नव
ए पिलग्रिमेज फॉर पीस	„	–	–	नव
मार्टिन लूथर किंग				
स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम	हार्पर, न्यू यार्क	–	१९६७	प्रा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
एल्फ्रेड हैस्लर				
डायरी ऑफ ए सेल्फ मेड कन्विक्ट	एफ. ओ. आर., न्यू यार्क	१८२	१९५८	फा
जेने शार्प				
टिरेनी कुड नॉट क्वेल दॅम	पीस न्यूज, लण्डन	२४	१९५९	हा
गांधी वील्ड्स द वैपन ऑफ मॉरल पॉवर	नवजीवन, अहमदाबाद	३१६	१९६०	नव
रिचार्ड ग्रेग				
द पावर ऑफ नॉन-वायोलेंस	एफ ओ आर, न्यू मार्क	१९२	१९५९	फा
अहिंसा की शक्ति	नवजीवन, अहमदाबाद	—	—	नव
ए. रूथ फाई				
विक्ट्रीज विदाउट वायोलेंस	सोसाइटी ऑफ फ्रेण्ड्स, लण्डन	८०	१९५८	हा
जॉर्ज लेन्सबरी				
व्हाई क्वेस्ट फॉर पीस	माइकल जोसेफ, लण्डन	२७०	१९३८	हा
जुलियन बॅल (सम्पादक)				
वी डिड नॉट फाइट	काब्डन, सेण्डरसेन, लण्डन	—	१९३३	हा
ए. सिगेलोव				
द वायेज ऑफ द 'गोल्डन रूल'	डबलडे, न्यू-यार्क	२८६	१९५९	फा
जॉन वी. बॉनडूरेण्ट				
द कान्क्वेस्ट ऑफ वायोलेंस	प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, अमेरिका	२६९	१९५८	फा
होमर ए जैक				
द गांधी रीडर	इण्डियाना युनि. प्रेस, इण्डियाना	२६९	१९५८	फा
आर. आर. दीवाकर				
सत्याग्रह	रेगनेरी, शिकागो	१०८	१९४८	फा
(१९५३ में हुई गोष्ठि की रिपोर्ट)				
ग धियन आउटलुक एण्ड टेकनीक	भारत सरकार, नई-दिल्ली	४२४	१९५३	(प्रकाशक से)
हेलम टेनिसन				
इन्डियाज वाकिंग सेण्ट	डबलडे, न्यूयार्क	२४४	१९५३	फा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
मार्जरी साइक्स				
द अर्थ इज द लार्ड्स	फ्रेण्डस सर्विस काउँसिल, लण्डन	४०	१९५२	हा
लान्जा डेल वास्तो				
गाधी टु विनोबा	राइडर एण्ड को, लण्डन	२३१	१९५६	हा
प्यारेलाल और मार्जरी साइक्स				
शान्तिसेना का विकास	हि ता सघ, सेवाग्राम	४४	१९५०	सर्व
गांधीजी और विनोबा				
शान्ति सेना	हि ता सघ, सेवाग्राम	२४	–	सर्व
विनोबा भावे				
भूदान यज्ञ	नवजीवन, अहमदाबाद	१४८	–	नव
ग्रामदान	सर्व सेवा सघ, काशी	१७५	१९५७	सव
भूदान गगा	,, ,,	६ खड	१९५७-८	सर्व
सेसिल हिन्शॉ				
नॉन वायोलेन्ट रेजिस्टेन्स	– –	–	–	हा
अहिंसात्मक प्रतिरोध	सर्व सेवा सघ, काशी	८४	१९६०	सर्व
महादेव देसाई				
एक धर्मयुद्ध	नवजीवन, अहमदाबाद	९८	१९४९	नव
जोसेफ जे डोक				
अफ्रिका मे गाधी	सर्व सेवा सघ, काशी	१४४	१९६०	सघ
सुरेशराम				
विनोबा एण्ड हिज मिशन	सर्व सेवा सघ, काशी	३४१	१९५८	सर्व
हरिदास मजूमदार				
महात्मा गाधी पीसफुल रिवोल्यूशनरी	स्क्रिबनर्स, न्यूयार्क	१२७	१९५२	फा

(भाग ३) शांति स्थापना की शैक्षणिक और सामाजिक बुनियाद

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
मोहनदास करमचन्द गांधी				
नॉन वायोलेंस एण्ड पीस	नवजीवन, अहमदाबाद	४०३+५८९	१९४४	नव
फॉर पैसीफिस्ट्स	,, ,,	१०६	१९४९	नव
टुवर्ड्स नॉन वायोलेन्ट सोशियलिज्म	,, ,,	१७१	१९५७	नव
सर्वोदय	,, ,,	–	–	नव

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन	हि. ता. संघ, सेवाग्राम	२१५	१९५८	सर्व
शिक्षा में अहिंसक क्रांति	" "	१८४	१९५६	सर्व
विनोबा भावे				
शिक्षण विचार	सर्व सेवा संघ, काशी	३३३	१९५६	सर्व
थॉट्स ऑन एजूकेशन	" "	२६२	१९५९	सर्व
शान्ति सेना	" "	१२३	१९५७	सर्व
जय जगत	" "	८७	१९६०	सर्व
मोहब्बत का पैगाम	" "	४३२	१९६०	सर्व
दादा धर्माधिकारी				
सर्वोदय दर्शन	सर्व सेवा संघ, काशी	४३०	१९५७	सर्व
आर्थर मार्गन				
सर्च फॉर पर्पज	नवजीवन, अहमदाबाद	१६८	१९५७	नव
विल्फ्रेड वेलॉक				
न्यू होराइजन्स	–	–	–	हा
किशोरलाल मश्रुवाला				
प्रेक्टीकल नॉन वायलेंस	नवजीवन, अहमदाबाद	४५	१९५४	सर्व
बबल भाई महेता				
गुजरात के महाराज	सर्व सेवा संघ, काशी	३६४	१९३९	सर्व
श्रीकृष्णदत्त भट्ट				
चम्बल के बेहड़ों में	सर्व सेवा संघ, काशी	४०४	१९६०	सर्व
एरिक फ्रॉम				
द आर्ट ऑफ लविंग	हार्पर, न्यू यार्क	१३३	१९५७	फा
द सेन सोसाइटी	राइन हार्ट, न्यू यार्क	३७०	१९५५	फा
आल्डस हक्सली				
एण्ड्स एण्ड मीन्स	छाटो एण्ड विण्डस, लण्डन	३०७	१९३७	हा
टोनीज				
कम्यूनिटी एण्ड एसोसियेशन	केगेन पॉल, लण्डन	३००	–	हा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
लेन्ट्ज़				
टुवर्ड्स ए साइन्स ऑफ पीस	बुक मैन एसोसिएशन, न्यू यार्क	२८०	१९५७	हा
पी. ए. सोरोकिन				
द वेस एण्ड पावर ऑफ लव	बीकन प्रेस, बॉस्टन	५५२	१९५४	फा
एलबर्ट कामू				
द रिबेल	नॉफ, न्यू यार्क	२७३	१९५४	फा
स्टूवर्ट चेज़				
रोड्स टु एग्रीमेन्ट	फिनिक्स हाउस, लण्डन	२५०	१९५२	हा
पी. क्रोपोट्किन				
म्यूचुअल एड	पोर्टर सारजेन्ट, बॉस्टन	३२६	१९५५	फा
लुई ममफोर्ड				
द ट्रान्सफारमेशन्स ऑफ मैन	हार्पर, न्यू यार्क	२४९	१९५७	फा
द कल्चर ऑफ सिटीज़	सेकर एण्ड वारबुर्ग	–	१९३८	फा
लॉर्ड बोयड ओर				
द व्हाइट मैन्स डायलमा	जॉर्ज एलन एण्ड अनविन	–	१९५३	हा
ई. हायम्स				
सॉयल एण्ड सिविलाइजेशन्स	थॉमस एण्ड हडसन	–	१९५२	फा
एच. एफ. इनफील्ड				फा
द एमेरिकन इन्टेन्शनल कम्यूनिटीज़	कम्यूनिटी प्रेस, ग्लेन गार्डनर	–	–	हा
ऑस्कर कुलमैन				
द स्टेट इन द न्यू टेस्टामेन्ट	एस. सी. एम. प्रेस, लण्डन	१२३	१९५७	हा
बर्टण्ड जूवनेल				
सावेनिटी	शिकागो युनिवर्सिटी	३१२	१९५७	फा
ए. ए. एकर्स				
द सिवीलियन एण्ड मिलिट्री	आक्सफोर्ड, न्यू यार्क	३४०	१९५६	फा
डी. मैकडोनाल्ड				
द रूट इज़ मैन	हाउसमैन, लण्डन	–	–	हा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
सी. राइट मिल्स				
द कॉजेज ऑफ वर्ल्डवार थ्री	साइमन एण्ड शूस्टर, न्यू यार्क	–	१९५९	पा
चार्ल्स एण्ड जेनेटा एल. मेनिन्जर				
एन अमेन्मेंट हेट	हारकोर्ट, ब्रेस	२११	१९५९	पा
(एक रिपोर्ट)				
ए पर्सपेक्टिव ऑन नॉनवायोलेन्स	फ्रेन्ड्स पीस कमेटी	३२	१९५	हा पा
पी. ए. सोरोकिन				
फार्मस एण्ड टेक्नीक्स ऑफ अलट्रूइस्टिक एण्ड स्प्रीचुअल ग्रोथ	बीकन प्रेस, बोस्टन	–	१९५४	पा
आल्ट्रूइस्टिक लव	,, ,,	३५३	१९५०	पा
द क्राइसेस ऑफ अवर एज	डटन पब्लीशर्स	–	–	पा
(शान्ति सम्मेलन १९४९की रिपोर्ट)				
द टास्क ऑफ पीस मेकिंग	विश्वभारती, कलकत्ता	१८१	१९४९	प्रकाशक से
हर्बर्ट रीड				
एजूकेशन फॉर पीस	स्क्रिबनर्स, न्यू यार्क	१६६	१९४९	पा हा

(भाग ४) शांति स्थापना की आर्थिक और राजनैतिक बुनियाद

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
मोहनदास करमचन्द गांधी				
इकोनॉमिक्स ऑफ खादी	नवजीवन, अहमदाबाद	–	–	नव
फूड शॉर्टेज एण्ड एग्रीकल्चर	,, ,,	–	–	नव
रिचर्ड ग्रेग				
फिलॉसफी ऑफ इन्डियन इकोनामिक डेवलपमेन्ट	,, ,,	२३२	१९५८	नव
जे. सी. कुमारप्पा				
व्हाय द विलेज मूवमेन्ट	सर्व सेवा संघ, काशी	२०३	१९५६	सर्व
गाव आन्दोलन क्यों ?	,, ,,	२०८	१९५७	सर्व
इकोनॉमी ऑफ परमानेन्स	,, ,,	२०८	१९५८	सर्व

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
स्थाई समाज व्यवस्था	" "	२२०	१९५८	सर्व
गांधियन इकोनॉमिक्स एण्ड अदर एसेज	" "	१५४	१९५७	सर्व
गांधी अर्थ विचार	मगनवाडी, वर्धा	६७	—	सर्व
भारतन कुमारप्पा				
सोशियलिज्म, केपिटलिज्म एण्ड विलेजिज्म	सर्व सेवा संघ, काशी	—	—	सर्व
विनोवा भावे				
लोक नीति	सर्व सेवा संघ, काशी	२३९	१९५९	सर्व
प्रिंस क्रोपाट्किन				
रोटी का सवाल	सर्व सेवा संघ, काशी	२३९	१९५६	सर्व
राजकृष्ण				
ह्यूमन वेल्यूज एण्ड टेक्नालॉजिकल चेंज	सर्व सेवा संघ, काशी	—	—	सर्व
गोपीनाथ धावन				
द पोलिटीकल फिलोसॉफी आफ महात्मा गांधी	नवजीवन, अहमदाबाद	३६३	१९५७	
मलफोर्ड सिबली				
द पोलिटीकल थियोरीज ऑफ मॉडर्न पेसिफिज्म	पैसीफिस्ट रिसर्च ब्योरो, फिलेडेल्फिया	—	१९४४	फा
अलेक्सिस केरोल				
मैन, द अननोन	हैमिश हैमिल्टन, लण्डन	—	—	हा
बर्ट्रेण्ड रसल				
ह्यूमन सासाइटी इन एथिक्स एण्ड पोलेटिक्स	जॉर्ज एलन एण्ड अनविन, लण्डन	—	१९५४	हा
एलबर्ट आइन्सटाइन				
आइडियाज एण्ड ओपीनियन्स	एलविन रेडमैन, लण्डन	—	—	हा
बलेअर बोल्डाय				
ऑल थिंग्स कॉमन	हार्पर, न्यू यार्क	—	—	फा
इनफील्ड				
को-ऑपरेटिव ग्रुप लिविंग	हैनरी कूथी, न्यूयार्क	—	—	हा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशन	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
को-ऑपरेटिव कम्युनिटीज एट वर्क	केगेन पॉल, लण्डन	–	–	हा
को-ऑपरेटिव लिविंग इन पेलेस्टाइन	,, ,,	–	–	हा
आर्थर मॉर्गन				
द कम्यूनिटी ऑफ द फ्यूचर	हि. ता. संघ, सेवाग्राम	१६६	१९५८	सर्व

(भाग ५) अहिंसा, सुरक्षा और युद्ध

लेखक और पुस्तक	प्रकाशन	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
के. लागहेल				
इज पीस पासिब्ल ?	पेन्गुविन बुक्स लण्डन	१२७	१९५७	हा
विश्वशान्ति क्या सम्भव है ?	सर्व सेवा संघ, काशी	१७१	१९ ०	सर्व
पीसफुल यूसेज ऑफ एटोमिक एनर्जी	–	–	–	हा
आर. जी. बेक				
आल्टरनेटिव टू वॉर	हाउसमैन, लण्डन	–	–	हा
ए. जे. मस्ते				
गैटिंग रिड ऑफ वॉर	हाउसमैन, लण्डन	–	–	हा
स्टीफन किंग हॉल				
कॉमन सैंस इन डिफेन्स	के. एच. सर्विस, लण्डन	४८	१९६०	फा
डिफेन्स इन द न्यूक्लियर एज	एफ. ओ. आर., न्यू यार्क	२३४	१९५९	हा
विक्टर वालेस (सम्पादक)				
पाथ्स टू पीस : ए स्टडी ऑफ वॉर	कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस	३९७	१९५७	हा
आर्नाल्ड टायनबी				
वार एण्ड सिविलाइजेशन	ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस	१६५	१९५०	फा
ब्रेडफर्ड लिटिल				
नेशनल डिफेन्स थ्रू नॉनवायोलेन्ट–रेजिस्टेन्स	शिकागो	६९	१९५८	फा
जे. डब्लू. ह्यूघान				
पेसिफिज्म एण्ड इनवेजन	वॉर रेजिस्टर्स लीग, न्यू यार्क	–	–	फा
एम्पनी वीवर				
वार आउट मोडेड	हाउसमैन, लण्डन	६२	१९६०	हा

लेखक और पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ-संख्या	प्रकाशन वर्ष	प्राप्ति-स्थान
केरन मैन एन फैली				
फ्रॉम एरोज टु एटम	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
राबर्ट जुंग				
ब्राइटर दैन ए थाउजेन्ड सन्स	पैन्ग्विन बुक्स, लण्डन	—	१९६०	हा
एलबर्ट स्वाइट्जर				
पीस एण्ड एटोमिक वॉर	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
सी. ए कूलसों				
सम प्राब्लम्स ऑफ द न्यूक्लियरएज	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
बर्टरेण्ड रसल				
कॉमनसेन्स एण्ड न्यूक्लियर वॉर	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
ए. जे. पी. टेलर				
द एक्सप्लोडेड बॉम्ब	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
रिचर्ड ऑकलैण्ड				
वेजिंग पीस पॉजेटिव पॉलिसीज	हाउसमैन, लण्डन	—	—	हा
जूली मोश				
टु डिसआर्म ऑर पैरिश	गोलाज, लण्डन	२२२	१९५५	हा
जेडी चेरनल				
वर्ल्ड विदाउट वॉर	यार्क	३०८	१९५९	फा
लीनस पॉलिंग				
नो मोर वॉर	डोड, मीड, न्यू यार्क	२५८	१९५८	फा
लुई मम्फोर्ड				
इन द नेम ऑफ सेनिटी	हार्कोर्ट ब्रेस, न्यू यार्क	२५४	१९५४	फा
मेली यूजीन कर्टी				
पीस ऑर वार द एमेरिकन स्ट्रगल (१६३६-१९३६)	नॉर्टन, न्यू यार्क	२७४	१९३६	फा
वीरा ब्रिटन				
ह्यूमिलिएशन विद ऑनर	एफ. ओ. आर., न्यू यार्क	१०८	१९४३	फा

स्पष्टत. इस काम को वे ही उठा सकते,हैं जिन्हे दृष्टि और श्रद्धा है। जो प्रचलित विचारो के अनुकूल नही होता है, जो वेस्टड इन्टरस्ट्स् के खिलाफ जाता है, उसको जबरदस्त विरोध का सामना करना ही पडता है। बुनियादी तालीम के कार्यकर्ता की परीक्षा इसी में है–उसको आत्मशक्ति की परीक्षा–जिसका आधार नम्रता क्षमा और आध्यात्मिक साम्यताओ में अपार श्रद्धा है।"

× × ×

अमेरिका से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र "मानस" के ७ सितबर १९६० के अक में एक लेख था जिसमें कहा गया था कि अमेरिका के लोस एन्जलस शहर मे युवको के एक अतर्वशीय, अत सास्कारिक ग्रीष्म कालीन शिबिर का आयोजन चल रहा है। इसकी शुरुआत १९५३ में हुई और इसकी बडी बात यह है कि विभिन्न वशो और सस्कारो के युवका की परस्पर-मैत्री बढाने की दृष्टि से शिक्षका और समाज सेवको ने इसका आरभ किया था। शिबिर में लास एन्जलस् के सभी वशो, धार्मिक व सास्कारिक दलो का प्रतिनिधित्व हो, यह प्रयत्न किया जाता है। "ज्यादातर युवक एक दूसरे के बारे में फलाने वश या धर्म के सदस्य के रूप में नही, बल्कि अपने साथी के रूप में ही सोचते हैं, और यह बिलकुल स्वाभाविक है। लोग एक दूसरे से विभिन्न हो सकते हैं, उस विभिन्नता का भी मूल्य है और वह परस्पर मैत्री को कम नही करती यह सीखने की बात है।"

× × ×

उत्तर अमेरिका में "विश्व मैत्री के लिये कला" नाम से कुछ मित्र ससार के विभिन्न देशों के बच्चो के चित्रो के परस्पर आदान प्रदान का आयोजन करते हैं। उनके द्वारा भेजी गई एक रिपोर्ट के अनुसार उनका विश्वास है कि "कला बच्चो के बीच में एक स्वाभाविक मैत्री बन्धन का माध्यम है; इसमें वश, भाषा, धार्मिक विश्वास या शिक्षा का कोई भेदभाव नही होता है।" इसलिये बच्चो की कलाकृतियो के आदान प्रदान से वे आगामी पीढी मे ऐसा एक मैत्री का वातावरण तैयार करने की आशा रखते हैं, जहा विश्व शान्ति कायम हो सकेगी।

इन चित्रो की प्रदर्शिनियाँ भी होती हैं, लेकिन वह प्रतियोगिता या काम्पिटिशन के आधार पर नही। वे मानते हैं–बच्चो कि कलाकृतियो मे प्रतियोगिता का स्थान नही है। स्पर्धा बच्चा की स्वय स्फूर्ति और सृजनात्मकता को नष्ट कर देती है।

"शन्करस् वीकली" भी नियमित तौर पर विभिन्न देशो के बच्चों के चित्र सग्रह करके प्रदर्शिनियाँ चलाती है। इन प्रदर्शिनियो में भाग लेने से बच्चे एक दूसरे के बारे में तथा देशो के बारे में जानने समझने लगते हैं, उनमें दूसरे देशो के बच्चो के प्रति मैत्री तथा आत्मीयता के भाव पैदा होते हैं।

महाराष्ट्र की "साधना" साप्ताहिक भी आजकल इस प्रकार बच्चों के चित्र इकट्ठा करके अपने विशेष अक में छाप रहे हैं। बच्चो में सकीर्णता छोडकर विशाल भावना निर्माण करने में सहायक प्रयत्नों के तौर पर ये सब उत्साहवर्धक कदम हैं।

Regd. No. N.-106

तलवार को छोड़ देने के बाद मेरे पास प्रेम के प्याले के सिवा और कोई चीज़ नहीं, जिसे मैं अपने विरोधियों के सामने पेश कर सकूं। वह प्रेम का प्याला पेश करके ही मैं उन्हें अपने नजदीक लाने की आशा रखता हूँ। क्रोध या द्वेपरहित कष्ट-सहन के सूर्योदय के सामने कठोर-से-कठोर हृदय और घोर-से-घोर अज्ञान भी विलीन हो जायेगा।

—गांधीजी

कृपया अपनी नई ग्राहक संख्या नोट कर लें।

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम
नई तालीम
सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन
फरवरी १९६१
वर्ष ९ अंक ८

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

फरवरी १९६१

वर्ष ९ अंक ८.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है । असका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है । चन्दा पेशगी लिया जाता है । वी. पी. डाक से मगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है । चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो मे लिखें । पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करे । "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं । इस पत्रिका मे प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है । पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय ।

वर्ष ९ अंक ८ ★ फरवरी १९६१

महात्माजी

वह हजारों निर्धनों की झोपड़ियों के द्वार पर उन्हीं के जैसे पोशाक पहने हुए खड़े हो गये। उन्हीं की भाषा में उनसे बात की। यहीं था आखिर जीवन्त सत्य, केवल किताबों से उद्धरण नहीं। इसी कारण से महात्मा ही उनका असल नाम बन गया, जो भारत की जनता ने उन्हें दिया था। दूसरे किसने ऐसा महसूस किया कि सभी भारतीय अपने ही रक्त मांस के हैं? जब प्रेम का सन्देश भारत के द्वार पर आया तो वह पूरा-पूरा खुल गया। गांधी जी की पुकार से भारत नई महानता के साथ खिल उठा; जैसे पहले भी एक युग में वह खिला था, जब बुद्धने प्राणिमात्र से करुणा और मैत्री के सत्य की घोषणा की थी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नई तालीम

[अ. भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

फरवरी १९६१

वर्ष ९ अंक ८.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह में सर्व सेवा संघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। जिसका वार्षिक चंदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न. पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी. पी. डाक से मगाने पर ६२ न. पै. अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, "नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष ९ अंक ८ ★ फरवरी १९६१

महात्माजी

वह हजारों निर्धनों की झोपडियों के द्वार पर उन्हीं के जैसे पोशाक पहने हुए खडे हो गये। उन्हीं की भाषा में उनसे बात की। यही था आखिर जीवन्त सत्य, केवल किताबों से उद्धरण नहीं। इसी कारण से महात्मा ही उनका असल नाम बन गया, जो भारत की जनता ने उन्हें दिया था। दूसरे किसने ऐसा महसूस किया कि सभी भारतीय अपने ही रक्त मांस के हैं ? जब प्रेम का सन्देश भारत के द्वार पर आया तो वह पूरा-पूरा खुल गया। गांधी जी की पुकार से भारत नई महानता के साथ खिल उठा; जैसे पहले भी एक युग में वह खिला था, जब बुद्धने प्राणिमात्र से करुणा और मैत्री के सत्य की घोषणा की थी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'द्वारा', 'और', 'की'?

किशोरलाल मशरूवाला

'उद्योग और शिक्षा' तथा 'उद्योग की शिक्षा' यह भाषा और इसका अर्थ हम जानते हैं। परन्तु 'उद्योग द्वारा शिक्षा' यह अलग भाषा है।

इस लेख में इन तीनों के बीच का भेद बताने का प्रयत्न करूंगा।

जहां साधारण लिखने पढने के साथ दो तीन भाषायें, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि पढाया जाता है और इसके सिवाय कारीगरों के धधो की भी कुछ-न-कुछ शिक्षा दी जाती है, उसे 'उद्योग और शिक्षा' कहते हैं। यह चीज सबको परिचित होने से इसका विस्तार करने की आवश्यकता नही।

जहा भाषाए, इतिहास, भूगोल आदि कुछ नही पढाया जाता, केवल कारीगरो के या किसी और एकाध धन्धो की शिक्षा दी जाती है और उस धधे के लिये गणित, विज्ञान आदि का जितनी आवश्यकता हो उतना ही ज्ञान दिया जाता है, वह 'उद्योग की शिक्षा' है। इसमें भाषा, इतिहास, भूगोल आदि विषयो की शिक्षा की या तो आवश्यकता ही नही मानी जाती अथवा ऐसा नियम होता है कि ये सब जो पढ चुके हो वे ही इन उद्योगो की शिक्षा ले। डाक्टरी, वकालत, इंजीनियरी, हिसाब किताब, शार्टहैण्ड, टाइपराइटिंग आदि सब मुशीगिरी के धधो की शिक्षा अधिकतर इसी ढग से होती है। इसमें जिस उद्योग के साथ जितने विषयो का सबंध हो उतनो की ही शिक्षा दी जाती है। यह उद्योग की शिक्षा है। परन्तु वह इस धन्धे द्वारा ही नही दी जाती। फिर भी जीवन-निर्वाह की दृष्टि से उद्योग और धधे के बीच कुछ समानता होने से 'उद्योग द्वारा शिक्षा, का इसमें कुछ अश होता है।

अब एक और उदाहरण ले।

सॉलिसिटर का पेशा लीजिये। सालिसिटर बनने के लिए उम्मीदवार को किसी अन्य सॉलिसिटर के मातहत कुछ वर्ष तक काम करना पडता है। उसमें सॉलिसिटर उस तरुण को अपने पास बिठाकर शिक्षक की भाति पाठ पढाता, और न इस पेशे की शिक्षा देनेवाली कोई शाला ही होती है। वह तो केवल उम्मीदवार को दूसरे कारकुनो के साथ अपने दफ्तर के काम मे लगा देता है। धीरे-धीरे उम्मीदवार उस काम को समझने लगता है। जो कानून उसे सीखना है, वह उसे स्वय ही पढ लेना होता है। इस प्रकार काम करते करते वह दो तीन वर्ष में सालिसिटर के धधे के सब रगढग जान लेता है। इस धधे के लिए लगभग बी. ए. के बराबर साधारण शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। इसलिए सॉलिसिटर ऐसो को ही उम्मीदवार के रूप में ले सकता है।

पहले ही दिन से उम्मीदवार से जो काम कराये जाते हैं, उनमें शायद ही कोई ऐसा काम

हैं। यदि हम समझ ले कि वही धंधे शालाओ के लिये अच्छा काम दे सकते हैं, जिन्हे सरकार-नियन्त्रित बनाना सभव हो तो खोज आसान होगी। जो ऐसे बनाये नही जा सकते, उनमें स्पर्धा के कारण बालको की बेगार, महगाई के कारण नुकसान, वगैरा की कई उलझने पैदा होगी। जिन धधो को सरकारी बनाया जा सकता हो, उनमें माल की कीमत ठहराना सरकार के हाथ में रहेगा। जो धन्धे सब के लिए खुले हो, उनमें न्याय और स्पर्धा के प्रश्नो को हल करना कठिन है।

उद्योग द्वारा शिक्षा की पुरानी पद्धति में और इस नई योजना में जो दूसरा भेद है, वह उपरोक्त बातो से ध्यान में आ सकता है। वह यह है कि हानि का धधा न तो किया जा सकता है और न बालको से कराया जा सकता है। यह तत्व दोनो पद्धतियो में समान है। परतु पुरानी पद्धति में धधे का उद्देश्य लाभ उठाने का हेतु नही हो सकता। यह हेतु छोड कर धधा करने का अर्थ ही तो धध को सरकारी बनाना है।

दोनो पद्धतियो में एक और भी भेद है। पुरानी पद्धति में गुरु और शिष्य दोनो का यह उद्देश्य होता है कि उम्मीदवार को इस ढग से तैयार किया जाय (बल्कि वह तैयार हो जाय) कि उस धधे से वह अपनी जीविका चला सके। और केवल इतना ही उसका उद्देश्य होता है। नई तालीम में ऐसा उद्देश्य और इतना ही उद्देश्य नही होता कि विद्यार्थी सिखाये जानेवाले धधे से ही अपनी जीविका चलाये। अुसमें कातने–बुनने पर अिस हेतु से जोर नही दिया जाता कि हिन्दुस्तान को कातने-बुनने वाले लोगो का राष्ट्र बना दिया जाय। परतु अुसका अुद्देश्य यह है कि अुसके द्वारा बालको के शरीर, अिन्द्रियों, मन और बुद्धि को पूरी तालीम मिले और लडका या लडकी मन चाहा धधा सीखने के योग्य बने। परन्तु साथ ही विद्यार्थी को यह आश्वासन भी दिया जाता है कि यदि वह किसी और धधो में सफल न हो सके तो भी कम-से-कम कातने-बुनने का धधा करके तो अपना गुजर चला ही सकेगा। अिसके अलावा वह बात भी है कि किसी अपढ की अपेक्षा नही, परतु केवल आज-कल को पाठशालाओ में पढे हुये विद्यार्थी की अपेक्षा भी वह किसी काम को ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा। और जिससे दोनो अपरिचित हो अुसे सीख लेने में यह अधिक होशियार साबित होगा। यदि यह परिणाम न निकले तो समझना चाहिये कि शिक्षा में कही-न-कही दोष है।

इस प्रकार, यह केवल साधारण शिक्षा+उद्योग की शिक्षा ही नही है और न (उद्योग के मारफत या स्वतत्र रूप में) केवल उद्योग की शिक्षा है, परतु उद्योग द्वारा पूरी शिक्षा देने की कल्पना है। अैसा हो सकता है कि अविवेक से हम इस कल्पना को बिगाड दें या हास्यास्पद दिखाई देनेवाला स्वरूप दे दें। वह अनुभव-हीनता अथवा नासमझी का परिणाम होगा। परतु इससे डरने की जरूरत नही, अनुभव उसे सुधार देगा। मूल वस्तु यह है कि जीवन में चल रही कुदरती पद्धति को शास्त्रीय रूप देने का यह प्रयत्न है और इस रूप में यह योजना पहली ही बार शिक्षाशास्त्रियो के सामने रखी गई। यह भी याद रखना चाहिये कि उद्योग के सिवाय जिस कुदरत और समाज के बीच बालक रहता है, उसे भी शिक्षा का साधन बनाने पर इसमें जोर दिया गया है।

नैतिक स्वच्छता

काका कालेलकर

सार्वजनिक स्थानो में से अशोभनीय पोस्टरो को हटाने का कार्यक्रम प्रधान तथा नैतिक है, जीवन शुदधि का है । श्री विनोबाजी ने यह आन्दोलन योग्य समय पर उठाया है । साथ-साथ अुन्होने अुसकी मर्यादा भी बाध दी है । सिनमा घरो में जहा लोग दाम देकर स्वेच्छा से प्रवेश करते है अुन घरो का नैतिक वायुमडल सुधारने की बात अिस आन्दोलन म नही है, फिलहाल अुसे अुठाया नही है । अुनका कहना है, मै अिस देश का अेक नागरिक हू । शहर के और गाव के रास्ते आनेजाने का मेरा अधिकार है । मेरी भावना का ख्याल न करते हुअे अगर कोई रास्ते पर नगा नाच करे, दुर्गन्धी चीजें रास्ते पर फेंक दे, तो वह मेरे जन्मसिद्ध अधिकार पर आक्रमण है । मै अुसे बरदाश्त नही करुगा । रातको बारह बजे या दो बजे अगर कोअी जोर-जोर से गाना बजाना चलावे, शोर बकोर करे और मेरी नीद में खलल पहुचाये तो शिकायत करने का मेरा अधिकार है । शाति का भग करनेवाले को प्रतिबन्ध करने की सूचना मै नगरपालिका को और सरकार को कर सकता हू और स्वय भाग सकता हू । तो मेरी नजर को, मेरी सामाजिक और नैतिक स्वच्छता की कल्पना को आघात पहुचानेवाली चीज को रोकने का अधिकार मुझे होना चाहिये ।

हम मानते है कि श्री विनोबा की माग न्यायोचित है । अैसा कानून बनना ही चाहिये । हम यह भी मानते है कि श्री विनोबाजी के जैसे राष्ट्रपुरुष ने जब अेक सामाजिक बदी की ओर राष्ट्र का ध्यान खीचा है तब अैसे कानून बनाना कठिन नही है । अिसके लिये घोर आन्दोलन की भी आवश्यकता नही है । यह बदी अितनी बडी है, बेरोक बढी है कि अिसकी दुर्गन्ध हर अेक की नाक तक पहुच गई है । रशिया और चीन में स्टालिन और माओ के महाकाय पोस्टर खडे किये जाते है । ऐसे जमाने में हमारे देश में गाधीजी के सौ फीट ऊचे पोस्टर कोई खडे कर देता तो बात समझ में आती । लेकिन पश्चिम का अनुकरण करके हमारे यहा समाज सेवको के नही, किन्तु समाज की अभिरुचि नष्ट करनेवाले चित्र बनाये जाते है । इसका कोई इलाज हो जाना चाहिये । हमें विश्वास है कि थोडे ही दिनो में कानून तो बन जायगा । लेकिन उसके बाद ?

उसके बाद अश्लील और श्लील का भेद क्या है, शोभनीय किसे कहे अशोभनीय किसे कहे इसकी चर्चा चलेगी । और अश्लील और अशोभनीय किसे कहे इसकी व्याख्या सिनेमा पर अकुश रखनेवाले कानूनों में है ही, इतना ही नही ऐसे कानून का भग करनेवाले सिनेमा को शुद्ध करने के लिये सरकार की ओर से सेन्सार बोर्ड–शुद्धि मडल–भी स्थापित है । लेकिन क्या उससे लोगो को सतोष है ? कानून की व्याख्या में न आते हुए कामोत्तेजक प्रसग दिखाने की और लोकरजन करके धन

कमाने की विशिष्ट कला का काफी विकास हुआ है।

और इस कला ने हमारी धार्मिक भावना पर भी आक्रमण किया है। आजकल हरएक घर में पचाग की जगह कैलेडर रखने की प्रथा बढ रही है। ये कैलेडर कभी-कभी इतने सुन्दर होते है कि उनको देखकर चित्तवृत्ति प्रसन्न होती है, कलात्मक अभिरुचि तृप्त होती है। सामाजिक अभिरुचि का विकास करने का वह एक उत्तम साधन है। लेकिन कभी-कभी सर्वोच्च कला कामवासना बढाने की ओर भी लगाई जाती है और इसमें अगर पौराणिक प्रसग पसद किये और श्रीकृष्ण और राधा को बीच में ले आए तो कोई भी चीज कोई अश्लील गिन ही नही सकता।

हमारी धार्मिक भावनायें अितना अराजक है कि गणपति की मूर्तिया बनाने में सब तरह की कामुकता आ सकती है। हमारी कविताओ में और सस्कृत स्तोत्रो में भी धार्मिक प्रसगो को लेकर चाहे जितनी अश्लीलता ठूस ठूसकर भर दी जाती है।

और हमारे पुराने मन्दिरो के अन्दर और बाहर दीवारो पर और शिखरो पर अैसी अश्लील, कामोत्तेजक, बीभत्स और अप्राकृतिक बाते भी बताई जाती है कि देखते शरम आती है।

पश्चिम में एक नया वायु चल रहा है। अुसका पुरस्कार करनेवाले कहते है कि कामोत्तेजना में बुरा क्या है, अश्लील क्या है? अैसे लोग टूरिस्ट के रूप में भारत में आकर हमारे मन्दिरो के फोटो लेते है। महीनो तक मन्दिरो के पास रहकर अन्यान्य कलाकृतियो के साथ अश्लील मूर्तियो के चित्र भी खीचते है और हमारी कलात्मक अभिरुचि की तारीफ भी करते हैं। अभी अभी की बात है, एक पक्ष कहता है कि फलाना उपन्यास अश्लील है, उसमें स्त्री पुरुष के सम्भोग के प्रसग और क्रिया का निर्लज्ज शब्दो में वर्णन किया है, तो दूसरा पक्ष कहता है कि मा बाप को चाहिये कि वे अपनी अठारह बरस की लडकियो को, अपरिणीत कुमारिकाओ को यह उपन्यास खरीदकर भेंट करे। और पश्चिम के लोग तो हमारे हर क्षेत्र में गुरु हैं। उन्होंने जिस चीज को पाक माना उसका समर्थन तो हम करेगे ही।

सवाल बडा कठिन है। सामाजिक कुरीतियो का रोग पुराना है। और अिसमें एक ओर रूढिवादि धार्मिको का पुरातन वायुमडल और दूसरी ओर युरोप अमेरिका की भोगैश्वर्य प्रधान अभिरुचि का अक्रमण—इसमें से रास्ता निकालना है।

बडे काम के लिए प्रचण्ड उत्साह से, दृढ सकल्प से ही प्रारम्भ करना चाहिये।

सूचना

आगामी १६–१७ फरवरी को श्री प्रफुल्ल घोष के आश्रम मे देश के कुछ नई तालीम कर्मी इकट्ठा होने वाले हैं। वे नई तालीम की समस्याओं पर विचार परामर्श करेंगे, साथ-साथ नई तालीम के कार्य को किस प्रकार अधिक गहराई से सगठित किया जा सकता है, इसके बारे मे भी चर्चा करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना का उद्गम

युध्दप्रतिरोधक अन्तर्राष्ट्रीय का १० वा सम्मेलन

[पहाडियो के पडौस गाधीग्राम में ये सात दिन बडे ही निराले और महत्वपूर्ण थे। मौसम सुहावना और दृश्य तो क्या ही मनोहर। और फिर गाधी ग्राम के कार्यकर्ता-विद्यार्थी परिवार ने अपने प्रेम और अतिथि सत्कार से जिन्दगी भर दी थी। सभी ने महसूस किया कि गाधी ग्राम उनका ही घर है। विदेशो से आये अनेक ऐसे साथी जो क्रिस्मस के समय अपना घर छोडने की कभी भी नही सोचते, उन्हे भी कोई अभाव महसूस नही हुआ-बडे दिन की विशेष प्रार्थना, क्रिस्मस ट्री और रात का सास्कृतिक कार्यक्रम।

भारत में ऐसे मौके विरले ही आते है। वहा सेवाग्राम के शान्ति सम्मेलन की याद आती रहती थी। ऐसा लगता था कि जैसे १९४९ का इतिहास दोहरा रहा हो। सम्मेलन में आये अनेक प्रतिनिधि ऐसे थे जो तब भी आये। तब भी लगभग एक सौ शान्ति वादियो ने अहिंसात्मक कार्य पद्धति, सत्याग्रह और अहिंसात्मक जीवन के विकास में नई तालीम के महत्व के बारे में विचार विनिमय किया था। गाधी ग्राम में भारत और बाहर के लगभग २०० प्रतिनिधी थे। उन्होने अपने-अपने देशो और समूहो मे जो शान्ति स्थापना का कार्य हो रहा है उसपर चर्चा की। पिछले १०-१५ वर्षो में युद्ध के शस्त्रास्त्रो में जो भयानक बढोत हुई है उसके बारे में सब चिन्तित थे। मनुष्य कैसे इनका खातमा कर सकता है? इधर गरीबी है, पर उधर राजनितिज्ञ मनुष्य के कठिन श्रम द्वारा उत्पादित धन का अधिकतर हिस्सा युद्ध की तैयारी में खर्च कर रहे ह। यह युद्ध का ज्वर खत्म करना होगा और उसे खत्म करने के लिए हमे, जो शान्ति स्थापना करना अपना धर्म समझते है, प्राणों की बाजी तक लगानी होगी। ऐसी भावना लिए ये दो सौ व्यक्ति सात दिन तक गहरी चर्चा करते रहे।

गहरी चर्चा का यह मतलब नही कि वे लम्बे-लम्बे गभीर चेहरे बनाये थे। जगत् को किसी महाप्रलय से बचाने की जिम्मेदारी हमारी है, ऐसी भावना उनमें से शायद ही किसी की होगी। इसीलिए तो सम्मेलन के इतने दिन गाते-बजाते मजे में बीत गये। क्रिसमस की और उसके पहली की रात दो-तीन बजे तक सगीत जमा और अन्तर्राष्ट्रीय सघ के मत्री का गाना तो अक्सर गूजता सुनाई देता था। इनमें से अधिकतर मित्र ऐसे थे जो अपनी मर्यादाओ को भलिभाति समझते हं, और यह जानते है कि उनका जो कर्तव्य है उसे

आनन्द के साथ पूरा करना है। कर्तव्य यह है कि जो सत्य और वान्छनीय है, उसी के आधार पर हमारा जीवन हो। उसी के लिए जीना है, उसी के लिए मरना है।

सम्मेलन की सबसे बडी निष्पत्ति रही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना की स्थापना। सबने यह महसूस किया कि यदि एक अहिंसक सेना अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर खडी होती है, तो राज्यो के कई प्रश्नो पर उसका बडा उपयोग होगा और अहिंसा की शक्ति को बडे पैमाने पर आजमाने का मौका मिलेगा। युद्धप्रतिरोधक सघ से सम्मेलन ने निवेदन किया है कि इस सेना का बाकायदा निर्माण होने तक वह उसका भार सम्भाले और इस विचार को शीघ्र ही कार्यान्वित करे। सम्मेलन के कई प्रतिनिधियों ने अपना नाम दिया, जिससे कि इस सेना की बुनियाद पड गई। आशा है शीघ्र ही जगत् की सभी शान्ति-शक्तियो को इकठ्ठा होने का अवसर आयेगा।

चाहे पद्धति में और कई बातो में तरह-तरह के विचार हो किन्तु सम्मेलन के पूरे वातावरण में अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिकार करने के लिए तीव्रता दीखती थी। इसी लिए डारेक्ट एक्शन पर काफी चर्चा हुई। नये समाज के निर्माण के लिए जीवन मूल्यो का आमूल परिवर्तन, शिक्षा की नई बुनियाद और आर्थिक ढाचे में शान्ति व समता के आधार का होना आवश्यक है।

इस प्रकार के वातावरण में सम्मेलन सम्पन्न हुआ। जो निवेदन सम्मेलन के द्वारा प्रकाशित हुआ है उसमें बुनियादी बातो को स्पर्श किया गया है। निवेदन का हिन्दी अनुवाद नई तालीम जगत के सामने पेश करना आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा को यदि क्राति का वाहक बनाना है तो शिक्षको और विद्यार्थियो को अपना चिन्तन भी क्रान्ति-कारी बनाना होगा।

सम्पादक]

युध्द प्रतिरोधक संघ के त्रैवार्षिक अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव

युद्ध प्रतिरोधक अन्तर्राष्ट्रिय सघ का दसवा त्रैवार्षिक सम्मेलन गाधीग्राम भारत में दिसम्बर २१ ता बुधवार से २७ ता मगलवार तक हुआ। सम्मेलन का मुख्य विचारणीय विषय शान्तिस्थापना था। सर्वोदय, अहिंसक आन्दोलन (डारेक्ट एक्शन), शान्ति सेना, इन तीन शीर्षको में विभक्त कर इस विषय पर विचार किया गया।

पहले आठ मण्डलो में और फिर सयुक्त अधिवेशन में चर्चा विचार के बाद सम्मेलन ने ये निर्णय लिए –

सर्वोदय :

शान्तिवादियो को चाहिए कि सत्य और प्रेम के सक्रिय तरीको को अपनायें, उनको अपने जीवन में अनुष्ठान करें और पाप और अन्याय से अलग रहे। इसलिए जिन्होने अहिंसा का व्रत लिया है उन्हे प्रतिरक्षा के लिए शस्त्र

शक्ति को किसी तरह का नैतिक सहारा नही देना चाहिए । व्यक्तिगत रूप से भी जो कार्य उन्हे गलत लगेगा उसमें भाग लेना भी गल्ती होगी ।

यह सम्मेलन भूदान अन्दोलन के सिद्धान्तो व दृष्टि को बुनियादी तौर पर सही मानता है और उसका सादर अभिनन्दन करता है । भारत के बाहर भी कई परिस्थितिया में यह लागू हो सकता है, जैसे सिसिलि में । वहा जो काम हो रहा है, उसका भी सम्मेलन सराहना करता है । सम्मेलन का विश्वास है कि पूजीवाद पर आधारित मालकियत की व्यवस्था तथा सारी सपत्ति राज्य की मालकियत करने का कम्यूनिस्ट विचार दोनो अहिंसा के आदर्श के विरुद्ध है । वह एक अहिंसात्मक समाज की स्थापना के लिए राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक मानता है । सम्मेलन का विश्वास है कि उत्पादन व वितरण के साधन अधिकतर समुदाय की मालकियत होनी चाहिए और वितरण आर्थिक न्याय और सामाजिक समता के आधार पर हो । कुछ खास उद्योगो में अमुक हद तक केन्द्रीकरण आवश्यक हो सकता है और कुछ सेवायें ऐसी हैं जो एक लोकतन्त्रात्मक सरकार को अपने अधीन रखनी पड़ेंगी, फिर भी समाज की पुनर्रचना में सहकारी सस्थाओं को ही–जिन्हें कोई राजनैतिक बन्धन नही है–सक्रिय भाग लेना होगा । व्यक्ति का सारा व्यवहार सत्य और प्रेम के बोध पर आधारित होना चाहिए, इतना मात्र ही नही, बल्कि नये समाज का सारा आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक ढाचा एव उसके अन्तर्गत परस्पर सबन्ध भी इसी बोध पर अधिष्ठित होना चाहिए ।

अहिंसात्मक आन्दोलन :

सम्मेलन ने अहिंसात्मक आन्दोलन (डारेक्ट एक्शन) के सिद्धान्तो और व्यवहार का समर्थन किया और उसकी इस व्याख्या को स्वीकार किया "सामाजिक या अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय के विरोध में या झगडो को मिटाने के उद्देश्य से व्यक्तियो या दलो के द्वारा किया जानेवाला कार्य जिसमें हिंसा नही है ।" जब कि अन्तर्राष्ट्रीय या सामाजिक पाप के निराकरण के लिए सघर्ष पैदा करना एक आवश्यक कदम हो सकता है उसका भी आखिरी मकसद सबन्धित सब व्यक्तियो के बीच में समझ और सद्भावना बढाना होगा । इस कार्य का रूप प्रचालित रीति रिवाज या कानून का उल्लघन, असहयोग और व्यक्तिगत प्रतिरोध हो सकता है । उनमे भाग लेनेवालो को कष्ट और त्याग के लिए तैयार होना चाहिये । योजना बनाने और तैयारी में ये मुद्दे आने चाहिये :

१ प्रत्येक आन्दोलन का एक विशिष्ट उद्देश्य होना चाहिये हालांकि ज्यादा व्यापक प्रश्न उसके साथ जुडे हो सकते हैं ।

२ भाग लेनेवालो का सावधानी के साथ प्रशिक्षण होना चाहिये । जहा भी सभव हो, परिस्थिति के साथ जिनका सीधा सबन्ध है, वे भी भाग लेनेवालो में हो, यह आवश्यक है ।

३ जिनके हाथ से पाप या अन्याय हो रहा हो या जो सरकारी कर्मचारी ऐसे कार्य में सम्मिलित है, उनके प्रति भी सद्भावना तथा उनकी आन्तरिक करुणा को जगाने का प्रयत्न होना चाहिये ।

४. ऐसे आन्दोलनो में सामान्य जनता की सहानुभूति तथा यथासभव व्यापक तौर पर प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिये ।

एक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष आन्दोलन का क्या स्थान है, इस प्रश्न पर चर्चा हुई। यह आम राय रही कि किसी भी शासन व्यवस्था में ऐसी परिस्थितिया पैदा हो सकती है जहा इस तरह के आन्दोलन न्याय्य तथा आवश्यक होगे।

इस समय जो लोग ऐसे आन्दोलनो में लगे है, सम्मेलन ने उनका सराहना किया और ज्यादा से ज्यादा प्रसगो पर इस पद्धति को अपनाने की सिफारिश की।

अनिवार्य सैनिक सेवा मानवीय अधिकारो के घोषणा पत्र के पहले परिच्छेद में यह माना गया है कि हर मानव प्राणी के अन्दर विचार शक्ति और चेतना है और ड्राफ्ट कवेनन्ट के १४ वे भाग में (नागरिक व राजनैतिक अधिकारो का विभाग) हर एक को विचार, विश्वास तथा धर्म की स्वतन्त्रता का हक घोषित किया गया है।

सम्मेलन अपना यह दृढ विश्वास जाहिर करता है कि जहा व्यक्ति की चेतना और विश्वास उसे युद्ध तथा हर प्रकार की सैनिक सेवा के निराकरण के लिए बाध्य करता है, उपरोक्त घोषणा पत्र क द्वारा निर्दिष्ट स्वतत्रता के अनुसार सब प्रकार के युद्ध और युद्ध की तैयारियो का इस प्रकार विरोध करने का अधिकार हर देश में पहचाना जाना चाहिये।

इसलिये वह आह्वान करता है कि उन देशो में जहा यह अधिकार माना गया है, युद्ध प्रतिरोधक सघ के सदस्य उन सरकारो को यह अधिकार दुनिया के सभी देशो में मिलने एव इस बात को ज्यादा स्पष्ट बनाने के लिये कवेनन्ट के उपरोक्त परिछेद में आवश्यक सशोधन लाने के लिये उचित कदम उठाने के लिये प्रेरित करें।

उन देशो में जहां यह अधिकार अभी नही माना जाता है वह अधिकार कानूनी रूप से सब को प्राप्त हो, इसके लिये सघ के सदस्य उत्तरोत्तर क्रियाशील रहे।

सम्मेलन निर्णय करता है कि यह प्रस्ताव सयुक्त राष्ट्र के मानवीय अधिकारो के कन्वेन्शन को तथा *यूरोपीय कोर्ट ऑफ ह्यूमेन रैट्स को* उनकी जानकारी और आवश्यक कार्रवाई के लिये भेज दिया जाय।

सम्मेलन ने भारत में विश्वविद्यालयो में प्रवेश पाने के पहले विद्यार्थियो के लिये अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा—जिसमें सैनिक प्रशिक्षण व अनुशासन भी शामिल है—की प्रस्तावित योजनाओ का विवरण सुना। स्कूलो और कॉलेजो में सैनिक प्रशिक्षण की वर्तमान व्यवस्थाओ के बारे में भी विचार किया। भारत म इस प्रकार सैनिक मनोवृत्तियो को बढावा देने की प्रवृत्तियो पर सम्मेलन न गहरी चिन्ता और दुख व्यक्त किया। इन कार्यक्रमो में जो खतरा है उसके बारे में जनमत जाग्रत करने के लिए सघ के भारतीय सदस्य तथा उनके मित्र जो कार्य कर रहे है, उनका तथा एक नई शिक्षा पद्धति का विकास करने के उनके प्रयत्नो का सम्मेलन ने अनुमोदन किया।

सम्मेलन ने सुझाया कि जहा अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा की—जिनमें सैनिक प्रशिक्षण शामिल है—इन प्रस्तावित योजनाओ को कार्यान्वित किया जाता है, वहा अहिंसात्मक रूप से उनका विरोध करने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिये। इस काम के लिए सम्मेलन का सहारा और समर्थन प्रतिज्ञात किया।

शान्तिसेना :—

एक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना या वर्ल्ड पीस ब्रिगड के विचार का सम्मेलन ने

समर्थन किया। सम्मेलन के विचार में अब ऐसा समय आ गया है जब कि एक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना की स्थापना जल्दी ही होनी चाहिये। सम्मेलन का विचार है कि वर्ल्ड पीस ब्रिग्रेड संयुक्त राष्ट्र संघ या किसी भी सरकार के मातहत नहीं रहना चाहिये। विधायक रचनात्मक कार्य उसकी प्रवृत्तियों का एक अभेद्य अंग होगा। ऐसी सभी संस्थाओं का सहयोग इसके लिए प्राप्त करना चाहिये जिसके सदस्य व समर्थक अहिंसा में श्रद्धा रखनेवाले हों। सम्मेलन में भाग लेनेवालों में जो भी इस काम के लिए अपनी सेवायें अर्पित करने के लिए तैयार हैं उनकी एक सूची बनाने का निर्णय हुआ जिससे कि वर्ल्ड पीस ब्रिग्रेड में भर्ती करने के काम का उससे आरम हो सके। इन स्वयं सेवकों को अहिंसात्मक अनुशासन का कोई तरीका स्वीकार करना आवश्यक होगा। सम्मेलन इस वस्तुस्थिति के बारे में सचेत था कि इस तरह के वर्ल्ड पीस ब्रिगेड की स्थापना के पहले गंभीर समस्याओं का हल करना होगा। इनमें स्वयंसेवकों के चुनाव तथा प्रशिक्षण, भाषा की अडचनें व आर्थिक प्रश्न भी होंगे।

सम्मेलन ने युद्ध प्रतिरोधक संघ की कार्य-कारिणी समिति को इस विषय में कार्य शुरू करने का आह्वान दिया। सम्मेलन ने कार्य-कारिणी से अनुरोध किया कि इन समस्याओं का अध्ययन करके उनके उपाय सुझाने के लिये एक समिति की नियुक्ति करें। यह वर्ल्ड पीस ब्रिगेड की स्थापना के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के सामने–जो कि यथा संभव जल्दी बुलाना चाहिये–अपनी रिपोर्ट पेश करेगी। समिति में युद्धप्रतिरोधक संघ के सदस्य ही हो, यह आवश्यक नहीं। लेकिन फिलहाल संघ ही इसकी जिम्मेदारी लें।

सम्मेलन की दिसंबर २७ ता. की बैठक में यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

समाज में–मनुष्य के मन में–स्वाभाविक हवा और उजाला लाने के लिये महापुरुष और संभवतः महाक्रान्ति की जरूरत होगी; अत्यन्त सहज बात–अत्यन्त सरल सत्य को संभव है कि रक्तसमुद्र पार होकर आना पड़े। जो आकाश की भांति व्यापक है, जो हवा की तरह मूल्यहीन है, उसे खरीद कर पैदा करने के लिये संभव है प्राण देने पड़ें। मानव के मनोराज्य में भूकम्प और ज्वालामुखी की अशान्ति बीच-बीच में अकसर दिखाई दिया करती है; स्वभाव के साथ जीवन का और बाह्यप्रकृति के साथ अन्त-प्रकृति का जबरदस्त असामंजस्य ही इसका कारण है।

–रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बुनियादी तालीम के कार्यकर्ताओं के लिये अेक अवसर

मार्जरी साइक्स

[नई तालीम जगत् मार्जरी बहन से अच्छी तरह परिचित है । पिछले कुछ महीनों से वे दक्षिण भारत की नीलगिरी पहाडियो पर जाकर बस गई है । सच्चे शान्ति सैनिक का जीवन कितना स्वच्छ और श्रम आधारित होना चाहिए इस विचार को लेकर उनकी साधना चली है । उन्होंने कोटगिरी नामक स्थानपर अपना आश्रम बनाया है और उसी की खेती में वे श्रम में रत रहती है । उनकी इस साधना का लाभ हमारे साथी उठा सके, इस दृष्टि से उन्होंने अल्प कालीन शिविरो को चलाने का कार्यक्रम बनाया है । वे आप सभी से उसके बारे मे राय चाहती है । साथ में उनका पत्र उद्धृत कर रहे है । और जिस प्रकार चार शिविरो की इस वर्ष उनकी योजना है, उनकी रूपरेखा भी । हमें विश्वास है कि नई तालीम के कार्यकर्ता इस अवसर का लाभ उठायेगें । सम्पादक]

प्रिय देवी भाई,

साथ में एक शिक्षाक्रम का ढाचा भेज रही हू । मै सोचती हू कि वह साल के एक बडे हिस्से में मै यहां कार्यान्वित कर सकूगी और आशा करती हू कि आपसे परिचित कुछ नवयुवक कार्यकर्ताओ के लिये आप इसे उपयोगी पायेंगे । इसके बारे में मै आपके सुझावो का स्वागत करूगी, क्योकि मै यह कार्य जितना भी हो सके, हमारे काम को आगे बढाने के लिए करना चाहती हू ।

यदि आप इसकी जानकारी अधिक-से-अधिक साथिओ तक पहुचा सके तो मै आपकी कृतज्ञ हूगी, जिससे कि हमारे आश्रमो और बुनियादी पाठशालाओं के कार्यकर्ता इसका लाभ उठा सके । मेरी आशा है कि यह स्थान दक्षिण के कार्यकर्ताओं के लिये अधिक उपयोगी होगा । किन्तु मै यही भी आशा करती हू कि अन्य प्रान्तो के साथी भी इसमें आयेंगे ।

मेरी योजना ऐसी है जिसमें अनुभवी मित्रो के सुझाव और हमारे अपने अनुभवो के अदल-बदल से लाभ हो सकेगा ।

आशा है आपका पत्र शीघ्र मिलेगा ।

मार्जरी

सर्वोदय और नई तालीम शिबिर

अगस्त १९६० में अंग्रेजी के 'भूदान' साप्ताहिक में प्रकाशित किया गया था कि मार्जरी बहन पारिवारिक स्वरूप के शिविर प्रारम्भ करेगी । मकान बनना समाप्त हो गया

है। और मैंने निम्नलिखित प्रकार से योजना बनाई है।

फरवरी १९६१ से व्यक्तियों और छोटे समूहों को अहिंसामय जीवन विताने और शान्ति सेना या सर्व सामान्य सर्वोदय कार्य के लिए तैयारी करने का अवसर होगा। प्रशिक्षण का स्वरूप श्रम अध्ययन शिबिरों का होगा और इसके सदस्य एक परिवार के रूपमें रह कर आश्रम की साढे चार एकड भूमि पर खेती कार्य करेंगे। सुसयोजित अध्ययन और नियमित चर्चाओं के द्वारा वे सर्वोदय और अहिंसा के सिद्धान्तों और कार्य पद्धतियों में गहराई से प्रवेश करने का प्रयत्न करेंगे। इस सहयोगी जीवन और सृजनात्मक श्रम के द्वारा ऐसी अपेक्षा है कि बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास की नीव पडेगी।

पहला परिवार शिबिर ९-१० फरवरी को प्रारंभ हो सकेगा और आशा की जाती है कि उसका सादा सा उद्‌घाटन सर्वोदय पक्ष के अन्तमें ११ या १२ फरवरी को होगा।

इसमें १२ वर्ष से अधिक के वैसे सदस्यों को लिया जायगा जो अभ्यास के द्वारा गांधी जी द्वारा बताई गई अहिंसा और सर्वोदय को समझने के लिए उत्सुक हो। उन्हें हिन्दी, तामिल या अंग्रेजी में कम से कम एक भाषा को समझने और उपयोग करने की शक्ति होनी चाहिए। उन्हे स्वंय या उन सस्थाओं द्वारा जो उन्हे भेजेंगी, अपने सफर खर्च और माहवारी २५ रुपये (अन्दाज) भोजन खर्च की व्यवस्था करनी पडेगी। यह खर्च स्वंय लाना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि यहां खेती का यह केवल प्रारम्भ ही है और पहले दो वर्ष तो सारा मुनाफा—यदि कुछ हुआ तो—खेती के विकास के लिए ही लगाना होगा।

मेरी इस विषय में विशेष अभिरुचि होने के कारण ऐसी योजना बनायी है कि स्कूलों की गर्मी की छुट्टियों के समय होनेवाले शिबिरों को खास तौर पर नई तालीम के शिबिरों के रूप में चलायें। बुनियादी तालीम के शिक्षकों के कार्य में आने वाली समस्याओं को लेकर यह शिबिर चलेंगे। आशा है कि इससे उनके काम में ताजगी और उत्साह तथा अहिंसा के लिए शिक्षा की पद्धतियो को समझने में सहायता मिलेगी।

योजना : पहला शिबिर १० फरवरी से १० अप्रैल तक—शांति सैनिकों और लोक सेवकों का।

दूसरा शिबिर १५ अप्रैल से १५ मई तक बुनियादी तालीम का।

तीसरा शिबिर १९ मई से १९ जून तक बुनियादी तालीम का।

चौथा शिबिर १४ जुलाई से १६ अक्तूबर तक (पहले के जैसे)

नोट:—उपरोक्त कार्यक्रम मेरा सुझाव मात्र है। उसमें सुविधा की दृष्टि से तबदली हो सकती है। दूसरे और तीसरे शिबिर के लिए हिल स्टेशन रेल्वे कन्सेशन मिलते हैं। अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर लिखें।

मार्जरी साइक्स, इलकी, कोटगिरी पोस्ट,
नीलगिरी हिल्स, द. भारत।

छात्राएँ उत्तर बुनियादी शिक्षा पाने के लिए सेवाग्रामभी गयी।

उस दरम्यान में भूदान का आह्वान सुन कर महसूस हुआ कि यदि हम भी उसमें कुछ भाग न ले तो हमारा अस्तित्व व्यर्थ है। हमें अब अपनी चार दिवारो में सीमित नही रहना चाहिए। अतः स्थानीय कार्यकर्ताओ के साथ कुछ दौरे हुये। अलमोड़ा, पौडी और टिहरी जिलो में जहा भी हम अपनी लडकियों को लेकर जाती थी हम पाते थे कि पहाडी जनता इस सन्देश को सुनने के लिए भूखी है, सुन कर तृप्त होती है। सन्देश पहुँचाने वालो की कमी है। पौडी और टिहरी से कुछ कार्यकर्ता भी तैयार हुअे।

उस दर्मियान में एक कार्यकर्त्री विनोबाजी की सन्निधि में दस महिनो तक गया जिले में भी काम करती रही। इन दौरो के फल स्वरुप आश्रम में छात्राओं की सख्या एक दम बढी। हमारे परिवार की सख्या ८५ तक हो गयी। लेकिन औसतन लोग अपनी लडकिया को एक बाहरी आकर्षण से ही भेजते थे, विचार और लक्ष्य समझ कर नही। ये सिर्फ इतना ही समझते थे कि अच्छी शिक्षा पाने के साथ-साथ उनकी लडकिया वर्तमान समाज की खराब प्रवृत्तियों से दूर रहेगी। कार्यकर्ताओ के अभाव में इस वृद्धि से सृजनात्मक फल नही निकला। इसलिये निश्चय हुआ कि सख्या को कम करते जाना चाहिए। इसके फल स्वरूप हम पाते हैं कि लगभग ३० लोगो का परिवार हमारे लिए सब से उचित सख्या है। इसमें व्यक्तिगत सम्पर्क और पारिवारिक भावना रहने की ज्यादा सम्भावना है। अपनी सीमित शक्ति से हम ज्यादा सख्या में उस भावना को कायम नही रख सकती है।

हमने पाया था कि लडकियों को सेवाग्राम भेजना भी सफल नही है। विभिन्न सामाजिक वातावरण में और बडे परिवार में रहने की वजह से बाद में हमारे छोटे परिवार में रहना और पहाड के संकुचित सामाजिक वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल नही होता है। इसके साथ-साथ सब लडकियों का वहा जाना सम्भव भी नही था। इसलिए निश्चय हुआ कि चाहे हमारे साधन कितने ही सीमित क्यो न हो, कौसानी में ही उत्तर बुनियादी शिक्षा शुरू करने का प्रयोग होना चाहिये। ज्यादा जमीन उपलब्ध न होने के कारण हम अधिक जोर सेवा और सामाजिक कार्यों की ओर दें। तथा लडकिया धीरे धीरे आश्रम में विभिन्न जिम्मेवारियों का भार उठाए।

यह काम सन् १९५६ में शुरू हुआ। देश की अन्य सस्थाओ का दौरा करने के बाद तीन छात्राए पूर्वी राम गगा के एक सघन क्षेत्र में बसने गयी तथा चार छात्राए आश्रम में विभिन्न जिम्मेदारिया उठाने लगी।

विनोबाजी के मार्गदर्शन से सर्वोदय का विचार उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। सख्या में सीमित रहने से सब कार्यकर्ताओ के मन में उथल पुथल होती रहती है। कहा तक इस सीमित दायरे में रहना उचित है यह प्रश्न उठता रहा। कई बार आश्रम का विसर्जन करने का विचार हुआ। लेकिन किसी भी जिम्मेवार कार्यकर्ता से उसका समर्थन नही मिला। आखिर में सन् १९५८ में चालीस गाव के सम्मेलन के समय विनोबाजी ने स्पष्ट बता दिया कि यह पायनीर काम है, उसे बन्द नही कर सकती, चाहो तो उसका रूप बदल सकती हो।

इसके फल स्वरूप काफी हृदय मथन और विचार विनिमय चला। आखिर में निश्चय हुआ कि बुनियादी और उत्तर बुनियादी शाला के बदले में हम एक नई तालीम परिवार में परिणत हो जायें। इस परिवार के सदस्य कम-से-कम २३-२५ वर्ष की उम्र तक रहें। पूरी शिक्षा पाने के बाद ये व्यावहारिक रूप में आश्रम और समाज में काम करे। हम यदि समाज में सीधा काम न कर सकें तो कम-से-कम आश्रम की सीमाओं में रहकर उस काम के साधन बन जाए। १९६१ के नये साल से हम इस योजना को प्रारंभ करना चाहती हैं। कार्यकर्ताओं के व्यक्तिगत साधनों तथा समाज के उत्पादन से हम सब मिल कर सारे परिवार की खुराक और वस्त्र की व्यवस्था करना चाहती हैं। इस नई व्यवस्था से यह आशा की जाती है कि जो मित्र अपने बच्चों को आश्रम में भेजेंगे विचार समझ कर भेजेंगे तथा किशोर अवस्था में उन पर अनमेल विचार का विवाह नही थोप देंगे। कुछ वर्ष तक समाज में काम करने तथा कठिनाइयों का सामना करने के बाद लड़कियां खुद अपनी जिन्दगी के बारे में फैसला करने की शक्ति रख पायेंगी कि उन्हें अपने पुराने समाज में रहना चाहिये या सर्वोदय परिवार में। तथा उस फैसले को करने के बाद उनमें यह शक्ति रहेगी कि उस से पैदा होने वाली कठिनाइयों का सामना भी करें। हमारे नये परिवार की स्थापना सन् १९६१ से शुरू हो रही है।

कार्यकर्ता अपने जीवन निर्वाह के लिए श्रमाधारित या जनाधारित रहते हैं। ये किसी संचित निधि से अपने निर्वाह का खर्च नहीं लेते हैं। आश्रम के काम के साथ-साथ सुन्दरलालजी का सार्वजनिक काम भी जारी रहा है। मुख्यत: उन्होंने अपनी पट्टी में २२ श्रमिक सहकारी संघो की स्थापना बहुत कठिनाइयों का सामना करके की। ये संघ अब बहुत सफल साबित हुए हैं। मजदूरी रु. १.५० के बदले में आजकल कभी-कभी ४.५० रु. रोज तक पहुंचती है। इसके अलावा संगठन शक्ति तथा स्वाभिमान की स्थापना के साथ-साथ यह आशा दिखाई देती है कि उस पट्टी के लोग धीरे-धीरे अपने आप को प्रचलित भ्रष्टाचार और आतंक से मुक्त कर सकेंगे। इस के बल पर शराब बन्दी का कार्यक्रम भी सफल हो पा रहा है।

शान्ति पुरी में बालवाड़ी :—सन् १९५७ में श्रीमती नारायणी देवी की यह इच्छा हुई कि वह जनाधार की बुनियाद पर अपनी सेवा करने की शक्ति आजमाएँ। इस हेतु उन्होंने शान्तिपुरी जाने का निश्चय किया था। कुछ समय के बाद गांधी स्मारक निधि की तरफ से वहां पर बालवाड़ी चलाने लगी। वहां पर भी अपनी सेवा और प्रेम भाव की वजह से वह लोकप्रिय हो गयी है।

राम गंगा सघन क्षेत्र :—सन् १९५९ में पूर्वी राम गंगा की दोनों तरफ से आश्रम की तीन छात्राएं गांव में श्री शेर सिंह जी के मार्ग दर्शन में काम करने लगी। जनाधार की ओर बढ़ने का प्रयास हो रहा है। ये रोज बारी बारी से एक ग्रामीण परिवार में भोजन पाती हैं। इससे लोगों के निकट सम्पर्क में आती हैं तथा गृहस्थी शिक्षा व्यावहारिक रूप में दे पाती हैं। इसके साथ सर्व प्रथम उनका ध्यान ग्राम सफाई और आरोग्य की ओर गया। पाखानों के

(शेषांश पृष्ठ २५५ पर)

औज़ार अच्छे तो बच्चों का आनन्द अधिक

मोहन परीख

[जैसे जैसे शिक्षा-शास्त्र विकसित होता गया वैसे-वैसे उसके बारीक-से-बारीक प्रश्नो पर शोध की दृष्टि से देखना शुरू हुआ । जैसे मानसिक और नैतिक विकास के लिये अनुकूल वातावरण व प्रेम पूर्ण मानवीय सम्बन्ध और शारीरिक विकास के लिए समतोल भोजन और व्यायाम को आवश्यक माना जाता है, वैसे ही शैक्षणिक दृष्टि से दस्तकारी के कामो में उपयुक्त और वैज्ञानिक औजारो का होना अत्यन्त आवश्यक होता है । इतने वर्ष कार्य करने के बाद भी हमने शिक्षा की दृष्टि से शिक्षा के साधनो में शोध नही की है। अधिकतर शालाओ में हमने देखा है कि १०, ११ वर्ष के बालको को भी वे ही औजार दिये जाते है जिनसे प्रौढो को काम करना होता है । इसका नतीजा यह होता है कि बालक जल्द थक जाता है, उसकी सृजनात्मक शक्ति का दुरुपयोग होता है और धीरे-धीरे उसे उस कार्य से अरुचि होने लगती है।

नई-नई परिस्थितियो, नये-नये कामो और उम्र के हिसाब से हर अवस्था के लिये अलग-अलग तरीको के और साइज के औजार बनाना शिक्षा का ही कार्य है । इस कार्य को हमें विशेष ध्यान देकर हाथ में लेना चाहिये ।

भाई श्री मोहन परीख नई तालीम के एक अनुभवी शिक्षक है । उन्हे स्वय दस्तकारियो की गहरी दृष्टि है । वे खादी ग्रामोद्योग समिति की ओर से सगठित कृषि औजार समिति के सयोजक भी है । पिछले कुछ वर्षों से वे इस कार्य में लगे है । जिन औजारो का यहा जिक्र उन्होने किया है, उनकी परीक्षा गुजरात की कुछ बालवाडियो में की गई है, वे कई स्थानो पर उपयोग में लाये जा रहे है । उनके इस अनुभवयुक्त कार्य का लाभ साथियो को हो इस दृष्टि से उनका यह लेख यहा प्रस्तुत किया जा रहा है । यदि कोई मित्र उनसे अधिक जानकारी चाहते है तो उन्हे इस पते पर लिख सकते है

श्री मोहन परीख, औजार सुधार समिति, बारडोली आश्रम, बारडोली, गुजरात ।

सम्पादक]

आज शिक्षा जगत् में प्रवृत्तियो की अहमियत स्वीकार की गयी है । हम कैसे समाज का निर्माण करना चाहते है, इसका प्रतिबिंब शिक्षा में हम किस प्रकार की प्रवृत्तिया चुनते है इससे दिखाई देता है । बागवानी और कृषि, ये सस्कारक्षम और जीवन के लिए महत्वपूर्ण

प्रवृत्तिया है। बचपन से ही खेती के सस्कार हो, यह हमारे कृषिप्रधान देश के लिए और श्रम-प्रधान, शोषण-रहित समाज-व्यवस्था के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। इस दृष्टि से कृषि बाल-वाडी में भी एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति का स्थान पाजाती है। जब "खेती" शब्द कान में पडता है तो आखो के सामने लकडी का हल और वैसे ही बडे भारी औजार आते है। वह इसलिए कि हमने खेती कार्य को हमेशा बडे पैमाने और केवल प्रौढो की प्रवृत्ति ही मान-लिया है। परन्तु जब हम नये मूल्यो के आधार की बात करते है और छुटपन से ही नये सस्कार डालना चाहते है तो हमें सोचना भी दूसरे ढग से पडेगा। इसलिए बालवाडी के लिए ये बडे औजार काम नही आ सकते। बालवाडी में बालको द्वारा नयी कडी जमीन नही तोडी जायगी। उन्हे तो तैयार जमीन ही दी जायगी। इस दृष्टि से अगर बाल-शिक्षा में कृषि या किसी भी प्रवृत्ति को जोडते है तो स्वाभाविक ही उसकी अनेक समस्याओ के ऊपर गहरा चिन्तन् करने की आवश्यकता होगी। सर्व प्रथम प्रश्न साधनो का आता है। नयी दृष्टि और नयी परिस्थिति के हिसाब से नये औजारो का शोध करना होगा और विशेष तौर पर बाल-वाडी का ख्याल रखते हुए बच्चो की शक्ति और रूचि को दृष्टि से कुछ नये-नये औजारो का निर्माण करना होगा। हमने इस ओर कुछ कार्य किया है और ऐसे औजार बनायें है जो ३ वर्ष से ६ वर्ष तक के बालको के लिए उपयुक्त सिद्ध हुए है।

यह सच है कि खेत १० एकड का हो या एक छोटी क्यारी हो, दोनो में खेती की प्रक्रियायें समान ही होगी। वह क्रियायें निचे लिखे अनुसार होगी.

१. खोदकर या जोतकर जमीन तैयार करना।

२ तैयार जमीन में बीज बोना।

३. पौधे की गोडाई या निंदाई करना।

४. पौधे को पानी देना।

५ फसल निकालना।

६ फसल की सभाल करना।

७ अनाज निकालने के लिए खलियान के कार्य करना।

८. धान कुटाई, दाल बनाना, पिसाई आदि।

बालवाडी की खेती में आम तौर पर पहली पाच प्रक्रियायें आएगी। फिर उसमें भी फसल निकालना, हाथ से फली, पत्ती, फल चुनना आदि क्रियाए आती है। उसके लिए हसियें जैसे औजार की आवश्यकता नही होती।

हम पहली चार प्रक्रियाओ के लिए, निम्न लिखित प्रकार के औजार सुझाते है।

बाल-फावडा

औज़ार अच्छे तो बच्चों का आनन्द अधिक

मोहन परीख

[जैसे-जैसे शिक्षा-शास्त्र विकसित होता गया वैसे-वैसे उसके बारीक-से-बारीक-प्रश्नों पर शोध की दृष्टि से देखना शुरू हुआ। जैसे मानसिक और नैतिक विकास के लिये अनुकूल वातावरण व प्रेम पूर्ण मानवीय सम्बन्ध और शारीरिक विकास के लिए समतोल भोजन और व्यायाम को आवश्यक माना जाता है, वैसे ही शैक्षणिक दृष्टि से दस्तकारी के कामों में उपयुक्त और वैज्ञानिक औज़ारों का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इतने वर्ष कार्य करने के बाद भी हमने शिक्षा की दृष्टि से शिक्षा के साधनों में शोध नहीं की है। अधिकतर शालाओं में हमने देखा है कि १०, ११ वर्ष के बालकों को भी वे ही औजार दिये जाते हैं जिनसे प्रौढ़ों को काम करना होता है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक जल्द थक जाता है, उसकी सृजनात्मक शक्ति का दुरुपयोग होता है और धीरे-धीरे उसे उस कार्य से अरुचि होने लगती है।

नई-नई परिस्थितियों, नये-नये कामों और उम्र के हिसाब से हर अवस्था के लिये अलग-अलग तरीकों के और साइज के औजार बनाना शिक्षा का ही कार्य है। इस कार्य को हमें विशेष ध्यान देकर हाथ में लेना चाहिये।

भाई श्री मोहन परीख नई तालीम के एक अनुभवी शिक्षक हैं। उन्हें स्वयं दस्तकारियों की गहरी दृष्टि है। वे खादी ग्रामोद्योग समिति की ओर से संगठित कृषि औज़ार समिति के संयोजक भी हैं। पिछले कुछ वर्षों से वे इस कार्य में लगे हैं। जिन औजारों का यहां जिक्र उन्होंने किया है, उनकी परीक्षा गुजरात की कुछ बालवाड़ियों में की गई है; वे कई स्थानों पर उपयोग में लाये जा रहे हैं। उनके इस अनुभवयुक्त कार्य का लाभ साथियों को हो इस दृष्टि से उनका यह लेख यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि कोई मित्र उनसे अधिक जानकारी चाहते हैं तो उन्हें इस पते पर लिख सकते हैं :

श्री मोहन परीख, औजार सुधार समिति, बारडोली आश्रम, बारडोली, गुजरात।

सम्पादक]

आज शिक्षा-जगत् में प्रवृत्तियों की अहमियत स्वीकार की गयी है। हम कैसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, इसका प्रतिबिंब शिक्षा में हम किस प्रकार की प्रवृत्तियां चुनते हैं इससे दिखाई देता है। बागवानी और कृषि, ये संस्कारक्षम और जीवन के लिए महत्वपूर्ण

प्रवृत्तियां है। बचपन से ही खेती के संस्कार हों, यह हमारे कृषिप्रधान देश के लिए और श्रम-प्रधान, शोषण-रहित समाज-व्यवस्था के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। इस दृष्टि से कृषि बाल-वाडी में भी एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति का स्थान पाजाती है। जब "खेती" शब्द कान में पडता है तो आंखों के सामने लकडी का हल और वैसे ही बडे भारी औजार आते हैं। वह इसलिए कि हमने खेती कार्य को हमेशा बडे पैमाने और केवल प्रौढो की प्रवृत्ति ही मान-लिया है। परन्तु जब हम नये मूल्यों के आधार की बात करते हैं और छुटपन से ही नये संस्कार डालना चाहते हैं तो हमें सोचना भी दूसरे ढंग से पडेगा। इसलिए बालवाडी के लिए ये बडे औजार काम नही आ सकते। बालवाडी में बालकों द्वारा नयी कडी जमीन नहीं तोडी जायगी। उन्हें तो तैयार जमीन ही दी जायगी। इस दृष्टि से अगर बाल-शिक्षा में कृषि या किसी भी प्रवृत्ति को जोडते है तो स्वाभाविक ही उसकी अनेक समस्याओं के ऊपर गहरा चिन्तन करने की आवश्यकता होगी। सर्व प्रथम प्रश्न साधनों का आता है। नयी दृष्टि और नयी परिस्थिति के हिसाब से नये औजारो का शोध करना होगा और विशेष तौर पर बाल-वाडी का ख्याल रखते हुए बच्चो की शक्ति और रूचि की दृष्टि से कुछ नये-नये औजारो का निर्माण करना होगा। हमने इस ओर कुछ कार्य किया है और ऐसे औजार बनायें है जो ३ वर्ष से ६ वर्ष तक के बालकों के लिए उपयुक्त सिद्ध हुए है।

यह सच है कि खेत १० एकड का हो या एक छोटी क्यारी हो, दोनों में खेती की प्रक्रियायें समान ही होंगी। वह क्रियायें निचे लिखे अनुसार होंगी :

१. खोदकर या जोतकर जमीन तैयार करना।

२. तैयार जमीन में बीज बोना।

३. पौधे की गोडाई या निंदाई करना।

४. पौधे को पानी देना।

५. फसल निकालना।

६. फसल की संभाल करना।

७. अनाज निकालने के लिए खलियान के कार्य करना।

८. धान कुटाई, दाल बनाना, पिसाई आदि।

बालवाडी की खेती में आम तौर पर पहली पांच प्रक्रियायें आएंगी। फिर उसमें भी फसल निकालना, हाथ से फली, पत्ती, फल चुनना आदि क्रियाएं आती है। उसके लिए हंसिये जैसे औजार की आवश्यकता नहीं होती।

हम पहली चार प्रक्रियाओं के लिए, निम्न लिखित प्रचार के औजार सुझाते हैं।

बाल-फावडा
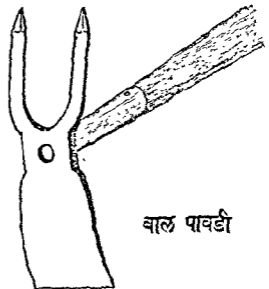
यह ६" लंबाई, १½" चौडाई और १४" लंबाई और ७ सूत मोटाई के हत्थे वाला खोदने, नीदने और गोडाई करने का साधन है। लकडी के हत्थे को एक बाजू से शकू आकार का बनाकर औजार में बैठाया गया है।

बाल समार

फावडे की एक बाजू दो दातवाली है। गोडाई के लिए दातवाली बाजू काम में आती है। फावडे वाली बाजू मिट्टी इकठ्ठी करने के काम आती है। निंदाई के काम में दोनों बाजुओं को आवश्यकता के अनुसार इस्तेमाल कर सकते हैं।

बाल समार

यह ओजार ६" चौडाई १½" उँचाई और १४' लंबे हत्थे वाला खोदी हुई जमीन समान करने तथा रेखायें खींचकर बोये हुए बीजो के ऊपर मिट्टी ढकने के लिए बनाया है। क्यारी की मिट्टी समतल करने के बाद क्यारी की मुंडेर बनाने के काम में भी यह औजार आता है।

बाल हल
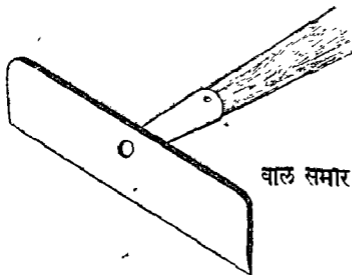
यह साधन ३" लंबा १" चौडा ७० अंश के कोण में टेढा किया हुआ, नीचे से नोकदार बना है। उसका ऊपरी हिस्सा पतला गोल बनाकर शकूदार नली जैसा बनाया है। उस में हत्था बैठाया जाता है।

तैयार हुई जमीन में इच्छित अंतर पर गहरी रेखायें खोचने में यह उपयोगी होता है। इसके नोकदार हिस्से को जमीन में घुसाकर अच्छी तरह रेखायें खोद सकते हैं।

तीनों साधनों में हत्था शंकू आकार का इसलिए बैठाने की व्यवस्था की गई है कि जिससे वह ढीला न हो। ढीला होते ही ठोक लेने से फिर पक्का हो जाता है। शंकूकार नली में पेंच बैठाने के लिए एक छिद्र बनाया गया है। हत्थे की मोटाई ७ सूत से कम और ८ सूत से ज्यादा नही होनी चाहिए।

हत्थे की लंबाई १४" या १५" रखी है। उसमें योजना यह है कि बालकों के लिए २ फिट से ज्यादा चौडाई की क्यारियां आम तौर पर नही हों। २ फिट चौडी क्यारी के किनारे पर बैठकर बालक आधी क्यारी तक में काम कर सकता है और बाकी आधा हिस्सा दूसरे किनारे पर बैठकर पूरा कर सकता है। क्यारी ज्यादा चौडी हो तो बालक क्यारी में ही पैर डाल देगा। इसलिए क्यारी की लंबाई तो कितनी भी हो पर चौडाई दो फिट से जादा नही होनी चाहिए।

(पृष्ठ २५१ का शेषांश)

निर्माण से ग्राम का गन्दा स्वरूप बदल गया। अब घर घर के सामने तरकारी और फूल की क्यारियां खिल रही है। बालवाडी और एक घंटे की पाठशाला के साथ साथ रात्रि पाठशाला का प्रयास हो रहा है। लेकिन अब तक कई कारणों से वह कोई स्थाई या निश्चित रूप नही ले पा रही है। जनता की व्यक्तिगत अभिक्रम शक्ति को जाग्रत करने के साथ-साथ सब मिलकर स्थानीय समस्याओं का हल करे, यह कोशिश हो रही हैं।

कुछ महीनों से निर्माण समिति की तरफ से श्री लक्ष्मीचन्द जी भी उस क्षेत्र में बस गये है। दस गावो का एक सघन क्षेत्र लेकर ये एक छोटी सी "सर्वोदय योजना" की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं, जिसमें लोग अपनी व्यक्तिगत अभिक्रम शक्ति के द्वारा अपना विकास करने की कोशिश करें, न कि सरकारी धन और अधिकारियों के बल पर।

(पृष्ठ २५८ का शेषांश)

धरातल पर रखा जाना चाहिये। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा

१. भौगोलिक उत्तर दिशा किसी लकडी की छाया को देखकर निश्चित करनी चाहिए।

२. उसको समतल रखने के लिये गोलम्बर या स्पिरिट लेवेल का उपयोग करना चाहिए।

३. यत्र पर दिनभर सूर्य का प्रकाश रहे इसलिए उसे कम-से-कम ५–६ फिट की उचाई पर रखा जाना चाहिए।

अंक दक्षिण बाजू पर बायें से ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १, २, ३, ४, ५, ६–इस प्रकार लिखे जाने चाहियें। उत्तर की तरफ इसी तरह किन्तु दाहिनी तरफ से लिखे जाने चाहिये।

एक बार स्टॅंडर्ड या स्थानीय समय के अनुसार घडी पर अक लिख दिये तो हर रोज का समय ठीक दीखेगा। इस प्रकार यह यत्र दिन के घटते-बढते, दक्षिणणायन-उत्तरायण आदि का ज्ञान देने में सहायता तो करेगा ही, पर साथ-साथ बालकों को इसे बनाने में मजा भी खूब आयगा। खेलते-खेलते वे कई वैज्ञानिक तथ्यों को समझ लेगें।

एक त्योहार के निमित्त–उसे अच्छी तरह मनाने और उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने आदि के पीछे–कितनी समवाय पद्धति का उपयोग होना चाहिए, यह उसका अच्छा उदाहरण है।

मकर संक्रान्ति और समवाय पाठ

शंकर प्रल्हाद पाडे
देवलाल अबुलकर

सेवाग्राम सघन क्षेत्र के स्कूलो के काम का मार्ग-दर्शन करने के हेतु जो कार्य होता है उसकी जानकारी समय-समय पर "नई तालीम" के पाठको के सामने आती ही रहती है। पिछले दिनो समवाय शिक्षण के सिलसिले में एक शिविरमाला सयोजित की गई थी। उसकी विशेषता यह थी कि आनेवाले एक उत्सव के समय सब पाठशालाओ के शिक्षको को उसके साथ समवाय की दृष्टि से क्या-क्या तैयारी करनी चाहिए और स्वय कौनसी जानकारी इकट्ठी करनी चाहिये, यह बताना था। और, क्योंकि सम्बन्धित दिवस-सक्रान्ति, ऐसे त्यौहारो में से है जिनकी समवाय सम्भावना बहुत होती है, हमने इस कार्यक्रम का आयोजन किया। सघन क्षेत्र की शालाओ के अलावा जनपद की कुछ शालाओ को भी इसमें शामिल कर लिया, जिससे सम्पर्क की दृष्टि से खास लाभ हुआ।

शालाओं की सख्या अधिक होने और उन सबका क्षेत्र व्यापक होने के कारण सबके लिए एक ही शिविर करना न तो सम्भव था, और न उचित ही। साथ-साथ यह भी आवश्यक था कि इस कार्यक्रम के कारण शाला को बन्द न रखा जाय। सबका शिविर एक साथ करना इसलिए भी ठीक नही थी कि शिक्षको की सख्या बहुत हो जाती। हम चाहते थे कि १०-१० के लगभग सख्या में यह कार्य हो। वैसा ही किया गया। २० दिसम्बर से ३० दिसम्बर के बीच ६ शिविर हुए। कुल ३३ शालाओ के ७७ में से ६५ शिक्षको ने भाग लिया।

ये शिविर अलग-अलग गावो में दूरी का ख्याल रखते हुए इस प्रकार सयोजित किये गये.

केन्द्र	शालाओं की संख्या
नादोरा	५
साटोडा	५
पवनार	५
मदनी	७
सरागणा–गोडे	६

शिविर की दिनचर्या

अपनी-अपनी शालाओं का कार्य नियमित ढग से १० बजे तक चला कर शिक्षक १ बजे दोपहर तक शिविर में शामिल होते थे। ५ बजे तक चर्चा-वर्ग होते और साय ७ बजे सामूहिक भोजन और ८ से ९॥ तक प्रार्थना व चर्चा रखी जाती थी। दूसरे दिन सुबह व्यक्तिगत सफाई के बाद व्यायाम प्रदर्शन देखकर प्रार्थना करने के बाद शिक्षक अपने-अपने स्कूलो में वापस चले जाते थे, जिससे कि उस दिन का पूरा शालाकार्य हो सके।

इस कार्यक्रम के अनुसार शालाओ की केवल एक दोपहर के लिए ही छुट्टी करनी पडती थी ।

वर्ग

शिविर का मुख्य विषय "सक्रान्ति" था । इसलिए चर्चा के विषयो को तीन हिस्सो में बाटा .

१. "सक्रान्ति" का खगोल–शास्त्र

२ सक्रान्ति का सामाजिक पहलू

३. सक्रान्ति का धार्मिक पहलू

शिविर के कार्य के लिए तीन शिक्षको को नियुक्त किया गया था। उनका कार्य था, शिक्षको को उपरोक्त तीनो पहलुओ की शास्त्रीय जानकारी देना और बालको को पढाने के लिए समवाय पाठ आदि तैयार करने में मार्ग-दर्शन । श्री अम्बुलकर ने वैज्ञानिक पहलू पर, पाण्डेजी ने अलग-अलग प्रदेशो में "सक्रान्ति" के त्योहार को मनाने के रीतिरिवाज और उसके सामाजिक पहलू के बारे में, और श्री गोडशे ने विशेष तौर पर समवाय पाठ तैयार करने की पद्धति के बारे में वर्ग लिए। सौभाग्य से एक मित्र, श्री धनोरकर हमारी इस टोली के साथ थे । इनका मुख्य विषय योग पद्धति का व्यायाम है । इन्होने छ ओ शिविरो में इसका प्रदर्शन किया और साथ-साथ उसके बारे में कुछ जानकारी भी दी ।

चर्चा के दौरान खगोलशास्त्र, भूगोल, आहार शास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र की कई बातें आई। पृथ्वी और चन्द्र की परिभ्रमण विधि को समझाने के लिए चर्खे के चक्रो को लेकर एक सरल यत्र बनाकर समझाया। इससे बालको को बात आसानी से समझायी जा सकती है और हर शिक्षक उपलब्ध वस्तुओ से अपने शैक्षणिक साधनो में से बहुत कुछ स्वय बना सकता है, इसका भान शिक्षको को हुआ। सक्रान्ति के साथ दिन का घटना-बढना जुडा हुआ है, इस सन्दर्भ में सूर्यघडी का प्रयोग किया और उसे बनाने का अभ्यास कराया। इसके अलावा दिशा-स्तम्भ और वायु-कुक्कुट बनाने और उसके साथ समवाय करने के बारे में बताया गया । ऋतु परिवर्तन होने से वनस्पति तथा पशु-पक्षियो में तबदीली के बारे में भी कुछ चर्चा हुई ।

इसके साथ-साथ शिक्षको ने सक्रान्ति सम्बन्धी लोकगाथायें, पौराणिक कथायें, लोक-गीत और कविताओ का सग्रह करने की योजना बनाई । यह तय हुआ कि सक्रान्ति से पहले ही यह सग्रह सब शिक्षको के पास पहुच जाय ।

इन शिविरो और सक्राति दिवस के बीच १५ से अधिक दिवस रहे । इस काल में शिक्षक अपनी तैयारी करेगे और उसके आधार पर अपना शैक्षणिक काम करेगें । हमारी योजना है कि सक्राति के अवसर पर उपरोक्त पद्धति के आधार पर कार्यक्रम–समवाय पाठ आदि का अनुभव लेने के बाद फिर से इसी तरह के शिविर रखे जाय, जिनमें किये गये कार्य की समीक्षा हो और शिक्षक अपने-अपने अनुभवो का आदान-प्रदान करे ।

सूर्य घडी

मकर सक्रात के अवसर पर २२ दिसम्बर से दिन बढने लगता है, यह बात विद्यार्थियो को स्पष्ट होनी चाहिये । इसके लिये निम्न-लिखित प्रयोग किये जा सकते हे .

१ मकरवृत्त मर्यादा आलेखन

२ तापमान का अभ्यास

३ सूर्य घडी

इस समय ऋतु परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन हम स्पष्ट रूप से निसर्ग में देख सकते हैं। हमारा अनुभव है कि सूर्यघडी एक आवश्यक शैक्षणिक साधन है। इसे कई तरीको से आसानी से बनाया जा सकता है। उनमें से एक तरीका यहा दिया जा रहा है--

आवश्यक साधन कार्डबोर्ड के टुकडे, कैंची चाकू, क्पास बॉक्स।

बनाने की पद्धति प्रथम आकृति में बतलाये गये आकार के दो टुकडे लीजिये। इन टुकडो की लम्बाई चौडाई कितनी भी ले सकते हैं, लेकिन उनके कोण इस प्रकार होने चाहिये।

कोण अ = ९० + स्थानीय अक्षांश
कोण ब = ९० − स्थानीय अक्षांश
कोण क = ९०°
कोण ड = ९०°
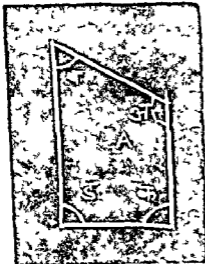
आकृति पहली
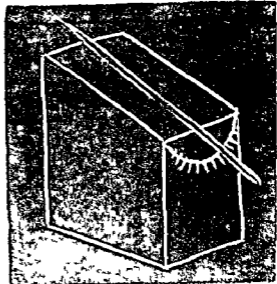
आकृति दूसरी

तीसरा टुकडा समकोण चतुर्भुज होगा, चौडाई कुछ भी हो, किन्तु ऊचाई रेखा अ क के बराबर हो। चौथे टुकडे की चौडाई तीसरे की चौडाई के समान होगी, किन्तु उचाई रेखा ब ड० होनी चाहिए। ये चारो टुकडे आकृति दूसरी में दिये गये डिब्ब की चार दिवारे हैं, इन्हे जोडकर डिब्बे के पेन्दे और ऊपर की छत के पास से दो टुकडे काट कर डिब्बे को पूरा कर लीजिये।

आकृति दूसरी में बताई गई एक बास की दोनो तरफ से नोकीली छड तैयार करके डिब्बे की छत पर बीचोबीच कागज से चिपका दीजिये। यह छड हमारी घडी की सुई होगई। इसे ऐसा रखाजाना चाहिए कि सुई की चढाव वाली नोक ठीक उत्तर की तरफ हो।

समय के अंक डालना यंत्र पर अंक उत्तर और दक्षिणवाली दिशाओ पर लिखने चाहियें। यह अंक सामान्य घडी को देखकर लगाना अच्छा है। एक महत्व की बात यह है कि यंत्र समतल

(शेषांश पृष्ठ २५५ पर)

आन्ध्र प्रदेश में नई तालीम गोष्ठी

प्रभाकर

जनवरी १५-१६ को आन्ध्र प्रदेश सर्वोदय मण्डल के तत्वावधान में प्रदेश के नई तालीम कार्यकर्ताओं की एक गोष्ठी हुअी। गोष्ठी में भाग लेनेवालों में सर्वोदय मण्डल के कुछ सदस्य, सरकार से नियुक्त बुनियादी तालीम समिति के अध्यक्ष व भूतपूर्व शिक्षा मंत्री श्री गोपालराव एकबोटे, शिक्षा विभाग के श्री आनन्दराव, सर्व सेवा संघ के सहमंत्री श्री राधाकृष्णन् आदि उपस्थित थे। प्रान्तीय सर्वोदय मण्डल की तरफ से ऐसी गोष्ठी का आयोजन यह पहली बार हुआ। करीबन ३० लोगों ने गोष्ठी में भाग लिया।

इस गोष्ठी के सामने तीनचार विचारणीय मुद्दे रहे। पिछले २०-२२ सालों से, जब से हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना हुअी आन्ध्र में बुनियादी तालीम का काम करनेवाली स्वतंत्र संस्थाएँ रही हैं। आन्ध्र जातीय कला शाला, मछलीबंदर ने दक्षिण भारत में सब से पहले बुनियादी तालीम के काम को रखने का श्रेय पाया। उस समय तैयार किये गये कार्यकर्ता आज भी इसी काम में लगे हैं। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के नई तालीम भवन में प्रशिक्षित कुछ कार्यकर्ता स्वतंत्र रूप से कई सालों से बुनियादी तालीम का प्रयोग करते आये। लेकिन पिछले ५-६ साल की परिस्थिति यह है कि ऐसे काफी केंद्रों में अब काम बन्द सा हो रहा है या सरकारी नीति नियमों के अनुकूल मोडा जा रहा है। कार्यकर्ताओं के सामने यह एक मुख्य प्रश्न है कि कैसी व्यवस्था करें जिससे बुनियादी तालीम की स्वतंत्र शालाओं में पढनेवाले विद्यार्थियों को नई तालीम की मूलभूत पद्धतियों से शिक्षण मिले और आदर्श समझ में आये। इतना ही नहीं, उनमें से जिन में ऊंची तालीम के लिये योग्यता हो, वे उसे प्राप्त कर सकें अैसी सुविधा उपलब्ध हो। आज दुर्भाग्य से वैसी परिस्थिति नहीं है। बुनियादी शालाओं में पढाई होने के बाद उसी पद्धति की उत्तर और उत्तम बुनियादी शाला में पढ सके और जीवन में उन सिद्धान्तों को अमल में लाने की औद्योगिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्षमता मिल सके, अैसी व्यवस्था नहीं है। इस परिस्थिति को कैसे बदले ? यह सब के सामने अेक बडा सवाल हो गया है। यह परिस्थिति कार्यकर्ताओं के अपने बच्चों के लिये और राष्ट्र के सब बच्चों के लिए सामान्य है।

आज आन्ध्र में करीबन् १४ शालाअें ऐसी है जो स्वतंत्र रूप से इस ओर प्रयत्न कर रही हैं। इन सब को नजदीक कैसे ला सके, परस्पर अनुभव का उपयोग एक दूसरे को कैसे हो, उनमें आपसी संगठन कैसे हो, यह भी सोचने की बात है।

आज से तुम लोगो ने मगल-व्रत को धारण किया, जिसमें सबकी भलाई है, उसी म अपना कर्त्तव्य समझना। इसलिए आज से अपने सुख और स्वार्थ का विसर्जन हुआ ऐसा मानो।

एक वाक्य में आज से तुम लोगो ने ब्रह्म व्रत को स्वीकार किया। अदर और बाहर सदा सर्वदा सब स्थानो में एक ब्रह्म विराजमान हैं उनसे तुम कुछ नही छिपा सकत, तुम्हारे मन के अन्दर स्तब्ध होकर वे सब कुछ देख रहे हैं, तुम जहा भी रहो, साओ, बैठो या चलो, तुम उन्ही में हो। उन्ही में सचरण कर रहे हो। तुम्हारे सब अगो में उनका स्पर्श है, तुम्हारे सब चितन उनके सामने हैं। वे ही एकमात्र अभय हैं।

प्रतिदिन कम से-कम एक बार तुम उनका ध्यान करोग, उनके ध्यान के जिस मत्र का हमारे प्राचीन ऋषिगण प्रतिदिन जगदीश्वर के सामने खड़े होकर उच्चारण करते थे, हे सौम्य मणावकगण, तुम भी मेरे साथ इस मन्त्र उच्चारण करो।

ओम् भूर्भुव स्व·
तत् सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो न प्रचोदयात्।

रवीन्द्रनाथ द्वारा अकित एक चित्र

विश्व-विद्यालय का सच्चा स्वरूप*

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मानव-संसार में ज्ञान-आलोक का दीपा-वली उत्सव चल रहा है । जब प्रत्येक राष्ट्र अपने प्रकाश को बड़ा कर सकेगा, तभी सब मिलने पर ही यह उत्सव सम्पन्न होगा । किसी राष्ट्र का अपना विशेष प्रदीप यदि तोड़ दिया जाय, अथवा उसका अस्तित्व भुला दिया जाय तो वह सारे जगत् की ही क्षति होगी ।

यह बात प्रमाण हो चुकी है कि भारत-वर्ष ने अपनी ही मानस-शक्ति द्वारा विश्व-समस्या का गहन चिन्तन किया है, और उसे अपनी ही बुद्धि द्वारा उसके समाधान का रास्ता मिला है । हमारे देश के लिये वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है जिसके द्वारा देश का अपना मन सत्य-संचय करने में और उसे अपनी शक्ति द्वारा प्रकाश करने में समर्थ बने । पुनरावृत्ति करने की शिक्षा मन की शिक्षा नहीं है । पुनरावृत्ति तो यंत्र के द्वारा भी हो सकती है ।

भारत-वर्ष ने जब अपनी शक्ति द्वारा मनन किया था तब उसके मन का ऐक्य था. अब वह मन विच्छिन्न हो गया है । अब उसके मन की बड़ी-बड़ी शाखाएं एक तने में अपना बृहत् योग अनुभव करना भूल गयी हैं । अंग-प्रत्यंग के बीच एक-चेतना-सूत्र का विच्छेद ही सारे देह के लिये मरण के समान है । उसी प्रकार भारत-वर्ष का जो मन आज हिन्दु, बौद्ध, सिख, मुसलमान, ईसाई में विभक्त और विश्लिष्ट हुआ है, वह मन कुछ ग्रहण नहीं कर पा रहा है और नहीं ही अपना कुछ दान कर पा रहा है । दस अंगुलियों को जोड़ कर अंजलि बांधनी पड़ती है । उसका प्रयोजन लेने के लिये भी होता है और देने के लिये भी । इसलिये भारतवर्ष को शिक्षा-योजना में वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन, मुसलमान इत्यादि समस्त चित्त को सम्मिलित और चित्त सम्पदा को संगृहीत करना होगा । इन्ही नाना धाराओं द्वारा भारत-वर्ष का मन कैसे प्रवाहित हुआ वह जानना होगा । इसी प्रकार के उपाय से भारत-वर्ष अपने नाना विभागों के बीच से ही अपनी समग्रता पा सकेगा । वह अपने आपको उसी तरह विस्तीर्ण और संश्लिष्ट करके अगर नहीं जानेगा तो जो शिक्षा वह लेगा उसे भिक्षा की तरह ग्रहण करेगा । उस प्रकार के भिक्षा-जीवन में कोई भी राष्ट्र कभी भी सम्पद्शाली नहीं हो सकता ।

दूसरी बात यह है कि शिक्षा का सच्चा क्षेत्र वही होगा जहां विद्या की सद्भावना चल रही है । विश्वविद्यालय का मुख्य काम विद्या का उत्पादन है । उसका गौण काम है उस विद्या का दान करना । विद्या के क्षेत्र में उन सब मनीषियों को आह्वान करना होगा जो अपनी शक्ति और साधना द्वारा अनुसंधान, अविष्कार और सृष्टि के काम में मग्न हो कर

जुटे हैं। वे जहा भी अपने काम के लिये इकट्ठे होंगे, वहा स्वाभाविक ही ज्ञान का झरना उत्सारित होगा। उसी उत्स-धारा की निर्झरिणी के तट पर ही देश के सच्चे विश्व-विद्यालय की स्थापना होगी। वह विदेशी विश्व-विद्यालय का नकल करने से नही होगा।

तीसरी बात यह है कि सब देशो में ही शिक्षा के साथ, देश की सर्वांगीण जीवन यात्रा का योग होता है। हमारे देश में केवल मात्र क्लर्की, वकालत, डाक्टरी, डिपटी-क्लेक्टरी, दारोगा-गिरी, मुन्सिफि अित्यादि भद्र समाज के कुछ धन्धो के साथ ही आधुनिक शिक्षा का प्रत्यक्ष योग है। जहा कृषि हो रही है, जहा तेलघानी और कुम्हार का चाक घूम रहा है, वहा इस शिक्षा का कुछ भी स्पर्श नही पहुचा। और किसी शिक्षित देश में अैसा दुर्योग घटता हुआ नही दीखता। अुसका कारण है कि हमारे नये विश्व-विद्यालय देश की मिट्टी के अूपर नही है, वे आकाश बेल की तरह परदेशी वनस्पति की शाखा पर झूल रहे हैं। भारत-वर्ष में यदि सच्चा विश्व-विद्यालय स्थापित होगा, तो आरम्भ से ही वह विद्यालय अुसका अर्थशास्त्र, अुसका कृषितत्व, अुसकी स्वास्थ्य विद्या, अुसके व्यावहारिक विज्ञान को अपने प्रतिष्ठा-स्थान के आसपास के गावो में प्रयोग कर के देश की जीवन-यात्रा का केन्द्रस्थान बन जायगा। वह विद्यालय अुत्तम आदर्श की खेती करेगा, गोपालन करेगा, कपडा बुनेगा, और अपनी आर्थिक आवश्यकता के लिये समवायप्र णाली का अवलम्बन करके छात्र, शिक्षक और आसपास के अधिवासियो के साथ जीविका के सम्बन्ध द्वारा घनिष्ठता से युक्त होगा।

*सन् १९१९ मे "शान्तिनिकेतन" पत्र मे 'विश्व-भारती' नाम से प्रकाशित प्रबन्ध

सूखे जीवन जिस दिन
अुसदिन,
करुणाधारा बन आना
सकल माधुरी रीते जिस दिन
गीत सुधारस बरसाना !

कामधाम मन में जब जूझे
गरजे-तरजे दिशा न सूझे
मेरे मन में हे जीवन प्रभु
शांत चरण आना !

अपना आपा करके कृपण
जाये कोने में दीनहीन मन
द्वारे ठेलकर हे अुदार तम
अुत्सव लेकर आना !

अिच्छाओं की आंधी आये
धूल अुडे, आंखों भर जाये
तो हे पवित्र, तो हे आनन्द
रुद्रकिरन बन आना।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कला विद्या

[कला-शिक्षा के महत्व के बारे मे रवीन्द्रनाथ पहले से ही ध्यान खेंचते आये थे । यह लेख उन्होंने सन् १९१६ के नवम्बर दिसम्बर माह मे लिखा था । उस समय के सारे जगत् को भी सोचे तो कितने ऐसे लोग थे जो शिक्षा मे कला के स्थान को इतनी गहराई से समझते थे । आज भी क्या यह विचार हमे एक दर्शन नहीं देते ?

–सम्पादक]

वर्तमान युग युरोपीय सम्यता का युग है । चाहे जोर जबरदस्ती से या चाहे सम्मोह से, इसने सारी पृथ्वी को वश मे किया हुआ है । यह सम्यता जगत् के जिस राष्ट्र को स्पर्श करती है उसकी आकृति में से उसका विशेषत्व खत्म हो जाता है–जब से जापान ने योरोप के विद्यालयो से शिक्षा लेना प्रारभ किया तब से उसकी वेश-भूषा और उसकी जीवनयात्रा का बाह्यरूप भी परिवर्तित होने लगा । युद्ध प्रणाली और व्यवसाय प्रणाली सब देशों में एक जैसी ही होती जा रही है–इसका कोई आश्चर्य नही–क्योकि वे दोनो यत्रमात्र हो है, और यत्र तो सभी देशो में एक ही जैसा होगा । किन्तु मनुष्य का मन तो यत्र नही है । मनुष्य की मानसिक प्रकृति उसकी वेश-भूषा, गृह-सज्जा, आचार-व्यवहार में अपने आपको प्रकाशित करती है । एक काल से अन्य काल में उसका परिवर्तन भी होता है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के पास से ये चीजें कुछ उधार लेता है–किन्तु वह उन सब को अपना बना लेता है । पर कुल मिलाकर उसका ढाचा ठीक ही रहता है ।

किन्तु पृथ्वी पर सारी जगह मनुष्य के अपने मन के साथ उसकी अपनी तैयार की हुई मशीन की भयानक लड़ाई शुरू हो गई है । मनुष्य के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओ के ऊपर उसके मन के स्वाक्षर कही भी दिखाई नहीं देते––सब पर मशीन की छाप है–इन मशीनों के द्वारा बनाई वस्तुओं के बीच कही भी रूप-भेद नही है । सुलभता और सुविधा के प्रलोभन के कारण मनुष्य ने यह स्वीकार कर लिया है । इस प्रलोभन के कारण मनुष्य ने अपने मन के कर्तृत्व और अपनी सृष्टिशक्ति को अस्वीकार कर लिया । इसे सुविधा की तुच्छ मजदूरी लेकर मशीन का दासत्व स्वीकार करना नही तो और क्या कहेगे ? परदेह-जीवी और पराश्रित जीव जैसे स्वाश्रित शक्ति खो बैठता है, उसी तरह मशीन के आश्रित मनुष्य अपने मन का रुचि-स्वातत्र्य खो रहा है, उसके नित्य व्यवहार की सामग्री से उसका अपना सौन्दर्य बोध प्रयोग करने का स्वाभाविक उद्यम निर्जीव आलसी हो जा रहा है । योरोपीय सम्यता की वह रुचिस्वातत्र्य नाशक मरुवायू भारतीय शिल्प को करीब-करीब नष्ट कर चुकी है ।

बहुकाल के अभ्यास के द्वारा जो नैपुण्य उत्कर्ष लाभ करता है, एक बार नष्ट होने से फिर खुशामद करने से या मूल्य देकर भी उसे वापस पाने का कोई रास्ता नही है ।

मनुष्य की उस दुर्लभ सामग्री को हम प्रायः खो बैठे हैं।

पक्षियों के सुन्दर पखों के लोभ से या स्वाभाविक हिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण योरोपियनो ने पृथ्वी से कितने ही सुन्दर पक्षियों के वश प्रायः समाप्त कर दिये है। ये पक्षी पृथ्वी की बहुयुग की साधना के धन है। ये मर जाने पर उन्हे कभी भी वापस पाया नही जा सकेगा। मनुष्य की सृष्टि साधना के शिल्प भी इसी तरह बहुत तपस्या के फल है——वे भी उतने ही सुकुमार है, योरोप उनका वध करके सारी मानव जाति को सजा दे रहा है, लोकालय में जो सौन्दर्य है उसे चिर-निर्वासित कर रहा है।

जो भी हो, जिस व्यवहार के क्षेत्र में मनुष्य की रुचि का पराभव सारे ससार में ही हो रहा है, वहा भारत छुटकारा पायेगा, इसकी मै आशा नही करता। जहा बाजार व्यापार होता है, वहा वाणिज्य लक्ष्मी के द्वारा सौन्दर्य लक्ष्मी का और कल (मशीन) के द्वारा कला का अपमान ही वर्तमान युग के ललाट पर लिखा हुआ है।

मनुष्य अपनी अन्तिम इच्छा को, अपने प्रेम को केवल अपनी व्यवहार की वस्तुओ में ही प्रकट नही करता है, बल्कि उसकी चित्रकला, उसका सगीत ही उसे प्रकट करने के मुख्य साधन होते है। इसी के द्वारा ही देश अपने अन्तरावेग को बाहर का रूपदान करता है और उसे चिरन्तन बनाकर आनेवाले युग को समर्पण करता है।

मनुष्य की बुद्धिवृत्ति ऐसी एक चीज है जिसका तारतम्य जातिविशेष में होता है। किन्तु उसमें प्रकार भेद नही होता। युक्ति का नियम सब देशों में एकसा ही होता है। जो वस्तुअें प्रमाण करने के विषय होती हैं, उनको प्रमाण करने की प्रणाली सर्वत्र ही समान होती है। भारतवर्ष के इतिहास का तथ्य-विचार एक तरह से हो और इंगलैण्ड का अन्य तरह से, यह हो ही नही सकता। विज्ञान की पद्धति और उसका फल देश-देश में विभिन्न होगा, यह भी असम्भव है, इसलिये योरोप जिस बुद्धिमूलक शिक्षा को सारी पृथिवी को दे रहा है, वह सर्वत्र एक ही होगी।

किन्तु हृदयवृत्ति के द्वारा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता है। अिस व्यक्तित्व का वैचित्र्य रहेगा ही और रहना श्रेयस्कर भी है, अिसे नष्ट करना आत्म-हत्या के समान है। इस हृदय वृत्ति का प्रकाश कला विद्या के सहारे ही होता है। सभ्य और असभ्य सभी देशो में अिन कला विद्याओ पर देश के लोगो का प्रेम होता ही है। केवल हमारी शिक्षा-व्यवस्था में ही कला विद्या को कोई स्थान नही है। अुसके स्थान का जो गहरा महत्व है अुसका बोध भी हमारे शिक्षित लोगो के मन में से चला गया है।

अिसका मुख्य कारण हमारे देश में विद्या के अभाव के साथ जुडा हुआ है। अग्रेजी सीखने से नौकरी मिलेगी और राज सम्मान का मौका होगा, गरीब की यह वासना हमारे देश की शिक्षा को चला रही है। अिस चिन्ता से कि कही बाद में अिस लक्ष्य की साधना में चित्त-विक्षेप होगा, हमारे देश के लोग व्याकुल हैं। अिस लक्ष्य को पाने के लिये देश के सबसे महत्व-पूर्ण कल्याण का भी बलिदान करने में हमें सकोच नही होता।

अंग्रेज तो भाषा, भूगोल, अितिहास, गणित, विज्ञान सभी सीख रहे हैं। और अुसके साथ-साथ संगीत, चित्रकला और अन्यान्य सभी कला विद्यायें सीख रहे हैं। अिन सभी ललित कलाओं के द्वारा अुनका पौरुष घट रहा है, अैसा तो नहीं दिखता। संगीत-निपुण हैं अिसलिये जर्मन राष्ट्र शस्त्र चलाने में ढीले या विज्ञान में पीछे हैं, यह कौन कह सकता है? दरअसल आनन्द प्रकाश जीवनी शक्ति का ही प्रबलतर प्रकाश होता है। अिसी आनन्द प्रकाश के पथ को खत्म कर देने से जीवनी शक्ति को ही क्षीण कर देना होता है। जो व्यक्ति लकडी का व्यापार करता है, वह मन में सोच सकता है कि वृक्ष के लिए अुसके पत्ते-फूल-फल आदि सभी शौकीनी की वस्तुअें हैं, वह सब शक्ति का अपव्यय है, असल में तो सारवान वस्तु केवल लकडी ही होती है। वह यह भूल जाता है कि यदि वनस्पति जगत् में से फूल लुप्त हो जाय तो लकडी का भी तो उसी के साथ मरण हो जायेगा। इसी तरह जो जाति आनन्द लाभ करना भूल जाती है, वह काम करना भी भूल जाती है। जापान के लोग काम करने में आलस्य नहीं करते, प्राण देने में निर्भय होते हैं, किन्तु चेरी फूल के खिलने का सौन्दर्य लाभ करने के लिये बच्चे बूढे सभी उत्सव मनाते हैं, और चित्रकला का परम मूल्य नहीं समझता है, ऐसा मूढ वहां कोई नहीं होगा। पण्डितगण हमारे देश में आनन्द से डरते हैं, सौन्दर्य उपभोग को चापल्य समझते हैं और कला विद्या को अपविद्या और काम में विघ्न डालने वाली चीज मानते हैं। यह हमारी गहरी पैठी हुई दीनता का ही लक्षण है। यह हमारी नैसर्गिक कर्मशक्ति को ही दुर्बल करता है। हमारे देश की शिक्षा के दारिद्र्य के लक्षण और फल हमारे शांतिनिकेतन के बालकों में भी दिखाई देते हैं। यहाँ के विद्यालय में संगीत और चित्रकला सिखाने की अच्छी व्यवस्था है। अधिकतर बच्चों में गाने और चित्र बनाने की स्वाभाविक शक्ति रहती है। जब तक वे नीचे की कक्षाओं में पढते हैं तब तक

कला का रसास्वादन

एक ही विषय पर भिन्न भिन्न देशों के चित्रों का सकलन कीजिए। इनमें मौलिक प्रेरणा समान मिलेगी। सुन्दर और महान कला में भाषा निर्बाध है। हम पाश्चात्यों की कुछ सर्वोत्तम कलाकृतियों और वे हमारे अजन्ता के भित्तिचित्रों की मोहकला और मनोहरता से विशेष मोहित न होंगे। कलाकृतियों का स्तर और रस, जिसने हमें सौंदर्य और आनन्द की अनुभूति होती है, वह तो रंग और जाति-भेद से परे शाश्वत और सनातन भाव की व्यापकता है। वहा भाषा शान्त है। हमारे आदि पूर्वज जो गुफा चित्रों का संग्रह हमारे लिए छोड गए हैं, हमारी अद्यतन भाषाओं की कल्पना भी नहीं करते थे और चित्रों के द्वारा जो भाव और विचार उन्होंने प्रकट किये हैं उन्हें हम सरलता से समझ ही सकते हैं और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इसी कला के साम्राज्य में ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिसे 'जातीय" अथवा "विजातीय' कहा जाए। यदि आप कलाकृति को समझने मे असमर्थ हैं अथवा वह कार्य उस कोटि का नहीं है, आप उसका सर्वथा त्याग कर सकते हैं। उत्तम और उत्कृष्ट कलाकृति तो सर्वथा आनन्द और प्रेरणा का स्रोत है, चाहे वह किसी भी माध्यम से बनाई गई हो। कला सृजन की प्रत्येक कृति का आधार केवल एक ही है, व्यक्ति का सत्य और सौन्दर्य अनुभूति का समष्टि को दान। समस्त कलामय आत्म-अभिव्यक्ति मे शायद साहित्य ही एक सब शक्तिशाली और अन्तर्ग्राही माध्यम है। भाषा गुण, विशेषकर काव्य का, यह है कि उसमें सतत मर्मस्पर्शी और भाव स्पन्दन और विचार जागरण की शक्ति है। यह सर्वथा कोमल और निकटगामी है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उन्हें गाना और चित्रकला सिखाना कठिन नहीं होता। इनमें वे आनन्द ही लेते हैं। किन्तु ऊपर की कक्षाओं में प्रवेश करते वक्त हमारे देश की शिक्षा का उद्देश्य वे समझने लगते हैं और उनकी अन्तर्निहित दीनता उन पर आक्रमण करने लगती है। तब से उनका मन परीक्षा की पढाई के बाहर की इस शिक्षा के विरुद्ध मुड जाता है। दूसरी विद्या के प्रति उनमें अश्रद्धा पैदा हो जाती है। इसका कारण है कि जो उदासीनता इन शिक्षाओं के प्रति समाज में है, वह थोडी उमर होने पर विद्यार्थियों के मन में भी सचरित हो जाती है। यह केवल हमारे दुर्भाग्य देश के अन्तर और बाह्य दारिद्र्य का लक्षण है।

'से' नामकी पुस्तक से

बाल्यकाल से ही हमारे भद्र समाज के लोग अिस प्रकार कला-विद्या के स्पर्श से दूर रहे हैं। अिससे देश की कितनी बडी क्षति होती है, अिसको अनुभव करने की शक्ति भी वे खो बैठते हैं। कुछ दिनों से हमारे देश के कुछ चित्रकार योरोप की चित्रकला की नकल करना छोडकर भारतीय चित्रकला का अनुसरण करने के लिये प्रवृत्त हुअे हैं। अुनका यह प्रयत्न विदेश में सराहनीय माना गया है। किन्तु अपने देश में जितने काल तक अुन्हें किस प्रकार अश्रद्धा और दुत्कार सहनी पडी है, सभी जानते हैं। अिसका अेकमात्र कारण यही है कि हमारे देश में चित्रकला कहकर कोई चीज है, यह हम जानते ही नहीं। हमें अुस चित्रकला की शान को समझने की कोई शिक्षा मिली ही नहीं! योरोप की हलकी रुचि की चित्रकला के नमूने छोडकर हम और कुछ नहीं देख पाये हैं और जिस प्रकार वहां की अुच्च कोटी की चित्रकला हम देख नहीं पाये, अुसी प्रकार वहां की कला आलोचना आदि भी सुन नहीं पाये। अिसीलिये योरोपीय चित्रकला को बारीकी से जांचने का अुपाय भी हमारे हाथ में नहीं है।

संगीत की दुर्गति की बात भी अेक बार देखें। कन्सर्ट कहकर अिस काशझांकारझकृत (बैण्ड बाजा) अत्याचार को मोहल्लों में संगीत कहकर स्वीकार कर लिया है, अुस जैसी बरबरता और कुछ नहीं हो सकती। भारतीय संगीत का प्राण तो अिसमें है ही नहीं, पर यदि अिसे योरोपीय संगीत की नकल मानते हो, तो वह भी अेक बडा अन्याय होगा। शादी-बारात या शोभा-यात्रा में बैण्ड के साथ शहनाई का धक्का लगाकर संगीत की जो महामारी पैदा

करने को हम अुत्सव का अंग मानने लगे हैं, वह क्या कभी सम्भव हो सकता था—यदि हमारे हृदय में सगीत कला के प्रति थोडा भी प्रेम होता। देश के उत्थान की बात हम आजकल हमेशा ही बोलते हैं। हम सोचते हैं कि वह उत्थान केवल राज नैतिक आन्दोलन सभा की ही वस्तु है—अभाव के क्रन्दन में यानी वह गरीब की प्रार्थना है। इस गहरे पैठे हुये भिखारीपने के कारण हम भूल गये हैं कि जहा देश की सम्पदा निहित है वही देश का अपना गौरव सोया पडा है। वह सम्पदा जितनी उद्घाटित होगी उतना ही देश के गौरव का उत्थान होगा। हमारे नये उत्थान का उत्सव विलायती गोरे वाद्यों से अथवा देशीय सगीत की अस्थि-पजर तोडने वाली कुरूप बातों से सम्पन्न नही हो सकता। हमारे देश की निर्वासित लक्ष्मी को नया आवाहन देने के समय मन्दिर द्वार पर जो अल्पना बनानी होगी, क्या उसका नमूना जर्मनी से संग्रह करके लाना होगा?

महात्मा गांधी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

समय-समय पर राजनीति के क्षेत्र में अैसे इतिहास-निर्माता जन्म लेते हैं जिनकी मानसिक ऊँचाई मानवता की सामन्य सतह से ऊपर होती है। उनके हाथ में एक अस्त्र होता है. जिसकी वशीकरण और प्रभावात्मक शक्ति लगभग शारीरिक होती है। और होती है प्रायः निर्मम। वह मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं—लोभ, भय और अहंकार से लाभ उठाता है। जब महात्मा गाधी ने पदार्पण किया और भारत की स्वतन्त्रता का पथ उन्मुक्त किया तब उनके हाथ में सत्ता का कोई प्रकट साधन न था, दबाव डालनेवाली जबर्दस्त सत्ता न थी। उनके व्यक्तित्व से जो प्रभाव उत्पन्न हुआ, वह संगीत और सौन्दर्य की भांति अवर्णनीय है। उसने दूसरों पर इसलिये सबसे ज्यादा प्रभाव डाला कि उसने स्वतः आत्म-समर्पण की भावना को प्रकट किया। यही कारण है हमारे देशवासियों ने विरोधी तत्वों को ठिकाने रखने में गांधीजी की स्वाभाविक चतुराई की ओर क्वचित् ही ध्यान दिया है। उन्होंने तो उस सत्य पर आग्रह रक्खा है जो उनके चरित्र में सहज स्पष्टता के साथ चमकता है। यही कारण है कि यद्यपि उनकी प्रवृत्तियो का क्षेत्र व्यावहारिक राजनीति है पर लोगो ने उनके जीवन की तुलना उन महापुरुषो से की है जिनकी आध्यात्मिक प्रेरणा मानवता के समस्त विविधरूपों का अपने में समन्वय करती हुई उनसे भी परे पहुंच जाती है और सांसारिकता को उस प्रकाश की ओर उन्मुख कर देती है, जिसका उद्गम ज्ञान के शाश्वत स्रोत में है।

—

काकासाहेब कालेलकर

शिक्षा के ऋषि रवीन्द्रनाथ

शिक्षा अेक स्वतंत्र और सार्वभौम जीवन-दर्शन है, असका साक्षात्कार जिन्हें हुआ था अैसे तीन व्यक्तियों का प्रभाव मुझपर विशेष पड़ा। अेक महात्मा गांधी, दूसरे कविवर रवीन्द्रनाथ और तीसरे महर्षि काअुण्ट लिओ टालस्टाय। तीनों आजादी के कट्टर अुपासक। लेकिन तीनों कि वृत्ति में कितना बड़ा भेद! अीश्वर की परम कृपा कि तीनों के दृष्टि भेद को समझते हुये तीनों का जीवन दर्शन क़रीब अेकसा है, यह समझने की शक्ति मुझे मिली। अितना ही नहीं, तीनों की जीवन दृष्टि के प्रति मेरे मन में शुरू से आखिर तक अेकसी सह अनुभूति रही।

ये तीनों जीवन के प्रखर अुपासक अपने-अपने ढंग के कलाकार भी थे। अुन्हें जो सफलता मिली अुसका कारण हरेक की कलाशक्ति ही थी। इस कलादृष्टि और कलाशक्ति के बिना वे दुनिया पर अपना अितना प्रभाव नहीं डाल सकते और अुन्हें जो सफलता मिली वह भी नहीं मिल सकती। हिमालयन शिखर के साथ जिनकी तुलना हो सके ऐसे उत्तुंग विचारक बहुत हो गये हैं। लेकिन समर्थ कला के अभाव में वे दुनिया पर उतना असर नहीं कर सके, जितना इन तीनों ने किया।

इन तीनों में से आज श्री रवि ठाकुर का स्मरण कर रहा हूं। उनसे मेरी जो पहली मुलाकात हुई उसके बारे में मैंने कई दफे लिखा। लेकिन उसका दोहराना इष्ट समझता हूं।

जब मैंने गुरुदेव के मुख से कुछ उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की तब उन्होंने कहा-'यहां स॰ लोग गुरुदेव कहते हैं सही, लेकिन मैं किसी का गुरु नहीं हूं। मैं गुरुप्रणाली को मानता भी नहीं। मैं नहीं मानता कि कोई किसी का गुरु हो सकता है। अध्यात्म एक ऐसा गहरा समुद्र है जिसकी

कारागार नहीं, विद्यागार

इन हतभागे बालकों के पास से उनका आकाश और वायु, उनका आनन्द और अवकाश क्या सब छीन कर शिक्षा को हर प्रकार से उनके लिये दंड बना देना होगा? क्या अज्ञान से धीरे-धीरे ज्ञान का आनन्द पाने के लिये ही शिशु अशिक्षित होकर जन्म नहीं लेता? हमारी अक्षमता और बर्बरता के वश यदि हम ज्ञानशिक्षा को आनन्द-जनक न बना सके तो प्रयत्न करके-इच्छा करके, अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक निरपराध शिशु के विद्यागार को हम क्यों कारागार का रूप दे देते हैं। शिशु की ज्ञान शिक्षा को विश्व प्रकृति के उदार रमणीय अवकाश के द्वारा उन्मिषित कर देना ही विधाता का अभिप्राय था। उस अभिप्राय को जितना हम व्यर्थ बना रहे है, उतना ही वह व्यर्थ बनता जा रहा है। हरिण गृह की दीवार तोड डाला-मातृ गर्भ में १० मास में शिशु पंडित नहीं बन पाया, कहकर उसके प्रति कठोर श्रम-सहित कारावास दंड का विधान मत बनाओ। उनके प्रति दया करो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ, गांधीजी और एण्ड्रूज़

प्रभात कुमार मुखर्जी

यह शान्तिनिकेतन के उन अच्छे पुराने दिनों की कहानी है जब हमारे यहा डाक की सुविधायें तक नही थी। डेढ मील दूरी पर बोलपुर में ही एक पोस्ट आफिस था। कोई समाचारपत्र बेचनेवाले भी नही आते थे, डाक के साथ ही समाचारपत्रो के आने का इन्तजार करना पडता था। बाह्य दुनिया से अलग हो कर ही हमारी जिन्दगी चलती थी। फिर भी दक्षिण आफ्रिका में भारतीय निवासियो पर गोरे और बोअर लोगा का जो आक्रमणकारी वर्ताव हुआ, उसकी खबर धीरे-धीरे हम तक भी पहुच गई। हमने यह भी सुना कि मोहनदास कर्मचन्द्र गाधी नाम का एक गुजराती बॅरिस्टर गोरे लोगों का विरोध कर रहा है।

बाहर की–याने विदेश की–कई पत्र-पत्रिकाए पढने की रवीन्द्रनाथ की आदत थी। इसलिए वे चालू घटनाओं की हमसे ज्यादा जानकारी रखते थे, दक्षिण आफ्रिका की घटनाओ के बारे में भी जानते थे। १९०६ में बॅरिस्टर गाधी के द्वारा वहा जो सविनय प्रतिरोध का आन्दोलन चलाया गया, वह भी उन्हे विदित था। अपनी क्रान्तदर्शी दृष्टि से उन्होंने यह समझ लिया था कि कोई वीतराग सन्यासी ही भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व करेगा। १९०९ में ही रवीन्द्रनाथ ने "प्रायश्चित्त" नाटक लिखा था, उसमें धनञ्जय वैरागी के असाधारण पात्र की सृष्टि करके उन्होने भारत के भावी नेता का सच्चा चित्रण किया था, महात्मा के आविर्भाव की कल्पना उसमें मिलती है।

हमने यह भी सुना कि श्री गोपाल कृष्ण गोखले, जो उस समय की भारतीय विधान

(शिक्षा के ऋषि रवीन्द्रनाथ)

गहराई नापकर लोगो को रास्ता दिखाने का काम आज तक किसी ने नही किया है। आयन्दा भी होनेवाला नही। "लाइफ इज एन अनचार्टर्ड सी, ईच वन हैज टु फाइन्ड हिज ओन पाथ," अैसा ही कुछ अुन्होंने कहा था।

रविबाबू के मन में बच्चो के प्रति प्रेम और आदर था। बच्चो को पूरी आजादी के शुद्ध वायुमडल में रखने की कोशिश वे आखिर तक करते रहे। बच्चो के जीवन और व्यक्तित्व के प्रति जिनको आदर नही है अैसे शिक्षक वे कभी पसद नही करते थे।

जीवन के जितने भी पहलू है सब के प्रति कवि के मन में अेकसा कुतूहल, अेकसी अदम्य जिज्ञासा और अेकसा महत्व था। अिस सार्वभौम जिज्ञासा, प्रेम और आत्मीयता की बुनियाद पर ही अुन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति रची थी। "ए सेन्टर ऑफ इन्डियन कल्चर" में अुनके ये विचार हमें स्पष्ट रूप से मिलते हैं। प्राचीन ऋषि के वचन में थोडासा परिवर्तन करके हम रविबाबू का जीवन दर्शन व्यक्त कर सकते हैं।

"यो वै भूमा तदेव जीवनम्
न अल्पे जीवन सिद्धिरस्ति"

सभा के सदस्य भी थे, दक्षिण अफ्रिका के भारतीय-निवासियों की परिस्थिति जानने के लिए वहां गये हैं।

इतने में रवीन्द्रनाथ इग्लैण्ड और अमेरिका का भ्रमण करने के लिये निकले। १९१३ के नवम्बर में उन्हें नोबल पुरस्कार मिला। भारत के और बाहर के भी बहुत लोग कवि के और उनकी संस्था शान्तिनिकेतन के बारे में अधिक जानने के लिए उत्सुक हो गये। इग्लैण्ड में ही पहली बार रवीन्द्रनाथ की रेवरेन्ड सि. एफ्. एन्ड्रूज के साथ मुलाकात हुई, जो उस समय दिल्ली के सेन्ट स्टीफन्स कॉलेज में प्रोफेसर का काम करते थे।

एनड्रूज् अपनी आत्मकथा–"क्रिस्तु से मुझे क्या मिला"–में लिखते हैं– "१९१२ में वह एक बहुत सुन्दर सुहावनी ग्रीष्मकाल की सन्ध्या थी। रॉथनस्टीन ने मुझे अपने घर आने का आमंत्रण दिया था, क्योंकि कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर लडन आये हुए थे और उनकी नयी पुस्तक गीताजलि से कुछ कविताएं डब्ल्यू. बि यीट्स् पढनेवाले थे। उस रात को जब मैं कवि से प्रथम बार मिला और उनकी कविताओं को मैंने सुना तो भारत की महान् वैश्व-सस्कृति की "वाचामगोचर" मृदुल सुन्दरता ने मेरे मन में प्रवेश पाया। उस रात सोने के पहले मैंने पूरा-पूरा निश्चय कर लिया था कि अगर कवि मुझे इजाजत देंगे तो शान्तिनिकेतन जाकर वहा भारत के बारे में अधिक सीखने का प्रयास करूगा, जो दिल्ली के एक मिशनरी केन्द्र में मैं नही कर सकता था। मुझे यह जानकर बडी खुशी हुई कि विली पियर्सन ने भी यही करने का तय किया है और उन्हे कवि की सम्मति भी मिली है। फिलहाल मैं इस योजना पर अमल करने के लिये स्वतंत्र नहीं था, फिर भी इस आशा में ही मैं आनन्द पा रहा था, और दक्षिण आफ्रिका में रहते कई मुश्किलात के बीच इसी आशा से मुझे सहारा मिलता रहा।"

दिल्ली से दक्षिण आफ्रिका जाने के पहले एन्ड्रूज एक बार शान्तिनिकेतन आये। विलयम् पियर्सन भी उनके साथ थे। रवीन्द्रनाथ ने इन दोनों मित्रों को उनकी विदेशयात्रा में शुभ-कामनाएँ व्यक्त करने के लिये मन्दिर में विशेष प्रार्थना चलायी। वे एक ऐसे देश में जा रहे थे जहा उन्ही के देशवासियो द्वारा भारतीयो पर अत्याचार हो रहा था। पियर्सन ने वहां बगला में ही भाषण दिया और बोले "मैं अपने मित्र की ओर अपनी तरफ से भी एक बात कहना चाहता हू, कि इस शान्तिनिकेतन आश्रम से जो शान्ति हम अपने साथ ले जा रहे हैं वह हमें अपने काम में बहुत सहायता देगी।" कवि ने एन्ड्रूज को लिखा था, "आप आफ्रिका में हमारे देशवासियो के लिये जो काम कर रहे हैं, उसमें हमारा प्रेम आपके साथ है।" यह गाधीजी के काम के साथ कवि का पहला सपर्क था।

१९१२ के आन्दोलन और जनरल स्मट्स के साथ समझौते के बाद उपनिवेश मत्री के साथ बातचीत के लिये गाधीजी इग्लैण्ड के लिये रवाना हो गये। इग्लैण्ड से भारत आने का उनका विचार था। लेकिन फीनिक्स आश्रम में उनका जो स्कूल चलता था उसके विद्यार्थी अब कहा जायेंगे, उनकी शिक्षा की आगे क्या व्यवस्था होगी, यह प्रश्न उनके सामने था। एन्ड्रूज १९१४ में शान्तिनिकेतन आये। उनके सुझाव के अनुसार फिनिक्स के विद्यार्थियों और शिक्षकों का शान्तिनिकेतन आना तय हुआ।

इस अवसर पर रवीन्द्रनाथ ने गाधीजी को लिखा–

"आपके फिनिक्स के बालको के लिए मेरे विद्यालय को आपने उचित स्थान सोचा, इससे मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। और जब यहा मैंने उन प्यारे बालको को देखा तो यह आनन्द दुगुना हो गया। आपने अपने बच्चो को हमारे भी बच्चे बनने की इजाजत दी और इस तरह हम दोनो की जीवन साधना में यह एक सजीव कडी बन गयी, इसके लिए आपके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मै यह पत्र लिख रहा हू"।

गाधीजी को रवीन्द्रनाथ का यह पहला पत्र था (१९१५) और उन्होने अपना आखिरी पत्र १९४० फरवरी में लिखा। इन पच्चीस सालो में भारत के दो महापुरुषो के बीच एन्ड्रूज एक जोडनेवाली कडी बने रहे।

अपनी आत्मकथा में वे लिखते है–"दक्षिण अफ्रिका में मै पहले महात्मा गाधी से मिला था। उनके दुखपूर्ण कठिन जीवन के हर पहलू में कष्टसहन के द्वारा विजय प्राप्त करने की शक्ति प्रकट होती थी। उनके पास रहना एक प्रेरणादायी अनुभव था, जो मेरे अन्दर जो-कुछ भी अच्छा है, उस सब को जगा देता था; मुझे धैर्य मिलता था–उनके अपने धैर्य से प्रचोदित और आलोकित।"

फिनिक्स स्कूल के विद्यार्थी शान्तिनिकेतन आये। उनके साथ मगनलाल, राजागम् और कोटाल भी आये थे। बाद में दत्तात्रेय काका कालेलकर भी उनके साथ हो गये। इन विद्यार्थियो और शिक्षको ने शान्तिनिकेतन आश्रम के निवासियो के लिए एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। इग्लैण्ड से भारत लौटने पर १९१५ की फरवरी में गाधीजी कस्तुरबा के साथ शान्तिनिकेतन आये थे। रवीन्द्रनाथ उस समय वहा उपस्थित नही थे, फिर भी जैसे गाधीजी स्वयं लिखते है वहा के "शिक्षक और विद्यार्थियो ने मुझे अपनी सरलता और प्रेम से अभिषिक्त किया," गाधीजी के स्वागत के लिए रातदिन मेहनत करके आश्रमवासियो ने एक नयी सडक भी बनायी थी।

लेकिन निर्भाग्यवश इस समय वे ज्यादा दिन वहा नही रह सके। गोखले की मृत्यु के दुखद समाचार का तार उन्हे १९ फरवरी को मिला। वे जल्दी में पूना चले गए।

६ मार्च को गाधीजी शान्तिनिकेतन वापस आये। रवीन्द्रनाथ भी कलकत्ते से आ गये थे, परन्तु "फाल्गुनी" लिखने के और उसके लिए गाने तैयार करने में मग्न हो कर श्रीनिकेतन में रहते थे।

शान्तिनिकेतन में शिक्षक और विद्यार्थियो को आराम की जिन्दगी बिताते देख गाधीजी खुश नही हुए। एक कर्मठ सयममय जीवन बिताने की उनको आदत थी और फिनिक्स स्कूल के शिक्षक और विद्यार्थी भी इस कठिन जीवन के आदी थे। गाधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते है– अपने स्वभाव के अनुसार मैंने वहा के शिक्षको और विद्यार्थियो से दिल खोल कर बात की। सब काम स्वय करने के बारे में मै उनके साथ चर्चा करने लगा। मैंने उनसे कहा कि रसोइयो पर निर्भर करने के बदले वे अगर खुद अपना भोजन बना ले तो ज्यादा अच्छा होगा। शिक्षकों को मैंने अपने विचार समझाये। उनमें से कई मुझसे सहमत हुए। जब उन्होने रवीन्द्रनाथ से इसके बारे में बात की

तो उन्होने कहा कि इस प्रयोग के लिये उनका अनुमोदन प्राप्त है–बस, शिक्षको को तैयार होना चाहिये। विद्यार्थियों से उन्होंने कहा– "स्वराज की कुजी आत्मनिर्भरता में है।"

शान्तिनिकेतन मे उन दिनो ब्राम्हणो और अब्राम्हणो को भोजनालय में अलग पक्तियो में बैठने का रिवाज था। रवीन्द्रनाथ के साथ वार्तालाप के सिलसिले में गाधीजी ने यह प्रश्न उठाया। वे ऐसे भेदभाव के खिलाफ थे। कहने की जरूरत नही कि रवीन्द्रनाथ भी जातिव्यवस्था में विश्वास नही रखते थे। लेकिन उन्होंने कहा कि वे अपने विचार शिक्षको और विद्यार्थियो पर कभी लादना नही चाहते थे। कवि का मत था कि ऐसे नियम बनाने के प्रत्यक्ष फल अच्छे दीख सकते है, लेकिन उसका असर स्थायी नही होगा। गाधीजी की राय में अनिश्चित काल तक निष्क्रिय रूप से परिवर्तन का इन्तजार करना भी उचित नही था इसलिये उन्होंने साबरमति आश्रम म शुरू से ही जातिभेद को स्थान नही दिया। स्वतत्रता के उनके सग्राम में हजारो लागो को तीव्र यातनाएँ भुगतनी पडी, फिर भी वे विचलित नही हुए। इसका कारण यह था कि वे स्वय भी असीम कष्ट सहन कर सकते थे। रवीन्द्रनाथ का दुख भावनात्मक तथा आध्यात्मिक था, वे दूसरो की पीडा सहन नही कर सकते थे। यही था कवि और कर्मी का भेद।

कवि की अनुमति और अनुमोदन से शान्तिनिकेतन के विद्यार्थी व शिक्षक १०, मार्च १९१५ से सारा काम खुद करने लगे, यह उत्साह कोई डेढ महीने याने गर्मियो की छुट्टी तक टिका। उसके बाद ज्यादातर लोग इसे वृथाप्रयत्न मानने लगे। यह दिन-१० मार्च, जब कि शान्तिनिकेतन के अन्तेवासियो ने आत्मनिर्भरता का पाठ सीखना शुरू किया था, अभी तक वहा "गाधी पुण्याह" के नाम से मनाया जाता है। उस दिन परिचारको को छुट्टी दे कर आश्रमवासी सब काम खुद कर लेते हैं।

दूसरे दिन–११ मार्च १९१५–गाधीजी रगून के लिये रवाना हो गये। २० दिन के बाद वे वापस आये और अपने लडको को साथ ले गये। इन बालको को वहा रहते चार महीने हो गये। उनके ससर्ग-सहवास से शान्तिनिकेतन के अन्तेवासी कई नयी बातो में दिलचस्पी लेने लगे, जो पहले उनके ध्यान में भी नही आती थी।

दो साल बाद १९१७ में रवीन्द्रनाथ के नये नाटक "डाकघर" का रगप्रवेश देखने के लिये गाधीजी काग्रेस के दूसरे नेताओ के साथ कलकत्ता आये। इस समय दोनो के बीच कोई विशेष चर्चा का अवसर नही हुआ। रौलेट बिल के पास होने के बाद की घटनाओ, जलियावाला बाग के हत्याकाण्ड तथा उनके प्रति प्रतिषेधस्वरुप कवि के अपनी 'सर" की पदवी छोडने का यहा मुझे वर्णन करने की जरूरत नही है। १९२० के शुरू में गाधीजी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गुजरात साहित्य परिषद् की अध्यक्षता के लिय अहमदाबाद बुलाया। इस अवसर पर व साबरमती आश्रम भी गये, वहा एक रात रह कर प्रार्थना में भाग लिया, और उसका सचालन भी किया।*

भारत का राष्ट्रीय इतिहास त्वरित गति से आगे बढ रहा था। गाधीजी ने ब्रिटिश

* इस प्रसग पर इसी अक मे श्री काशीनाथ त्रिवेदी का लेख देखिये।

आधिपत्य के खिलाफ असहकार आन्दोलन शुरु किया। उस समय रवीन्द्रनाथ पाश्चात्य लोक के साथ बौद्धिक तथा आध्यात्मिक सहयोग बढाने के लिए उन देशो में घूम रहे थे। ऐसा लगता था जैसे कि ये दो दार्शनिक और साधक पुरुष दो समानान्तर पथो पर चल रहे हो। इस समय–१९२१ में गाधीजी बगाल आये। उन्होने एन्ड्रूज के आग्रह से थोडे दिन शान्तिनिकेतन में आराम के लिये बताये। शौकत अली, जो खिलाफत आन्दोलन के एक मुख्य नेता थे, इस समय गाधीजी से मिलने के लिए शान्तिनिकेतन आये। इस प्रसग में मुझे यह बात याद आती है कि कई साल बाद जब गाधीजी और सुभाष चन्द्र के बीच कुछ मतभेद हुआ था, जवाहरलाल और सुभाष भी कवि से मिलने के लिए शान्तिनिकेतन आये थे।

रवीन्द्रनाथ भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ खिलाफत को जोडने के विरुद्ध थे। एन्ड्रूज भी इसके खिलाफ थे। रवीन्द्रनाथ के विदेश से लिखे पत्रो में–जो "मॉडर्न रिव्यू" में प्रकाशित हुए थे, यह मतभेद जाहिर था।

> कितने अनजानों से परिचय कराया
> कितने घरों मे राखो ठैयां !
> कितने पराये, अपने बनाये
> दूर–दूर पहुचायो बैया ।
> पुराने घरको छोडके जाऊ
> क्या होगा मै सोच न पाऊ
> जाता हू मै भूल,
> नये में सदा पुरानो छैया !
> जीते मरते निखिल भुवन मे
> ले जाओगे जहा
> जनम-जनम के मेरे परिचित
> परिचय दोगे वहा;
> तुम्हें जानकर कौन अपर हैं
> न कोई बाधा न कोई डर है,
> 'जोड के सबको जाग रहे हो'
> भूलू नहीं गुसैयां !
>
> –रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१९२१ की जुलाई में कवि अपनी यूरोपीय यात्रा से वापस आये। कलकत्ते के उनके निवासस्थान पर गाधीजी ने उनसे मुलाकात की। इस अवसर पर केवल एन्ड्रूज साहेब उपस्थित थे। उस बातचीत में क्या हुआ, यह प्रकाशित नही किया गया, लेकिन दोनो के दृष्टिकोण में फर्क है, यह अनुमान लगाया जा सकता था। अपना देश जल्दी स्वाधीन करने के लिए गाधीजी आतुर थे, कवि मानव की मुक्ति के बारे में चिन्तित थे। एक का विश्वास था कि स्वतन्त्रता मिल गयी तो जनता की सब प्रकार की भलाई होगी, दूसरे की श्रद्धा यह थी कि मानव का अन्तर जब ज्ञान-प्रकाश से आलोकित होगा तो राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सब प्रकार की स्वतन्त्रता अपने आप आयगी।

एण्ड्रूज ने अपनी पुस्तक–"महात्मा गाधी के विचार" मे दोनो महापुरुषो के स्वभाव का बहुत कुशलता पूर्वक विश्लेषण किया है।

असहकार आन्दोलन आखिर तक अहिंसात्मक नही रहा। कवि ने अपनी क्रान्तदर्शी दृष्टि से पहले ही जान लिया था कि एक दिन अनुशासनहीन जनसमूह गाधीजी के अहिंसा सिद्धान्त का भग करेगा। उन्होने एक खुली चिठ्ठी में गाधीजी को चेतावनी दी थी। उसी समय अचानक चौरी-चौरा की दुर्घटना हुई। इसके बाद गाधीजी गिरफ्तार किये गये।

१९२५ में काग्रेस में स्वराज पार्टी का प्रभाव ज्यादा था। गाधीजी चर्खा और खादी के प्रचार में मशगूल थे। उस समय रवीन्द्रनाथ दक्षिण अमेरिका के भ्रमण से वापस आये। गाधीजी कलकत्ता आये हुए थे, खादी और चर्खे

के प्रचार के बारे में रवीन्द्रनाथ का मत जानने के लिए गांधीजी २९ मार्च को शान्तिनिकेतन आये। दो दिन तक दोनों के बीच लंबी बात-चीत हुई, लेकिन कुछ बातों पर उनका मतभेद बना रहा। महादेव देसाई, प्यारेलाल और सतीशचन्द्र दास गुप्त भी उस समय गांधीजी के साथ शान्तिनिकेतन आये थे।

१९३० में रवीन्द्रनाथ पाश्चात्यदेशों के अपने आखिरी भ्रमण के बाद भारत लौटे। पहला गोलमेज परिषद् उस समय लंदन में चल रहा था। गांधीजी उसमें शामिल नहीं हुए। रविन्द्रनाथ ने उन्हें लिखा कि वे परिषद् में आते तो अच्छा होता, हालांकि परिषद् के नतीजों के बारेमें उन्हें कोई गलत-फहमी नहीं थी।

द्वितीय गोलमेज परिषद् में गांधीजी लंदन गये। जब गांधीजी इंग्लैंड में थे, तब उनका जन्मदिन–२ अक्तूबर १९३१ को–शान्तिनिकेतन में मनाया गया। तब से हर साल वह यहां मनाते आये हैं। उस दिन कवि ने कहा था–"हमें समझना चाहिये कि भारत के मन पर अकर्मण्यता का जो भारी वजन इतने दिनों से पड़ा हुआ है, उसे गांधीजी के शक्तिशाली व्यक्तित्व ने हिला दिया है। भारत भय और आशंका से परास्त हो कर पड़ा था। महात्माजी ने हमारे मन को अपने ही बनाये पराजयभाव से मुक्त किया है। आज हमारे शासक हमसे समझौता करने के लिए उत्सुक हैं, क्योंकि उनके स्वेच्छाधिपत्य की बुनियाद पर ही, जो कि हमारी निष्क्रियता थी, तीव्र प्रहार पड़ा है। आज संसार की संसद् में अपना स्थान पाने की हम मांग कर रहे हैं।"

द्वितीय गोलमेज परिषद् से उनके लौटने के आठ दिन के अन्दर लार्ड विलिंग्डन ने गांधीजी को कारावास में भेज दिया। उस समय अखबारों में रवीन्द्रनाथ का जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ, वह आज भी पढ़ने लायक है।

इसके बाद ब्रिटिश प्रधान मंत्री रामसे मेक्डोनाल्ड् का यह प्रस्ताव आया कि हिन्दुधर्म की तथाकथित दलित जातियों को अलग मताधिकार दिया जाय, जिससे कि भारतीय जनता के और टुकड़े हो जाते थे। यरवदा जेल में से गांधीजी ने घोषणा की कि अगर यह कानून बन जाता है तो वे आमरण उपवास करेंगे। २० सितंबर १९३२ को उपवास शुरू हुआ। शान्तिनिकेतन से चिन्ताकुल कवि पत्र और तार भेजते रहे और आखिर स्वयं पूना के लिए रवाना हो गये। कांग्रेस के नेतागण सब-के-सब उस समय कैद में थे।

आखिर समझौता हुआ और गांधीजी ने अपना उपवास तोड़ा। रवीन्द्रनाथ उस समय उनके पास थे और उन्होंने यह प्रसिद्ध गाना गाया*

जीवन यखन शुकाये याय
करुणा धाराय एसो।
सकल माधुरी लुकाये याय,
गीत-सुधारसे एसो।

कर्म यखन प्रबल आकार
गरजि' उठिया ढाके चारिधार,
हृदय प्रान्ते हे जीवननाथ,
शान्त चरणे एसो।

आपनारे यबे करिया कृपण
कोने प'डे थाके दीनहीन मन,
दुयार खुलिया, हे उदार नाथ,
राज-समारोहे एसो।

*श्री भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा किया हुआ इस गीत का अनुवाद पृष्ठ २३४ पर दिया गया है।

वासना यखन विपुल धुलाय
अन्ध करिया अबोधे भूलाय,
ओहे पवित्र, ओहे अनिद्र,
रुद्र आलोके एसो ॥

१९३६ के शुरू में रवीन्द्रनाथ विश्वभारती के लिये पैसा जमा करने के लिये कुछ विद्यार्थियो को लेकर उत्तर भारत की यात्रा में निकले। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और वे वार्द्धक्य से क्लान्त थे। फिर भी उनको घूमना पडा। कई शहरो की यात्रा करके वे दिल्ली पहुचे। गांधीजी उस समय दिल्ली में थे और एक दिन शाम को कस्तूरबा के साथ कवि से मिलने आये। इस उम्र में उनको पैसे के लिये घूमना पडे, इस विचार से गाधीजी को बहुत तकलीफ हुई। लेकिन जब उन्हे मालूम हुआ कि कवि विश्भारती की आर्थिक स्थिति के बारे में बहुत चिन्तित है, तो दूसरे दिन सुबह वे साठ हजार का एक चेक लेकर आये। यह बिरला ने दिया था। इससे कवि के मन का भार उतर गया।

कवि का स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था। अन्त दूर नही है, यह वे स्वय और बन्धु-मित्र महसूस कर रहे थे। गाधीजी और कस्तूरबा उनसे मिलने के लिये आखिरी बार १८ फरवरी १९४० को आये। इस दफे उन दोनो के बीच कई वार्तालाप हुए, लेकिन "ये इतने व्यक्तिगत और पवित्ररूप के" थे कि उनको कही दोहराया नही गया। गाधीजी ने वापस चले जाने के बाद कहा था—"शान्तिनिकेतन की यह यात्रा मेरे लिये तीर्थ यात्रा थी।"

गांधीजी के शान्तिनिकेतन छोडने के पहले कवि ने उनके हाथ में एक पत्र दिया। उसमें उन्होने यह प्रार्थना की थी कि उनके बाद विश्वभारती का भार गाधीजी सभाले।

१९५१ में विश्वभारती को एक यूनिवर्सिटी का पद प्राप्त हुआ। भारत की राष्ट्रीय सरकार के यह कार्यभार अपने ऊपर लेने के बहुत पहले ही रवीन्द्रनाथ और गाधीजी दोनो इहलोक छोड चुके थे।

आज, धान के खेतों छाया धूप में
लुका छुपी का खेल है,
(अपना लुका छुपी का खेल है !)
सेत घनो में नील गगन में,
कैसी रेलम-पेल है ॥

आज भ्रमर भूला मधु खाना
केवल उड़ता फिरे अजाना
किसके लिये नदी के तट पर
चकवा चकवी मेल है ॥

भभी, जायेंगे घर नहीं आज हम
जायेंगे घर नहीं।
भभी गगन भेद कर
लूट-लाट कर,
घरलेंगे सब यहीं।
जायेंगे घर नहीं ॥

जैसे फेन ज्वार के जल में
वैसे हंसी पवन के छल में,
बजे काज बिन बंसी
दिन ! अपने हाथ नकेल है ॥

—रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मेरे चित्र*

जब मैने आलेखन का आरम्भ किया मेरे मानस में एक अद्भुत परिवर्तन आया और मैं शाखा और टहनियों में, फूलो और पत्तों में विभिन्न विचित्र आकृतियां देखने लगा जैसा कि मैंने कभी भी अनुभव नही किया था। इससे पहले मैंने केवल यही देखा था कि वसन्त आगमन पर पेड़ किस प्रकार फूलो और फलो के अत्यधिक भार से झुक जाता है। लेकिन इस बार वस्तुओं के निहारने में नवीनता थी, एक भिन्न ही दृष्टिकोण था। नवीन दर्शन और और दर्शन में अनुपमता किसने भर दी—यह कला का उदय था। कला ने ही मुझे यह सामर्थ्य प्रदान किया कि मैं दूसरों की भी सहायता कर सकू कि वे यह और वस्तु सौन्दर्य निहार और आनन्द ले सकें। जो कुछ तुम देखते हो, उसका आनन्द लेते हो, इसलिए नही कि प्रचलित भाषा में वह वस्तु सुन्दर है, बल्कि इसलिए कि वह एक नवीन संस्कारचयन है। यही कला है। एक नई वस्तु को देखकर, जिसे तुमने कभी नही देखा, तुम आश्चर्यचकित हो जाते हो। अतः प्रकृति के किसी रूप से प्रत्यक्ष तादात्म्य ही आनन्द का स्रोत है, और यही कला है।

× × × ×

वास्तव में मैं अपने चित्रों का आधार और हेतु ही नही समझता। वे मुझे काल्पनिक मूर्तियों की उड़ान और उनके रंगीले नृत्य की भांति लगते हैं। रूप, आकृतिवाला यह जगत्, मुझे ऐसा लगता है कि सृजनहार की रेखा और रंग के सुसंयोजन से एक स्वप्न जगत् की कल्पनामात्र ही है। वसन्त में पलास लाल और काले रंग के सुमेल का लेकर प्रस्फुटित होता है। कलों को खिलने की प्रेरणा कहां से मिलती है—कोई नही जानता। सभी इन भेदों से अनभिज्ञ हैं। कोई यही कहेगा कि सृजनहार की कूची का ही यह सब स्वतःसिद्ध चमत्कार है। कामरू और धवल कली पलाश से इतनी भिन्न क्यों है? विचित्र और काल्पनिक जगत् के अज्ञात हृदय से निरन्तर विविध रूप प्रकट हो रहे हैं, विश्वकर्मा भी इस लीला के लिए निरन्तर है। इसी प्रकार मेरे चित्र अर्थहीन हैं। विविध आकृतिमय गहन आनन्द की रूपलीला का यह प्रत्यक्ष भाव दर्शन है। इस गहन आनन्द का कुछ अंश दर्शक समीक्षक के मस्तिष्क में स्थानान्तरित करना सम्भव होता तो क्या ही अच्छा होता! यदि ऐसा न भी हो तो चिन्ता की क्या बात है? स्रष्टा की सृष्टि का वर्णन सर्वथा असम्भव है। सर्वत्र और सर्वस्व आनन्द का ही प्रकाशन है।

(एक पत्र से उद्धृत)

× × × ×

अब सत्तर वर्ष का होने को आया हू। जीवन की इस अवस्था में यह अनुभव करने लगा हू कि गत ३० वर्षों में जो अथक प्रयास किया है उससे एक ठोस बुनियाद रखी जा चुकी है। मैंने कोई चित्र नही बनाया और न कोई चित्र बनाने की कल्पना की। अकस्मात् विस्फोट

हुआ और दो-तीन वर्षों में मैंने अनेक चित्र बनाए । कुछ चित्रों की तो कला पारखियों ने दाद दी है । निःसन्देह ये ही स्वतः अपने अर्थ का स्पष्टीकरण करेंगे ।

× × × ×

जब कि मेरी जीवन-पुस्तिका के विभिन्न परिच्छेद समाप्त होने को हैं, मेरे जीवन अधिष्ठाता नें मुझे उपसंहार लिखने का भी अवसर प्रस्तुत किया है ।

(एक पत्र से)

× × × ×

युगान्तर ने मेरे चित्रों के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित किया है, जिसका आशय मैं आज भी नहीं समझ पाया हूं । मैं तो यह समझता हू कि आत्म-अभिव्यक्ति के रूप में जो मेरा अद्यतन साहस है, उसके रहस्यों को स्पष्ट समझने में सफल नहीं हुआ हू । समय की बलिहारी कि एक बार मैंने भी चित्रांकन शुरू किया । अवनीन्द्रनाथ और नन्दलाल को काम करते समय देखा करता था । वे पूर्व-संस्कार तो मेरे पास थे ही । लेकिन जो कुछ भी मेरे द्वारा प्रकट हुआ वह सबकुछ बगैर किसी पूर्व आयोजित सूचना के हुआ ।

* शान्तिनिकेतन के रवीन्द्रभवन के प्रमुख श्री क्षितीश राय ने गुरुदेव के निबन्धों और पत्रों में से उनकी अपनी चित्रकला के बारे में जो कुछ मिला है, उसका बड़ा संकलन किया है । श्री क्षितीश राय के सौजन्य से उसके कुछ अंश हमें प्राप्त हुए हैं । उपरोक्त मंतव्य उसी में से चुनकर दिये जा रहे हैं ।
—सम्पादक

कला द्वारा सनातन-एकता का दर्शन

सही बात तो यह है कि सुन्दर कला के सम्बन्ध में हमारा देश अभी भी बहुत कम जानकारी रखता है । युवा-अवस्था में कला-पारखी बनने का कोई शिक्षण हमें नहीं दिया जाता । हमारे कला समीक्षक सदैव ख्यातिप्राप्त विदेशी कलाकारों के उदाहरण ही प्रस्तुत करते हैं । इन कला समीक्षकों की बातें मैं कुछ कम समझ और जान पाता हू । इनकी आलोचना गलत सूचनाओं पर आधारित होती है । क्योंकि, काफी लम्बे समय तक उनको चित्रों को देखने और परखने का अवसर ही नहीं मिलता । हमारा साहित्यिक परिचय दीर्घकालीन है । अतः इसमें नूतन स्फुरण की आवश्यकता है । चित्र चित्र ही हैं, चाहे वे बाइजनटाइन काल के हों अथवा अजन्ता शैली के । उनमें चाहे प्रेरक गुण हों अथवा नहीं, कला के प्रति हमारा दृष्टिकोण मजा हुआ होना चाहिए । अपने देश में हमें कला के प्रति अभिरुचि, रसास्वादन और समीक्षात्बुद्धि विकसित करनी है । जनता जनार्दन में कला को अपना उचित स्थान प्राप्त करना है ।

× × × ×

चित्र क्या है ? यह रंग और आकृतियों के सुसंयोग का प्रकटीकरण है । मानवीय एकता के बावजूद चित्रांकन की शैली में विविधता हो सकती है । जैसे कि एक देश से दूसरे देश में रूप, आकृति और लक्षण भेद पाया जाता है । एक कलाकार से दूसरे कलाकार की व्यक्तीगत शैली में भी भिन्नता हो सकती है । प्रत्येक का अपना दृष्टिकोण और चित्रांकन की एक विशेष विधि होती है । लेकिन, यही सर्वस्व नहीं है । महत्वपूर्ण बात तो यह है कि भाषा और शैली की विविधता के माध्यम से भी मानव सनातन को प्रकट करने का इच्छुक है । इसीसे मानव में भी सनातन एकता का दर्शन होता है ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दिनकर कौशिक

चित्रकार रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ आज के भारतीय कला क्षेत्र में एक अद्वितीय विभूति हैं। कला-जगत् में उनके आकस्मिक आविर्भाव में न तो परम्परा की शृंखला है और न फैशन का पहराव। वे स्वयंभू हैं, अन्तरतल से निकला हुआ वह दुर्दम स्रोत जिसकी सृजन शक्ति परम्परा, कालमान समय की रुचि आदि को एक साथ भेद करते हुए आगे बढ़ती रहती है। ऐसा लगता है कि जैसे उनका रक्त-स्पन्दन एक आदिम कलामय छन्द के साथ लयबद्ध था। इसलिए शायद उनकी कविता उनका संगीत, उनका दर्शन व राजकारण, और उनकी पोशाक बल्कि उनका तेजमय रूप भी उस छन्द के एक एक अंग बन गये थे।

जब उन्होंने चित्रकला के क्षेत्र में काम करना शुरू किया तब वे साठ साल के प्रथित यश, विश्व के मान हुए कवि और दार्शनिक के रूप में पहचाने जाते थे। लेखनी पर उनका असामान्य अधिकार था। शब्दों की ध्वनि में वे अद्भुत दुनिया बसा सकते थे। संगीत में भी उन्होंने असंख्य प्राणवान गीतों को प्रस्फुटित किया था। पर चित्रकला की परिधि पर उनका यह हठात् "आक्रमण" बिलकुल अनूठा था। कला की तकनीक में उन्हें किसी प्रकार की न तो शिक्षा मिली थी और न वे उसमें 'दक्ष' थे। सुधारते समय अक्षरों को काटने के लिए अनजाने उनकी कलम चल जाती थी। उनकी वे रेखाएं चलते-चलते किसी स्वयस्फूर्त छंद से बंध जाती थीं। वह छंद था स्वाभाविक शान्त जलाशय में कंकड़ फेंकने के बाद होने वाले आवर्तों जैसा। इन रेखा छंदों के जटिल द्वीप, उन्हें अपनी हस्त लिपि में जगह जगह दीख जाते थे। शब्दों के सागर के बीच वे अपने अस्तित्व का घोष करने लगे।

इस रेखा विभोर रूपजगत की प्राणशक्ति उनको बेचैन करने लगी। धीरे धीरे कविताएं
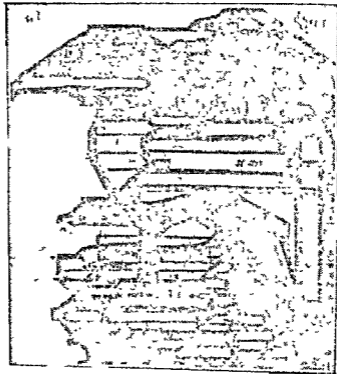
कविता लिखते समय काट कूट करने के बाद बना हुआ चित्र।

लिखने के साथ-साथ वे अलग से कागज पर सिर्फ चित्र बनाने के उद्देश्य से कुछ करने लगे। रूप-स्रोत बहने लगा। किसी आन्तरिक प्रेरणा से उनसे चित्र के बाद चित्र बनने लगे।

ऐसे आदिम-असम्भाव्य प्राणियो की शक्लों के चित्र बनने लगे जो अपने जीने का अधिकार तो रखते थे, पर शायद इस स्थूल जगत् के किसी शाप के कारण अपने इस अधिकार से वचित बन बैठे थे। किन्तु उनके प्राणवान् हो जाने की सम्भावना को कलाकार ने समझ लिया था। उसने अपनी तूलिका और रगो की क्रिडा से उनको शरीर देकर शापमोचित किया। इस प्रकार उनके चित्रो में प्रागैतिहासिक, प्राग्-मानसिक, प्राग्-त किक जीवो का दर्शन होता है।

एक "आदिम-असम्भाव्य प्राणि" का चित्र

स राच का चोगा उतार उन्होने तरह तरह के रगा स चित्र बनाये।

रवीन्द्रनाथ जब कमर बाधकर चित्र बनाने में लगे थे, उन दिनो भारतीय कला का वातावरण अवनीन्द्रनाथ के कोमल अभिजात और कवित्वपूर्ण चित्रो से अभिभावित था। अवनीन्द्रनाथ तब पहुचे हुए कलागुरु थे। उनकी प्रसिद्ध अरेबियन नाइटस, मेघदूत, कचदेवयानी आदि तस्वीरे भारत के शिक्षित घरो में परिचय पा रही थी। उनकी वाश पद्धति और जलरगो का उपयोग सर्वत्र अपनाया जा रहा था। उन्होने राजपूत, मुगल, अजता, जापान आदि शैलियो से अनेक गुण अपनाए थे। रवीन्द्रनाथ स्वय चित्रकला के इस युग को अवनीन्द्र-*युग के नाम से सबोधन करते थे*, और उसे वही सज्ञा देकर प्रोत्साहित करते थे। लेकिन जब वे खुद कलम और रग आदि आयुधो से सुसज्जित होकर रूपजगत् में "हर हर महादेव" करते हुए प्रविष्ट हुए तब उनका सचेत मानस, सवर्धित रुचि, और कला की ऐतिहासिक दृष्टि उनकी प्रतिभा की बाढ के सम्मुख कहा के कहा बह गई। उनकी कृतियो में दुर्दम आवेश था। उनका प्रत्येक प्रतीक-प्रतिछाया उनके मानसिक शिलाखण्ड में से खोद कर निकलता हुआ रूपायित होता है। इन आकारो और रूपो में दृश्य-जगत् का मनोहारी सौंदर्य नही दीखता। इनमें स्त्री पुरुषो के चेहरे अपने कागजी अस्तित्व के भीतर मानव की आदिम विद्यमानता का दर्शन कराते है।

रवीन्द्र-चित्रित स्त्री स्थूल शरीर में हमारे सामने आए तो निश्चित ही हमें अच्छा नही

लगेगा। हम आंख हटा कर एक तरफ हो जायेंगे। लेकिन वह एक चित्र में अद्भुत अनुभव का प्रदान करती है। जब हम उसके साथ आंख मिलाते है तो ऐसा लगता है कि जैसे एक प्रकाश स्रोत में किसी प्राण से भेंट हो रही है। यह प्राण है; इसमे अनुकरण नही है। है मात्र अन्वेषण। रेखा अपनी आन्तरिक गति से रूपायित होती है। रेखाओ के स्नायू नाडिओ जैसे स्पंदित होते हैं।

रवीन्द्रनाथ तो आधुनिक कलाजगत् की एक विरली घटना है। वे "न भूतो न भविष्यति" प्रकार के है। न रूढी न फैशन, न अनुकरण। इतना होते हुए भी उनका छंद काल की गति के साथ अनुरणित था। उनके समकालीन युरोपीय चित्रकारो का काम उन्होंने अपने अनेक प्रवासो में देखा हुआ था। उन कृतियों में होनेवाली स्वतन्त्रता-दृष्टि का तर्क सन्यास, रग रेखाओ का महात्म्य और चित्र जनित प्राणतत्व का गौरव-इन बातों को उनकी सजग चेतना जरूर देखती होगी। काण्डीसकी, पॉलक्ली, नोलदे, ब्रांकुसी, आदि कलाकारो के चित्र और चित्र विषयक विचार उनको सनातन रूढिग्रस्त चित्रकारो से बंध-मुक्त होने में कम-बेशी काम आये होंगे।

कुछ भी हो। रवीन्द्रनाथ इन सब अनुभवों के ऊपर उठकर एक ऐसी रगरेखा-सृष्टि खडी कर सके कि जिसे शुरू में उनके समकालीन भारतीय प्रेक्षक समझ नही पाए। उसे एक महाकवि की अधकचरी विलक्षणता मान कर "क्षमस्व" सोचने लगे। पर आज उनकी मृत्यु के पूरे बीस साल बाद जगत् के कलाविद् उन जटिल-रग रूपो को एक महान् कलाकार की आगे आनेवाले काल की कृतियो की हैसियत से देखने लगे है। उनके चित्रजगत् की आधुनिकता देखकर ऐसा मालूम होता है कि भारत के वे एकमात्र सच्चे आधुनिक कलाकर हुए हैं। भारत में उनके समकक्ष इस वर्तमान काल में कोई नही हुआ है।

जब हमारे नवोदित कला-समीक्षक मेरे चित्रों का विश्लेषण करते है और उनकी शैली तथा रंग-बुद्धि की ओर संकेत करते हैं तो मेरी कुछ समझ मे नहीं आता। उनमे से कुछ इस बात मे सहमत हैं कि कला मे मेरा नया प्रयोग और नवीन दृष्टिकोण है। लेकिन मैं उससे भी अनभिज्ञ हूं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

काशीनाथ त्रिवेदी

सुभग मिलन की एक झांकी

देश में सम्पूर्ण स्वातत्र्य की आकाक्षा जोर पकड रही थी। गाधीजी देश के कोने-कोने में घूम-घूम कर देश की जनता को स्वतत्रता के लिए जगा रहे थे। लोकहृदय आन्दोलित हो रहा था। उत्तर प्रदेश की अपनी लम्बी यात्राए पूरी करके बापू अभी आश्रम में लौटे ही थे। १६२९ के जाडो का जमाना था। साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में एक दिन हमें पता चला कि अपनी लम्बी विदेश यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पहले आज गुरुदेव आश्रम में पधारने वाले हैं। तब तक मैंने गुरुदेव का नाम ही सुना था। उनकी कुछ रचनाए पढी थी। पर उनके दर्शनो का लाभ नही मिला था। मन में सहज ही एक उत्सुकता जागी। एक कुतहल जन्मा। जिनकी कविताए पढी है, जिनकी कहानियो ने हृदय के तारो को छुआ है जिनके उपन्यासो का जीभर रसास्वादन किया है, जिनके महान व्यक्तित्व की चर्चाए सुनने को मिली हैं, वे स्वय आज आश्रम परिवार को दर्शन देनेवाले हैं, इसकी खुशी हम सबके दिलो में थी। मेरे दिल में तो थी ही।

बापू उन दिनो स्वर्गीय श्री मगनलाल भाई गाधी के घर में, उनके परिवार के साथ रहते थे। सुबह से शाम तक का उनका सारा समय वहीं बीतता था। रात सोने के लिए वे "हृदय-कुज" में आ जाते थे। उस दिन आश्रम में गुरुदेव और बापू का प्रथम मिलन मगनलाल भाई के घर पर ही हुआ। सयोग से और सौभाग्य से जिस समय गुरुदेव बापू से मिलने पधारे मै वही था। गुरुदेव के प्रथम दर्शन की वह भव्य झाकी मेरे मन में कुछ इस तरह बस गई है कि इन बत्तीस वर्षों के अन्तर के बाद भी मुझे ऐसा लगता है, मानो उन्हे आज भी अपनी उस धीर, गम्भीर और प्रसन्न चाल से बापू के निवास की ओर बढते देख रहा हू। देह पर लम्बा, काला ऊनी चोगा, ऊचा कद, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, सिर और दाढी के लहराते बालो की श्वेतछटा, मधुर कठ, प्रेमरस में भीगी आखें, मोहक व्यक्तित्व, नम्र निरभिमानी स्वभाव, इन सब ने मिलकर उस दिन उस घडी आखो और कानो के लिए नई मेजवानी ही खडी कर दी। गुरुदेव के बारे में जो कुछ सुना पढा था, प्रत्यक्ष में उन्हे उससे सवाया पाकर मन मुग्ध हो उठा। मन ही मन उनकी उस विभूति की वन्दना करके हम दूर से उन्हे देखते सुनते रहे।

कुछ समय तक गुरुदेव और गान्धीजी के बीच गम्भीर चर्चाए चलती रही। हम लोग नजदीक के बरामदो में खडे गुरुदेव के बाहर आने की बाट जोहने लगे। उस प्रतीक्षा का भी अपना एक अनूठा आनन्द था। इस बीच हमें पता चला कि चर्चा के बाद आश्रम की प्रार्थना भूमि में आश्रम परिवार की ओर से गुरुदेव का स्वागत होगा और वही गुरुदेव की अमृत वाणी

सुनने का लाभ भी हमें मिलेगा। सहज ही इस समाचार से मन को बड़ी प्रसन्नता हुई। हमारी उत्सुकता और भी बढ़ी। हम अधीर भाव से उस क्षण की बाट जोहने लगे, जब गुरुदेव की अन्तर्राष्ट्रीय विभूति का लाभ लूटने का अवसर हमें मिलनेवाला था।

मुझे अच्छी तरह याद पड़ रहा है कि उस दिन बापूने गुरुदेव के स्वागत का विशेष आडम्बरवाला कोई आयोजन नहीं किया था, यद्यपि उस दिन आश्रम में सम्भवतः गुरुदेव का वह पहला ही पदार्पण था, और वही अन्तिम भी सिद्ध हुआ। ऊपर आसमान, नीचे धरती, धरती पर साबरमती की महीन मुलायम रेत का गुदगुदा बिछौना, आसपास प्रकृति की अपनी सौम्य सुभग छटा, निकट ही साबरमती की मन्द मधुर धारा का अविरत प्रवाह, डालों पर पक्षियों की हलकी चहचहाट और शान्त एकांत वातावरण। स्वागत की यही सब सहज सामग्री थी। प्रार्थना भूमि के बीचोंबीच गुरुदेव के लिए एक छोटा तख्त बिछाया गया था। जब उन दो महान् विभूतियों के बीच की गम्भीर चर्चाएं समाप्त हुईं और गुरुदेव के स्वागत का समय समीप आया तो बापू गुरुदेव को आगे करके अपने निवास से निकले और प्रार्थना भूमि पर पहुंचे। आश्रम परिवार ने खड़े होकर हाथ जोड़े और शान्त प्रसन्न भाव से गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया। बापू ने गुरुदेव से निवेदन किया कि वे अपना आसन ग्रहण करें। आरती, कुंकुम तिलक और हाथकते सूत की माला, ये तीन ही उस भावभरे स्वागत के उपकरण रहे। अकेले गुरुदेव मंच पर बैठे। बापू मंच से कुछ हटकर दाहिनी तरफ प्रार्थना भूमि पर बैठ गए। सामने सारा आश्रम परिवार बैठा। आश्रम के संगीताचार्य स्वर्गीय श्री नारायण मोरेश्वर खरेजी ने अपने भाव विभोर कण्ठ से गुरुदेव के स्वागत में एक मधुर भजन गाया। वातावरण भजन की उस मस्ती से भर गया। कुछ क्षणों के लिए सारा समाज शान्त और स्तब्ध हो गया। सब सदस्यों की निगाहें गुरुदेव की ओर थीं। कान उन्मुख थे। मन अभिमुख थे। गुरुदेव अपने कोमल कण्ठ से कुछ कहें और हम सब सुनें, यही हममें से हर एक की भावना थी। बापू ने आश्रम परिवार की ओर से गुरुदेव का आन्तरिक स्वागत किया और इस बात पर अपना हर्ष प्रकट किया कि गुरुदेव आश्रम पधारे हैं। बापू की विनती पर गुरुदेव ने आश्रम परिवार के सामने उस जमाने की स्थिति को ध्यान में रखकर अपने मन की कुछ बातें शान्त गम्भीर भाव से कहीं। अन्त में सबकी भावना का विचार करके गुरुदेव ने अपने मधुर कण्ठ से अपनी एक रचना भी सुनाई। उसका स्वर तो आज भी कानों में ही गूंजता सा लगता है, पर उसके बोल ध्यान में नहीं हैं। यदि उस समय अन्दाज होता कि कोई ३२ सालों के बाद इस पावन प्रसंग को लेकर गुरुदेव की जन्म शताब्दी के निमित्त से दो शब्द लिखने का अवसर मिलेगा, तो शायद उन बोलों को उसी समय लिख लेता और आज उन्हें यहां दोहरा देता। समय तो चूक ही चुका है। अब पछताने से लाभ भी क्या? अब तो क्षमा ही मांगी जा सकती है।

आश्रम परिवार के बीच गुरुदेव के इस स्वागत की जो एक अमिट छाप मेरे मन पर रह गई है, वह है, बापू की अपार नम्रता की। बापू अपने समय के सबसे बड़े सजग साधक

थे और मर्यादा पुरुषोत्तम भी थे। हर जगह, हर प्रसग में उनका यह रूप निखर आता था। वे अपने को अपने बडो का भक्त और दासानुदास मानते थे। बडो की मर्यादा की रक्षा में वे अपनी ओर से पूरे दक्ष, सजग और तैयार रहते थे। गुरुदेव को मच पर बैठाकर बापू प्रार्थना भूमि की रेत पर सबके साथ सहज भाव से बैठे. इसमें मुझे उस समय भी उनकी महानता के दर्शन हुए थे। आज भी उस प्रसग का वह अहोभाव मेरे मन पर छाया हुआ है। सारा व्यवहार इतना सहज हुआ कि और किसी को उसमें कुछ लगा हो, चाहे न लगा हो, पर वह सहजता ही मेरे मन प्राण को कुछ इस तरह छू गई कि मैं मन ही मन अपने समय की इन दो महान विभूतियों की इस रीति पर मुग्ध हो उठा।

३२ साल पहले के उस भव्य दिव्य दृश्य का आज जहा तहा दीखनेवाले दृश्यों के साथ मेल बैठाने की बात जब भी सामने आती है, तो दोनों में जमीन आसमान का फर्क दीख पडता है। आज तो बडो और छोटो के बीच की सारी मधुर मर्यादाएं लुप्त होती जा रही हैं, और नम्रता, विवेक, विनयशीलता, शिष्टता और मर्यादा का स्थान उद्दण्डता और स्वच्छंदता ले रही है। अब अग्रजों और अनुजों के बीच श्रद्धा, भक्ति, सदाचार, स्नेह और सौजन्य के दर्शन क्वचित् ही हो पाते हैं। सारा वातावरण स्पर्धा, श्रद्धा, अनादर, क्षुद्रता, कुत्माकटुता, उपहास और क्लेश से सकुल होता जा रहा है। राम कृष्ण से लेकर गुरुदेव और गान्धी तक इस देश में मनवीय व्यवहारों की जिस पुण्य पावन परम्परा का पोषण सवर्धन हुआ, वह परम्परा आज हमारी अपनी आखो के सामने ही निर्ममता और निर्लज्जता से रौंदी कुचली जा रही है। और हम हैं कि निरुपाय भाव से अपने आज के लोकजीवन की इस करुणान्तिका को दख सह रहे हैं। गुरुदेव और गाधी के मिलन की यह पुण्य कथा हमें अपने स्वरूप और स्वधर्म के प्रति तनिक भी सजग बना पाए, तो परम कारुणिक भगवान की आज के दिन हम पर बड़ी ही कृपा हो।

"से" नाम की पुस्तक से

आचार्य स० ज० भागवत

व्यक्तित्व का विकास

रवीन्द्रनाथ निर्मित, १८९५ के आरंभ में प्रकाशित किए गए "चैतालि" नामक काव्य-संग्रह में "स्नेहग्रास" और "वगमाता", ये दो कविताएं मिलती हैं। इस समय रवीन्द्रनाथ की वृत्ति राष्ट्रोद्धार के सबध में कुछ प्रत्यक्ष कार्य करने की दिशा में बनती जा रही थी। पद्मा नदी के किनारे अपने जमींदारी के देहात में रहते उन्हे प्रत्यक्ष समाज का सपूर्ण दर्शन हुआ था। समाज की साधारण जनता का लाचारी का जीवन देखकर उनके दु खी हृदय की पीडा असह्य हो गई थी। सारा समाज विवेक रहित बन्धन से घिरा हुआ, दरिद्रता से पीडित और सपूर्ण पुरुषार्थहीन हो गया है, ऐसा उन्होंने अनुभव किया। उन्हे लगा कि समाज को जागृत करने के लिए नई शिक्षण-प्रणाली का निर्माण करना चाहिए। उसी भावना में से "शांतीनिकेतन" की प्रसिद्ध शिक्षण सस्था का उदय हुआ। इसके कुछ साल बाद उनकी इस शिक्षण सस्था की परिणति "विश्वभारती" नाम से आज सर्वत्र प्रसिद्ध विद्यापीठों में हुई। "स्नहग्रास" और "वगमाता", इन दोनों कविताओं में उनकी शिक्षण विषयक दृष्टि सुन्दर ढग से प्रकट हुई है, ऐसा हम देखते हैं।

बाल-विकास की प्रक्रिया : जन्म लिए हुए हर एक बालक बालिका का जीवन प्रयोजन क्या होता है ? बालक का अपना व्यक्तित्व होता है और उसके व्यक्तित्व के विकास में कोई भी सस्था बाधक न हो, यह आधुनिक शिक्षाशास्त्र का सर्वोत्तम सिद्धात है। रवीन्द्रनाथ ने यह सिद्धान्त पहली कविता में सुदर ढग से व्यक्त किया है। बालक का सबध अपने माता-पिता से आता है। 'जन्म देना" यह क्रिया निसर्ग-निर्मित होते हुए भी, जो बालक पैदा हुआ है, उसका पालन अत्यन्त विचारपूर्वक करना पडता है। अगर माता-पिता को यह सस्कार न मिला हो तो बच्चों के प्राथमिक विकास में ही अनेक प्रकार की विकृतिया पैदा हो जाती हैं। छोटे बालक एक तरफ से तो अपने माता पिता के प्यार पर अवलम्बित रहते हैं, पर दूसरी तरफ उनके जीवन की अनेक प्रेरणाए स्वतत्रता के साथ विकसित होने के लिए अस्थिर हो जाती हैं। माता अपने गर्भ में बढनेवाले बालक को जन्म के द्वारा अपने गर्भरूपी कारागार से मुक्ति देती है। लेकिन शिशु जनमते ही वह अपने स्नेहरूपी कारागार में उसे फिर से जकडने का अध प्रयत्न शुरू करती है। माता के दिव्य प्रेम के गीत जैसे गाये गये हैं, उसी तरह माता की मायारूपी अधता का भी दर्शन किया जा रहा है। अधप्रेम अपने समाधान के लिए बालक के व्यक्तित्व को ग्रास कर लेने जैसा है। जो प्रेम स्वय को भूल नहीं सकता वह प्रिय वस्तु का विनाश ही करके रहता है। प्रेम की सुदरता स्वय को भूलकर "प्रिय वस्तु के विकास के लिए स्वार्थत्याग के लिये तैयार रहना", इसी में है। जीवन भर के

लिए बालक अपने ही पास रहे, यह केवल अपने अहंकार की ही पूजा करना है। बालक अपने शरीर का एक हिस्सा ही है, इस धारणा को लेकर उसका इस्तेमाल करना एक प्रकार की "बाजारनीति" ही है। बालक के जन्मदाता होते हुए भी, उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र-विकास होने देने में ही माता-पिता का श्रेय सिद्ध होता है। बालक अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, इस तरह न सोचकर अपने पास आई हुई मूल्यवान देन है, इस व्यापक वृत्ति के जरिए हरेक पालक को चाहिए कि वे अपने बालकों का पालन-पोषण करे। क्योंकि प्रत्येक बालक रवीन्द्रनाथ के कहे अनुसार—

"निजेर से, विश्वेर से, विश्वदेवतार।" वह खुद का है, विश्व का है, वह विश्वदेवता का है।

व्यक्ति और सामाजिक संस्था

बालकों के जन्मदाता मातापिता के अंधप्रेम से यदि उनका संरक्षण होता है तो उनके विकास का मार्ग सरल बन जाता है। लेकिन मातापिता के सांसारिक आसक्ति के बंधनो जैसे हो समाज के सांस्कृतिक आचार विचार के बंधन भी कोई कम बाधक नही होते। व्यक्ति को अपने शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक विकास के लिए दूसरे अनेक व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। इसी कारण अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ है। सच देखा जाय तो विवाहसंस्था, अर्थोत्पादन के विविध उद्योग, राज्यसंस्था इत्यादि अनेक प्रकार की सामाजिक संस्थाएं समाज के सभी व्यक्तियो का विकास ठीक ढंग से हो, इसी धारणा को लेकर चलनी चाहिए, तथापि संस्था के नानाविध नीतिनिर्बन्ध युगो से व्यक्ति को और व्यक्ति समूह को बाधक हुए है। समाज का साध्य भी "व्यक्ति का विकास" ही मानना चाहिए। इसीलिए व्यक्ति से समाज का और समाज से व्यक्ति का परस्पर हित बढता जाये, ऐसी वृत्ति का विकास अपने जीवन में करना चाहिए। व्यक्तित्व विकास का अर्थ स्वार्थविलास नही है। समाज याने संबंधित व्यक्ति व्यक्ति के बीच का संबंध न्यायाधारित होना चाहिए। न्याय मांगनेवालों को चाहिए कि वे भी अपनी तैयारी ऐसी रखें कि दूसरे को न्याय दे सके। खास समय आने पर अपने सुख का त्याग करने की तैयारी प्रत्येक इन्सान को नम्रता से करनी चाहिए। "हर व्यक्ति स्वयं के लिए है" इसका विस्तारपूर्वक अर्थ किया जाय तो समाज के सब व्यक्ति सभी व्यक्तियो के लिए है, यह ज्ञात हो कर ही रहेगा। इस ज्ञान को ही न्यायभावना कह सकते है। लेकिन न्यायभावना की प्रस्थापना होने के लिए जीवन में विश्वप्रेम की भावना स्थिर होनी चाहिए। क्योंकि, विश्वप्रेम की अनुभूति से ही दूसरों के लिए त्याग करने की वृत्ति का उदय हो सकता है। इससे व्यक्ति-विकास की अंतिम सीढी विश्वप्रेम तक जा सकती है। यही सच्चा व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व के एक बाजू यानी उसके वैचित्र्य को सम्हालते हुए भी उसके दूसरे बाजू को एकरूप हो जाना पडता है। "हर एक व्यक्ति स्वयं के लिए है, विश्व के लिए है और विश्वेश्वर के लिए" रवीन्द्रनाथ के इस वचन का यही अर्थ है।

विश्वात्मक संस्कृति की कल्पना

गुरुदेव का सारा जीवन-विचार आध्यात्म पर अधिष्ठित होते हुए भी गुरुदेव का आध्यात्म

जीवन को अलग करने वाला नहीं है। जीवन में ईश्वर का वास है, इस अनुभूति को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अपने विशाल साहित्य का निर्माण किया। रवीन्द्रनाथ की शिक्षण-पद्धति में भी इसी जीवन-दर्शन को प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने की निरंतरता दीख पडती है। शिक्षा जीवन की साधना होनी चाहिए। जीवन का कोई भी अंग शिक्षा से डावांडोल न हो पावे। शिक्षण के जरिए प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन मे विकास की रुची निर्माण होनी चाहिए। और विकास करने के लिए हर प्रकार का परिश्रम करने की उसकी तैयारी भी होनी चाहिए, ऐसा रवीन्द्रनाथ मानते थे। मानवता का विकास हर व्यक्ति मे हुए बिना वर्तमान जीवन को कुरुपता का अत नहीं हो सकता। जीवन का सौन्दर्य प्रकट होने के लिए समाज के अंतःकरण की सपूर्ण विष-वृत्ति का निराकरण होना ही चाहिए। जाति-भेद, वर्ग-भेद, भाषा-भेद, धर्म-भेद, राष्ट्र भेद और इसी प्रकार के अन्य भेदों के कारण मनुष्य का जगह-जगह पर गतिरोध होता जा रहा है। उसके सभी प्रयत्न शका और भय पर आधारीत हो रहे हैं। मनुष्य के अतःकरण की यह सकुचितता का रोग निर्मूल किए बिना उसका जीवन आरोग्यमय हो नही सकता। रवीन्द्रनाथ का आध्यात्म स्वाभाविक ही विश्व ऐक्य और बधुत्व पर आधारित है। सकुचित अहकार ने रवीन्द्रनाथ के चित्त को कभी भी स्पर्श नही किया। उनकी संस्कृति की कल्पना ही विश्वात्मक है, जो बाद में विश्वभारती के द्वारा दुनिया के समुख प्रगल्भ रूप में प्रस्तुत की गई। उनकी इस कल्पना के बीज, उनके साहित्य में आरंभ से ही दिखाई देते हैं। "वग माता" कविता में सात कोटि वंगाली भाई केवल वगाली बनकर हो न रहें, सपूर्ण मानव बनें ऐसी अभिलाषा रवीन्द्रनाथ ने व्यक्त की है। ऐसा दीख रहा है कि स्वातत्र्यप्राप्ति के बाद भारतीय जीवन में अनेक तरह के संकुचित विचारों के प्रवाह निर्माण हो रहे हैं। आधुनिक विज्ञान के द्वारा निर्मित "एक जगत" की भावना के बावजूद दुनिया में जगह-जगह पर क्षुद्र विचारों की संघटना अपना सिर उठाती हुई दीख रही है। यथा जातीयता, प्रातीयता इत्यादि सकुचित वृत्तिया इस भारत में भी बढेंगी, ऐसा भय उत्पन्न हुआ है। भय का जन्म दुर्बलता से होता है। सुख दु.ख से सघर्ष करते हुए चित्त प्रसन्न रखने की कला मनुष्य को सीखनी चाहिये। समाज को यह कला सिखाने का काम शिक्षक वर्ग का ही है। रवीन्द्रनाथ ने भारत को जो मानव प्रेम का यह सदेश दिया है, भारतीय शिक्षण सस्थाओ को राष्ट्र क सामाजिक जीवन मे उसे फैलाने की जिम्मेवारी उठानी चाहिये।

स्नेहग्रास

अन्ध मोहबन्ध तव दाओ मुक्त करि—
रेखो ना बसाये द्वारे जाग्रत प्रहरी
हे जननी, आपनार स्नेह-कारागारे
सन्तानेरे चिरजन्म बन्दी राखिबारे।
वेष्टन करिया तारे आग्रह-परशे,
जीर्ण करि दिया तार लालनेर रसे,
मनुष्यत्व-स्वाधीनता करिया शोषण
आपन क्षुधित चित्त करिबे पोषण ?
दीर्घ गर्भवास हते जन्म दिले यार
स्नेह-गर्भे ग्रासिया कि राखिबे आबार ?
चलिबे से ए ससारे तव पिछु पिछु ?
से कि शुधू अंश तव, आर नहे किछु ?

निजेर से, विश्वेर से, विश्वदेवतार,
सन्तान नहे गो मात, सम्पति तोमार ।

अपना अधमोह बधन तू मुक्त कर दे । अपने स्नेह के कारागृह में बालक को जीवन-भर बदी बनाकर रखने के लिए द्वार पर द्वारपाल न बिठा । आसक्ति के स्पर्श से घेरकर लालन रस से जीर्ण करके, उनके व्यक्तित्व के स्वातंत्र्य का शोपण करके क्या तू अपने भूखे चित्त का पोषण करेगी ? जिन्हे तूने दीर्घ गर्भवास के बाद जन्म दिया, उन्हे ही तू फिर से स्नेह के गर्भ में ग्रास लेगा? क्या इस ससार में अब वे तेरे पीछे पीछे चलेंगे; वे क्या केवल-तेरा ही अश है । हे माता, सन्तान तेरी सपत्ति नही है ।

वंग माता

पुण्ये पापे दु खे सुखे पतने उत्थाने
मानुष हइते दाओ तोमार सताने
हे स्नेहार्त वगभूमि, तव गृहक्रोडे
चिरशिशु करे आर राखियो ना धरे ।
देशदेशान्तर माझे यार येथा स्थान
खुजिया लइते दाओ करिया सन्धान ।
पदे-पदे छोटो छोटो निषेधेर डोरे
बेंधे बेंधे राखियो ना भालोछेले करे ।
प्राण दिए, दु ख स'ये, आपनार हाते
सग्राम करिते दाओ भालोमद-साथे ।
शीर्ण शान्त साधू तव पुत्रदेर धरे
दाओ सबे गृहछाडा लक्ष्मीछाडा क'रे ।
सात कोटी सन्तानेरे, हे मुग्ध जननी,
रेखेछ बाङालि करे मानुष कर नि ।

हे स्नेहार्त्त भूमि, अपने बच्चो को पाप-पुण्य में, सुख-दु ख में उत्थान-पतन में बडे होने दो, अपनी घररूपी गोद में चिरकाल के लिए बच्चा बनाकर मत रखो । देशदेशान्तर में जिसका जहा स्थान हो उसे ढूढने दो । पगपग पर क्षुद्र निर्वन्धो के फन्दो से बाधकर उसे "भोला बच्चा" बनाकर मत रखो । जी-जान से, दु ख सहन करके स्वय अपने क्षीण शात गुणी बच्चो को गृहहीन, भाग्यहीन, बना रही हो । हे मोहग्रस्त जननी, अपने सात कोटि बालको को तूने केवल बगाली बनाकर रखा है । उनके मनुष्यत्व का पूर्ण विकास तू होने नही देती ।

"पूरबी" की पाण्डलिपि का काट-कूट करने के बाद बने चित्रवाला एक पृष्ठ

क्षितीश राय

रवीन्द्रनाथ का शिक्षा शास्त्र

सन् १९४५ दिसम्बर मास में जब गांधी जी शान्तिनिकेतन आये थे तो अेक व्यक्ति ने उनसे पूछा : 'मैं आपके और गुरुदेव के आदर्शों को मानने वाला हूं, किन्तु दोनों के बीच में द्वन्द्व के मारे परेशान रहता हूं।"

गांधीजी ने सादा पर अैसा उत्तर दिया जिसके बाद कोई शंका रह नहीं सकती थी। उन्होंने कहा : "मैंने तो हम दोनों के बीच कोई द्वन्द्व नहीं पाया। कुछ भेद खोजना आरंभ किया तो नतीजा अेक आलीशान शोध में समाप्त हुआ कि हमारे बीच कोई द्वन्द्व ही नहीं है।

अगर कोई अिन दो समसामयिकों के आपसी सामन्जस्य को खोजना चाहेगा तो अिससे ज्यादा उचित और कुछ नहीं हो सकता कि गुरुदेव के शिक्षा के आदर्शों और गांधीजी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों की आपस में तुलना करे। जैसा कि उन दोनों के स्पष्ट अलग-अलग व्यक्तित्व थे, उनके आदर्शों में जोर अलग-अलग पहलुओं पर अवश्य दीखेगा। किन्तु दोनों के विचारों में अेक पारिवारिक सादृश्य है। गांधीजी ने कर्म पर जोर दिया था, जब कि गुरुदेव ने चाहा था कि 'खेल' अधिक हो। किन्तु अन्ततोगत्वा विश्लेषण करने पर वही पायेंगे जो गुरुदेव ने स्वयं भी मंजूर किया—'बच्चों के लिए खेल ही काम है और काम ही खेल।"

जब एक विशिष्ट कवि अपनी सृजनात्मक प्रतिभा की उच्चतम अवस्था पहुंचने पर समाज की वाह वाह से भरे प्रेम वातावरण में आकर छोटे बच्चों के लिए पाठशाला खोलना चाहता है तो "अनुभवी" व्यक्ति गर्दन हिला इस "पागलपन" पर हंसता है। वह इसे एक ऐसी आदर्शवादी कल्पना समझता है जो काल की कसौटी पर उतर नहीं सकेगी।

एक शिक्षा संस्था के बतौर प्रारम्भ किया हुआ शान्तिनिकेतन जो अब एक पूरे विश्वविद्यालय में विकसित हो गया है उपरोक्त धारणा की भूल दिखाता है।

यह शाला रवीन्द्रनाथ की शेखचिल्ली की परिकल्पना नहीं थी। वह उनके सृजनात्मक प्रयासों में से सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई है। उन्होंने इसके पीछे अपना आधा जीवनकाल दिया है। अपनी जीवन यात्रा के अंतिम काल में उन्होंने कहा था—"शान्तिनिकेतन वह नौका है जो मेरे जीवन के सर्वोत्तम रत्नों को लेकर यात्रा कर रही है।"

एक समझदार आदमी ने शान्तिनिकेतन के बारे में अपनी राय देते हुए कहा था—'टैगोर की यह सर्वश्रेष्ठ कविता है।" गुरुदेव स्वयं इसे कवि की शाला (पोयट्स स्कूल) कहा करते थे। उनकी शिक्षा की सारी दृष्टि सर्जनकार की दृष्टि थी। अंतर केवल यह है कि इसमें उनका वास्ता इतना जीवित शब्दों से नहीं जितना जीवन स्वयं से रहा है। इसलिए शिक्षक और कवि रवीन्द्रनाथ, इन दोनों

में कोई द्वन्द नही हो सकता था। दोनो का उद्देश्य एक ही था—समृद्ध विविधता भरे चारो तरफ के जीवन को समग्र दृष्टि से देखना और उसके द्वारा विविधता में एकता का दर्शन करना।

रवीन्द्रनाथ को इस विचार का बडा आकर्षण था कि बालक की इस प्रकार सहायता की जाय कि वह अपने प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के साथ ताल रखता हुआ अपनी छिपी हुई शक्तियो को प्रस्फुटित कर सके। एक जगह उन्होने कहा है—'विश्व के छन्दमय अनुरणन के साथ सामजस्य रखते हुए बालक का शरीर और मन भी स्पन्दित हो।"

"शहर की गूगी और बहरी पत्थरकी दिवारो" के बीच पाठशाला के कष्टमय अनुभव की स्मृति रवीन्द्रनाथ को थी। उनकी कामना थी कि अिस पीढी के कुछ बालक तो आनन्द और स्वतत्रता के स्वस्थ वातावरण में बढने का मौका पायें। यह बहुत महत्व *की बात है कि उन्होने अपने पिता द्वारा* स्थापित किये आश्रम को अपने स्कूल के लिए उपयुक्त समझा। अिस बात ने उनके प्रयोग को उस भारतीय विचार से युक्त कर दिया जिसके अनुसार बालक गुरुकुल में जाता है, ऐसी जगह जो विच्छिन्न जीवनवाले भीड और जल्दबाजो से भरे शहर से दूर होती थी। आश्रम विद्यालय के उन प्राथमिक वर्षो की अमिट छाप जिसमें गुरुदेव ने अपनी कल्पना की प्रेरणा प्राचीन भारत के वन-आश्रम से पाई थी, शान्तिनिकेतन के चरित्र पर आज भी पडी हुई है। पर धीरे धीरे अिस शैक्षणिक प्रयोग ने उन मूल्यो और गुणो को भी अपनाया जो सारे जगत् की थाती हैं, पूर्वी और पश्चिमी दोनो की। यह तथ्य मानना पडेगा कि बालक शायद सारे जगत् में अेक जैसे ही होते है, खास तौर पर अपने बढौती के वर्षो में। अिसलिए यह सम्भव है कि शिक्षा के कुछ मूल्य और सिद्धान्त अैसे हो सकते हैं जो सारे जगत् के लिए सर्वमान्य हो। प्रौढो को आनेवाले अेक जगत् को स्वीकार करने में लम्बा अर्सा लग सकता है, किन्तु ससार के बालको की शिक्षा के आधार का पोषण *यदि उन सर्वमान्य सिद्धान्तो पर किया* जाय तो वे अेक दिन शीघ्र दुनिया को सब विविधताओ—मानव वशो व राष्ट्रो की, पर*म्पराओ और रीतिरिवाजो की, जाति और धर्म* की विविधताओ—से मिल जायेंगे। उनस भेद के बदले एक आलीशान सामञ्जस्य का निर्माण होगा।

गुरुदेव के शिक्षा के इस विश्वकुटुम्बवाले विचार को उनके शब्दो में ही रखें। नीचे दिये अश उनके अनेक लेखो में दो चार से ही हैं।

× × ×

हमें शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के उच्चतम उद्देश्यो से कम ऊचा नही रखना चाहिए। वह ऐसा हो कि जिसमें आत्मा को सम्पूर्ण स्वतत्रता और विकास की शक्ति हो।

शिक्षा का ध्येय मनुष्य को सत्य के ऐक्य का भान कराना है। सबसे ऊचो ढग की शिक्षा वह है जो केवल जानकारी नही देती बल्कि हमारे जीवन का विश्व के साथ सामजस्य निर्माण करती है।

हम ज्ञान द्वारा शक्तिशाली बन सकते हैं *किन्तु हममें सम्पूर्णता सम्वेदना के द्वारा ही* आती है।

बालक का मानस इस विचार में डूब जाय कि वह उस मनुष्य-परिवार में पैदा हुआ है

जिसका अपने चारों ओर के जगत् के साथ सामजस्य है।

× × ×

मैं तो पद्धति की अपेक्षा जीवन-सिद्धान्त और मनुष्य की आत्मा में अधिक विश्वास करता हू। मेरा विश्वास है कि शिक्षा का उद्देश्य मानस की स्वतत्रता होता है और वह केवल स्वतत्रता के रास्ते से ही पाया जा सकता है। इस विचार-स्वातन्त्र्य में खतरा है और उसकी जिम्मेदारी भी बडी होती है, किन्तु वह बात तो सारे जीवन में लागू होती है।

शिक्षण सस्थाओ में बुद्धि को ऐसा पोषण मिलना चाहिए कि जिससे मानस को सत्य के जगत् में, हमारी कल्पना शक्ति को कला के जगत् में और सम्वेदना को मानवीय सम्बधो के जगत् मे स्वतत्रता मिले।

मेरी सस्था में मै इन तीनों स्वतत्रताओ को महत्व देता हू—विचार की स्वतत्रता, हृदय की स्वतत्रता और इच्छा-शक्ति की स्वतत्रता।

बालकों का अपना अर्धचेतन मानस होता है, जिसमें वृक्ष की तरह चारों तरफ के वातावरण से अपना भोजन सग्रह करने की शक्ति होती है। उनके लिए नियमो और पद्धतियो, इमारतो और साधनो, कक्षा की पढाई और पाठ्य पुस्तकों से कहीं अधिक महत्व वातावरण का होता है।

मैंने अपनी सस्था में वातावरण निर्माण करने का प्रयत्न किया है और उसे शिक्षा के कार्यक्रम म मुख्य स्थान दिया है। वातावरण की आवश्यकता होती है आत्मा में सूक्ष्म बोध का निर्माण करने के लिए और मन को सवेदना के लिए स्वातन्त्र्य प्रदान करने के लिए।

शिक्षा का स्वरूप हम सब का मिलकर गढना चाहिए, केवल संस्थापकों को ही नही, केवल शिक्षकों को ही नही, बल्कि विद्यार्थियों को भी। बालक अपने जीवन का एक हिस्सा उसे निर्माण करने में लगावे, और यह महसूस करे कि जिस जगत् में वे रहते हैं वह ... अपना ही है, और यही श्रेष्ठतम स्वातन्त्र्य है जो मनुष्य पा सकता है।

× × ×

बालकों की स्वाश्रयिता की शिक्षा छुटपन से ही मिलनी चाहिए। हमारे प्रारम्भिक वर्षों से हमें जाग्रत ढग से उन जिम्मेदारियों को उठाने का अभ्यास होना चाहिए जिनकी हम से सामूहिक जीवन को अपेक्षा होती है।

सुविधाओं की कमी या साधन सरजाम का अभाव शिक्षा के प्रारम्भिक काल में कोई समस्या नही होती। जहा बाह्य सहायता का अभाव होता है, वहा बुद्धि और शरीर की स्वाभाविक शक्ति को उचित अभ्यास मिलने की सम्भावना अधिक होती है। उसी के द्वारा निर्माण करने और खोज निकालने की शक्ति को स्वयस्फूर्त प्रेरणा मिलती है, और सफलता प्राप्ति के आनन्दमय कौतुक के द्वारा अपनी शक्ति का दर्शन होता है। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हू कि इसका उद्देश्य सादा जीवन नही बल्कि सृजनात्मक जीवन है।

× × ×

बच्चो को प्रकृति की सर्वोत्तम भेंट स्फूर्ति और शक्ति है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाल्य-जीवन म उद्देश्यपूर्ण प्रवृत्तिया की अत्यन्त आवश्यकता होती है। क्योंकि "बालक के लिए कार्य खेल होता है और खेल कार्य।"

जिस प्रकार शिक्षा का एक पहलू ज्ञान होता है, उसी प्रकार दूसरा कर्म होता है।

कितना ज्ञान हमारे चक्षु व कर्ण तन्तुओ और हाथो के अपनाने के लिए भरा पडा है ।

एक व्यक्ति पुस्तकीय ज्ञान में सुप्रसिद्ध हो जाय तो भी उसकी शिक्षा अपूर्ण रहेगी यदि उसने अपने हाथो को सुयोग्य और सुचारु ढग से उपयोग में लाना नही सीखा हो। यदि शरीर की शिक्षा बुद्धि की शिक्षा के साथ-साथ नही चलती है तो बुद्धि को भी समुचित प्ररणा और शक्ति नही मिल सकती।

× × ×

मनुष्य के एक बड़े हिस्से का आत्मप्रकटन केवल अक्षरो की भाषा से नही होता। इसी कारण उसे अपने लिए दूसरी भाषाओ को खोजना चाहिए–रेखाओ की भाषा, रग की भाषा, शब्द की भाषा, छन्द की भाषा। इनमें दक्षता प्राप्त करने से न केवल हमारी सारी प्रवृत्ति में स्पष्टता आती है, बल्कि उसके द्वारा हम मनुष्य के उन सब प्रयासो को समझते हैं जो वह अपने अन्तरतम मनुष्य को हर अवस्था और स्थिति में प्रकट करता है। शिक्षा का महान् उद्देश्य मात्र जानकारी इकट्ठी करना नही है, बल्कि मनुष्य को जानने का और स्वय को प्रकट करने का है।

"चित्त यथाय भयशून्य" कविता का मूल पाण्डुलिपि

हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह केवल बुद्धि की भाषा में दक्षता प्राप्त न करे, बल्कि कम से-कम कुछ हद तक व्यक्तित्व विकास को उस भाषा में भी दक्षता प्राप्त करे जो कला की भाषा है।

× × ×

शिक्षा को उसके स्थानिक तत्वो से, लोक–जीवन यात्रा से बाहर नही निकाल देना चाहिए।

मानववश नजदीक आते हैं, जैसा कि आज हो रहा है, तो वह केवल भीड को इकट्ठी करने के लिए नही होना चाहिए। उसमें कोई आन्तरिक सम्बधो का बधन होना चाहिए, नही तो वे आपस में टकरायेगे। हमारी शिक्षा से हर बालक को वर्तमान युग के इस उद्देश्य को समझने और उसे प्राप्त करने की शक्ति आनी चाहिए, न कि साम्प्रदायिक भेद निर्माण करने की आदत डालने और सकुचित राष्ट्रीयता के विचारो द्वारा उसे हानि पहुचाने की। मानव वशो में स्वाभाविक ही भिन्नता होती है और उन भिन्नताओ को बचाये रखना भी चाहिए और उनका आदर भी करना चाहिए। पर हमारी शिक्षा का ध्येय उनके बावजूद भी ऐक्य की प्राप्ति होना चाहिए, उसका ध्येय होना चाहिए-भेदो के महासागर में से परम सत्य की खोज।

मार्जरी साइक्स

घर और बाहर

मैंने अपने इस लेख के शीर्षक के लिये गुरुदेव के एक उपन्यास का नाम चुन लिया, क्योंकि उससे आदमी के जीवन और पुरुषार्थ के दो क्षेत्रो में एक तनाव या संभावित संघर्ष की प्रतीति होती है। एक ओर अपना घर है, जहां प्रेम और विश्वास के परिचित वातावरण में जिन्दगी की जड़ें जमी हैं; दूसरी ओर बाहर की दुनिया है, जो आदमी की साहस वृत्ति को आह्वान देती है–अज्ञात देशों को खोज निकालने में, नये समुद्रों को पार करने में, संसार में अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने में, नये-नये उद्यमों की प्रेरणा देती रहती है। आजकल कई समाजशास्त्र के विशेषज्ञ लोकसमूह के "मूलहीन" होने के खतरों (जहां व्यक्ति समाज और स्थान के साथ के बन्धन को भूल जा रहा है) के बारे में हमारा ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। वे कहते हैं कि आदमी को एक जगह का और सब का होना आवश्यक है। सिमोनी वील की एक प्रसिद्ध किताब का नाम है–"आदमी को जड़ की आवश्यकता"। दूसरी ओर अर्नाल्ड टाइनबी 'एक ग्रामीण मनोवृत्ति' की *अवांछनियता* के बारे में हमें सचेत करते हैं। ये दोनों दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं और यह सवाल पेश करते हैं–"आदमी को एक जगह अपनी जड़ें जमानी हैं या उनको उखाड़नी हैं? उसे अपनी मिट्टी में जमा रहना है या स्वतन्त्र होकर दुनिया में घूमना है?" या वर्ड्सवर्थ के शब्दों में उसे "ऊंची उड़ान भरनी है, लेकिन इधर-उधर भटकना नहीं है"?

ये निरर्थक प्रश्न नहीं, बल्कि जिनके ऊपर बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी है, उनके लिये अत्यन्त महत्व के सवाल हैं। माता पिताओं और शिक्षकों को घर की मिट्टी और विश्व के विशाल आकाश के बीच के सम्बन्ध के बारे में सोचने समझने की जरूरत है। एक चिन्तक और शिक्षक की हैसियत से हमारे लिये गुरुदेव की एक बड़ी देन इस सवाल के हल का सही रास्ता बताने की है।

उदाहरणार्थ सभ्यता की उनकी व्याख्या को लीजिये–' धर्म का अर्थ मानवीय संम्बधों के उन सिद्धान्तों से जुड़ा है जो समाज का धारण करते हैं।" "सभ्यता मानव के धर्म की प्रगट करने का वाहन है–उसकी वृद्धि, अधिकार और संपत्ति को नहीं।"* तात्पर्य यह कि अपने समाज में हमारी जड़ों को मजबूत होने की जरूरत है और सभ्य मानव वह है जिसके जीवन से उसका वंश समुन्नत और समृद्ध होता है। लेकिन गुरुदेव के मत में अपने समुदाय के साथ हमारा यह सम्बन्ध "स्थानीय आसक्ति" नहीं बनना चाहिये। उनके ये प्रसिद्ध पद, उनकी इस दृष्टि को दर्शाते हैं—' येथा गृहेर प्राचीर आपन प्रांगणतले दिवसशर्वरी वसुधारे राखे नाई खण्ड क्षुद्रकरि" और "येथा तुच्छ आचारेर मरुबालूराशी विचारेर स्रोतपथफेले नाइ ग्रामी–पौरुषेर करेनि शतधा ..."+

एक पत्र में उन्होंने लिखा था–"मुझे विश्वास है कि दुनिया में कहीं भी मैं अपना

*मानुषेर धर्म–रवीन्द्रनाथ ठाकुर

+इस कविता की मूल पाण्डुलिपी पृष्ठ ३६५ पर दी गई है।

घर पाऊंगा।" लेकिन उतने ही निश्चय के साथ उन्होंने यह भी कहा, "एक भी गाव को ऐक्य और आनन्द लाने और उसके द्वारा सच्चा स्वराज्य पाने में अगर मैं मदद कर, पाता तो मैं मानूगा कि जिन्दगी का ठीक उपयोग हुआ।" ये दो बाते परस्पर विरोधी नही है, बल्कि वे एक दूसरे की पूरक हैं। किसान अपनी भूमि के साथ बधा हुआ है, लेकिन उसका मन सुदूर तीर्थयात्रा के लिये जा सकता है—जाना चाहिये भी। मानवजीवन को आश्रमों में बांटने की भारत की परपरा भी यही मांग करती है कि युवावस्था में तथा वानप्रस्थ और सन्यास की अवस्था में पहुचने पर भी स्थानीय बन्धनो से मुक्त हो कर व्यक्ति को विशाल विश्व के लिए अपनी सेवाए अर्पित करनी है। इस विषय पर विनोबा के विचार गुरुदेव के विचारो से एकदम समान न होने पर भी गुरुदेव के विचारो के साथ उनका सामञ्जस्य है—"सारी दुनिया को प्यार करो, लेकिन अपने ही गाव की चीजें खाओ"। एक अच्छे समाज में किसान दार्शनिक भी होगा, सत्य का साक्षी, शान्ति का सैनिक भी। व्यक्ति इन सब कार्यों को पूरा करते हुए समग्र मानवत्व प्राप्त करता है। मानव प्राणी जडोवाले पेड के जैसा है तो वह पखवाला पक्षी जैसा भी है। आजकल ही गुरुदेव के एक निकट शिक्षक शिष्य ने हम को याद दिलाया है कि गुरुदेव के लेखो में कितने दफे घासले और आकाश का—घर और विश्व का—जिक्र आता है।*

इन दोनो की जरूरत है, मानव की शिक्षा में दोनो को अपना हिस्सा अदा करना है, नई तालीम में—उसके उपज्ञाता ने जैसी कल्पना की थी—दोनो का समावेश है। बच्चे के मिलते हुए जीवन में गाव के छोटे-छोटे खेत और विश्व के अनन्त विस्तार, दोनों को स्थान मिलना चाहिये।

शान्तिनिकेतन में जिस शिक्षादर्शन को साकार बनाने का उन्होंने प्रयत्न किया उसके कई पहलुओं का वर्णन करना इस लेख की सीमाओं में सभव नही। उसके लिए तो कई पुस्तकें ही चाहिए। गुरुदेव तो अन्य कई अवसरो पर भी गुरु ही हैं। यहां मैं उनके उस काम के एक दो पहलुओं को बहुत सक्षेप में रखने का ही प्रयास करूगी, जिनका नई तालीम के सिद्धान्तो के साथ विशेष सबन्ध दीखता है।

शिक्षा के बारे में विनोबा जो शक्तिशाली और कभी-कभी उपहासपूर्ण शब्द कहते हैं, मुझे विश्वास है कि गुरुदेव उनका हृदय से समर्थन करते। "नई तालीम एक विचार है, प्रणाली नही"। गुरुदेव ने भी प्रणालियो के प्रति बगावत की थी। प्रणाली जब निर्जीव निश्चल बन्धन बन जाती है तो उसमें से प्राण निकल जाते हैं। कितनी दफे "राष्ट्रीय" शिक्षा की प्रचलित प्रणाली की जगह बुनियादी तालीम को "नयी प्रणाली" स्थापित करने की बाते करके हम अपनी ही सकुचितता व्यक्त करते हैं। हमारा असल काम नयी प्रणालियो की योजना बनाना नही, बल्कि हमें तो जिन्दगी को पोषण देने का अधिक सूक्ष्म और कठिन काम करना है। जीवन जीवन से ही पुष्टि पा सकता है, अगर हमें तरुण जीवन के योग्य साथी बनना है तो खुद प्राणवान होना है—शरीर, मन और आत्मा में स्फूर्ति लानी है। मैं सोचती हू कि विनोबा का यह कथन अगर गुरुदेव सुन पाते तो वे प्रसन्न होते कि भारतीय भाषाओं में "टीच"—सिखाना—जैसा कोई स्वतंत्र शब्द नही है और इसलिये स्कूल शिक्षक का

* गाधी एण्ड टैगोर—लेखक गुरदयाल मल्लिक, प्रकाशिक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद

परम्परागत (अनाकर्षक) रूप है, उसके लिये कोई आधार नहीं। शान्तिनिकेतन में जब मैं पहले पहल काम करने के लिये गयी, तो गुरुदेव के साथ जो प्रथम वार्तालाप हुआ, उसकी याद मेरे मन में ताजी है। वे 'सिखाने" पर नहीं, साथीपन पर जोर देते थे। वे बच्चों के खेल के साथी और मित्र थे, जिनका सान्निध्य सब में उत्साह भर देता था-सब काम में, ज्ञान में, सौन्दर्य निर्माण में, आतिथ्य सत्कार में आदर और आनन्द पैदा कर देता था, और इसी के द्वारा हर एक विद्यार्थी की उच्चतम साधनाएं प्रकट होती थी।

गुरुदेव के जीवन और विचारों के अध्ययन से हमारे सामने और एक तथ्य प्रकट होता है, जो हम लोगों को-जो न्यूनपक्ष में है-विशेष रूप से याद रखने की जरूरत है। हम अनजाने में ही कट्टर बन जाते हैं, कभी-कभी ऐसा सोचने लगते हैं जैसे कि मानव के और मानव की शिक्षा के बारे में आखिरी सत्य हमारे पास ही है, हमारी प्रणालियां और पद्धतियां ही ठीक है। इस वृत्ति से एक तरह का भद्दा गर्व ही नहीं होता, बल्कि हम अपने ऊपर एक अनावश्यक भार भी महसूस करने लगते हैं, स्वच्छन्द खलने, खुशी महसूस करने और आराम व शान्त चिन्तन करने के लिये असमर्थ बनते हैं। अपने छोटे-छोटे अहंकारों में ही हम इतने मग्न होते हैं कि हमें सौन्दर्य देखने और आनन्द पाने के लिये समय नहीं है, ब्रह्माण्ड के रहस्यमय अनंतता में हमारी आत्मा को स्वतन्त्र विचरण करने के लिये समय नहीं है, इसलिये हमारा जीवन छिछला और गरीब रह जाता है और हम बच्चों के साथी बनने योग्य नहीं रहते।

हमारे लिये गुरुदेव की बड़ी देनों में से एक देन जीवन को असुन्दर और संकीर्ण बनाने के प्रति कवि और कलाकार का प्रतिषेध है। इस आश्चर्यपूर्ण और रहस्यमय दुनिया में आनन्द लेने के लिये वे बार-बार हमें आह्वान करते हैं-"आनन्द सत्य की एकमात्र कसौटी है। सत्य को स्पर्श किया, यह हम तब समझते हैं जब उससे संगीत निकलता है।" शिक्षा की भी यही सही कसौटी है। और 'आराम काम का ही हिस्सा है जैसे पलक आंख के हैं।" यही आराम और काम का ठीक संबन्ध है। ध्यान देने लायक बात है कि आराम को काम से ऊंचा नहीं बताया है। यह तात्पर्य नहीं कि बच्चों के पालन का सही तरीका उच्छृंखलता और अमर्यादित खेल का है। नहीं, आराम काम से ही निकलता है। दुनिया के आश्चर्यों को देखने और आनन्द को अत्यन्त महत्व देने के साथ साथ वे यह भी कहते हैं, "हर सृष्टिकर्म के साथ-जिसमें नैतिकता की सृष्टि भी अन्तर्निहित है, दुःख जुड़ा हुआ होता है, सर्जन की दैवी-मानवी प्रवृत्ति में दुःख को स्वीकार और सहन करने की शक्ति पूर्ण मानवत्व का एक सारभूत अंग है।" और यह सब तरह की सृजनात्मक प्रवृत्ति के बारे में सत्य है, चाहे वह बगीचा बनाना हो, एक सुन्दर कपड़ा बुनना हो, या एक प्रेमपूर्ण पारिवारिक जीवन का निर्माण हो, एक चित्र या गाना हो। बन्धन और मुक्ति दोनों जीवन के दो भाग हैं 'मेरे प्रभु ने सृष्टि के बन्धन स्वयं अपने ऊपर ले लिए हैं और वे हम सब के साथ सदा के लिए बन्धे हुए हैं"। आनन्द के दरवाजे पर ले जानेवाले अनुशासन के इस मार्ग पर हम गुरुदेव के पीछे चलें।

एक और बात है। गुरुदेव कहते हैं कि सत्य के संगीत से उसकी पहचान होती है। लेकिन उसका मतलब यह नहीं कि हम सब के स्पर्श से सत्य का एक ही स्वर निकलता है। उल्टा

विश्व तो अनन्त प्रकार का है और इस विविधता में कवि आनन्द पाता है। "सृष्टि को आन्तरिक एकता" के बारे में सचेत होने हुए भी इस बाह्य विविधता की अनन्त लीला के लिए उनके मन में स्थान था। इस पाठ की क्या हमें जरूरत नही ? व्यक्तियो की असीम विविधता को पहचानना और उन्ही विभिन्न गुणो के लिए उन्हे प्यार करना मानवीयता है। उसमें और उन्हे क्या होना "चाहिए" इसके बारे में सैद्धान्तिक वाद और सबको एक ही साचे में ढालने के प्रयत्न के बीच बहुत भद है। यह शिक्षा और प्रचार के बीच की खाई है। सब धार्मिक अनुभवो और उनके विविध रूपो का आदर करने की अर्न्तदृष्टि एक चीज है, लेकिन यह कहना—उसकी प्रकट असत्यता के बावजूद—कि "सभी धर्म एक ही हैं', दूसरी चीज है और उन दोनो के बीच भी उतनी बडी खाई है। फिर भी कई दफे "शान्ति" तथा "सामजस्य" पाने की हमारी उत्सुकता में हम सब भेदो को मिटा देना चाहते हैं, यह भूल जाते है कि कई स्वरो के मिलन में ही सवाद होता है।

इस प्रसग में भी हमें गुरुदेव के इन पदो को याद रखने की जरूरत है–'मृत्यु में अनेक एक बन जाते है, जीवन में एक के अनेक होते है–" अपने घर म, अपने कुटुम्ब और अपनी परपराओ में हमारी जडें जमी है और वे एकब्रह्म के अलग अलग रूप ही है। ससार में हमें अपने से भिन्न अनंत रूपो की अनुभूति में आनन्द की प्राप्ति होती है। उन सब को उस एक में हम अपने जैसे ही पाते है। यही है ब्रह्मविद्या और इसी को गुरुदेव ने "मनुष्य का धर्म" कहा है।

गुरुदेव द्वारा अंकित एक चित्र

रवीन्द्रनाथ का स्वदेशी समाज

शैलेशकुमार बन्दोपाध्याय
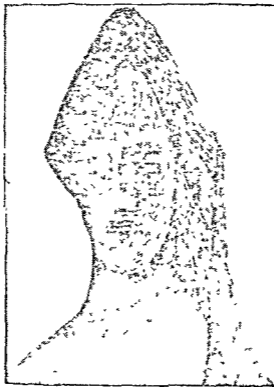
रवीन्द्रनाथ की कवि तथा कलाकार की सत्ता हम लोगों की आंखो के सामने इतने उज्जवल रूप से झलकती है कि सामाजिक या आर्थिक विषयों के संबंध में उनका अभिमत लोगो ने करीब-करीब नही के बराबर जाना है। कुल मिलाकर रवीन्द्रनाथ का सारा निबंध साहित्य ही पाठकों द्वारा अनादृत है। और उसमें भी समाज पद्धति, अर्थ व्यवस्था इत्यादि साहित्येतर विषय विशेष रूप से उपेक्षित हैं। पर रवीन्द्रनाथ के समग्र व्यक्तित्व को समझने के लिये, रवीन्द्र-मानस का पूर्ण परिचय पाने के लिए, उनकी साहित्यकार तथा कलाकार की सत्ता के जैसा ही सामाजिक चिन्तक रवीन्द्रनाथ के बारे में भी चर्चा करना आवश्यक है। बंगला सन् १३११ के भाद्र माह में (१९०५ ईसवी) लिखा हुआ रवीन्द्रनाथ का "स्वदेशी समाज" नाम के निबंध का अध्ययन रवीन्द्र मानस के समाज-चेतना संबंधी पहलू को हृदयगत करने के लिये निहायत अपरिहार्य है। उस निबंध को एक प्रकार से उनके सामाजिक घोषणा-पत्र की अभिख्या देना भी अनुचित नहीं होगा।

भारत वर्ष की पराधीनता के मौलिक कारण का विश्लेषण करते हुये १८६७ में ही उन्होने कहा था कि "बारूद या शीशे के गोले से देश की आजादी छीनी नही जा सकती। पहले हम लोगों का समाज बरबाद हुआ है, धर्म विकृत हुआ है और उसके पश्चात् राष्ट्रीय दुर्गति हुई है। सभी अपमान, सभी कमजोरियों की जड़ समाज के भीतर, धर्म के भीतर है" ("भारतपथिक राममोहन राय", रवीन्द्र-शतवार्षिकी संस्करण, पृष्ठ ९५)। राष्ट्र तथा मनुष्य के जीवन में समाज की भूमिका से संबंधित यह सूत्र एक अत्यन्त प्राचीन सत्य का नवीन अविष्कार है।

यह शायद उल्लेख करने की आवश्यकता नही कि समाज की विकृति के कारण जब देश गुलाम बनता है तो स्वतंत्रताप्राप्ति एवं उस स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिये एक स्वस्थ समाज की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होती है। "स्वदेशी समाज" निबंध के द्वारा रवीन्द्रनाथ ठीक इसी बात को हम लोगों के सामने उपस्थित करना चाहते थे। बंगाल में पानी का अभाव दूर करने के लिए उन दिनों सरकार का जो मंतव्य प्रकाशित हुआ था, वह "स्वदेशी समाज" लिखने का तात्कालिक निमित्त बन गया था। देशवासियों की सरकारनिर्भर मनोवृत्ति रवीन्द्रनाथ को न केवल बंगाल या भारतवर्ष की, पर विश्व के सभी देशों के नागरिकों की मौलिक स्वतंत्रता के इस घोषणा-पत्र की रचना करने के लिए प्रेरित किया था।

प्राचीन काल में समाज की अन्यान्य भूमिकाओं का उल्लेख करते हुए रवीन्द्रनाथ इस चर्चा का प्रारंभ करते है। उन्होंने कहा, "हमारे देश में युद्ध-विग्रह, राज्य की रक्षा एवं व्यवस्था कार्य राजा करते आये हैं। पर विद्यादान से लेकर जलदान तक सभी काम

इस प्रकार सहजभाव से समाज करता आया है कि नव-नव शताब्दियों में नव-नव राजाओं का राज वन्या-प्रवाह जैसा हमारे देश के उपर से गुजर जाने पर भी उसके कारण समाज तहस-नहस होकर देश को पूर्णतया श्रीहीन नही बना पाया। समाज बाहर की सहायता की अपेक्षा रखता नहीं था और बाहर के उपद्रवों के कारण श्रीभ्रष्ट भी नहीं हुआ" पर आज? "आज समाज का मन समाज के अन्दर है नहीं। हम लोगों का संपूर्ण ध्यान बाहरी दिशाओं में चला गया है।" क्योंकि, "····सहायता लाभ तथा कल्याण लाभ के सिलसिले में देश का जो हृदय अब तक समाज के अन्दर ही काम करता आया है तथा उस प्रकार से परितृप्त हुआ है, उसको विदेशियों के हाथों में सुपुर्द किया गया। यह स्वाभाविक है कि देश को जहां से सभी प्रकार का उपकार मिलेगा वहां ही वह अपना दिल लुटा दे।" आजाद होने के चौदह साल के पश्चात् भी भारत वर्ष की यह जो बुरी हालत है इसका मूल कारण आज से छप्पन साल पहले ही रवीन्द्रनाथ बता चुके थे—"हम लोगों का संपूर्ण ध्यान बाहरी दिशाओं में चला गया है।"

भारत वर्ष के पूर्वी प्रांत में बैठकर रवीन्द्रनाथ के "स्वदेशी समाज" लिखने के तीन वर्ष पश्चात् इतिहास के एक विचित्र निर्देश से इस देश के पश्चिम सरहदवासी एक महापुरुष भी भारत के नष्ट गौरव का कारण विश्लेषण करते समय इसी प्रकार के निर्णय पर पहुंचे। उस समय वे महात्मा नहीं हुए थे। दक्षिण अफ्रीका में एक नवीन बॅरिस्टर के तौर पर काम कर रहे थे। पर देश की बुनियादी समस्याओं के बारे में उस समय से ही उनके मन में चहल-पहल शुरू हो गया था और बाद में उन्होंने अपने विचार "हिन्द स्वराज्य" नाम के ग्रंथ में व्यक्त किये थे।

बिलायत और हिंदुस्तान की स्थिति की तुलना करते हुये रवीन्द्रनाथ ने यह विचार प्रगट किया था, "देश के सभी प्रकार के कल्याण कर्म की जिम्मेदारी बिलायत ने "स्टेट" के हाथों में सौंपी है। पर भारतवर्ष ने केवल आंशिक रूप से यह जिम्मेदारी समर्पण की।" भारतवर्ष की इस आंशिक राज्य निर्भरता की और थोडा विस्तार से व्याख्या करते हुये उन्होंने बताया, "राजा यदि सहायता देना बंद कर दें, अचानक यदि देश में अराजकता छा जावे, तो भी समाज की विद्या, शिक्षा या धर्मशिक्षा में संपूर्ण रूप से बाधा प्राप्त नही होती थी। राजा अपनी प्रजाओं के लिये तालाब खोदवा नहीं देते थे, ऐसी बात नही, पर वैसा तो समाज के संपन्न व्यक्तिगण भी करते थे। राजा के उदासीन होने से भी देश का जलपात्र शून्य नही हो जाता था।"

भारतवर्ष तथा इंगलेंड की पूर्वोक्त भिन्न ऐतिहासिक भूमिका का तर्कसंगत परिणाम क्या है? रवीन्द्रनाथ की भाषा में, "..... भिन्न-भिन्न सभ्यता की प्राण शक्ति भिन्न-भिन्न स्थानों में अधिष्ठित रहती है। जहां पर आम लोगों का कल्याणभार पूजित होता है देश का मर्म स्थान भी वही होता है। वहां पर अगर आघात किया जाय तो देश पर जबरदस्त चोट पहुंचती है। बिलायत में राजशक्ति विपर्यस्त होने पर समग्र देश का विनाश उपस्थित होता है। इसलिये उस देश में "पालिटिक्स" इतना महत्व रखता है। पर हमारे देश में समाज पंगु हो जाने पर ही सही माने में देश की संकटावस्था उपस्थित हो जाती है.....नि:स्व को भिक्षा दान से शुरू

करके साधारण जनता को शिक्षा दान-इन सभी विषयों में ही विलायत स्टेट के ऊपर निर्भरशील है, पर हमारे देश में यह काम *जनता की धर्म व्यवस्था के ऊपर* प्रतिष्ठित रहा है। इसलिये स्टेट को बचाने से ही अंग्रेज जीते हैं, और हम लोग जीते हैं धर्म व्यवस्था को बचाने पर।"

आजाद होने के बाद भी आज हम *कल्याणकारी राज्य के नाम से नए सिरे से* सरकार-निर्भर होकर आत्मशक्ति को छोड देने की तैयारी कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप राज्य व्यवस्था के यंत्र तथा नौकरशाही को सर्व शक्तिमान् करते हुए हम थोड़े-से ऐश-आराम के बदले अपनी स्वतंत्रता को बेच रहे हैं। इसलिए देश की मौजूदा स्थिति में रवीन्द्रनाथ की चेतावनी का स्मरण करना निहायत जरूरी है। वे जानते थे कि '*समाज जिस* काम को सरकार के द्वारा करा लेगी, उस काम के सबध में अपने आप को अकर्मण्य बना *लेगी।*" और समाज को अकर्मण्य बनाने का परिणाम क्या है, यह हम जानते ही हैं। स्वतंत्र भारतवर्ष की सरकार के बारे में भी यही बात लागू होती है। क्योंकि प्रतिनिधित्व मूलक शासन व्यवस्था में भी सरकार के चारित्रधर्म में कोई बुनियादी फर्क नहीं पडता है।

सरकार निरपेक्ष जनशक्ति के आधार पर *समाजोन्नयन काय करने* के प्रस्ताव को कुछ लोग हताशा के कारण सृष्ट मनोवृत्ति का द्योतक बताते हैं। उनका कहना है कि राजद्वार में भिक्षाप्राप्ति की आशा नहीं रहने के कारण ही आत्मशक्ति के साधकगण स्वावलंबन की बात कर रहे हैं। इस प्रकार के टीकाकारों को सम्बोधन करते हुए रवीन्द्रनाथ ने वज्र कठोर कंठ से घोषणा की थी "मैं साफ बता देना चाहता हूं कि मैं इसलिए आत्मनिर्भरता को श्रेय नहीं मानता कि बीच बीच में राजा हम लोगों को लगुडाघात से उनके सिंहद्वार से भगाते हैं। मैंने कभी भी इस प्रकार का दुर्लभ द्राक्षागुच्छ-लुब्ध हतभाग्य शृगाल की तसल्ली का आश्रय नहीं लिया था। मैं यह *कहना चाहता हूं कि दूसरे की प्रसाद भिक्षा* ही असली 'पेसिमिस्ट" याने निराशावादी दीनता का लक्षण है। मच के पास सिर झुकाने के अलावा अपने सामने और कोई उपाय नहीं है-यह स्थिति कबूल करने के लिये मैं हरगिज तैयार नहीं हूं। मैं स्वदेश के ऊपर भरोसा रखता हूं, आत्मशक्ति का सम्मान करता हूं। मैं निश्चित रूप से इस बात को जानता हूं कि *आज हम जो किसी-न-किसी प्रकार* से अपने भीतर समझौता करके सार्थकता प्राप्त करने के लिये उत्सुक हुये हैं उसका आधार यदि दूसरा की परिवर्तनशील प्रसन्नता के ऊपर प्रतिष्ठित हो तो वह प्रचेष्टा पुनः पुनः व्यर्थ होकर रहेगी। इसलिये हमें सभी ओर से भारतवर्ष के यथार्थ मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा।"

अतः राजशक्ति की प्रसाद भिक्षा के मार्फत कतई मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति का इशारा है भारतवर्ष की सनातन परंपरा में। रवीन्द्रनाथ के मतानुसार 'मनुष्य के साथ मनुष्य की आत्मीयता सबध का स्थापन शुरू से ही भारतवर्ष की सर्वप्रधान प्रचेष्टा रही है। हम लोग जिस किसी भी मनुष्य के सपर्क में आते हैं, उसी के साथ कोई न कोई रिश्ता जोड लेते हैं। इसलिये किसी भी अवस्था में हम मनुष्य को

अपना कार्य साधन करने का यत्न या उस यत्र का अग स्वरूप मान नही सकते। इसके भले-बुरे दो पहलू हो सकते हैं। पर यह वृत्ति केवल इस देश की नही, बल्कि वह ज्यादा व्यापक है, प्राच्य देशीय है।" फिर, "जरूरत के सबध का हम लोग हृदय सबध के द्वारा शोधन करने के पश्चात् ही इस्तेमाल कर सकते हैं। भारतवर्ष काम प्रारभ करने के बाद भी मानवीय सबध का माधुर्य भूल नही सकता। वह इस प्रकार के सबध की सभी जिम्मेदारियो को कबूल करता है। इस जिम्मेदारी को आसानी से स्वीकार करने के कारण ही भारतवर्ष में घर के और पराये, उच्च-नीच, गृहस्थ तथा आगन्तुक के बीच एक घनिष्ठ सबध की व्यवस्था स्थापित हुई है। उसी कारण से इस देश में सस्कृत पाठशाला, प्राथमिक विद्यालय, जलाशय, अतिथिशाला, देवालय, तथा अध-खज-आतुरो के प्रतिपालन इत्यादि के सबध में किसी को कभी चिंता नही करनी पडी।" प्रारभकाल में सामाजिक कल्याण के लिए हिन्दू समाज में जिन प्रथाओ का प्रवर्तन हुआ था वह आज प्राणहीन जड आचार का रूप धारण करने पर भी रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में उन सब प्रथाओ का सच्चा स्वरूप स्पष्ट हो उठा था। इसलिये उन्होने देखा था, "अपनी कुटियाँ तथा गाव के क्षुद्र सबध से ऊपर उठकर हर व्यक्ति में मैं विश्व के साथ योगयुक्त हूँ"—यह भावना लाने का रास्ता हिन्दू धर्म ने दिखाया है। पच यज्ञ के द्वारा हिन्दू धर्म ने प्रत्यह देवता, ऋषि, पूर्वज मनुष्य-समाज तथा पशु पक्षियो के साथ अपना मगल सबध स्मरण करने के लिये प्रेरित किया है। यथार्थ रूप से इन पच यज्ञो का पालन होने पर व्यक्ति तथा विश्व के लिये भी यह मगलकर होना है।"

इस सिद्धान्त को मद्देनजर रखते हुये *हमारा कर्तव्य क्या होता है? रवीन्द्रनाथ ने* अपनी कल्पना के स्वदेशी समाज के सदस्यो का कर्तव्य निर्धारित करते हुये ऐलान किया था, 'क्या हमारे समाज में हरेक व्यक्ति के साथ सारे देश का अेक प्रात्यहिक सबध स्थापित नही किया जा सकता? क्या प्रति दिन हर कोई स्वदेश का स्मरण करते हुये अेक पैसा या अुससे भी कम रकम—अेक या आधी मुट्ठी चावल—भी स्वदेश पूजा के रूप से अुत्सर्ग कर नही सकेगा? स्वदेश के साथ हम लोगो का मगल सबध क्या व्यक्तिगत स्तर पर अुतर नही आवेगा? क्या हम लोग स्वदेश के जल-*दान, विद्या दान, इत्यादि मगल कर्मों को* दूसरो के हाथो में समर्पण करके देश हित से अपनी चेष्टा, चिन्ता तथा हृदय को पूर्णतया विछिन्न कर देंगे?" "हम सभी नित्य प्रतिदिन स्वदेश का भार ग्रहण करेंगे। इसी में हम लोगो का गौरव तथा यही हमारा धर्म है ...सब कोई यह जानेंगे कि मैं अकेला नही—मैं क्षुद्र होने पर भी कोई मुझे त्याग नही करेगा और मैं भी क्षुद्रतम का त्याग कर नहीं सकता" समाज का प्रत्येक व्यक्ति हर रोज कमवेशी कुछ-न कुछ स्वदेश के लिये अुत्सर्ग करेंगे। इसके उपरान्त हर परिवार में विवाह इत्यादि *शुभ कर्म में स्वदेशी समाज के लिए "धर्मगोला"* जैसे एक सार्वजनिक कोष में कुछ देने की परपरा चालू करना बहुत कठिन नही मालूम होता है। यह दान सही जगह सग्रहीत होने से गाव में अर्थाभाव नहीं होगा। हमारे देश में जब स्वेच्छादत्त दान के बल पर बड-बडे मठ मदिर चल रहे हैं तब क्या समाज स्वेच्छापूर्वक अपना आश्रयस्थान स्वय बना नही सकेगा? खास करके देश में जब

"देगा और लेगा, मिलायेगा मिलेगा, वापस नही जायेगा"—भारतात्मा की यह वाणी रवीन्द्र-मानस में सही स्वरूप में विकसित हो उठने के कारण ही उन्होंने भारतवर्ष के नानक, कबीर तथा वैष्णवो के भीतर इस्लाम व हिन्दू धर्म का समन्वय देखा था। इसीलिए वे इस देश में अंग्रेजों के आगमन को भी कोई अनिष्ट घटना मानकर विदेशिओं के स्पर्श से बचने के लिए व्यग्र हो नही उठे थे। आदर्श इतिहासवेत्ता की दृष्टि से भारतभूमि में पाश्चात्य प्रभाव की जरूरत का स्वीकार करते हुये उन्होंने कहा था कि-एक समय जिस भारतवर्ष ने शान्ति, सान्त्वना व धर्म स्थापन के द्वारा मनुष्य जाति के सम्मान को प्राप्त किया था, काल प्रभाव मे उन सब गुणों को खोने के पश्चात् उसमें अंग्रेजो का आना जरूरी हो गया। क्योंकि, अंग्रेजों के प्रबल आघात से इस भीरु, पलायनवादी समाज का छोटा-सा घेरा बहुत जगहों मे टूट गया है। हम लोग बाहर से डरने के कारण उससे दूर रहते थे। पर बाहर आज एकाएक हम लोगो के कधो के ऊपर आ पडा है। अब इसको हटाये कौन? इस उत्पात के कारण हम लोगों का प्राचीर टूट जाने से हमने दो विषयों को जान लिया है। हम लोगों के अन्दर जो आश्चर्यजनक शक्ति थी वह नजर में आई और हम निरूपाय अशक्त हो गये थे, उसका भी पता चला।"

"हमारी जो शक्ति आज आबद्ध है वह विदेश मे आघात पाकर ही मुक्त होगी। क्योंकि आज दुनिया में इसकी जरूरत पड गई है। हमारे देश के तापसगण तपस्या के द्वारा जिस शक्ति का सचय कर गये हैं विधाता उसको निष्फल नही करेंगे। इसलिये उन्होंने उपयुक्त अवसर पर ही निश्चेष्ट भारतवर्ष को कठिन पीडन के द्वारा जागृत किया है।" देश-काल के ऊपर विराजित अेक आर्ष दृष्टि के बल से ही रवीन्द्रनाथ इस सत्य को व्यक्त कर पाये थे। अत वे स्वदेशी समाज के विचार के द्वारा किसी भी सकीर्णता को प्रोत्साहन देते थे, एसा मानना भ्रमात्मक है।

"यह प्राचीन रूढीवादचालित भेदबुद्धि आज फलित विज्ञान के (एप्लाइड सायस) नियनणकारी होने से मानव जाति के अस्तित्व के लिये एक खतरा बन गया है। पर शुद्ध विज्ञान मनुष्य-मनुष्य के बीच सभी प्रकार का भेद भाव दूर करते हुये एकत्व की वाणी का ही प्रचार कर रहा है। रसायन शास्त्र तथा पदार्थ विज्ञान ने जिस प्रकार से जड पदार्थों के मौलिक एकत्व का अविष्कार किया है, मानववंशशास्त्र, जीवशास्त्र, शारीरशास्त्र तथा प्राचीन इतिहास भी उसी प्रकार मनुष्य की सनातन अभिन्नता के प्रति इशारा करते हैं। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियो के जैसा ही मानो आधुनिक विज्ञान भी कह रहा है: "इह चेत् अवेदीत् अथ सत्यमस्ति"—यह अेक को यदि मनुष्य जान लेता है तो वह सत्य होता है। "न चेत् इह अवेदीत् महती विनष्टि"—यह अेक को यदि जान न सका तो उसकी महती विनष्टि होती है। इसलिये रवीन्द्र-नाथ की स्वदेशी समाज रूपी इकाइयो के समवाय से जिस देश का निर्माण होगा, वह देश बहु के भीतर एकत्व को उपलब्धि करेगा, वैचित्र्य के भीतर अक्ना की स्थापना करेगा। "पार्थक्य विरोध है, अैसा भारतवर्ष नही मानता, भारत वर्ष दूसरा को शत्रु नही मानता है। इसलिये भारतवर्ष किसी का त्याग या विनाश किये

संगीत पर ज्यादा जोर दिया क्योंकि वह मानते थे कि इनके द्वारा इन्सान के दिल में सच्चे सहयोग की वृत्ति आसानी से जगाई जा सकती है, और गांधीजी ने उद्योग पर ज्यादा जोर दिया क्योंकि वह कलम घिसनेवाला और किसानों कारीगरों के बीच में जो गहरा अन्तर पड़ा था, उसे उद्योग द्वारा जल्दी मिटा देना चाहते थे। मगर कुछ भी हो दोनों अपनी शिक्षा की योजनाओं में मानव-सेवा को व्यक्तिगत सत्ता और सफलता से ज्यादा जरूरी समझते थे। दोनों के दृष्टि-बिन्दु का सार और मर्म, अगर संक्षिप्त में कहा जाये तो यह था कि मनुष्य मानव जाति और प्रभु का प्रेमिक और सेवक दोनों बने।

साबरमती आश्रम में गुरुदेव और गांधीजी (देखिए पृष्ठ १५५)

विश्वभारती का आदर्श

डा० जाकिर हुसेन

अपनी बचपन की तालीम में कवि ने जिस चीज का सब से ज्यादा अभाव महसूस किया था वह 'दुनिया की समग्रता' थी। और वही उनकी शिक्षा विचार-धारा की बुनियादी चीज है। उन्होंने कहा है कि तालीम का उद्देश्य इन्सान को सत्य की एकता का भान कराना है। तालीम का काम है कि वह जीवन के ऐक्य को और 'व्यक्तित्व के समन्वय' को बनाये रखे। लेकिन, जैसा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है, तालीम में जो जोर आपस में मेल न रखने वाली जानकारियों को हासिल करने के ऊपर दिया जाता है उससे जिन्दगी के बौद्धिक, शारीरिक और आध्यात्मिक पहलुओं में विच्छेद कायम किया जा रहा है। विद्यालय तो 'एक ऐसी दुनिया होनी चाहिए जहा प्रेम हो जीवन का मार्गदर्शन करनेवाली शक्ति हो।" शिक्षा वह चीज है "जिसके द्वारा छात्र अपने गुरु के साथ एक उच्च आदर्शवाली जिन्दगी में साझीदार बन सके।" वे मनुष्य और प्रकृति के ऐक्य, कर्म और ध्यान के ऐक्य, मानव की विविधताओं के ऐक्य और पूर्वी और पश्चिमी जगत् के ऐक्य को देखने के लिए लालायित थे। वे पीढियों के ऐक्य व भूतकाल और भविष्य के ऐक्य को देखना चाहते थे। उनकी दृष्टि विश्व की सर्वव्यापी एकता के ऊपर लगी हुई थी और उनकी कोशिश थी कि शिक्षा के द्वारा, जिसमें स्वयं की शिक्षा भी शामिल है, इस ऐक्य की प्राप्ति की जा सके। इसलिए उन्होंने अपने सपने की शिक्षासस्था का एक ऐसे आश्रम के रूप में वर्णन किया है जिसमें "आश्रमवासी जीवन के उच्चतम ध्येयों को पाने के लिए साधना कर रहे हो, प्रकृति की शान्ति को पाने की साधना कर रहे हो, जहा जिन्दगी सिर्फ ध्यान-पूजा-पाठ ही नही है, बल्कि अपनी हर प्रवृत्ति में सजग होकर लगी हुई हो, जहा छात्रो का मानस सकीर्ण राष्ट्रीयवाद को उच्चतम सत्य की सज्ञा देकर सुप्त नही कर दिया जाता हो, जहा उनको यह ज्ञान दिया जाता हो कि इन्सान की यह दुनिया ईश्वर का राज्य है और उसी के नागरिक बनने की कोशिश करना ही जिन्दगी का सही रास्ता है, जहा सूर्योदय व सूर्यास्त और सितारो को किसी दिन भी अनदेखा नही किया जाता हो, जहा प्रकृति के फूल और फलो के जलसे में मनुष्य आनन्द के साथ हिस्सा लेता हो, और जहा बच्चे और बूढे, गुरु और छात्र, सभी अपने रोजाना के भोजन और अपने अनन्त जीवन के भोजन का पान एक साथ एक ही आसन पर बैठ कर करते हो।" हमारे रोजाना जीवन को ऊपर उठाने में वे आदर्श हमारी मदद करे जो, "हमारे प्राचीन सास्कृतिक शिखर से निकल कर हिन्दोस्तान की आत्मा के अन्दर ही अन्दर बहते हुए आये हैं, जो आदर्श सादगी, आध्यात्मिक दृष्टि में स्पष्टता, हृदय की स्वच्छता, विश्व सामजस्य और हर सर्जन में अनन्त व्यक्तित्व की चेतना प्रदान कराते हो।" रवीन्द्रनाथ को इन्ही विचारो से अपने शिक्षा-दर्शन की प्रेरणा मिली थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षणिक विचार बिलकुल सीधे और सादे थे। इसका खास कारण यही है कि उनमें सर्वव्यापी एकता का गहरा भान था। उनकी शिक्षा में सकीर्ण विशेषज्ञता का बिलकुल भी स्थान नही था, क्योकि उससे ऊपर कही गयी एकता और सम्पूर्णता की प्राप्ति मे रुकावट आती है। मै जैसा समझ पाया हू, विश्वभारती का उद्देश्य टैगोर के इन्ही सिद्धान्तो पर आधारित है।

उच्च शिक्षा के अन्य केन्द्रो के दो मुख्य उद्देश्य रहते है : अ विद्यार्थी को समाज के अलग-अलग कार्यों के लिए तैयार करना, आ ज्ञान के क्षेत्र को बढाना। विश्वभारती इन दोनो कार्यो को तो करेगी ही, किन्तु उसके पीछे और भी दो बाते है। इ उसे अपने विद्यार्थियों को उदार-शिक्षा (लिबरल एजूकेशन) देनी चाहिए, और ई उन्हे शुद्ध-जीवन बिताने की ओर प्रेरित करना चाहिए।

इन चार बातो में से पहली दो तो करीब-करीब सभी विश्वविद्यालयो में हो रही है। समाज के अलग-अलग कामो को सिखाने का काम आज अन्य संस्थाए भी कर रहे है। और शोध की जिम्मेवारी विश्वविद्यालयो से बाहर निकलकर अधिक समृद्ध राष्ट्रीय और औद्योगिक प्रयोगशालाओ मे पहुँचती जा रही है। किन्तु जो सब से महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मै समझता हू विश्वविद्यालय की होनी चाहिए, उस पर 'विशेषज्ञता' के दबाव के कारण दुनिया की सारी युनिवर्सिटियो में हो कम ध्यान दिया जा रहा है। वह है उदार शिक्षा देने की जिम्मेदारी। यदि वह पूरी नही होती है तो पहली दो बाते हमारे सामाजिक जीवन के गुणात्मक स्तर को गिरा देंगी। जब राज्य का कारबार थोडे ही लोगों के हाथ में होता है तो थोडे लोगों के ही ज्ञानी होने से काम चल जाता है। पर जब सारी जनता ही राज्यकर्ता होती है तो किसी हालत में भी जनता अशिक्षित रहने पर राज्य व्यवस्था ठीक नही हो सकती।

विज्ञान के विकास के साथ साथ बढती हुई जानकारी के कारण विशेषज्ञता-वाद से छुटकारा पाना मुश्किल हो गया है। किन्तु विशेषज्ञता ही यदि हमारा ध्येय हो जाय तो हमारी मानवता खतरे में पड जायगी। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति विशेषज्ञ होने से पहले उसे 'समय के जीवनावश्यक मार्मिक विचारो' से परिचित कराया जाय। इससे वह एसे बर्बर वैज्ञानिक या विच्छिन्न ज्ञानी होने से बच जायेगा जो कम-से-कम चीजों के बारे में ज्यादा-से-ज्यादा जानता होगा और उन सबसे, जो उसी की तरह के है और जिनके अन्दर सामूहिकता के आदर्शों का अभाव है, अलग पड जायगा। तीन हजार बरस पहले एक चीनी दार्शनिक ने कहा था "मै उस मेंढक को सागर की बात कैसे बताऊ जिसने अपनी तलिया कभी नही छोडी हो ? मै उस गर्म देश की चिडिया को कोहरे की बात कैसे बताऊ जिसने अपना देश कभी नही छोडा हो ? मै उस मुनि से जिन्दगी की बाते कैसे कर सकता हू, जो अपने विचारो का ही कैदी है ?"

चौथा उद्देश्य है शुद्ध जीवन के लिए प्रेरणा देने का। कोई तो यह भी कह सकता है कि इन ज्ञानियों को जीवन की मामूली बातो को बताने की क्या जरूरत। पर यह कहना बिलकुल अज्ञान ही दिखायेगा, क्योकि असलियत यह है कि इस प्रकार के ज्ञान के भार से आम तौर

पर अच्छा जीवन बिताने का और समस्याओं का ठीक हल निकाल लेने का गुण ओझल हो जाता है, जब कि सीधे सादे लोगों में वह ज्यादा पाया जाता है।

पुरानी शिक्षा पद्धति में धार्मिक बुनियाद के कारण व्यक्तियों में वह गुण विकसित होता था। पश्चिमी देशों में दर्शन-शास्त्र के अध्ययन का रुख भी यही था। किन्तु आज विशेषज्ञता-वाद के कारण परिस्थिति काफी बदल गई है। विश्वविद्यालय यह मानने लगे हैं कि धर्म और अध्यात्म का समय खतम हो गया है, और अब तो विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान का ही युग है। इस दृष्टि के कारण विज्ञान मानवी मूल्यों से और उनके आधार पर ज्ञात पदार्थों का मूल्यांकन करने से हट जाता है। यह एक ऐसा दर्शन शास्त्र है जो नैतिकता से विहीन है। ऐसी हालत में विज्ञान भले बुरे दोनों का बन्धु बन जाता है और सुधारने व बिगाड़ने, दोनों का काम करता है।

आजकल विश्वविद्यालय की शिक्षा मार्ग-दर्शन करने की शक्ति नहीं रखती। जानकारी प्राप्त करने की दौड में वह मानवीय मूल्यों को भूल गई है। यह दृष्टि बदलनी चाहिए। विश्वविद्यालयों में जीवन मूल्यों के विषय पर चर्चा समालोचना आदि करने में प्रोत्साहन देने का साहस होना चाहिए। उसे विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय करना चाहिए, जिससे कि जीवन के ध्येय छात्रों के सामने स्पष्ट हों और वे उन्हें पाने के लिए प्रेरित हो सकें।

मुझे यकीन है कि विश्वभारती को बनाने के पीछे टैगोर ने इन ध्येयों को सामने रखा था, क्योंकि उनके लिये 'सत्य सर्वव्यापी' था, कारण 'सृष्टि में कहीं भी आत्यन्तिक एकान्तता नहीं होती है।' और सत्य पर पहुंचने का एक रास्ता 'सर्व भूतों में अपनी आत्मा का समावेश' करना ही है, जो 'प्राचीन भारत के वनवासी ऋषियों का प्रयत्न' था। कवि इस तरफ हमारा ध्यान खींचते नहीं थकते थे, क्योंकि उन्होंने देखा कि हमारी अपने चारों तरफ की दुनिया के साथ कोई संवेदना नहीं हो सकती, अगर वह हमारे लिये एकदम अनजानी रहे। उनका जोर था कि सायन्स भी 'आत्मा को समझना' ही बन जाय; जो हमें अधिकार की तरफ नहीं, बल्कि आनन्द की तरफ ले जायेगा, जो आनन्द सदृश वस्तुओं के संयोग का परिणाम है। ज्ञान में, प्रेम में और सर्वभूतों की सेवा में सच्चा ऐक्य पाना और उसी के द्वारा सर्वव्यापी परमात्मा के साथ ऐकात्म्य बोध ही ऊंचे-से-ऊंचा ध्येय है। और यही उपनिषदों की शिक्षा का निचोड है। जीवन अनन्त है।

"प्राचीन काल की तरह भारत को फिर भी प्राच्य और पाश्चात्य का ऐसा सम्मिस्थल बनना है जहां हर संस्कृति अपना व्यक्तित्व कायम रखते हुए दूसरे की सर्वश्रेष्ठ बातें अपनाले।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शिक्षा में दो क्रान्तिकारी

जी० रामचन्द्रन

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाधीजी कई प्रकार से महान् आत्मा थे। उनके व्यक्तित्व में गहनता और वैविध्य था। रवीन्द्रनाथ सिर्फ कवि नही थे और न गाधीजी केवल महात्मा। कवि दार्शनिक भी थे, इसके अलावा वे उपन्यासकार, नाटककर्ता, साहित्य समालोचक, समाज सुधारक, देशभक्त, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और ग्राम पुनर्निर्माण के कार्य में क्रान्तिकारी थे। महात्मा एक बडे चिन्तक भी थे और साहित्यिक, सामाजिक क्रान्तिकारी, राष्ट्रीय नेता, अर्थ शास्त्री, मानवतावादी, कुशल योद्धा, शान्तिस्थापक और ग्रामपुनर्रचना के कार्यों में वे थे एक यथार्थदर्शी तज्ञ। दोनो ने जिन्दगी के करीब हर पहलू को स्पर्श किया। और जिस किसी विषय को भी उन्होने स्पर्श किया उसमें नये प्राण का सञ्चार हुआ और वह मानवता के लिए अर्थपूर्ण बन गया। जिन्दगी के प्रति दोनो की वृत्ति संपूर्ण तथा समन्वित थी। उन्होने जिन्दगी को टुकडो में नही, बल्कि एक पूर्ण और समग्र चीज के तौर पर देखा। रवि ठाकुर सुन्दरता के उपासक थे और उनकी सौन्दर्य की व्याख्या अन्ततोगत्वा जीवन के सब मूल्यो को अपने अन्दर समा लेनेवाली थी। गाधीजी सत्य के उपासक थे और वह सत्य इतना विपुल था कि दैनिक जीवन की हर एक छोटी मोटी चीज भी उसके अन्दर समा गई थी।

भारत में शैक्षणिक क्रांति के लिये अपनी अनोखी देन में रवि ठाकुर और गाधीजी एक दूसरे के बहुत नजदीक आ गये। शायद इस क्षेत्र में वे और विषयो से ज्यादा परस्पर के समीप पहुच गए। इन दोनो के इस ऐक्य का अध्ययन चाहे कितने ही संक्षेप में क्यो न हो, अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

शिक्षा जगत् में गुरुदेव का प्रवेश भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के एक संकटकाल में हुआ। उसके कुछ समय पहले बगाल में उच्च शिक्षा में संस्कृत और अंग्रेजी के स्थान के बारे में एक जोरदार विवाद चला था। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी के पक्ष में विजय हासिल कर ली थी। लेकिन संस्कृत शिक्षा के समर्थक भी हारे नही थे, अत्यन्त निपुण नेतृत्व में उन्होंने लडाई चालू रखी। जब टैगोर मंच पर आ गये तो उन्होंने दिखाया कि इन दोनो के बीच संघर्ष की जरूरत नही। वे नये और पुराने के बीच मेल लानेवाले सिद्ध हुए। उन्होने शिक्षा की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर जोर देनेवाली पुरानी गुरुकुल पद्धति के श्रेष्ठतम मूल्यो का पुनराविष्कार किया और फिर उन्हें सारे विश्व की आधुनिकतम प्रगतिशील शैक्षणिक सिद्धान्तो के साथ मिला दिया। उनके बनाये शान्तिनिकेतन में नये समन्वय पर आधारित नया विद्यालय चला। उधर संस्कृत सिंहासन पर प्रतिष्ठित थी, लेकिन उसके चारो तरफ नये भारत के जीवन से स्पन्दमान आधुनिक याथार्थ्यों को भी अपने स्थान मिल गये। नयी नयी भाषाए सीखने की व्यवस्था थी

जिसमे भारत और आधुनिक विश्व के साथ सामञ्जस्य स्थापित हुआ। शान्तिनिकेतन ने शिक्षा का जो उज्जवल मार्ग खोल दिया, उसमें प्राचीन संस्कृत शिक्षा और नयी अग्रेजी शिक्षा के बीच का सघर्ष बिलकुल मिट गया।

शिक्षा में गुरुदेव की देन और गहरी थी। वह पहले नामी चिन्तक थे, जिन्होंने पुस्तक केन्द्रित शिक्षा का निराकरण किया। उन्होने पुस्तको का त्याग नही किया, लेकिन जोरों के साथ बताया कि पाठ्यपुस्तको पर आधारित शिक्षा बहुत "दरिद्र" शिक्षा होगी। वे एक सृजनात्मक कर्म केन्द्रित शिक्षा-पद्धति चाहते थे। शुरुआत इस तरह से की कि उन्होंने शान्तिनिकेतन के विद्यार्थियो को अपनी बहियां और पाठ्यपुस्तके अलग रख कर प्रकृति के बीच चले जाने के लिये कहा। विद्यार्थी देखें, सुनें, समझें, आपस में चर्चा करे, प्रकृति के साथ जियें और उससे सीखें। अपनी उगलियो की कुशलता से कई सुन्दर और उपयोगी चीजें बनायें। उनका विश्वास था कि काम अपने आप मे एक बडा शिक्षक हो सकता है, बशर्ते वह सृजनात्मक हो तथा बौद्धिक एव सौन्दर्य बोधात्मक विकास के साथ सबन्धित हो। उनका यह निश्चित मत था कि शिक्षा इधर उधर से चन्द जानकारियां इक्ट्ठा करना नही होती है, बल्कि उसे जिन्दगी को बनानेवाली होनी चाहिये जो समग्र मानव व्यक्तित्व के विकास व आत्मसाक्षात्कार की तरफ ले जायगी। उन्होने बौद्धिक विकास पर जरूर जोर दिया था, लेकिन वह पूर्ण विकास के एक हिस्से के तौर ही। साठ साल पहले जब शान्तिनिकेतन का शैक्षणिक प्रयोग प्रारभ हुआ तो वह एक क्रान्तिकारी कार्य ही था। उसके पीछे साहस, विशाल दृष्टि, गहरी समझ, खुला मन, जीवन के मूल्यों का यथार्थबोध और गभीर आध्यात्मिक साधना थी।

शिक्षा में गांधीजी की देन सत्याग्रह के बारे में उनके ही अपने क्रान्तिकारी विचार और व्यवहार की अपरिहार्य जरूरतों से समुत्पन्न हुई। सत्याग्रह वह कला और विज्ञान है जो सब से दुर्बल आदमी को स्वतन्त्रता और सत्य की रक्षा में सब से बलवान् बना कर खड़ा कर देता है। इसलिए सत्याग्रह की शिक्षा को जीवन के लिए, जीवन के द्वारा और जीवनभर की शिक्षा बनना आवश्यक था। उसे ऐसी चीज बननी थी जो मानव-व्यक्तित्व के हर पहलू का पूर्ण विकास करे। हाथ और दिमाग की कुशलताओ का साथ साथ और सुसमञ्जस विकास करना था। बौद्धिक और नैतिक प्रगति को समग्र जीवन की समन्वित प्रक्रिया बननी थी। इसलिए टैगोर जैसे ही गाधीजी ने भी पुस्तक-केन्द्रित शिक्षा पद्धति का निराकरण किया और उसकी जगह एक कर्म-केन्द्रित शिक्षाव्यवस्था को कायम किया। भारत के जैसे गरीब देश में शैक्षणिक काम को सृजनात्मक और उत्पादक होना है। इसलिए बुनियादी तालीम का प्रादुर्भाव हुआ।

टैगोर और गाधीजी दोनो श्रेष्ठ शिक्षक थे, जो बच्चो से प्रेम करते थे और बच्चो को सिखाने से और भी ज्यादा प्रेम करते थे। दोनो ने अपने विचार और पद्धतियो को काम में लाकर पुराने शिक्षा पडितो को हिला दिया। शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम भारत की शैक्षणिक क्रान्ति के प्रतीक बन गये है।

अभी तक किसी ने शिक्षा शास्त्रियों के नाते टैगोर और गाधीजी के ऐक्य का पूरा अध्ययन नही किया है। जो भी इस क्षेत्र में अनुसन्धान करेंगे उन्हे आज हमारे देश के शैक्षणिक पुनर्निर्माण में मूल्यवान सपत्ति प्राप्त होगी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शिक्षा विषयक साहित्य

रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा के विषय में अपने विचार भाषणों, निबन्धों और पत्रों के रूप में काफी प्रकट किए हैं। बंगाल की अनेक पत्रिकाओं में वे मूल या संशोधित रूप में प्रकाशित होते रहे हैं। उनमें से कइयों का अंग्रेजी में अनुवाद भी पत्रिकाओं में छपा। उन सब लेखों की सूचि और उनके बारे में जानकारी-एक वृहत् पुस्तक-तालिका (बिब्लियोग्राफी)-"विश्वभारती क्वार्टरली" मई अक्तूबर १९४७ के एक विशेष अंक में प्रकाशित की गई थी। उसके रचयिता श्री पुलिन बिहारी सेन ने हाल ही में उसमें संशोधन भी किए हैं और वह रवीन्द्र-शतीपूर्ति के उपलक्ष्य में शीघ्र ही प्रकाशित होगी, ऐसा श्री पुलिन बाबू से हमें पता चला है। किन्तु १९४७ में तैयार हुई पुस्तक-तालिका या इस वर्ष प्रकाशित होने वाला उसका संस्करण, उन्हीं व्यक्तियों के लिए अधिक लाभदायक होगा जो गुरुदेव के शिक्षा-विचारों के बारे में विशेष खोजबीन का कार्य करना चाहते हैं। मगर शिक्षा के सभी काम करनेवालों और उस पर चिन्तन करनेवालों को उनके शिक्षाविषयक साहित्य की अच्छी जानकारी होना आवश्यक है। इस दृष्टि से हमने यह तालिका तैयार की है। इसके लिए उपरोक्त बिब्लियोग्राफी की पूरी-पूरी सहायता ली गई है।

गुरुदेव के शिक्षाविषयक निबन्धों आदि का संकलन पुस्तकों के रूप में बीच बीच में हुआ है। उनमें से सब से प्रसिद्ध "शिक्षा" है जो सर्वप्रथम १९०८ में सात लेखों को संग्रहित करके तैयार किया गया था। आज भी इस विषय पर उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक "शिक्षा" ही है। उसमें उनके २३ निबन्ध हैं।

रवीन्द्रनाथ के कुछ लेख ऐसे हैं जो अभी तक पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हुए हैं (उदाहरणार्थ इसी अंक में दिया गया "कलाविद्या" शीर्षकवाला लेख)। "शिक्षा" में प्रकाशित लेखों के अलावा उनके ऐसे कई लेख हैं जो शिक्षण के व्यावहारिक बाजू के हैं-जो शिक्षा की पद्धति (मेथॅडोलाजी) की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विश्वभारती प्रकाशन उस प्रकार के निबन्धों का संकलन भी शीघ्र ही "शिक्षा"-द्वितीय भाग के तौर पर प्रकाशित करने वाला है।

आज "शिक्षा" के अलावा तीन और पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनका जिक्र करना आवश्यक है। शान्तिनिकेतन विद्यालय की स्थापना १९०१ में हुई थी, १९५१ में उसकी पचास वर्षी पूरी होने के उपलक्ष्य में इन पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। (१) शान्तिनिकेतन ब्रह्मचर्याश्रम (२) आश्रमेर रूप ओ विकास" (३) विश्वभारती। उनमें से "आश्रमेर रूप ओ विकास" था, जो ११४१ में पहले प्रकाशित हुई थी, इस समय एक परिवर्धित संस्करण निकाला गया था।

उपरोक्त चारों पुस्तकों में प्रकाशित निबन्धों और गुरुदेव की अन्य इस विषय से सम्बंधित पुस्तिकाओं व निबन्धों की जानकारी यहां दे रहे हैं।

—देवी प्रसाद

ग्रन्थ : शिक्षा, १९६० संस्करण

निबन्ध :

शिक्षार हेरफेर– पृष्ठ १६। 'साधना' (पौष १२९९ बंगाब्द) में प्रथम प्रकाशित। मूल व्याख्यान 'राजशाही एसोसिएशन' में पठित। अंग्रेजी अनुवाद : "टाप्सीटर्वी एजूकेशन"– विश्वभारती क्वार्टरली (नवम्बर १९४६–जनवरी १९४७)।

छात्रदेर प्रति संभाषण– पृष्ठ १५। 'बंगदर्शन' (वैसाख १३१२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। क्लासिक रंगमंच में पठित।

शिक्षा संस्कार– पृष्ठ ८। 'भाण्डार' (ज्येष्ठ १३१३ ब०) में प्रथम प्रकाशित। कलकत्ता टाउन हाल में पठित।

जातीय विद्यालय– पृष्ठ १२। 'बंगदर्शन' (भाद्र १३१३ ब०) में प्रथम प्रकाशित। कलकत्ता हाल में पठित।

आवरण– पृष्ठ १७। 'बंगदर्शन' (भाद्र १३१३ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

तपोवन– पृष्ठ २९। 'प्रवासी' (पौष १३१६ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

धर्मशिक्षा– पृष्ठ २८। 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (माघ १३१८ ब०) में प्रथम प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद : 'रिलीजियस एजूकेशन'–विश्वभारती क्वार्टरली (नवम्बर १९३५)।

शिक्षा विधि– पृष्ठ ८। 'प्रवासी' (आश्विन १३१९ ब०) में प्रथम प्रकाशित। इंगलैण्ड के प्रवास के समय लिखा हुआ एक पत्र।

लक्ष्य और शिक्षा– पृष्ठ ९। 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (अग्रहायन १३१९ ब०) में प्रकाशित। इंगलैण्ड के प्रवास में लिखा एक पत्र।

स्त्री शिक्षा– पृष्ठ ७। 'सबूज पत्र' (भाद्र-आश्विन १३२२ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

शिक्षार वाहन– पृष्ठ २१। 'सबूज पत्र' (पौष १३२२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद. 'मीडियम आफ एजूकेशन'–द माडर्न रिव्यू (१९१४)

छात्र शासनतंत्र– पृष्ठ १७। 'सबूज पत्र' (चैत्र १३२२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। प्रेसिडेन्सी कालेज में छात्र-अध्यापकों के बीच संघर्ष के संदर्भ में लिखा गया निबन्ध। अंग्रेजी अनुवाद : 'स्टूडेन्ट्स एण्ड वेस्टर्न टीचर्स'–द माडर्न रिव्यू (अप्रेल सन् १९१६)।

अशान्तोपेर कारण– पृष्ठ ३ । 'शान्तिनिकेतन' (ज्येष्ठ १३२६) में प्रथम प्रकाशित ।

विचार याचाइ– पृष्ठ ३ । 'शान्तिनिकेतन' (आषाढ़ १३२६ व०) में प्रथम प्रकाशित ।

विद्या समवाय– पृष्ठ ५ । 'शान्तिनिकेतन' (आश्विन-कार्तिक १३२६ व०) में प्रथम प्रकाशित ।

शिक्षार मिलन– पृष्ठ २४ । 'सबूज पत्र' (भाद्र १३२८ व०) में प्रथम प्रकाशित । १० अगस्त सन् १९२१ को पहली बार आश्रमवासियों के सामने पढ़ा गया निबन्ध । फिर उसी माह में और दो बार कलकत्ते में युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट हाल और आल्फ्रेड रंगमंच में पढ़ा गया । अंग्रेजी अनुवाद: 'द युनियन आफ कल्चर्स' द माडर्न रिव्यू (नवम्बर १९२१)

विश्व-विद्यालयेर रूप– पृष्ठ १९। पुस्तिका (सन् १९३३) के रूप में प्रथम प्रकाशित। कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सयोजित सभा में दिसम्बर सन् १९३३ में पठित ।

शिक्षार विकिरण– पृष्ठ १३ । पुस्तिका (सन् १९३३) के रूप में प्रथम प्रकाशित । कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सयोजित सभा में फरवरी सन् १९३३ को पठित। अंग्रेजी अनुवाद: 'डिफ्यूजन आफ एजूकेशन'– द माडर्न रिव्यू (जुलाई सन् १९३९) ।

शिक्षा ओ संस्कृति– पृष्ठ ६ । 'विचित्रा' (श्रावण १३४२ व०) में प्रथम प्रकाशित ।

शिक्षार स्वांगीकरण– पृष्ठ २० । विश्वभारती बुलेटिन न० २० (माघ १३४२ व०)। कलकत्ता नगर में अनुष्ठित 'शिक्षा सप्ताह' में अन्तर्जातिक-न्यू एजूकेशन फैलोशिप के भाषण के रूप में यह निबन्ध ८ फरवरी सन् १९३६ को पढ़ा गया था। बहुत पुराने लेख शिक्षार वाहन' के कुछ अंश इसमें आते हैं । गुरुदेव ने कहा था– "इस सम्बन्ध में मैंने बार-बार कहा-सुना है । आज फिर से उसकी पुनरुक्ति करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं— । शायद कई व्यक्ति तो पुनरुक्ति को पकड़ नहीं पायेंगे, क्योंकि मेरी वह पुरानी बात बहुत लोगों के कान तक नहीं पहुंची है । और जो पहचान लेंगे, वे कृपया मुझे क्षमा करें, इसलिए कि आज मैं कोई नई बात कहने नहीं आया हूं । पुरानी बात कहने आया हूं ।" अंग्रेजी अनुवाद : 'मेकिंग एजूकेशन अवर ओन'-न्यू एजूकेशन फैलोशिप बुलेटिन न० १ शान्तिनिकेतन ।

आश्रमेर शिक्षा– पृष्ठ ६ । 'प्रवासी' (आषाढ़ १३४३ व०) में प्रथम प्रकाशित ।

छात्र संभाषण– पृष्ठ १३ । पुस्तिका के रूप (फाल्गुन १३४३ व०) में प्रथम प्रकाशित। फरवरी सन् १९३७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के पदवी-वितरण समारोह में दिया भाषण । अंग्रेजी अनुवाद : 'एड्रेस एट द एनुवल कन्वोकेशन' कलकत्ता विश्वविद्यालय (सन् १९३७) ।

ग्रन्थ : शांतिनिकेतन ब्रम्हचयाश्रम, ७ वी पौष १३५८ ब०

निबन्ध :

प्रतिष्ठा दिवसेर उपदेश– पृष्ठ ११ 'तत्ववोधिनी पत्रिका' (माघ १८२३ शकाब्द) में 'शान्तिनिकेतन एकादश मावत्सरिक ब्रह्मोत्सव' विवरण के अन्तर्गत प्रकाशित । यह भाषण आश्रम विद्यालय की प्रतिष्ठा के समय बालको को दीक्षा के तौर पर दिया गया था ।

प्रथम कार्य प्रणाली– पृष्ठ २३ । शान्तिनिकेतन विद्यालय की प्रतिष्ठा के अगले वर्ष ही यह पत्र लिखा था । कहा जा सकता है कि यही थी विद्यालय की विधि–कान्स्टीट्यूशन । इसमें विद्यालय के रोजाना के कार्यक्रम के बारे में बडी बारीकी के साथ चर्चा की गई है ।

ग्रन्थ : रूप ओ विकास- परिवर्धित सस्करण (७ पौष १३५८)

निबध :

१ आश्रमेर शिक्षा– यह लेख 'शिक्षा' में भी है और इसका उल्लेख पहले हो चुका है ।

२ आश्रमेर रूप ओ विकास–पृष्ठ १२ । पुस्तिका के रूप में (आषाढ १३४८ ब०) प्रकाशित था ।

३ आश्रमविद्यालयेर सूचना– आश्विन १३४० ब० में शान्तिनिकेतन में आश्रमवासियो के समक्ष पढा गया निबन्ध ।

ग्रन्थ : विश्वभारती, ७ वी पौष १३५८ ब०

शान्तिनिकेतन का विकास विश्वभारती के रूप में सन् १९२१ में हुआ । १९२१ से १९४१ के बीच के बीस वर्षों में रवीन्द्रनाथ ने जो व्याख्यानादि आश्रम विद्यालय और विश्वभारती के आदर्शों के सम्बन्ध में दिये थे, विभिन्न पत्र--पत्रिकाओ से उनका सकलन करके यह ग्रन्थ रचा गया है ।

पहला निबन्ध-- विश्वभारती बनने की बात खडी होने के बाद रवीन्द्रनाथ को भारत के विभिन्न स्थानो में निमन्त्रित किया गया था । उस समय अपने शिक्षा के आदर्शों के बारे में जो भाषण दिये उनके सक्षिप्त [मर्म] रूप में यह निबध उन्होने लिखा था ।

दूसरा निबन्ध– १८ वी आषाढ १३२६ ब० को 'विश्वभारती' के कार्यारम्भ के समय दिये गये भाषण का सारसकलन । 'विश्वभारती पत्रिका' (श्रावण १३२५ में प्रथम प्रकाशित ।

तीसरा निबन्ध– विश्वभारती के प्रतिष्ठादिवस (२३ दिसम्बर सन् १९२१) का भाषण । 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (माघ १३२८ ब०) में 'विश्वभारती परिषद् सभार प्रतिष्ठा' नाम से प्रथम प्रकाशित ।

चौथा निबन्ध-- कुछ नये विद्यार्थियों ने गुरुदेव से विश्वभारती के आदर्शों के बारे में पूछा था। यह निबन्ध उसी के उत्तर के रूप में लिखा गया। 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (भाद्र-आश्विन १३२९ ब०) में 'आलोचना: विश्व-भारतीर कथा' के नाम से प्रथम प्रकाशित।

पांचवा निबन्ध- 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' में (पौष १३२९ ब०) 'विश्वभारती सम्मिलनी : लेवी साहेबेर विदाय-सवर्धनार परे आलोचना सभा' नाम से प्रथम प्रकाशित।

छठा निबन्ध- अगस्त सन् १९२२ में कलकत्ता प्रेसिडेंसी कालेज की छात्र-सभा में भाषण। 'प्रेसिडेंसी कालेज मैगेजिन' में 'विश्वभारती' नाम से प्रथम प्रकाशित।

सातवां निबन्ध- 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (भाद्र १३३० ब०) में 'नव वर्षे मन्दिरेर उपदेश' नाम से प्रकाशित।

शान्तिनिकेतन- मदिर में ५ वी वैशाख १३३० ब० को दिया गया एक उपदेश। 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (अग्रहायन १३३० ब०) में प्रथम प्रकाशित।

नौवां निबन्ध- 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (पौष १३३० ब०) में 'विश्वभारती' नाम से प्रकाशित।

दसवां निबन्ध- शान्तिनिकेतन पत्रिका (माघ १३३० ब०) में '७ वी पौष : द्वितीय व्याख्यान' के नाम से प्रथम प्रकाशित।

ग्यारहवां निबन्ध- दक्षिण अमेरिका की यात्रा से पहले दिया गया भाषण। 'प्रवासी' (कार्तिक १३३१ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

बारहवां निबन्ध- विश्वभारती परिषद की वार्षिक सभा में भाषण। 'शान्तिनिकेतन' (फाल्गुन १३३२ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

तेरहवां निबन्ध- 'भारती' (ज्येष्ठ १३३३ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

चौदहवां निबन्ध- एक चर्चा की अनुलिपि। 'विचित्रा' (ज्येष्ठ १३३७ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

पन्द्रहवां निबन्ध- ९ वी पौष १३३९ ब० को विश्वभारती-परिषद् सभा में दिया गया भाषण। 'विश्वभारती न्यूज' (जनवरी १९३३) में प्रकाशित।

सोलहवां निबन्ध- ८ वी पौष १३४१ ब० को विश्वभारती-परिषद् सभा में दिया भाषण। 'प्रवासी' (फाल्गुन १९३४ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

सत्रहवां निबंध- 'विश्वभारती पत्रिका' (भाद्र १३४९ बं०) में "विश्वभारती विद्यालय विद्यायतन' नाम से प्रथम प्रकाशित।

अठारहवा निबन्ध– ८ वी पौष १३४५ ब० को विश्वभारती की वार्षिक परिषद में दिया गया भाषण। 'प्रवासी' (माघ १३४५ ब०) में 'विश्वभारती' नाम से प्रथम प्रकाशित।

उन्नीसवां निबन्ध–८ वी श्रावण १३४७ ब० को मदिर में साप्ताहिक उपासना में दिया उपदेश। 'प्रवासी' (भाद्र १३४७ ब०) में 'आश्रमेर आदर्श' नाम से प्रथम प्रकाशित।

पाठ्य पुस्तकें

रवीन्द्रनाथ ने बगला, और अंग्रेजी सस्कृत शिक्षा की पुस्तिकाए भी तैयार की। उनकी तैयार की हुई बगला की पहली पुस्तकें–सहज पाठ, बगला में सर्वश्रेष्ट मानी जाती हैं।

सस्कृत शिक्षा– भाग १ ला और २ रा (सन् १८९६)।

इगरेजी सोपान– खण्ड–१, भूमिका और पहला भाग (सन् १९०४), पुस्तक की उपयोगविधि के बारे में लेखक के निर्देशों के साथ। भूमिका का अध्याय 'इगरेजी श्रुति शिक्षा' के नाम से परिवर्तित और पुनर्मुद्रित हुआ।

इग्रेजी सोपान– खण्ड २।

इग्रेजी पाठ– खण्ड १ (१८ पाठ)।

छुटिर पद– (सन् १९०९) निबधो, कहानियो व कविताओ का सग्रह।

पाठ सचय– (सन १९१२) निबध और कहानिया।

विचित्र पाठ– (सन् १९१५) निबध और कहानिया।

अनुवाद चर्चा– (सन् १९१७) अनुवाद के लिये चुने गये खण्ड, २२४ पैसेज का अनुवाद।

इग्रेजी सहज शिक्षा– खण्ड १, इग्रेजी सोपान (खण्ड १) का सशोधित सस्करण।

इग्रजी सहज शिक्षा– खण्ड २। इग्रजी सोपान (खण्ड २) का सशोधित सस्करण।

पाठ प्रचय– (चार भाग) निबन्ध, कहानिया और कविताए।

सहज पाठ–१, बच्चो की पहली किताब–गद्य और पद्य में।

सहज पाठ–२, बच्चो की दूसरी किताब, गद्य और पद्य में।

कुरुपाण्डव– सुरेन्द्रनाथ ठाकुर की 'महाभारत' से सकलित।

आदर्श प्रश्न– विश्वभारती लोक शिक्षा सग्द द्वारा चलायी जानेवाली परीक्षाओ के नमूने के प्रश्नपत्र।

विविध पुस्तक-पुस्तिकाएं

शिक्षार आन्दोलन– सन् १९०५ में बंगाल में 'राष्ट्रीय शिक्षा' चलाने के लिए किए गए आन्दोलन का वर्णन; रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रस्तावना। 'शिक्षार आन्दोलनेर भूमिका' नाम से रवीन्द्र-रचनावली, खण्ड १२ के परिशिष्ट में प्रकाशित।

केलेन्डर– १९०६-१९०८ नेशनल कौन्सिल आफ एजूकेशन, बंगाल में १९०८ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भाषण।

शान्तिनिकेतन– १-१७ (१९०९-१६) शान्तिनिकेतन आश्रम विद्यालय की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि और दर्शन को जो समझना चाहते है, उन्हे इन प्रवचनो का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

रुष्यार चिठि– (१९३१) रूस के शैक्षणिक प्रयोगो के बारे में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पत्र। 'से' - में एक लहरी शिक्षक का काल्पनिक चित्र (अध्याय १३), जिसके विचार और पद्धतिया कवि के अपने विचार और पद्धतियों से सादृश्य रखती है।

प्रसाद – आश्रम सघ, शान्तिनिकेतन (दिसम्बर १९३९) । कवि के पहले दो निबन्ध जो शान्तिनिकेतन के एक पूर्व छात्र–प्रसाद चटर्जी–को अभिनन्दन के रूप में लिखे गये थे।

स्मृति– (सन् १९४१) मनोरजन बन्दोपाध्याय को लिखी चिट्ठिया। शिक्षा सबन्धी बातो के लिए खास कर पृष्ठ १०, १४, १८ और २२ देखिये।

प्रसंग कथा– 'साधना' (आषाढ १३०० ब०) । 'शिक्षार हेरफेर' में व्यक्त किये विचारों के ऊपर मोहिनी मोहन चटर्जी की आलोचना 'शिक्षासकट' का उत्तर। रवीन्द्र-रचनावली खड १२ पृष्ट ५१६-२३)

छात्रगणेर प्रति उपदेश– 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' (माघ १८२३ शक) पेज न. १४७-७५।

प्राइमरी शिक्षा– 'भाडार' (वैशाख १३१२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। (रवीन्द्र रचनावली–खड १२)

विज्ञान सभा– 'भाडार' (ज्येष्ठ १३१२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। (रवीन्द्र रचनावली–खड १२)

इतिहास कथा– 'भाडार' (आषाढ १३१२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। (रवीन्द्र रचनावली खड १२)

स्वाधीन शिक्षा– 'भाडार' (आषाढ १३१२ ब०) में प्रथम प्रकाशित। (रवीन्द्र रचनावली–खड १२)

हिन्दु विश्वविद्यालय– 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (अग्रहायन १३१८ ब०) में प्रथम प्रकाशित। चैतन्य पुस्तकालय द्वारा सयाजित एक सभा में दिया भाषण।

अमेरिकार चिठि– 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (वैशाख १३२० ब) में प्रथम प्रकाशित। (पत्र २ रा और ३ रा)

विलातेर विद्यालय– 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (आश्विन १३२० ब०) में प्रथम प्रकाशित।

विलातेर चिठि– 'तत्वबोधिनी पत्रिका' (आश्विन १३२० ब०) में प्रथम प्रकाशित। आश्रम विद्यालय के आदर्शों से सम्बन्धित पत्र।

टीका टिप्पणी - 'सबुज पत्र' (श्रावण १३२२ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

तोता काहिनी– 'सबुज पत्र' (माघ १३२४ ब०) में प्रथम प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद 'ए पैरेट्स ट्रेनिंग।'

इगरेजी सेखा– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (वैशाख १३२० ब०) में प्रथम प्रकाशित।

इगरेजी सेखार आरम्भ– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (ज्येष्ठ १३२६ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

उद्योग शिक्षा– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (आश्विन-कार्तिक १३२६ ब०) म प्रथम प्रकाशित।

मनोविकासेर छन्द - 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (आश्विन–कार्तिक १३२६ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

कर्मविद्या– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (अग्रहायन १३२६ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

आकांक्षा– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (पौष १३२६ ब०) में प्रथम प्रकाशित। सिल्हट के विद्यार्थियो को दिया भाषण।

पत्र– 'प्रवासी' (भाद्र-आश्विन १३२९ ब०) में प्रथम प्रकाशित। स्त्री शिक्षा के विषय में लिखा एक पत्र।

सुदामापुरीवासीदेर प्रति– 'शान्तिनिकेतन पत्रिका' (आषाढ १३३० ब०) में प्रथम प्रकाशित। विश्वभारती के विषय में पोरबन्दर में दिया एक भाषण।

पूर्ववगर वस्तृता– 'प्रवासी' (वैशाख १३३३ ब०) आनन्द मोहन कॉलेज के विद्यार्थियो द्वारा दिये गए स्वागत के उत्तर म दिया भाषण।

धर्म बोध–'प्रवासी' (श्रावण १३३४ ब०) में प्रथम प्रकाशित।

सिटि कॉलेजेर छात्रावासेर सरस्वति पूजा–'प्रवासी' (ज्येष्ठ १३३५ ब०) में प्रथम प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद (द माडर्न रिव्यू–मई, सन् १९२८)

विश्वविद्यालये संगीत शिक्षा–'प्रवासी' (अग्रहायन १३३५ ब.) में प्रथम प्रकाशित ।

लाइब्रेरीर मुख्य कर्तव्य– 'प्रवासी' (पौष १३३५ ब०) में प्रथम प्रकाशित । अंग्रेजी अनुवाद . 'द फंक्शन्स ऑफ ए लायब्रेरी' नाम से 'विश्वभारती क्वार्टरली' (जनवरी सन् १९२९) में प्रकाशित ।

ध्यानी जापान– 'प्रवासी' (भाद्र १३३६ ब०) में प्रथम प्रकाशित ।

रवीन्द्रनाथेर कएकटी पत्रांश–'प्रवासी'(पौष १३३७ ब०)में प्रथम प्रकाशित । सहशिक्षा के विषय में लिखा एक पत्र ।

शिक्षार सार्थकता– 'प्रवासी' (ज्येष्ठ १३३२ ब०) में प्रथम प्रकाशित एक पत्र ।

मक्तब मदर्सार बांगला भाषा– 'प्रवासी' (फाल्गुन १३४१ ब०) में प्रकाशित एक पत्र ।

भाषा शिक्षाये साम्प्रदायिकता– 'प्रवासी' (पौष ?) में प्रथम प्रकाशित दो पत्र ।

शिक्षा ओ संस्कृतिते संगीतेर स्थान– 'प्रवासी' (फाल्गुन १३४ ब०) में प्रथम प्रकाशित । अंग्रेजी अनुवाद: 'द प्लेस आफ म्यूजिक इन एजूकेशन एण्ड कल्चर' नाम से विश्वभारती क्वार्टरली (मई-अक्तूबर सन् १९३७) में प्रकाशित ।

बांगला शिक्षार प्रणाली– 'प्रवासी' (भाद्र १३४७ ब०) में प्रथम प्रकाशित ।

शान्तिनिकेतनेर शिशुविभाग– 'देश' (२० अग्रहायन १३४८ ब०) में प्रथम प्रकाशित ।

अंग्रेजी की पुस्तिकायें और लेखादि– जिनका अंग्रेजी अनुवाद के रूप में भी ऊपर जिक्र नहीं आया है ।

माई स्कूल–कवि का प्रसिद्ध निबन्ध, जो अमेरिका में एक भाषण के रूप में पढ़ा गया था ।

एन ईस्टर्न युनिवर्सिटी– 'विश्वभारती' बुलेटिन न० ७ ।

ए पोयट्स स्कूल– 'विश्वभारती' बुलेटिन न० ९ ।

माई आइडियल्स विथ रिगार्ड टु द वोमेन– 'विश्वभारती' (दिसम्बर सन् १९२८) कन्या छात्रावास में दिया भाषण ।

कन्वोकेशन एड्रस– हरिद्वार गुरुकुल विश्वविद्यालय (सन् १९४१) ।

द गेस्ट हाउस आफ इण्डिया– सान्ताक्रूज़, बम्बई में (अप्रैल सन् १९२४) सारस्वत समाज द्वारा दिए अभिनन्दन का उत्तर ।

रवीन्द्रनाथ ऑन हिज़ मिशन– द माडर्न रिव्यू (अप्रैल सन् १९२५) ।

अवर फाउन्डर प्रेसीडेन्ट इन मलाया– 'द इन्डियन' (सिंगापुर) (अक्तूबर सन् १९२७) में देखिए 'एड्रस टु स्कूल चिल्ड्रन एट द विक्टोरिया थिएटर'।

रवीन्द्रनाथ टैगोर्स विसिट टु कैनेडा एण्ड जापान–विश्वभारती बुलेटिन न० १४।

एजूकेशनल मिशन आफ द विश्वभारती–विश्वभारती क्वार्टरली (वाल्यूम ८–भाग ४) रेडियो पर दिया गया न्यूयार्क का एक भाषण।

एन एड्रस– विश्वभारती क्वार्टरली (अगस्त सन् १९३८) नये भर्ती हुए विद्यार्थियों को दिया गया भाषण।

एजूकेशन फार रूरल इन्डिया– विश्वभारती क्वार्टरली (मई–अक्तूबर सन् ११४७)। 'पल्लीसेवा' नाम के श्रीनिकेतन (सन् १९३१) के भाषण का अनुवाद।

वर्नाक्लूलर्स फार एम. ए डिग्री– विश्वभारती क्वार्टरली (नवम्बर १९१८)।

द स्कूलमास्टर– विश्वभारती क्वार्टरली (अक्तूबर १९२४)। जापान का एक भाषण।

टु द चाइल्ड– विश्वभारती क्वार्टरली (मई १९२५)। जापान का एक भाषण।

आर्ट इन एजूकेश– विश्वभारती क्वार्टरली (जनवरी १९४१)। एक पत्र।

रवीन्द्रनाथ द्वारा अंकित एक रेखाचित्र

टिप्पणियां
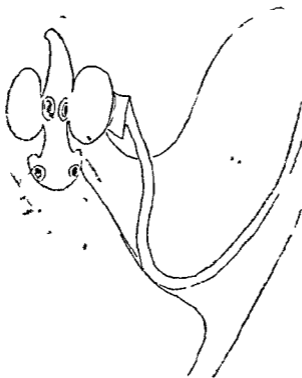
सर्वोदय सम्मेलन

इस वर्ष तेरहवां अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन, चेब्रोल, पश्चिम गोदावरी, आंध्र में ता. १८-१९ और २० अप्रैल को सम्पन्न हुआ।

दस वर्ष पूर्व भूदान गंगोत्री की धारा शिवरामपल्ली सर्वोदय सम्मेलन के बाद इसी आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र से चल पड़ी थी। दस वर्षों के बाद उसके उद्गम स्थान में हम सब सर्वोदय के कार्यकर्ता और प्रेमी मिले।

सम्मेलन स्थान का नाम सर्वोदयपुरम् रखा गया था। सर्वोदयपुरम् के उत्तर में रेल लाइन दक्षिण में गोदावरी की विशाल नहर, और उनके किनारे पक्की सड़क थी। सम्मेलन में आनेवालों की सुविधा के लिये पास में ही नये "सर्वोदयपुरम् स्टेशन" का निर्माण किया गया था।

खुले सम्मेलन अधिवेशन से पहले सर्व सेवा संघ का अधिवेशन ता. १३ से ही प्रारंभ हो गया था। इसके लिए करीब डेढ़ हजार लोक सेवक पहुंचे थे।

दिनांक १८ को दोपहर ३ बजे सूतकताई से सम्मेलन का प्रारंभ हुआ। इस सम्मेलन का अध्यक्षस्थान श्री जयप्रकाश बाबू ने सुशोभित किया था। खुले अधिवेशन में करीब दस हजार लोगों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन में पंचायती राज्य पर ज्यादा जोर दिया गया और यह सर्व सेवा संघ के आगामी प्रमुख कार्यक्रमों में से माना गया। साथ ही आगामी आम चुनावों में जिले मतदाता संघ बनाये जाय और वे अपना प्रतिनिधि चुनाव में खड़े करें, इसके लिये जनता को तैयार किया जाय, यह सम्मेलन की राय रही।

सम्मेलन की एक विशेषता शान्तिसेना रैली थी। ता० १७ और १८ को सुबह इसका आयोजन किया गया। फिर में पीले कपड़े बांधे करीब ४०० शान्ति सैनिकों ने इसमें हिस्सा लिया। ऐसी रैली देहली में भी आयोजित की जाय ऐसा भी एक सुझाव रहा।

सम्मेलन के साथ एक बड़ी प्रदर्शनी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया था, जिसके कारण सर्वोदयपुरम् में भीड़ लगी रहती थी। हजारों की संख्या में चारों ओर के शहर तथा गांवों के लोग आते थे। ता. २० को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र बाबू सम्मेलन के अतिथि के तौर पर आये थे।

सम्मेलन की सर्व साधारण व्यवस्था बड़ी अच्छी थी। इस व्यवस्था की विशेषता यह थी कि बहुत सा काम आसपास के देहातवालों ने श्रमदान के रूप में किया।

सम्मेलन ने जो निवेदन प्रकाशित किया है उसे यहां दे रहे हैं। संघ ने वैसे तो चार-पांच प्रस्ताव पास किये हैं किन्तु 'नई तालीम' के पाठकों के सामने इस अंक में मुख्य तौर पर हम यह प्रस्ताव पेश कर रहे हैं जो अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा के सरकारी कार्यक्रम से सम्बन्धित है।

सर्व सेवा संघ अधिवेशन का निवेदन

सर्व सेवा संघ का अधिवेशन इस बार आन्ध्र की उस भूमि पर हो रहा है जहां दस साल पहले भूदान यज्ञ का आरम्भ हुआ था।

भूदान यज्ञ के जरिए देश में अहिंसक शान्ति का एक नया पहलू प्रगट हुआ। गांधीजी की मृत्यु के बाद जब देश में निराशा छायी हुई थी, भूदान यज्ञ ने सर्वोदय की दिशा में एक निश्चित कदम उठाया और एक नयी आशा पैदा की। गांधीजी ने सत्याग्रह के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रवेश किया था और अपने आंदोलन तथा रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा देश में एक सार्वजनिक जागृति की थी। स्वराज्य के बाद भूदान ने आर्थिक समता का तथा हिंसक शक्ति के विरोधी और दण्डशक्ति से निरपेक्ष लोकशक्ति के निर्माण का रास्ता खोल दिया है।

कर सकते है। आगामी आम चुनाव लोकशिक्षण का एक अवसर है। सर्व सेवा संघ ने सत्तावादी राजनीति से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। परन्तु लोकशक्ति की अभिव्यक्ति के हर अवसर से वह लाभ उठाना चाहता है। इस वर्ष उसने चुनाव संबंधी अपने प्रस्ताव द्वारा उस दिशा में एक ठोस कदम उठाया है। चुनाव के सिलसिले में व्यापक लोकशिक्षण की मदद से चुनाव संबंधी कुछ निश्चित आचारों का प्रचार करना और जनता को अपने मतदाता मण्डलों द्वारा उम्मीदवार खड़े करने की शिक्षा देना हमारा कार्यक्रम रहेगा।

शोषण-विहीन और शासन निरपेक्ष समाज तक पहुंचने में अभी मंजिल तय करनी है। रास्ता आसान नहीं है, किन्तु आज भूदान, शांति-सेना और लोकस्वराज का जो विविध कार्यक्रम हमारे सामने है उसके द्वारा हम इस दिशा में आगे बढ सकते हैं। सर्व सेवा संघ राष्ट्र के सभी नागरिकों से यह अपील करता है कि जनशक्ति के निर्माण के इस महान् यज्ञ में वे अपना योगदान अवश्य दें और इस प्रकार गांधीजी की कल्पना के स्वराज्य को स्थापित करने में सहायक बनें।

'अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा' पर संघ का प्रस्ताव

भारत सरकार की ओर से विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य "राष्ट्रीय सेवा" की एक योजना सोची जा रही है, जिसके अनुसार माध्यमिक शाला या इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास करनेवाले हर विद्यार्थी के लिए कम से कम नौ महीने की 'राष्ट्रीय सेवा' अनिवार्य होगी। इस 'राष्ट्रीय सेवा' के दो मुख्य अंग माने गए हैं। एक सैनिक प्रशिक्षण और दूसरा कम-से-कम चार घण्टे प्रतिदिन किसी-न किसी ग्राम-विकास के काम में शरीर श्रम।

जहां तक इस राष्ट्रीय सेवा का उद्देश्य देश के नौजवानों को देहाती जीवन से परिचित कराने, उनमें शरीर श्रम के कामों के प्रति आदर और रुचि पैदा करने, सेवा की भावना भरने तथा अनुशासित जीवन के संस्कार डालने का है, यह योजना स्वागत योग्य है। पर सर्व सेवा संघ की राय में इस योजना में सैनिक तालीम, हथियारबंद कवायद तथा हथियारों के उपयोग के शिक्षण आदि का जो अंश दाखिल किया गया है वह नौजवानों में सेवा या अनुशासन की भावना पैदा करने के लिए कतई जरूरी नहीं है। बल्कि आधुनिक शिक्षणशास्त्र की दृष्टि से पूर्ण व्यक्तित्व तथा सच्चे अनुशासन के विकास में इस प्रकार की सैनिक पद्धति बाधक ही है। सर्व सेवा संघ योजना के इस अंग को खतरनाक मानता है तथा इसका विरोध करता है। संघ यह भी अनुभव करता है कि आज जिस प्रकार इसे देश में स्त्रियों के प्रति भी लागू किया जा रहा है यह एक ऐसी चीज है जो आज तक दुनिया के दूसरे किसी देश में नहीं हुई है और इससे स्त्री-सुलभ गुणों पर जो आघात होगा वह समाज के लिये विशेष रूप से हानिकारक है।

राष्ट्रीय सेवा की कोई योजना उच्च शिक्षण यानी विश्व-विद्यालय में प्रवेश पाने की एक योग्यता के रूप में अनिवार्य की जाय उसमें सर्व सेवा संघ हर्ज नहीं मानता, बल्कि इस प्रकार की शर्त से आज के एकांगी शिक्षण की कमी कुछ हद तक पूरी होती है, ऐसा उसका मानना है। पर आगे जाकर इस योजना को अमुक उम्र के तमाम व्यक्तियों के लिए अनिवार्य बनाने की जो कल्पना प्रस्तुत की गई है, तथा सैनिक तालीम का जो इसमें समावेश किया गया है, उस पर से इस राष्ट्रीय सेवा में "अनिवार्य सैनिक सेवा" की पूर्व-तैयारी का आभास होता है। सर्व सेवा संघ किसी भी प्रकार की अनिवार्य सेवा का, खासकर अनिवार्य सैनिक सेवा का, समर्थन नहीं कर सकता। इस प्रकार की किसी अनिवार्य योजना को वह व्यक्ति स्वातंत्र्य के बुनियादी हक के खिलाफ मानता है।

हमारा कुछ साहित्य

विनोबा साहित्य

धम्मपद (केवल पाली) २.००
गीता-प्रवचन १.२५, १.५०
गीता-प्रवचन (संस्कृत, प्रेस में) ३.००
आत्मज्ञान और विज्ञान १.००
सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र १.००
लोक-नीति (परिवर्धित संस्करण) २.००
ग्रामदान १.००
मोहब्बत का पैगाम २.५०, ३.००
स्त्री-शक्ति १.००
भूदान-गंगा (छह खंड) प्रत्येक १.५०
ज्ञानदेव-चिन्तनिका १.००
शान्ति-सेना ०.७५
कार्यकर्ता क्या करे ? ०.७५
कार्यकर्ता-पाथेय ०.५०
गुरुबोध (केवल संस्कृत) १.५०
साहित्यिकों से (नया संस्करण) १.००
साहित्य का धर्म (अमृतसर परिषद् भाषण) ०.५०
त्रिवेणी ०.५०
साम्यसूत्र ०.३७
शुचिता से आत्मदर्शन ०.४०
जय जगत् ०.५०
सर्वोदय-पात्र ०.२५
अशोभनीय पोस्टर्स (प्रेस में)
नगर-अभियान (प्रेस में)
सर्वोदय के आधार ०.२५
एक बनो और नेक बनो ०.२५
गांव के लिए आरोग्य-योजना ०.१३
राम-नाम : एक चिन्तन ०.३०
मधुकर (प्रेस में)

नयी-तालीम-साहित्य

शिक्षण-विचार विनोबा २.५०
सुंदरपुर की पाठशाला जुगतराम दवे ७.७५
नयी तालीम धीरेनभाई ०.५०
बुनियादी शिक्षा-पद्धति „ ०.६०
पूर्व-बुनियादी शिक्षा शांता बहन ०.५०
मूल उद्योग कातना विनोबा ०.७५
नयी तालीम का नया पर्व (सेवाग्राम गोष्ठी) १.००
सफाई विज्ञान और कला वल्लभस्वामी १.००
ग्राम-स्वराज्य नई तालीम १.००
बच्चों की कला और शिक्षा देवीप्रसाद ८.००
हमारा राष्ट्रीय शिक्षण चारुचंद्र भंडारी २.५०
शिक्षा में अहिंसक क्रांति गांधीजी १.००
बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षण १.५०
समग्र नई तालीम २.७५
प्रौढ़शिक्षा का उद्देश्य शांता नारूलकर ०.७५
जीवन-शिक्षा का प्रारंभ „ १.२५
भारत की कथा (अभिनय तथा संगीत) ०.५०
नई तालीम सम्मेलनों की रिपोर्टें—
सातवी २.००, आठवी १.२५, नौवीं ०.६३
दसवीं ०.७५, ग्यारहवी १.००, बारहवी १.५०
नई तालीम की मूल कल्पना ०.१३
ठहराव तथा निष्कर्ष (सातवा सम्मेलन) ०.३८
अध्ययन मंडलियों का विवरण (दसवां सम्मेलन) ०.१[illegible]
उत्तर बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन १.०[illegible]
उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम (संक्षिप्त) ०.२[illegible]
नयी तालीम का आयोजन ०.०[illegible]
सेवाग्राम-गांधीलोक ०.३[illegible]
विद्यार्थियों से विनोबा ०.२[illegible]
शिक्षकों से विनोबा ०.२[illegible]

अखिल भारत सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट–काशी।

नवजीवन ट्रस्ट का गांधीवादी साहित्य

गांधीजी	कीमत
आत्मकथा विस्तृत	१. ५०
अहिंसक समाजवाद की ओर	१. ०
आरोग्य की कुंजी	०. ४४
खादी	२. ०
खुराक की कमी और खेती	२. ५०
गांधीजी की संक्षिप्त आत्मकथा	०. ७५
गोसेवा	१. ५०
दिल्ली डायरी	३. ०
नयी तालीम की ओर	१. ०
बापू के पत्र आश्रम की बहनों को	१. २५
बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई के नाम	३. ०
बापू के पत्र : कुसुमबहन के नाम	१. २५
बापू के पत्र : मणिबहन पटेल के नाम	१. ५०
बुनियादी शिक्षा	१. ५०
मंगलप्रभात	०. ३७
रचनात्मक कार्यक्रम	०. ३७
विद्यार्थियों से	०. २
शिक्षा की समस्या	२. ५०
सच्ची शिक्षा	२. ०
सत्य ही ईश्वर है	०. ८०
सर्वोदय	२. ०
हमारे गांवों का पुनर्निर्माण	१. ५०
हिन्द स्वराज	०. ७०
अन्य लेखक	
महादेवभाई की डायरी, भाग-१	५. ०
" भाग-१	५. ०
" भाग-३	६. ०
सरदार वल्लभभाई भाग-१	५. ०
" भाग २	६. ०
सरदार पटेल के भाषण	५. ०
विवेक और साधना	४. ०
विचार-दर्शन भाग-१	१. ५०

		कीमत
भूदान-यज्ञ		१. २५
आशा का एकमात्र मार्ग		२. ०
बापू की झांकियां		१. ०
सूर्योदय का देश		२. ५०
जीवनलीला		३. ०
बापू की छाया में		४. ०
गीतामंथन		३. ०
तालीम की बुनियादें		२. ०
शिक्षा में विवेक		१. ५०
स्त्री-पुरुष मर्यादा		१. ७५
एकला चलो रे		२. ०
बा और बापू की शीतल छाया में		२. ५०
बापू—मेरी मां		०. ६२
बिहार की कौमी आग में		३. ०
बापू के जीवन-प्रसंग		०. ५०
नये प्रकाशन		
मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	२ ५०
गांवों की मदद में	"	०. ४०
ग्रामोद्योग	"	०. ३०
शरीरश्रम	"	०. २५
पंचायत राज	"	०. २५
संतति-नियमन	"	०. ४०
मेरा समाजवाद	"	०. ४०
सहकारी खेती	"	०. २०
साम्यवाद और साम्यवादी	"	०. २०
ईसा—मेरी नजर में	"	०. ३५
विश्वशांति का अहिंसक मार्ग	"	०. ४०
सरलता का सिद्धांत	"	०. ३०
भारत की खुराक की समस्या	"	०. ५०
गांधीजी और गुरुदेव	[illegible]	०. ८०
गांधीजी का विनोद	"	०. ६०
विचार-दर्शन भाग-२	"	१. ५०
गांधीजी के पावन प्रसंग भाग-१,२,३		

हमारे गुरुदेव

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म सन् १८६१ मई ८ तारीख को कलकत्ते के एक बहुत बड़े धनी परिवार में हुआ। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपने साधु जीवन तथा भक्ति के कारण महर्षि देवेन्द्रनाथ के नाम से प्रसिद्ध थे। ८ से १४ साल की उम्र तक रवीन्द्रनाथ कलकत्ते के एक स्कूल में पढ़ने के लिए जाते रहे, परन्तु उनको स्कूल के शिक्षण से इतनी अरुचि थी कि यह अधिक दिन नहीं चला। १८ साल की उम्र में वे अपने बड़े भाई के साथ इंग्लैण्ड गये। डेढ़ वर्ष वहां रह कर उन्होंने कोई नियमित पाठ्यक्रम पूरा नहीं किया, लेकिन कई मित्र बनाये। स्वदेश लौटने के बाद उन्होंने कविताएं, नाटक आदि खूब लिखना आरंभ किया और जल्दी ही साहित्य जगत् में विख्यात हो गये। सन् १८९० में वे अपने पिता के आश्रम में रहने गये, जहां उन्होंने १९०१ में ब्रह्मचर्याश्रम के नाम से एक नये विद्यालय का आरंभ किया। यही कुछ वर्षों में शान्तिनिकेतन की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था बन गया। १९२१ में कवि ने इसे 'विश्व भारती' नाम की विश्वविद्यालय बना दिया जिसकी कल्पना विश्व की समस्त संस्कृतियों के संगमस्थान के रूप में की गयी। उसके एक-दो वर्ष बाद ग्राम समस्याओं के अध्ययन और हल के लिये उन्होंने श्रीनिकेतन नाम से एक संस्था की स्थापना की।

रवीन्द्र साहित्य इतना विशाल है कि सामान्य तौर पर वह किसी एक व्यक्ति की कृति है, ऐसी कल्पना करना कठिन है। जीवन का शायद ही ऐसा कोई पहलू होगा जिसको उन्होंने स्पर्श नहीं किया हो। संगीत और चित्रकला में भी वे एक बहुत बड़े मौलिक रचयिता के तौर पर हमेशा जाने जायंगे।

राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्र में भी उनका काम कम महत्वपूर्ण नहीं था। सामाजिक कुरीतियों की वे तीव्र निन्दा और उनके उन्मूलन का सतत प्रयत्न करते रहे। १९०५ में लार्ड कर्जन के प्रस्ताव के विरोध में जो आन्दोलन हुआ था, उसका उन्होंने नेतृत्व किया। १९१९ में जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड के प्रतिषेध में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा दत्त सर की उपाधि का त्याग किया।

उनकी गीताञ्जलि का सारे जगत् में बहुत आदर हुआ और उस पर १९१३ में उन्हें नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

दूसरी ओर व्यापक नई तालीम की समस्या है। भाषावार प्रान्तीय पुन.सगठन के पहले मद्रास सरकार के साथ पश्चिमी आन्ध्र में और हैदराबाद सरकार के साथ तेलंगाना में उस समय की सरकारो ने कुछ कार्यक्रम आरम्भ किया था। दोनो हिस्सों में करीबन् १०० शिक्षक है जो सेवाग्राम नई तालीम भवन से प्रशिक्षित है। लेकिन प्रान्तो की पुनर्रचना के बाद वह काम नहीं-सा हो रहा है, यद्यपि प्रांतीय सरकार ने अपनी नीति यह जाहिर की है कि वह प्राथमिक शिक्षण बुनियादी शिक्षा के स्वरूप में ही देगी। आज उस ढग का कुछ काम नही हो रहा है। प्रान्त में ६ से १४ तक की उम्र के शाला में जाने योग्य बच्चो की संख्या आज ५३ लाख है। इनमें से सिर्फ २५ लाख ही शालाओ में जाते हैं। २३ लाख विद्यार्थी पुरानी पद्धति से चलनेवाली शालाओ में ही शिक्षण पाते हैं। बुनियादी तालीम की पद्धति से चलनेवाली सिर्फ २ हजार शालाएँ है जिनमें २ लाख विद्यार्थी शिक्षण पाते हैं। सिर्फ २७८ शालाओ में बुनियादी शाला के आखिर के ३ दर्जे की पढाई होती है जबकि ४६० मिडिल स्कूल हैं जिनका पाठ्यक्रम बुनियादी तालीम की पद्धति या उद्देश्य के साथ विशेष सम्बन्ध नही रखता है। एक उत्तर बुनियादी विद्यालय है जिसके विद्यार्थी ३ साल का पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद मामूली मेट्रिक की परीक्षा देते है। शिक्षक प्रशिक्षण शालाए १२० है, जिनमें से हर साल ५–६ हजार शिक्षक निकलते है। पर उनमें से आधी ऐसी है जिनमें बुनियादी तालीम का नाम नही है। बाकी नाममात्र के लिए बुनियादी प्रशिक्षण शालाऐं हैं, ऐसा कहने में कोई असत्य नही होगा। वस्तुस्थिति यह है कि आज आन्ध्र में बुनियादी तालीम के बारे में कोई खास आग्रह नही रखता है। जो शालाऐं या प्रशिक्षण विद्यालय बुनियादी तालीम के नाम से चलते है, उनके काम से भी किसी को सतोष नही है और समस्याऐं इतनी गम्भीर हैं जिनका कि कुछ हल तुरन्त ढूढना आवश्यक होगा।

गोष्ठी ने सर्वोदय मण्डल को यह सुझाया कि इस सारी परिस्थिति के बारे में समय-समय पर मिलकर विचार करने के लिए, जो स्वतत्र विद्यालय चलते हैं, जिनमें बुनियादी तालीम के मौलिक गुण है, ऐसे सब विद्यालयो की एक बिरादरी स्थापित करने के लिए सर्वोदय मण्डल के अन्तर्गत एक नई तालीम समिति का गठन किया जाय। वह समिति स्वतत्र रूप से चलनेवाली बुनियादी शालाओ का समय-समय पर निरीक्षण और समीक्षा करके उस प्रयोग को सुव्यवस्थित करने की कोशिश करे। सरकार के अन्तर्गत चलनेवाली बुनियादी शालाओ में जो काम होता है उसके बारे में समय-समय पर राय प्रकट करे, लोगो को विचार समझाये और अच्छे ढग से चल सके ऐसी सलाह देकर सस्थाओ के काम में मदद करे। समिति सरकार और स्वतत्र चलने-वाली सस्थाओ के बीच की कडी का काम करे।

समिति में ९ सदस्य है। श्री आनन्दरावजी और राजगोपालरावजी उसके सयोजक नियुक्त किये गये। समिति की चर्चाओ मे निम्न प्रकार विचार किया गया

१ स्वतत्र रूप से जो शालाऐं चलती है उनका काम आजादी के वातावरण में चले ऐसी परिस्थिति तैयार की जाय। सरकार की नीति और नियमो से इनका काम कठिन न हो तथा इस तरह प्रयोग करने के लिए नई तालीम समिति

की और उसकी सलग्न सस्थाओ को आजादी मिले, इसके लिये सरकार से चर्चा की जाय ।

२ ऐसी सस्थाये जहा जहा है, उनमें जो प्रयोग चलता है, उसके कुछ पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाय जिससे बाकी शालाओ को शैक्षणिक मार्गदर्शन प्राप्त हो और वे शालायें,आसपास के क्षेत्र के सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक विकास काम से सीधा सम्बन्ध बनायें। उससे शालाओं के कार्यक्रम में इन विकास कार्यक्रमो का पूरा सहयोग मिल सकेगा । शालाओं में विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप प्रौढो और बच्चों को शिक्षण का अवसर मिले। ऐसे प्रयोगो से,सम्भव है कि हमें आगे जाकर शालाओ के लिए अलग जमीन, उद्योग आदि की दृष्टि से नही सोचना पडेगा, वल्कि गाव की अच्छी खेती या उद्योग शाला ही बच्चो के शिक्षण का स्थान होगी । शाला चाहरदीवारी से बाहर निकलेगी । एक ही क्षेत्र मे एक ही तरह की व्यवस्था करने के लिए अलग-अलग साधनो की आवश्यकता न रहेगी ।

३ बुनियादी शालाओं में विज्ञान का शिक्षण स्वाभाविक तौर पर आना चाहिये, क्योंकि बच्चा हर चीज के 'क्यो' और 'कैसे' से हो सीखता है । लेकिन उसी को क्रमबद्ध करने के लिए और विज्ञान शिक्षण को बुनियादी शाला के कार्यक्रम में एक मुख्य स्थान देने के लिए हमारी विशेष कोशिश रहे ।

४ बुनियादी तालीम के प्रसार के लिए सिर्फ शिक्षण विभाग का नियम और कार्यक्रम पर्याप्त नही होगे । यह अति आवश्यक है कि एक अधिकारी वर्ग जिसके हाथ में सचालन का काम है और दूसरी तरफ पालक या ग्रामीण नेता–जैसे पचायतो के सदस्य–आदि को अच्छी तरह समझाने का प्रयास किया जाय कि आज शिक्षा पद्धति में बुनियादी तालीम के उसूलो के आधार पर कार्यक्रम बनाना कितना आवश्यक है और उससे न सिर्फ शिक्षा में सुधार होगा, बल्कि वह सत्य, अहिंसा के आधार पर जीवन और समाज रचना की तैयारी होगी ।

५ यह भी तय हुआ कि आन्ध्र प्रदेश में बुनियादी तालीम के सगठन के लिए जो समिति सरकार ने नियुक्त की है उसके सामने एक विस्तृत योजना रखी जाय जिससे प्रान्त भर में बुनियादी तालीम के अनुकूल वातावरण बने और जहाँ विशेष क्षेत्रीय प्रयोग सम्भव हो वहा आरम्भ किये जा सके । जो प्रशिक्षण चलता है वह सारा बुनियादी प्रशिक्षण हो और उस काम को व्यवस्थित ढग से विकसित किया जाय । बुनियादी तालीम में आज बच्चो की किताबो को एक बडी समस्या है । उद्योग, उत्पादन और उद्योगा के शैक्षणिक पहलुओं के बारे में सशोधन व विचार करना है । ऐसे अनुसधान के कामों के लिए प्रान्तीय स्तर पर अनुसधान केन्द्र आरम्भ किये जावे, अगले १० साल की योजना बनाकर प्रान्त की तमाम शालाए बुनियादी तालीम की कैसे हो उसके बारे में विचार, व्यवस्था और सरकार को मदद करने के हेतु एक स्टेचुअरी कमेटी सरकार नियुक्त करे, ऐसी प्रार्थना की जाय ।

यह तो शुरुआत हुई । हम आशा करते है कि आन्ध्र प्रदेश में नई तालीम के काम में अब गति आयेगी और सरकार, जनता और कार्यकर्ता मिलकर शिक्षण की समस्याओ को, जो कि आज काफी जटिल बन गई है, एक व्यवस्थित रास्ते में और समाज पुर्रचना के अनुकूल बनाने के लिये काम करेगे ।

टिप्पणियां

यूनवर्सिटी में शिक्षा का माध्यम-

यूनवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन ने सितम्बर १९५६ में १४ शिक्षा शास्त्रियों की एक कमेटी की नियुक्ति की थी। इसका कार्य विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम (भाषा) के प्रश्न पर विचार करके सिफारिशें करना था। इसी गणतन्त्र दिवस पर इस कमेटी की सिफारिशें प्रकाशित हुओ हैं। इस दिन के पीछे स्वतंत्रता की भूख का इतिहास है; पर आज १२ वर्ष के बाद भी यह महसूस होता है "राजनैतिक स्वतंत्रता तो आई, पर मानस की गुलामी अभी नहीं हटी।"

रिपोर्ट में अेक जगह कहा गया है 'स्कूल अवस्था के बाद उन विद्यार्थियों का कालेज में प्रवेश करने की इजाजत नहीं होनी चाहिये जिनके मार्क अंग्रेजी में काफी ऊंचे स्तर के न हों।"

"आज जो माध्यम (अंग्रेजी) है, उसे अभी पोस्ट ग्रेजुअेट और प्राफेशनल कोर्सेस में कदाचित् नहीं बदलना चाहिये"। यहां तक कि "अन्डर ग्रेजुएट कोर्स में भी विज्ञान के विषयों में अंग्रेजी ही चालू रहनी चाहिए।"

अलग-अलग प्रदेशों की युनिवर्सिटियों के आपसी सम्बन्ध भी अंग्रेजी के द्वारा ही रहें, यह कमेटी की राय है। उनका कहना है कि जब तक पाठ्य पुस्तकों का अच्छी तरह निर्माण नहीं हो जाता है तब तक माध्यम बदलना गलती होगी। इसके उत्तर में श्री मगन भाई देसाई ने अपना मतभेद प्रकट किया है। उनका मत है कि हमारी शिक्षा में इन अति आवश्यक सुधार को करने के लिए "पाठ्य पुस्तकों के लिए इन्तजार" करना न केवल नुकसान देह है बल्कि अपव्यय भी होगा और अपने आप को धोखा देना भी।

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

पुस्तक परिचय

"विवेक और साधना" लेखक : केदारनाथ

प्रकाशक - नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-१४
पृष्ठ संख्या ३४६-मूल्य ४ रुपये

श्री केदारनाथजी की यह पुस्तक मराठी और गुजराती में पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी और वह लोक प्रिय सिद्ध हुई। नवजीवन प्रकाशन मंदिर ने इसका हिन्दी संस्करण प्रकाशित करके हिन्दी पाठकों का भी श्री केदारनाथ का तत्वचिंतन समझने का लाभ पहुंचाया है। यह तत्वचिंतन कितना गहरा और ऊंचा था, वह इस बात पर से ही स्पष्ट होता है कि श्री किशोरलाल भाई जैसे प्रखर बुद्धिमान, स्वतंत्र विचारशील व्यक्ति के ऊपर भी उनका गहरा प्रभाव था। पुस्तक का संपादन श्री किशोरलाल भाई ने और श्री रमणीकलाल म. मोदी ने किया था। वे लिखते हैं, "उनके उपदेश और समागम से हमारे विचार में भारी परिवर्तन हुआ, बुद्धि में स्पष्टता आयी, भावनाओं की शुद्धि हुई, जीवन के ध्येय और साधनों के चुनाव में फर्क पड़ा। क्या करें, कैसे करें, किसलिये करें वगैरह प्रश्नों से परेशान मन स्थिर हुआ इस परेशानी के कारण पैदा हुई अपनी व्याकुलता का असंतोष और उसके परिणामस्वरूप हमारे गृहस्थ जीवन में तथा हमारी संस्थाओं और साथियों के साथ होनेवाले हमारे झगड़े कम हुए।" इसीलिए उन्होंने, "जिनके लिए प्रत्यक्ष संपर्क संभव न हो, उनके लिए और संपर्क से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ताजा करने के लिए उनके विचार पुस्तकरूप में प्रकाशित करने" का निश्चय किया। संकलन में विवेकदर्शन, साधनविचार, धर्म्य-व्यवहार, गुणदर्शन ऐसे चार भागों में विभक्त करके विषय को रखा है, जिससे पाठकों को बहुत सुविधा हुई है।

हिन्दी संस्करण की भी पहली आवृत्ति खप चुकी है। इस पुस्तक की सिफारिश करने में आनन्द होता है।

जा.

"विश्वधर्म" जनवरी ६१ (विशेषांक)
पता-के. ६०।१४ बुलहिन जी रोड, वाराणसी

विश्वधर्म संगम का मुखपत्र "विश्वधर्म" इस जमाने की एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति करने को

(शेषांश कवर पृष्ठ ३ पर)

कमेटी ने अखिल भारतीय तौर पर एक ही लिपि के प्रश्न पर भी चर्चा की है।

शिक्षा पर चिन्तन करने वालों के लिए इस रिपोर्ट का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। हम चाहते है कि अगले नई तालीम के अक में इसके बारे मे विशेष ध्यान दिया जाय। क्या हम पाठको से आग्रहपूर्वक विनम्र निवेदन कर सकते हैं कि वे इस प्रश्न पर अपनी राय भेजें!

"नई तालीम" की जिल्दें

१९५९-६० (वर्ष अठवा) की "नई तालीम" की जिल्दें तैयार हैं और छः रुपया (मय डाकखर्च) भेजकर मगाई जा सकती हैं।

ओर एक कदम है। अब विभिन्न धर्मों का औरो से अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने तथा दूसरो को भी अपने विशिष्ट सप्रदाय मे आकृष्ट करने का जमाना नही रहा। आज सब धर्मो का साथ होना ही आवश्यक और शक्य भी है। यह पत्रिका धर्मों की मौलिक एकता या समानता को पाठको के सामने उपस्थित करके समन्वय और सामन्जस्य की ओर ले जाती है।

पिछले दिनों कलकत्ते मे द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन हुआ था। यह विशेषाक उसी के सिलसिले में निकाला गया है। अक उपयोगी है, उसमे काफी लाभदायक सामग्री है। किन्तु उसकी सयोजना कुछ स्पष्ट नही है। अच्छा होता कि लेखो को विषयवार बिठाया जाता, जिससे कि पाठक कुछ अध्ययन की दृष्टि से भी अक को पढ सकते। प.

साभार प्राप्त

विवेक और साधना, लेखक-केदारनाथ,

पृष्ठ-३४६, मूल्य ४ रुपये,
प्रकाशक-नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद १४

विद्यार्थी मित्रों से, लेखक- (वही)

पृष्ठ-२३, मूल्य ३५ न० पै०
प्रकाशक- (वही)

माइ नॉन वायोलेंस (अंग्रेजी)

लेखक-एम. के. गांधी

पृष्ठ-३७३, मूल्य ५ रुपये
प्रकाशक- (वही)

Regd. No. N.-106

१३ वां अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन

दिनांक १८, १९ व २० अप्रैल, १९६१

आगामी अप्रैल १८, १९ व २० को अखिल भारत सर्व सेवा संघ ने १३ वां सर्वोदय सम्मेलन पश्चिम गोदावरी जिले में चेब्रोलू के पास सर्वोदयपुरम् में आयोजित करने का निश्चय किया है। सम्मेलन के पूर्व ६ दिन सर्व सेवा संघ का अधिवेशन होगा।

चेब्रोलू दक्षिण रेल्वे पर विजयवाडा से वाल्टेयर लाइन में विजयवाडा से ९७ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सम्मेलन के समय वहां मेल तथा एक्सप्रेस गाडियां रुकें, इसकी व्यवस्था की जा रही है। विजयवाडा एलूरु तथा ताडेपल्लिगूडेम्-तीनों स्थानों से मोटर से जाने की व्यवस्था भी की जायगी। स्वागत समिति का दफ्तर इस माह से आरम्भ किया गया है। उसका पता पोस्ट नारायणपुरम्, द्वारा चेब्रोलू, जिला पश्चिम गोदावरी, आन्ध्र प्रदेश है।

हर साल के जैसे सफाई शिविर २० मार्च से आयोजित किया जायगा। उसमें हर सर्वोदय मण्डल अपने कार्यकर्त्ताओं को भेजेंगें ऐसी अपेक्षा है।

१८ अप्रैल १९५१ को आन्ध्र में ही भूदान आन्दोलन का जन्म हुआ और आज ठीक १० वर्ष के बाद उसी प्रदेश में सर्वोदय कार्यकर्ता इकट्ठे होंगे। इस अवसर पर इन १० सालों के कार्यक्रम, भूदान आन्दोलन की गतिविधि तथा सर्वोदय आन्दोलन के आगे के कार्य के बारे में विचार किया जायगा। आशा है कि देशभर के कार्यकर्ता सम्मेलन में उपस्थित होकर भावी कार्यक्रम के बारे में गम्भीरता और तीव्रता से विचार करेंगे।

सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों के निवास की व्यवस्था हेतु ३ रुपये प्रतिनिधि शुल्क रखा गया है। हर साल की तरह ही प्रतिनिधियों को आने-जाने के लिए रेल्वे रियायत मिल सकेगी, जिससे एक तरफ के किराये से दोनों तरफ का सफर किया जा सकेगा। रेल्वे कन्सेशन प्राप्त करने और प्रतिनिधियों के नाम दर्ज करने के लिए प्रतिनिधि शुल्क भेजकर सम्मेलन मंत्री, अखिल भारत सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम, वर्धा (महाराष्ट्र) से रेल्वे रियायत पत्र और प्रतिनिधि कार्ड मंगाये जा सकेंगे। इस साल रेल्वे रियायत पत्र भेजने और रजिस्ट्रेशन का काम अलग अलग केन्द्रों से न करके सिर्फ सेवाग्राम से ही करने का सोचा गया है।

सम्मेलन के तीनों दिन के भोजन और नाश्ते की व्यवस्था ५ रुपये देने पर की जा सकेगी। भोजन में जो लोग चाहेंगे उनके लिए पूर्व सूचना मिलने पर ग्रामोद्योगी वस्तुओं एवं गाय के घी का प्रबन्ध किया जा सकेगा।

राधाकृष्ण
मंत्री,
सर्वोदय समाज सम्मेलन

श्री. देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

मार्च १९६१
वर्ष:९ अंक:९

किस उमर तक बुनियादी तालीम गिनी जाय—आठ साल या पॉच साल तक, आदि प्रश्न नई तालीम के सामने हैं। अपने में ये महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु फौजी तालीम के प्रश्न के सामने ये सब बिलकुल गौण हैं।

स प्रकार एक ओर मैं सरकार के प्रयोग के बारे में उदार दृष्टि से देखने को कहता हूँ, लेकिन दूसरी ओर चौकन्ना कर देने को कहता हूँ। यदि फौजी तालीम होगी, तो इसका सख्त मुकाबला करना होगा।

कहा जाता कि आस-पास के देशों में वातावरण ऐसा है कि बाहर की सेना के हमले से बचने के लिये फौजी तालीम लेनी चाहिए। लेकिन यदि हमारे देश को सेना ही कब्जा कर ले तो नेपाल और पाकिस्तान जैसे हमारे हाल हो जायेंगे। वहां सेना के कारण देखते-देखते ही लोकशाही का रूपान्तर सुलतानशाही में हो गया। उसके पीछे प्रक्रिया यह है कि देश की लोकशाही ने सेना के रक्षण को आखिरी अधिष्ठान माना था। क्या हम भी वैसा ही करेंगे? इसमें मुझे बुनियादी खतरा दीखता है। देश और दुनिया का उद्धार फौजी मनोवृत्ति बढ़ाने में नहीं है। यदि वैसा होगा तो उसका पूर्ण विरोध करना चाहिए।

वैसे तो मैंने अंग्रेजी के बारे में अपने मन को कुछ हद तक तैयार कर लिया है। अंग्रेजी दाखिल करने से दूसरा ज्ञान कुछ कम मिलेगा। आज तो खेती के शिक्षण के लिए अंग्रेजी को आवश्यक समझा जा रहा है। अब बैलों को अंग्रेजी सिखाना ही उन्होंने बाकी रखा है। मेरी यह टीका अंग्रेजी के बारे में है ही, और वह मैं करता रहूंगा। लेकिन फिर भी याद मान लो कि अंग्रेजी की टीका थोडी-बहुत नहीं करूंगा, जितनी इसकी करूंगा। क्योंकि यह तो बडी खतरनाक चीज है।

अगर सरकार फौजी तालीम चलाती है तो उसका डटकर मुकाबला करना होगा।

शिक्षा पर टालस्टाय के विचार

टालस्टाय ने प्रचलित शिक्षा व्यवस्था को नुकसान देह माना क्यो कि उसका उद्देश्य आदमी को दूसरे आदमियो के ऊपर उठने का प्रोत्साहन देना है। उनका विचार था कि सही शिक्षा वही है जो पडोसी के प्रति प्रेम और सवेदना तथा जनता की सेवा करना सिखाती है।

शिक्षा पद्धति और सिद्धान्तो पर टालस्टाय के विचार उनकी पत्रिका "यसनाया पोलियाना" में एक लेख माला के द्वारा प्रकाशित हुए थे। उनकी मान्यता थी कि शिक्षा के द्वारा जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति होनी चाहिए। लेकिन ये आवश्यकताएँ क्या है, इसके बारे में उनके विचार समकालीन चिन्तको से बहुत विभिन्न थे। वे चाहते थे कि किसानो को–जो रूस की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा था–अच्छी शिक्षा मिले, इस उद्देश्य से नही कि उन्हे अपने लोगो से ऊपर उठायें, बल्कि वे ज्यादा अच्छे, सफल और सुखी किसान बनें, इस दृष्टि से।

उनके विचार में शिक्षा का काम व्यक्ति की भलाई करनी है क्योकि मानवता की सेवा करने की व्यक्ति की क्षमता ही उसकी जिन्दगी को अर्थपूर्ण बनाती है। शिक्षा की उनकी व्याख्या थी "एक मानवीय प्रवृत्ति, जिसका आधार समता और ज्ञान वृद्धि की सतत प्रेरणा है।" उन्होने कहा कि शिक्षा का काम विद्यार्थी को कुछ जानकारियां देना नही बल्कि ज्ञान प्राप्ति में रस पैदा करना है।

अपने शिक्षासम्बन्धी सिद्धान्तो को व्यवहार में उतारने का टालस्टाय ने प्रयत्न किया था। सन् १८५९ में उन्होने अपने ही यहा के किसान परिवारो के बच्चो के लिए एक स्कूल शुरू कर दिया। उसमें सभी स्वतन्त्रता पूर्वक आ सकते थे, किसी के ऊपर कोई बन्धन नही था। स्कूल के दरवाजे पर लिखा हुआ था, "स्वतन्त्रता से प्रवेश करो और जाओ।" वहा के विद्यार्थी घर में पाठ करने के लिए कोई कापि या किताब नही रखते थे, पिछले दिन का सबक याद करना तक उनके ऊपर लाजिमी नही था। स्कूल का वातावरण ऐसा बनाने का प्रयत्न होता था जिससे कि बच्चो के मन में यह बोध बैठ जाय कि शिक्षा एक अतिमूल्यवान व आनन्दपूर्ण लाभ है।

अपने स्कूल में सजा और पुरस्कार दोनो का टालस्टाय न विरोध किया। क्योकि शिक्षा का उद्देश्य आनन्द देना था, वहा सजा का उपयोग उस ध्येय को ही परास्त कर देता है। स्कूल में आवश्यक सफाई इत्यादि काम बच्चे स्वय करते थे। खेती के लिये थोडी सी जमीन दी गई थी, टालस्टाय का दृढ विश्वास था कि शारिरिक श्रम शिक्षा का एक अपरिहार्य अग है।

उस जमाने में उनके शिक्षा सबन्धी इन विचारो को सुनने के लिए कोई तैयार नही था। फिर भी प्रचलित सिद्धान्तो का उन्होने कडा

विरोध किया। वर्णमाला सिखाने की उनकी पद्धति, श्रम के द्वारा विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता निर्माण करने का उनका आग्रह, बच्चों को ज्यादा से ज्यादा स्वतन्त्रता देने में उनका विश्वास–इन सब का बाद में शिक्षा के प्रगतिशील विचारों पर असर पड़ा।

अपने ग्रामीण विद्यालय में इन शैक्षणिक सिद्धान्तों का व्यवहार और विकास करने के बाद १८७२ में उन्होंने उनको एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। प्रारंभिक अवस्था के लिये एक पूरा पाठ्यक्रम उसमें दिया था। शिक्षकों के उपयोग के लिये विस्तृत निर्देश भी थे। पुस्तक का उस समय अच्छा स्वागत नहीं मिला। १८७५ में उसका एक संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा के मन्त्रालय ने इसकी सिफारिश की। तब बहुत सारे स्कूलों में वह उपयोग में लायी गई और उसके कई संस्करण निकल गये। उसी समय टालस्टाय ने बच्चों के लिए चार पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित कीं। विषय वस्तु की उत्कृष्टता तथा विविधता, भाषा की कलापूर्ण सरलता और साथ साथ सस्ते दाम ने इनको अत्यन्त लोकप्रिय बनाया और अगले कुछ वर्षों में उनकी लाखों प्रतियां बिक गयीं।

एक लम्बे अर्से के बाद १९०६–७ में टालस्टाय ने फिर से बच्चों को सिखाने का काम शुरू कर दिया। इन सालों में उनके विचारों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था, लेकिन अब वह लिखने पढ़ने से ज्यादा धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर अधिक जोर देने लगे। वे ईशु की जीवनी व शिक्षा को सरल आकर्षक कहानियों के द्वारा बताते थे और फिर उन कहानियों के तात्पर्य के ऊपर चर्चा करवाते थे। इन पाठों के ऊपर से उनकी अगली किताब निकल गई–"बच्चों के लिए ईशु की शिक्षा।" उन्होंने अपनी इस शाला के बारे में एक मित्र को लिखा–"यही मेरा सारा जीवन था, मेरी तपोभूमि, मेरा मस्जिद, जिसमें इस जिन्दगी के प्रलोभनों और चिन्ताओं से मुक्त होकर मैंने अपने आपको पाया।"

बिना किसी के प्रति द्वेष के, सब के प्रति करुणा और सत्य में दृढ़ता के साथ हम अपने काम को पूरा करने के लिए आगे बढ़ें–वह काम जिससे हमारे अन्दर और विश्व में सब के साथ स्थायी और न्यायनिष्ठ शान्ति ला सके और उसको कायम रख सके।

–एब्रहाम लिंकन्

सत्याग्रह पर विनोबाजी के विचार

मनमोहन चौधरी

पिछले साल पठानकोट से चंबल तक मैं विनोबाजी के साथ था। उस अरसे में उनसे सत्याग्रह के बारे में मैंने कुछ चर्चाएँ की। ये चर्चाएँ सुबह यात्रा के समय ही चलती थी।

२८-९-५९ को ककीरा के मार्ग पर बढते हुए मैंने भूदान आन्दोलन पर एक विशिष्ट विचारक की टीका का जिक्र किया। वे पूछते हैं कि इसके जरिये गरीबो की ताकत बढाने के लिए क्या हो रहा है? उनका कहना है कि इसके जरीये गरीबो के लिए दूसरे लोग केवल जमीन माग कर देते हैं। इस प्रश्न का जो जवाब मैंने दिया था वह सक्षेप में विनोबाजी को सुनाया। भूदान में हम गरीबो से जो जमीन मागते हैं उससे उनकी नैतिक शक्ति बनती है। दबाव डालने की बात नही है, बल्कि उनके द्वारा सर्वागीण विकास का एक पाजीटिव एटीटयूड समाज के सामने रहता है, जिसे हमें खुद को तथा आम जनता को समझाने की आवश्यकता है। सबका सहकार तथा सम्मति प्राप्त करने के लिए सर्वोदय पात्र की योजना है। इस प्रकार से जन आधारित सेवक एक अलग उपकारक वर्ग नही, परन्तु जनता का अगुआ होगा। एक दिन में क्रान्ति की कल्पना अब भी है। यह ठीक है कि बीच बीच में लोगो की जडता को तोडने के लिए 'चुभने वाला कार्यक्रम" उठाया जाय, मगर यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। अक्सर सत्याग्रह से यही समझा जाता है कि हम सरकार पर दबाव डाले जिससे कि सरकार मालीका पर दबाव डालने के लिए मजबूर हो। इसीको सत्याग्रह का तरीका माना जाता है। मगर असल में सत्याग्रह तो सीधे मालिको के साथ ही करना है। यह मैंने विनोबा को सुनाया।

इसका विनोबाजी ने स्पष्टीकरण किया। उन्होने कहा—

अगर हम सत्याग्रह का ही सोचेंगे तो उसके लिए भी हमारी कौनसी शक्ति है? क्या गरीबो की गरीबी उनका पुण्यबल है? जैसे अमीर होना पाप है वैसे गरीब होना भी एक पाप है। वे इस गरीबी से मुक्त होना चाहेंगे तो क्या करेंगे? मैंने काश्मीर में देखा कि मजदूर पीठ पर दो दो सौ पौण्ड का बोझ ढोते हैं। तो वे वैसा करने से इन्कार करे और पूरी मजदूरी की माग करे। लेकिन क्या उस माग के लिए वे फाका करने को तैयार होंगे? अगर उपवास करने की ताकत उनमें होती तो इस तरह बोझ ढोते ही क्यो? यह हो सकता है कि कुछ लोग दिखावे के लिए उपवास करने को तैयार हो।

दूसरी ओर बापू का सत्याग्रह स्वराज्य के लिए था। अंग्रेजी राज इतना सुस्पष्ट अन्याय था कि उसके लिए हिंसक युद्ध भी लोग मजूर करते और योग्य मानते।

कृषि अेवं तत्सम्बन्धी उद्योगों का शिक्षाक्रम

[पाठकों को याद होगा कि "नई तालीम" का नवम्बर १९६० का अक उत्तर बुनियादी शिक्षा के विशेषांक के रूप मे निकाला गया। अक्तूबर के पहले सप्ताह मे सेवाग्राम मे उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम के बारे मे चर्चा करने के लिअे एक विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उस गोष्ठी मे मुख्य-मुख्य विषयो और उद्योगों के शिक्षाक्रम पर बारीकी से चर्चा हुई थी और पिछले अनुभवों के आधार पर माध्यमिक शिक्षा के अन्य शिक्षाक्रमो के साथ तुलनात्मक दृष्टि से फेरबदल करके पक्का शिक्षाक्रम तैयार करने का कार्य प्रारम्भ किया था। हमने तय किया था कि जैसे जैसे अलग अलग विषयों के शिक्षा-क्रम तैयार होते जायेंगे, वैसे-वैसे उन्हे शिक्षा जगत के समक्ष "नई तालीम' के द्वारा पेश करते जायेंगे। यहाँ खेती गोपालन का शिक्षाक्रम प्रस्तुत है। सम्बंधित बन्धुगण इसका गहरा अध्ययन करेंगे और उस पर अपने सुझाव व समालोचना भेजेंगे, ऐसी आशा है। सपादक]

बुनियादी शिक्षा अवधि में विद्यार्थियो को कृषि का सामान्य सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है एव स्थानीय फसले, सागभाजी और फल, गाय बैल की देखरेख और सेवा-सुश्रूषा, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन और दूधशाला की व्यावस्था का व्यवहारिक ज्ञान और अनुभव भी प्राप्त हो जाता है। बुनियादी शिक्षा का आठ साल का पाठ्यक्रम स्वयपूर्ण है और उत्तर बुनियादी शिक्षा का आधार है। उत्तर बुनियादी शिक्षाक्रम इसे ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए। उत्तर बुनियादी शिक्षा और बुनियादी शिक्षाक्रम के विषयो में अधिक अन्तर नही होगा, परन्तु उत्तर-बुनियादी शिक्षा की अवधि में उनका गहराई से अध्ययन किया जायगा एव उनके वैज्ञानिक पहलुओं को विशष महत्व दिया जाना चाहिए।

१ मिट्टी : वैज्ञानिक परिभाषा, मिट्टी बनने को क्रियाए-क रासायनिक, ख. भौतिक यान्त्रिक, ग. जतुक। स्थानीय और आगत मिट्टी का तुलनात्मक अध्ययन, भूमि में पाये जानवाले धातु तत्व और रासायनिक क्रियाओ द्वारा उनकी जाच पहचान और प्रतिशत निकालना। विज्ञानशाला में मिट्टी का भौतिक और रासायनिक विश्लेषण करना। भूमि और अधोभूमि, इनका तुलनात्मक अध्ययन। भूमि का बनाव और पोत (स्ट्रक्चर व टेक्सचर) भूमि का केन्द्रीय तत्व (ह्यूमस), भूमि की वायु वायुमण्डल की वायु से उसकी भिन्नता। भूमि रन्ध्र (पोर स्पेस) भूमि की आर्द्रता, उन्द्रेक्षीय आर्द्रता (हाइ ग्रोस्कोपिक मोयश्चर) केशाकर्षणीय आर्द्रता। गुरुत्वाकर्षणीय आर्द्रता (पी एफ वेल्यू) पीएफ' मान। भूमि जल का धरातल, भूमिजल का प्रवाह। पौधों को मिट्टी से प्राप्त होनेवाली आर्द्रता, (विल्टिंग कोएफिशिएण्ट)। भूमि का

ताप-मान चक्र। भूमि के रासायनिक गुण और रासायनिक प्रक्रियाए। भूमि के सूक्ष्मप्राणी। भूमि में नत्रजन जमना, भूयन और विभूयन, प्रकृति का नत्रजन चक्र। भूमि की कवक, भूमि की उर्वरा शक्ति। भूमि का सुधार। भूमिक्टन, उसके कारण और निवारण। भारत की प्रमुख भूमि (सॉयल), उनका वर्गीकरण और स्वभाव। अपने प्रान्त की प्रमुख भूमि, उनका वर्गीकरण और स्वभाव। शाला कृषि क्षेत्र की भूमि का पूर्ण परिचय-विश्लेषण सहित।

"*क्विक सॉयल टेस्टिंग किट*" *के उपयोग* का अच्छा अभ्यास।

भूमि व्यवस्था (सॉयल मैनेजमेन्ट) के लिये की जानेवाली विभिन्न क्रियाओ का वैज्ञानिक पहलू समझना। काश्त के उपयोग में आनेवाले विभिन्न यत्रो का ज्ञान, उन्हे खोलना और फिट करना।

२. सिंचाई : पौधो को पानी की आवश्यकता, पौधो की बाढ के लिए पानी का *अनुपात और परिमाण। सिंचाई के स्रोत।* देश की मुख्य सिंचाई योजनाए। सिंचाई के साधन और उनका यान्त्रिक ज्ञान। रहट, सेंट्रीफ्यूगल पम्प और हाथपम्प को खोलने और बिठान का ज्ञान। सिंचाई के सिद्धान्त, सिंचाई की रीति। पानी का नाप-क्यूबिक, एकड, अिंच। पानी के नाप के अनुसार कर देना।

पानी भरवा भूमि, पानी का निथार, खुली और बद निथार नालियां, उनका विन्यास, व्यवस्था और देखरेख।

३. खाद और उसका उपयोग : खाद की परिभाषा। पौधो की विभिन्न तत्वो की माग। अति आवश्यक, आवश्यक और अल्प आवश्यक तत्व। विभिन्न तत्वों की कमी और बाहुल्यता का पौधो पर प्रभाव। पौधो की अवस्था से भूमि के तत्वो की उपस्थिति का ज्ञान। चूने की कमी पहचानना। खाद के प्रकार-सेन्द्रिय और निरिन्द्रिय। उपयोग और दुरुपयोग। हरी खाद। कम्पोस्ट और फार्म-यार्ड खाद बनाना। खली का खाद के रूप में उपयोग। सामान्य प्रचलित खादो में पाये जानेवाले एन. पी. के. का अनुपात याद रखना। खादो का मिश्रण, उसका फार्मूला समझना। फसल चक्र, इसके सिद्धान्त। सयुक्त और सयोगी फसले।

४. बीज और संकर क्रिया द्वारा उन्नत बीज तैयार करना :— उत्तम बीज की परिभाषा, बीज के नमूने की जाच करना, अकुरण का अनुपात निकालना, बीज सग्रह और सरक्षण, सीड ट्रीटमेन्ट। बीज बोना, अकुरण क्रिया की विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाएँ। उन्नत बीज प्राप्त करने की रीतिया ? क. चुनाव, ख. पौधे विशेष को चुनना, ग एक-से बहुत से पौधे चुनना।

बाहर से सुधरी जाति के बीज मगाकर ऐसे स्थानीय जलवायु का आदि बनाना।

शकर क्रिया करके-डार्विन के सिद्धात, शकर क्रिया के अन्य सिद्धात, गुणो का समावेश, गुणो का विछिन्न होना, शकर शक्ति (हायब्रिड विगर) शकर क्रिया की *युक्तियां, उनका* अभ्यास। कपास, मूगफली, गेहू और धान पर इसका अभ्यास करना।

अनाज और बीज का सग्रह, सरक्षण। अनाज रखने की प्रचलित रीतियाँ। तुलनात्मक अध्ययन, अच्छाई और खराबियाँ। बीजो को हानि पहुँचानेवाले कीडे। उनका जीवन-चक्र, उन्हे नष्ट करने के उपाय।

५. खरपात और उनको नष्ट करना : परिभाषा, प्रकार, प्रतिबन्धक और प्रतिरोधक उपाय। उपायों के प्रकार–क. किसानो, ख. रासायनिक, ग. जैविक।

६. फसलों की रक्षा, हानिकारक कीडे और बीमारियाँ : प्रतिबन्धक अुपाय, रोठर जाति लगाना, भूमि को व्याधिहीन करना। अिसके विभिन्न तरीके।

कीटक की परिभाषा, पहचान। फसलो में पाये जानेवाले कीडे पकडकर बनाना। दो कीडों के जीवन चक्र का अध्ययन। कीडो के दो मूल प्रकार–काटकर खानेवाले, रस चूसने वाले। अिन्हे नष्ट करने की रीति। अुपयोगी औषधिया, अुनका व्यवहार, व्यवहार में लाने की सतर्कता। अुपयोगी यन्त्र और अुनका ज्ञान, अुन्हे सुधारने की योग्यता।

पौधो की बीमारियो के कारण : अिनकी क्रियाअें। रोकने और नष्ट करने के अुपाय। बोर्डो मिक्श्चर बनाने का अच्छा अभ्यास।

७. कृषि अुपयोगी औजार : हाथ औजार, पशु मशीन, कडबी–चारा काटने का यन्त्र, बीज बोने का यन्त्र, भूमि समतल करने का सूपा और नाली बनाने का हल अित्यादि।

८. कृषि लेखा : रोकड बही, दैनिक कार्य विवरण, बही–खाता, खलियान रजिस्टर, आबहवा माप बही, रसीद बही, सामान खाता। कृषि अर्थ शास्त्र, कृषि कानून, भूमि कानून, सहकारो समितिया। कृषि को प्राप्त सरकारी सहूलियतें।

फार्म का वार्षिक कार्यक्रम और अन्य व्यय पत्रक बनाना। विक्रय, बाजार की स्थिति (अेग्रिकल्चल मार्केटिंग)।

९. विभिन्न फसलों की कास्त : कपास, गेहू, ज्वार, और धान की फसल के कास्त के सिद्धान्त और व्यावहारिक ज्ञान। अन्य स्थानीय फसलो की कास्त का ज्ञान।

फसलो का वर्गीकरण जैसे–अनाज, द्विदलीय फसल, तिलहन की फसले, रेशा वाली की फसले, शक्कर की फसले, मसाले, पेय और नार्कोटिक्स आदि तथा चारे की फसल। अिस तरह की अेक-अेक स्थानीय फसलों की कास्त का ज्ञान, अवलोकन अेव अभ्यास।

१०. सागभाजी की कास्त : सागभाजी की कास्त का महत्व, आर्थिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से, भोजन में सागभाजी का स्थान। सागभाजी की कास्त के मूल सिद्धान्त और रीति। रोपा तैयार करना, स्थानीय और अंग्रेजी सागभाजी की कास्त का व्यावहारिक ज्ञान। बीज तैयार करना। सागभाजी का पारिवारिक आवश्यकता हेतु सरक्षण। सागभाजी की कास्त का वार्षिक लेखा–जोखा।

११. फलो की कास्त : महत्व। मूल सिद्धात, फलो का चुनाव, बाग का विन्यास, कास्त की रीति। फल लगने तक अन्य फसल लेना। पौधों की काट-छाट। फसल गहाना, चालान, बिक्री तथा सरक्षण।

स्थानीय दो फलो की कास्त का पूर्ण अभ्यास करना।

पौधे तैयार करना, रीतियां–डब्बा बाधना, ग्राफ्टिंग और कलम बाधने का अभ्यास करना।

१२. गोपालन और दुग्ध व्यवसाय : गोपालन का भारतीय कृषि में स्थान–रीढ के समान। गो-प्रजनन और गो-नस्ल का सुधार। प्रजनन के सिद्धान्त और रीति। नदी (साड)

का महत्व, देखभाल। कृत्रिम रेचन। गर्भिणी गाय और बछड़ों का लालन-पालन। चारादाना, संतुलित आहार, फीडिंग स्टेन्डर्स्स। भारत की प्रमुख गो नस्ल, उनके स्वभाव, पहचान। द्विप्रयोजन नस्ल तैयार करना। भैंस और उसकी नस्ल। अच्छी गाय की पहचान। गोशाला, उसकी व्यवस्था और प्रबन्ध। दुग्ध परिचय, दूध दुहना-गलत और सही रीति। दूध का विश्लेषण, दूध का पाश्चराइजेशन, बोतल बन्द करना। शुद्ध दूध की जांच, स्नेह का अनुपात निकालना। मक्खन बनाना, घी बनाना। दूध सेपरेटर यंत्र-उसका उपयोग, उसे खोलना और फिट करना, उसे साफ करने की रीति।

मवेशियों की प्रमुख संक्रामक बीमारियां, उनकी रोकथाम और इलाज।

मवेशियों की सामान्य बीमारियां और उनका इलाज।

गाय का शरीर, उसकी रचना, अवयव और उनकी क्रियाएँ।

हरे चारे की काश्त, सायलेज बनाना।

१३. मधुमक्खी पालन : कृषि में मधुमक्खी का महत्व, उपज बढ़ाना। भारत की मौना की जातियां।

मधुमक्खी की पेटी, उसका नाप, ब्लूप्रिंट नक्शा, मधु निकालने का यंत्र, धुआं, फूकनी।

मौना परिवार को पकड़ना, मौना परिवार, उसके सदस्य, उनकी समाज-व्यवस्था आदि का गहरा अध्ययन।

मौना पेटी की देखभाल, रक्षा। दुश्मनों से बचाना, वैक्स मॉथ और घास से रक्षा। ठण्ड से तथा अति गर्मी से रक्षा।

मधु के स्रोत-वृक्ष, फसल आदि। शहद निकालना, शुद्ध करना, बोतल बन्द करना तथा बिक्री का ज्ञान।

१५. मुर्गी पालन : उत्तम कृषि सहायक उद्योग, स्थानीय मुर्गी की जातियां और मुर्गी पालन की स्थिति का अध्ययन। उन्नत मुर्गी की जातियां व उनके स्वभाव।

ग्रामीण सस्ता मुर्गीघर, नक्शा, व्यवस्था, सफाई।

चुगना, समतोल भोजन देना। अधिक अण्डे पाने के लिए भोजन, गोश्त बढ़ाने के लिए भोजन।

फलित (फर्टाइल) अण्डे जिनसे चूजे प्राप्त होंगे। अफलित अण्डे खाने के लिये उत्तम। अंडों की जांच, और संरक्षण।

चूजों के लिए अण्डे सेहना-मुर्गी के नीचे और सेहने की मशीन का उपयोग। चूजों की देखभाल व रक्षा।

मुर्गियों की बीमारियाँ, रोकथाम और इलाज।

मुर्गीपालन का आर्थिक पहलू।

—बनवारीलाल चौधरी

नींदन फावड़ी

मोहन परीख

फरवरी १९६१ के अंक में हमने बच्चों के औजारों के विषय में श्री मोहन भाई का एक सचित्र लेख दिया था। भाई मोहन परीख के प्रयोगों में एक एक सफल प्रयोग को उन्होंने यहां प्रस्तुत किया है। इस नींदन फावड़ी का उपयोग हमने किया है और पाया कि वह सचमुच बड़ा सुन्दर औजार बना है। इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए श्री मोहन परीख, बारडोली आश्रम, जिला सूरत को लिख सकते हैं।

संपादक]

खेती की हलकी क्रियाओं में नींदने की क्रिया आती है। लेकिन दूसरी क्रियाओं से यह ज्यादा तकलीफ देह है। इसमें पैरोंपर उकड बैठकर काम करते करते नींदते हुए आगे बढने की क्रिया दिनभर करनी पडती है। यह काम ज्यादातर बहनें, बच्चे व बूढे ही करते हैं। इस काम के लिए मजदूरी कम दी जाती है लेकिन देखा जाय तो इसमें ज्यादा श्रम है। संभव है इसी कारण से पुरुष वर्ग ने यह काम बहनों को सौंपा हो।

खेती की क्रियाओं में नींदने की क्रिया बहुत महत्व की है। इसे किये बगैर चल नहीं सकता। ऐसा अनिवार्य काम ज्यादा सुविधा के साथ हो सके, यह सब पसंद करेंगे। इसके अलावा, "तकनिक" वैज्ञानिकों ने हिसाब निकाला है कि "औजारों के हत्थे दिनबदिन लंबे बनते गये हैं, यह प्रवृत्ति अच्छी है। मनुष्य की कार्य शक्ति का माप निकालने से पता चला है कि झुककर काम करने की अपेक्षा सीधे रहकर काम करने से मनुष्य की तीस प्रतिशत शक्ति कम खर्च होती है।" अतः इस वैज्ञानिक सत्य को आधार बना कर नींदने के औजार में कैसा फर्क करना चाहिये इसके प्रयोग हमने शुरू किये।

हत्थे बैठानेका तरीका

छोटी फांस को जमीन में थोड़ा जाने देनेके बाद सामने को खींचने से नींदने का काम तो चला, लेकिन उसको हत्था कैसे बैठाना यह सवाल हमारे सामने था।

हत्था बैठाने में साधारण मुश्किल यह है कि, इस्तेमाल करते करते हत्था ढीला (औजार की पकडमें से) पड ही जाता है। इसको कैसे बराबर पक्का करना जिससे कि वह हिले नहीं, यह हमारे सामने सवाल था। हमने निम्न प्रकार से इसकी योजना की है।

फासकी लंबाई के बीच में एक ½" माप की लोहे की सलाख से रीबिट से पक्का किया है। इस सलाख को अर्ध गोल सा मोड़ा है और इसके दूसरे सिरे को चपटा पीटकर एक लोहे की भूंगली में रीबीट लगाकर जोड दिया है। यह भूंगली करीब ६" लंबी है, सलाख में रीबिट से पक्की फिट होती है व यहां पर सलाखकी मोटाई की है, दूसरे छोर पर एक सवा इंच चौडी (गोल आकार की) है। इस चौडे आकार में से करीब तीन इंच लंबाई तक इस भूंगली में करीब दो सूत यानें ⅛" इंच फाक (खाली जगह) रखी गई है। इसी खाच के भूंगली में चौथाई-चौथाई इंच की दूरी पर तीन छेद रखे हैं। चित्र देखने से यह बातें स्पष्ट ख्याल में आ जावेंगी।
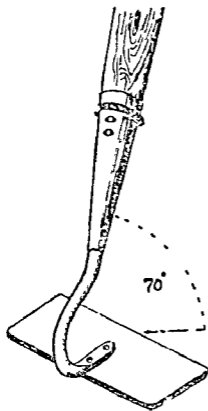
ठोस या कुछ खोखला बांस ही क्यों न हो या फिर लकडी ही हो, एक पाच फुट लम्बा टुकडा, जिसकी गोलाई १।" से १॥" हो, ल। इस डण्डे को एक तरफ थोडा-सा नोकदार छिलकर इस भूगली में पक्का ठोक दें। अब भूगली में जहा तीन छेद हैं वहांपर छेदों के मुह पर थोडी सी खाच भी है। एक लोहे की रिंग इस भूगली में पहिले से (यानि सलाख के साथ रिविट करने के पहिले से) डाली हुई है। उस रिंग को दंडे की ओर खीचकर तीन म से जिस एक खाच में आ जावे, लगा दें। खाच रखने से रिंग नीचे की ओर नही सरकेगी। लोहे की रिंग की बनावट में भी एक खूबी है वह अपनी अंदर की बाजू में चपटी है। अब भूगली की खाच के ऊपर वह पकड में मजबूत रहेगी।

हत्थे की लंबाई व माप

हत्था हाथ में बराबर पकड में रहे, इस प्रकार का बनाना चाहिए। लबाई इतनी रखनी चाहिए कि जरा भी झुककर काम करने की जरूरत न हो, काम करने वाले की उचाई जितना लबा रहने से अच्छा होता है।

नींदन फावडी याने फास की बनावट

कपास की जिनिंग फॅक्टरी में से बेकार बनी हुई फास में से यह फावडी बनाई गई है। यह लोहा ऊचे किस्म का होता है। एक बार धार बनाने से ज्यादा समय तक काम देती है। फावडी की चौडाई २½' से २¾" रखना ठीक है। इसकी लबाई ६" रखें। लबाई की एक तरफ इसमें धार बना लेवे। दूसरी तरफ बाच से एक लोहे की सलाख¹" मोटाई वाली रीविट कर लेवे। इस सलाख को जैसा ऊपर लिखा है वैसा मोडें। सलाख की दूसरी तरफ भूगली रीविट की गई है। हत्थ और फावडी याने 'फास' के बीच ७० का कोण होता है। काम करने के लिए यह कोण ठीक सिद्ध हुआ है।

इस्तेमाल करने का तरीका

हत्थे को पकडकर सीधा खडा रहे। एक पाव आगे और एक पाव पीछे। जो पाव आगे को है उसर ही का हाथ हत्थे का आगे से पकडता है। जो पाव पाछे है उसर का हाथ हत्थे को पीछे से पकडेगा। आसानी के लिए हाथ और पाँव बदल बदल कर काम करना अच्छा होता है।

अवश्य, इस तरह नीदने से नाश हुआ घास एक जगह जमा नही होना। लेकिन घास को छोटी दाताली से जमा कर लेना आसान है। इस तरह घास जमा कर लेने से नीदे हुए हिस्से की जमीन पर पाव का दबाव नही पडता, यह लाभ भी मिलता है।

क्या यह तालीम नहीं है ?

के. एस्. आचारलु

हमारी सस्था (श्री शिवरात्रेश्वर बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय, मैसूर) परिवार केन्द्रित है। वह गाधीजी की कल्पित नई समाज रचना में विश्वास करती है। और इस आदर्श के अनुसार राज्य की बुनियादी प्राथमिक शालाओ के लिये शिक्षको को तैयार करना हमारा काम है। यहा कार्यकर्ता और विद्यार्थी सामूहिक भोजन, काम, प्रार्थना और सास्कृतिक कार्यों के दैनिक कार्यक्रम के सबध में एक दूसरे के सुखदुख में हिस्सा लेते हुए एक साथ रहते है। परिवार अपना सारा काम–सफाई, रसोई इत्यादि–बिना किसी बाहरी मदद के, खुद ही कर लेता है। इसलिये यहा शाला या शिक्षा पूरे दिन का काम है और उसका माध्यम सहकारी जीवन है। सामाजिक जीवन के सिलसिले म उठने वाला हरएक प्रश्न शिक्षा का केन्द्र बन जाता है चाहे वह परस्पर सबध, प्रार्थना, सफाई, आरोग्य या मनोरजन आदि किसी भी बात से सबधित हो।

कुछ विद्यार्थियो ने अपनी दिनचरी में उनके कमरो में खटमल से होनेवाली तकलीफ का जिक्र किया था। सुबह के चर्चावर्गो में देरी से पहुचने वाले विद्यार्थी भी इस शत्रु से उत्पन्न पीडा और उससे उनकी नींद में हुई बाधा को ही कारण बताते थे। सारे छात्रावास से शिकायत की आवाजें उठी कि उनकी राते बहुत कष्ट की बीतती हैं। इसलिए इस प्रश्न का तुरत ही हल ढूढना जरूरी हो गया। प्रश्न आम सभा के सामने रखा गया। यहा पचशील या सह–अस्तित्व का विचार नही हो सकता था, इसलिए युद्ध की ही घोषणा हुई।

योजना व कार्यक्रम

परिवार के विभिन्न कार्यों के सचालन के लिए आम सभा द्वारा एक मत्रिमडल नियुक्त होता है। कार्यकर्त्ताओ से भी सलाह करके इस कार्य की योजना बनाने के लिए स्वास्थ्य व सफाई मत्री, गृहमत्री तथा प्रधान मत्री, इन तीनों की एक समिति बनायी गयी। इन्होने सारी

जगह का निरीक्षण करके एक विस्तृत योजना बनायी और उसे आम सभा के सामने पेश किया। परिवार के प्रत्येक सदस्य से सहकार और अचूक आज्ञापालन की मांग की गयी और वह स्वीकृत हुओ।

कार्यक्रम इस प्रकार था :

१. सुबह के १०.३० बजे तक रोजाना कार्यक्रम चलेगा।

२. ११ बजे एक घंटी बजेगी जब सभी कार्यकर्ता और विद्यार्थी अपने कमरे खाली करेंगे और अपने सारे सामान थोडी दूर पर एक मैदान में ले जा कर धूप में फैला देंगे।

३. सब कमरे बिलकुल साफ करेंगे और दीवार के सभी छिद्र चूने से भर देंगे।

४. इस समय सामानों की देखभाल की व्यवस्था गृह विभाग की तरफ से होगी।

५ समिति के सदस्य कमरों में घूम कर देखेंगे कि सफाई पूरी सन्तोष जनक रूप से हुई कि नही।

६. उसके बाद कमरे गरम पानी से धोएगे और मिट्टी तेल और "डयाजिनन" मिला कर छिडक देंगे।

७. सभी सामानों पर भी कमरे में वापस लाने के पहले यह औषधि छिडक देंगे।

यह सारी योजना बहुत सावधानी के साथ कार्यान्वित की गई। एक एक छोटा भी काम पूरे ध्यान के साथ किया गया। सामान इधर से उधर ले जाते समय वह दृश्य एक शरणार्थी शिविर का जैसा दीखता था। जो लोग सफाई, पानी गरम करना, औषध छिडकना, आदि कामों में लगे थे, उन्हें छोडकर बाकी सब या तो अपना लिखने पढने का काम करते थे, या पेडों की छाया में बैठ कर कात रहे थे। बाहर खुले आकाश के नीचे बिताये ये तीन चार घंटे सब के लिए मानसिक उल्लास तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभदायी साबित हुए।

इस कार्यक्रम के एक महत्वपूर्ण हिस्से के तौर पर विज्ञान के शिक्षक ने माईक्रोस्कोप के नीचे दो दृश्य तैयार करके दिखाये, एक : एक मरे खटमल का, दूसरा : उसके सामने के पंजों का जिनसे वह मनुष्य का रक्त चूसता है। यह देख कर तो रोंगटे खडे होते थे। और इस प्राणी को अपने कपडों व बिस्तरों में स्थान देने के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हुई। पुस्तकालय में से इस विषय पर की किताबें निकाल कर सब के पढने के लिए एक स्थान पर रखी गयी। अगर इसके बारे में एक विशेष वर्ग और उपलब्ध जानकारियों को लिपिबद्ध करने का भी काम होता तो इसकी शैक्षणिक प्रक्रिया अधिक पूर्ण होती, लेकिन इतना हम नही कर पाये।

अब हम देखें कि इस अनुभव के बारे में विद्यार्थियों की क्या राय थी ? यह कार्य पूरा होने के कुछ दिन बाद कुछ विद्यार्थियों से कहा गया कि वे इस बारे में एक रिपोर्ट लिखें—उन्होंने इस काम में कैसे और क्या हिस्सा लिया और उसका उनकी शिक्षा और विचारों पर क्या असर हुआ। उनको बताया कि इसमें उनकी व्यक्तिगत राय को बहुत महत्व दिया जायगा। सैतालीस रिपोर्टें हमको मिली। इनमें प्रगट किये गये विचारों को विभिन्न शीर्षकों में संकलित करके यहां दिया जा रहा है :—

चरित्र निर्माण	कितने विद्यार्थियों ने जिक्र किया
आत्मनिर्भरता का पाठ सीखा ...	१२
काम करते समय मन प्रसन्न था...	४
घर में भी हमें इस तरह की तकलीफ हुई थी, लेकिन उसके बारे में कुछ करने का नहीं सोचा, अब खुद समस्या का हल ढूंढा...	४
जिन्दगी को ज्यादा सुखी बनाना अपने ही हाथों में है...	२
हमारे जीवन में यह एकदम नया अनुभव था	२
बहुत सारी चीजें खुले में फैली थीं, फिर भी कोई एक टुकड़ा भी खोया नहीं . .	३
हमें सुपुर्द किया काम श्रद्धा के साथ करना सीखा .	२
आत्मविश्वास बढ़ा . . .	७
जिन्दगी में अनुशासन के महत्व का अनुभव किया. . .	५
कुल	४१

अच्छी आदतें और काम की कुशलताएं	
छेदों में और दरारों में चूना भरना सीखा	३
ऐसे कार्यक्रमों का सगठन करना सीखा	२
यह समझ लिया कि ऐसे सामूहिक काम को ठीक ढंग से पूरा करने के लिए अत्यन्त सावधानी आवश्यक है...	७
सफाई का महत्व ज्यादा अच्छी तरह से समझ में आया...	८
सफर से वापस आने पर सब सामान पूरा-पूरा साफ करके ही अन्दर रखना चाहिये, यह सीखा...	३
निवारण इलाज से बेहतर है, यह अनुभव किया...	५
योजना बनाने के पहिले सब के साथ चर्चा करना क्यों आवश्यक है, यह समझा...	२
कुल	३०

सामाजिक जीवन	कितने विद्यार्थियों ने जिक्र किया
परस्पर सहकार के साथ काम करना सीखा	२६
परिवार की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखकर काम का सगठन करना सीखा ...	४
अपनी व्यक्तिगत बातें भूल कर एक साथ काम किया . . .	३
काम करते समय महसूस होता था कि हम एक ही परिवार के सदस्य हैं	५
यह समझ लिया कि एक भी व्यक्ति की लापरवाही से सारा काम बिगड़ सकता है	७
काम के समय छोटी-छोटी बातें भूल कर सहज ही दूसरों की मदद करने की वृत्ति होती हैं।...	४
हम जो कर रहे हैं वह परिवार के लिये है, सिर्फ अपने लिए नहीं, ऐसा महसूस हुआ...	४
हमें एक दूसरे के ज्यादा नजदीक आने का मौका मिला	४
हमें अनुभव हुआ कि जब कोई काम ठीक किया जाता है तो परिणाम सन्तोष जनक ही होता है	१
कुल	५८

बौद्धिक	
हमारे मन में यह प्रश्न उठा कि क्या खटमलों को भी मारना अहिंसा के विचार से ठीक है ? एक उपद्रवकारी कीड़े को भी मारना पाप नहीं है क्या ? अहिंसा का पालन करते ऐसे कीड़ों से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा कैसे की जा सकती ?	९
हमने स्कूल में भी खटमलों के बारे में पढ़ा था, लेकिन उसका यह अध्ययन अनोखा था...	३
काम में हिस्सा लेना सच्ची शिक्षा है, यह अब हमने अनुभव किया...	२
कुल	१४

कार्यक्रम से उत्पन्न सन्तोष	कितने विद्यार्थियों ने जिक्र किया
सफाई काम संपूर्ण सुन्दर हुआ, उससे हमें बहुत सन्तोष मिला, वह एक नमूना था ..	३
मच्छरों का उपद्रव भी कम हुआ, इससे हमें बड़ी खुशी हुई .	२
युद्ध क्षेत्र के लिए निकलने वाले सिपाही का उत्साह हमने अनुभव किया . . .	१
एक ज्यादा साफ और स्वस्थ जीवन बिताने में मदद मिली . .	१६
इसके बाद हमारे कमरे देखने में सुन्दर हो गये ..	३
दिन की समाप्ति पर हम थके होने के बावजूद मन में आनन्द था .	४
इस कार्यक्रम के बाद हमारा काम ज्यादा अच्छा और समय पर होता है क्यों कि हम अब निर्बाध नींद मिलती है ..	१
कुल	३०
सुझाव खटमल के बारे में ज्यादा सीखने का मौका मिलने से अच्छा होता	१
और भी एक आध दफे ऐसे कार्यक्रम चलाने की जरूरत है।	१
कुल	२

प्राप्त जानकारी	कितने विद्यार्थियों ने जिक्र किया
माईक्रोस्कोप में खटमल का दृश्य अद्भुत था	४
खटमल और उसकी खून चूसने की शक्ति के बारे में जाना . .	६
सफाई और औषध छिड़कने के सिद्धान्तों को समझा . . .	५
सूर्यरश्मि की शुद्धीकरण शक्ति को समझा . . .	३
एक दुपहर के वर्ग हम नष्ट हुए, लेकिन जो काम हुआ, उससे भी कुछ शिक्षा मिली . . .	१
कुल	१९

भविष्य के लिये क्या सीखा :

कोई कार्यक्रम आरंभ करने के पहले उसकी योजना बनाना अति आवश्यक है .	९
समस्या का सामना करना सीखा	२
काम का ज्यादा अच्छा संगठन करना सीखा	११
घर में भी इस तरह का काम कर सकते है, यह सीखा	८
ग्रामों के कार्यक्रम आयोजित करना सीखा	८
कुल	३८

शायद प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह तालीम है ?

स्कूलों और प्रशिक्षण विद्यालयों को खटमलों से क्या संबन्ध है ?

उनको किसी उपयुक्त तरीके से खतम करो या सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग की मदद लो। लेकिन स्कूल में यह काम ? बेकार की बातें है।

यही असल प्रश्न है-शिक्षा में क्या होना चाहिये, क्या नहीं होना चाहिये।

शैक्षणिक अनुभव से हमारा क्या मतलब है ? प्रसिद्ध प्रामाणिक शिक्षाशास्त्रियों के कथनानुसार शिक्षा का आयोजन विद्यार्थी के जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों से वास्ता रखने वाला होना चाहिये। तभी उससे व्यक्ति का विकास तथा स्कूल के बाहर की परिस्थितियों में उसके ज्ञान का उपयोग संभव होता है। वह "जड़ विचारों" को पढ़ने मात्र तक सीमित नहीं

रहना चाहिए बल्कि अर्थ पूर्ण कार्यों में उसे उतारना है, तभी विद्यार्थी की बुद्धि और व्यवहार में वह पैठ पायगी। एक काम जब सन्तोषजनक रूप से सपन्न होता है तो उससे सीखने की वृत्ति बढती है; काम से जब आनन्द मिलता है तो वैसे दूसरे काम शुरू करने की प्रेरणा मिलती है। ड्यूई के मतानुसार एक शैक्षणिक अनुभव दूसरे शैक्षणिक अनुभवो को पाने की इच्छा को जन्म देता है। इतना ही नही, शिक्षा मे हमेशा सोचना यह चाहिए कि ऐसे किसी शैक्षणिक कार्य की परिसमाप्ति पर विद्यार्थी की क्षमता का स्तर ऊचा उठा कि नही, उसकी समझ ज्यादा विस्तृत व गहरी हुई कि नही। क्या इस अनुभव से विद्यार्थी को प्रकृति के रहस्यों और मनुष्य के विचारो को समझने में मदद मिली? क्या जीवन की परिस्थितियो का सामना करने के उसके सामर्थ्य तथा उसकी कुशलताओ में वृद्धि हुई?

इस दृष्टि से विचार करते हुए हमें लगता है कि यह कार्यक्रम सामाजिक बोध बढाने तथा व्यक्ति के विकास में सहायक रहा है। उससे विद्यार्थियों में काम करने की सन्नद्धता, अपना काम ईमानदारी के साथ पूरा करना, सामाजिक काम में अपना हिस्सा अदा करना, साथियो के प्रति आदर और सहिष्णुता, आदि गुणों व वृत्तियो को बढावा मिला है, अपनी चीजें साफ रखने की आदत और उसके द्वारा सौन्दर्य बोध में वृद्धि हुई, सामने की समस्या का विश्लेषण करके ज्ञानपूर्वक समझने और उसका सामना करने की वृत्ति निर्माण हुई।

हमारा यह दावा नही कि इस एक ही कार्यक्रम का इतना परिणाम हुआ या हो सकता है। एक कर्मनिष्ठ परिवार में रहने से प्रतिदिन जो शैक्षणिक अनुभव मिलते रहते हैं, उस शृंखला की यह एक बडी मात्र है। गांधीजी से प्रतिपादित शिक्षा पद्धति जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों व प्रवृत्तियो में अपनी बुद्धि लगाकर उन्हे ज्ञान प्राप्ति के साधन बनाना ही सिखाती है। अगर हमारी सब माध्यमिक शालाओं और प्रशिक्षण केन्द्रो को ऐसे कर्मनिष्ठ समुदायो के रूप में सगठित किया जाता है, जहा शिक्षा जीवन को केन्द्र बनाकर चलती है, तो देश के समग्र जीवन के लिये उसका शैक्षणिक मूल्य तथा समाज पर उसका प्रभाव क्या हो सकता है, इसकी हम कल्पना करे। लेकिन एक बात याद रखनी चाहिये। इस तरह की शैक्षणिक प्रगति की सब से बडी शत्रु है ऐसी शासन व्यवस्था का साँचा जिसमें इधर से उधर हिलने की गुजाइश नही है, बाहर से निर्धारित शिक्षाक्रम, पाठ्य पुस्तके और परिक्षाए। नई तालीम ऐसी दम घोटनेवाली परिस्थितिया में चल नही सकती, उसे स्वतन्त्रता की प्राणवायु चाहिये।

पृथ्वी के प्रेम से ही स्वर्ग बचता है,
नहीं तो वह सूख जाता है।

बंगाल में नई तालीम कार्यकर्ता गोष्ठी

शशधरभाई

दिनाक १५ व १६ फरवरी को बार-बासुदेवपुर में नई तालीम कार्यकर्ताओ की अेक गोष्ठी का आयोजन हुआ। उसमें नई तालीम सघ, बलरामपुर, लोकभारती, बारबासुदेवपुर तथा राष्ट्रीय बुनियादी विद्यालय, माझिहिडा के प्रतिनिधियो ने और बगाल शिशुरक्षा समिति, खादी आयोग तथा बुनियादी तालीम के दूसरे कार्यकर्ताओ ने भी भाग लिया। इनके अलावा उत्कल के श्री नवकृष्ण चौधरी, अखिल भारत सर्व सेवा सघ के सहमत्री श्री राधाकृष्ण, नई तालीम पत्रिका के सपादक श्री देवीप्रसाद, आन्ध्र के जीवन निकेतन की श्रीमती एनिड जेनिन और श्री सेमसन तथा सेवाग्राम के श्री शकरन् आदि भी उपस्थित थे। गोष्ठी डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष की अध्यक्षता में हुई। करीबन् ५० लोगो ने गोष्ठी में भाग लिया।

१ गोष्ठी में मुख्य चर्चा देश में नई तालीम काम के विकास में आनेवाली समस्याओं पर हुई। करीबन् हर प्रान्त में स्वतन्त्ररूप से काम करनेवाली नई तालीम सस्थाओं को यह दिक्कत आ रही है कि उनमे निकलनेवाले विद्यार्थियो को आज की प्रचलित शिक्षा पद्धति के समकक्ष विद्यार्थियो को जो सरकारी सुविधायें व सहूलियतें मिलती हैं वे प्राप्त नहीं हैं। वास्तव में होना तो यह चाहिए कि नई तालीम के अच्छे से अच्छे प्रयोग सफल हों इस दृष्टि से काम करनेवाले शिक्षको तथा सस्थाओ को अपने काम में पूरी आजादी हो, क्योंकि स्वतन्त्र वातावरण में ही नई तालीम विकसित हो सकती है। लेकिन आज वह वायुमण्डल नही है। इस ओर बढने में आज दो मुख्य दिक्कतें हैं १ भाषा का प्रश्न तथा २ सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाओ का माध्यम। गोष्ठी की राय रही कि आज देश भर में ऊची से ऊची तालीम अपनी मातृभाषा में हो सके इसकी व्यवस्था और सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाओ में भी लोग अपनी मातृभाषा में जवाब लिख सकें यह सुविधा होनी चाहिए। इससे नई तालीम के काम को गति मिलेगी और राष्ट्र के बच्चो के सर्वांगीण विकास में मदद होगी। इस कदम से आज नई तालीम में बढनेवाले विद्यार्थियो के मन में जो एक न्यूनता की भावना है, वह भी बहुत कुछ नष्ट हो जायगी।

२ तालीम की अवधि में मातृभाषा के अलावा अन्य कौनसी भाषा पढाई जावे, इस विषय पर भी चर्चा हुई। गोष्ठी की राय थी कि बुनियादी तालीम के ८ साल की अवधि में अंतिम २-३ सालों में मातृभाषा के अलावा देश की कोई एक भाषा का अध्ययन विद्यार्थी करे और १४ साल की उम्र के बाद कोई भी आधुनिक विदेशी भाषा का व्यवस्थित अभ्यास करे। यह माना गया कि सामान्य तौर पर यह भाषा अंग्रेजी होगी, लेकिन यदि काफी मात्रा में विद्यार्थियो से ऐसी माग आती है तो अन्य कोई विदेशी भाषा भी सिखाई जानी चाहिए। ३-४

भारत की भाषा–समस्या ।

आर्थिक :

अर्थ शास्त्र के मुख्य सिद्धात ।

आज की अर्थरचना से समाज में तनाव ।

राजनैतिक :

राज्यशास्त्र के मुख्य सिद्धात ।

आज की राज्यव्यवस्था से समाज में तनाव।

लोकनीति के विचार का गहराई से अध्ययन ।

समाज–क्रांति शास्त्र

पूर्व–गाधी युग में अहिंसा ।

गाधी युग में अहिंसा ।

उत्तर–गाधी युग में अहिंसा ।

भारत के राष्ट्रीय आदोलन का इतिहास। विदेशो में शाति आदोलन ।

मनोविज्ञान : मनोविज्ञान के सामान्य सिद्घात तथा भीड के मनोविज्ञान की जनकारी।

सेवा–कार्यों से संबन्धित अध्ययन

प्राथमिक अुपचार, सामान्य ओपधियो का ज्ञान ।

सफाई शास्त्र ।

प्रौढ शिक्षा और स्त्री शिक्षा के मूलतत्व ।

विद्यार्थी आदोलन का अध्ययन ।

मजदूर आदोलन का अध्ययन ।

शराब के परिणाम ।

जीवनी परिचय

विविध दिशाओं में सत्य की खोज करने तथा अुसके लिये कप्ट सहन करनेवालों की जीवनिया–कहानी मसलन :

हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, शिवि, दधीचि, साक्रेटीस, गेलिलिओ, सत फरासिस, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह, मार्टिन ल्यूथर, हसन, हुसेन, चार खलीफ, मेडम क्यूरी, पास्चर, मेरीस्लेसिन, आल्बर्ट, स्वाअित्जर, मीरा बाई, टालस्टॉय, गणेश शकर विद्यार्थी, अीसा, मुहम्मद, रामकृष्ण, *निवेदिता, बूकर टी वाशिगटन ।*

प्रत्यक्ष कार्य

रसोई बनाना, सफाई, शरीरश्रम का अभ्यास, प्राथमिक उपचार, सभा सचालन, भीड को सम्हालना, कवायत, तैरना, साइकल चलाना, आग बुझाना,

बीमारो की सेवा, सामूहिक प्रार्थना, कहानी सुनाना ।

× + ×

अन्य समाचार

जापान का आणविक और हाइड्रोजन बम विरोधी समिति एक प्रदर्शन का आयोजन बिकीनी घटना की सातवी वार्षिकी मनाने के लिए कर रही है । उस समय एक मछली पकडनेवाले के खतरे के स्थल से कही दूर प्राण चले गये थे । यह प्रदर्शन अगस्त में होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की तैयारी के रूप में भी होगा ।

× × ×

एक सौ की कमेटी द्वारा प्रदर्शन आणविक शस्त्रो के खिलाफ आन्दोलन करने के लिए

जो एक सौ की समिति बनी है, उसकी राय है कि अब वह समय आ गया है जब कि अहिंसक प्रतिकार आन्दोलन को बडे पैमाने पर चलाया जाय। उनका ख्याल है कि पोलारिस पनडुब्बी जब होलीलॉक के केन्द्र में आये तभी यह आन्दोलन किया जाय। इस विशाल प्रतिरोध प्रदर्शन में बरट्रान्डरसल के साथ माइकलस्काट और सर हर्बट रीड भी भाग ले रहे है।

× × ×

इगलैड में आणविक शस्त्रास्त्रो के विरुद्ध एक विशाल यात्रा की योजना हो रही है। यात्रा गुड फ्राइडे को आल्डर मास्टन और नाटो के एक बेस–वेदर्सफील्ड से शुरू होगी और ईस्टर सोमवार को व्हाइट हॉल के सामने आकर मिलेगी।

× × ×

दीर्घयात्रा. जो अन्तर्राष्ट्रीय यात्रा सान्फान्सिको से मास्को के लिए अमेरिका की अहिंसक युद्ध प्रतिरोधक कमेटी के द्वारा प्रारम्भ हुई थी, उसका यह १० वा सप्ताह है। १० सदस्यो से बढकर अब उसमें २० व्यक्ति हो गये है, जिनमें ३ बहनें भी है। टोली का सबसे कनिष्ठ सदस्य १८ वर्ष का और ज्येष्ठतम ४७ वर्ष का है। रोज चलने का औसत २३ मील आ रहा है और खबर है कि टोली में खूब उत्साह भरा हुआ है।

× ×

नार्थन वाइड कम्यूनिटी हाऊस ने सूचना दी है कि वे बरतानिया के मध्य भाग में एक शान्ति प्रशिक्षण और अध्ययन केन्द्र की स्थापना करेगे। केन्द्र ग्रामीण क्षेत्र में होगा।

× × ×

अमेरिका फ्रेन्ड्स् सर्विस कमिटी १९६१ की गर्मियो में आस्ट्रिया, इग्लैंड, और युगोस्लाविया में अन्तर्राष्ट्रीय चर्चागोष्ठया चलाएगी। आज दुनिया में प्रजातत्र के लिये खतरा, लोकतन्त्र के बारे में नये विचार तथा शान्ति के आवश्यक पूर्वपरिस्थिति के बारे में इनमें विचार विनिमय होगा।

× × ×

युद्ध प्रतिरोधक अन्तर्राष्ट्रीय की शाखा भारत में भी प्रारम्भ की जाय, इस सिलसिले में पहले से ही कुछ मित्रो के बीच चर्चा चल रही थी। गाधीग्राम के सम्मेलन के समय उसकी स्थापना की गई और तय हुआ कि देश के अलग-अलग क्षेत्रो में 'अन्तर्राष्ट्रीय' की स्थानिक मडलिया बनाई जाय। लगभग सात स्थानो पर इस प्रकार सगठन हो, यह तय किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय का एक भारतीय नाम रखा जाय, यह सभी की राय रही।

× × ×

ब्रिटन के रक्षामत्रालय के सामने १८ फरवरी को प्रसिद्ध दार्शनिक और चिन्तक बर्ट्रान्ड रसल के नेतृत्व में करीब ४,००० लोगो ने एक "बैठे रहे" सत्याग्रह किया। उन्होने अपनी मागो को एक घोषणा के द्वारा व्यक्त किया था, जिसकी एक प्रति मत्रालय के दरवाजे पर चिपकायी गयी थी–उसमें कहा था : हमारा आज का प्रदर्शन अहिसात्मक सविनय आज्ञाभग के कार्यक्रम का पहला कदम है। इससे हम अपनी सरकार को सूचित कर देते हैं कि मानवता का विनाश करने को उनकी तैयारियो को अब हम चुपचाप खडे हो कर नही देख सकते हैं।" आणविक अस्त्रा के–खास कर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साथ पोलारिस सन्धि के प्रति–विरोध प्रदर्शित करने का यह आयोजन बडे शान्त गभीर वातावरण में हुआ।

पुलिस ने एक भी गिरफ्तारी नही की।

पुस्तक परिचय

स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम् (स्वतंत्रता की उडान)

लेखक–मार्टिन लूथर किंग,

प्रकाशक–हार्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यू यार्क-१६ अमेरिका

सस्ता सस्करण–वेलेन्टाइन बुक्स १०१ फिफ्थ अवेन्यू, न्यू यार्क ३ मूल्य ५० सेन्ट

सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का सामाजिक कोढ गोरे निवासियो का वहा के काले नागरिको के प्रति भेदभाव करना है। अमेरिका में नीग्रो कौम गुलाम के रूप में लाई गई थी, उस समय उनके साथ पशुओ सरीखा ही बर्ताव किया जाता था। गृह युद्ध के बाद हब्सी गुलामो को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, पर सामाजिक अधिकार नही मिले। खासकर सयुक्त राष्ट्र, अमेरिका के दक्षिणी प्रदेशो में इस भेदभाव की नीति का रूप उग्र ही रहा। अमेरिका के राष्ट्रीय सविधान मे इसकी स्वीकृति नही है, फिर भी काले और गोरो के लिए अलग-अलग पाठशालाएँ, लोक-उद्यान इत्यादि रहते आये। होटलो में भी नीग्रो नागरिक को स्थान प्राप्त न होता। इसी प्रकार मतदाता की सूची में मुश्किल से उनके नाम लिखे जाते हैं। सूची में नाम होने पर भी उनको मतदान की स्वतत्रता के अधिकार से वचित कर दिया जाता रहा है। कुछ रूप में यह समस्या भारतीय हरिजन समस्या के सदृश है। हरिजन का पहचाना जाना सभव नही है, जब तक कि वह स्वय न बताये, परन्तु नीग्रो अपने रग के कारण अलग ही दीख जाते हैं और कदम-कदम पर क्रूर पाशविक व्यवहार के शिकार बनते हैं।

अमेरिका का नीग्रो नागरिक अब तेजी से जाग्रत हो रहा है। वह अपने सब अधिकारो को मानवीय ढग से प्राप्त करने का सतत प्रयत्न कर रहा है। इस धर्मयुद्ध की एक झाकी मार्टिन लूथर ने अपनी उपरोक्त पुस्तक "स्वतन्त्रता की उडान" में प्रस्तुत की है। माटगोमरी के लोक परिवाहन में यह व्यवस्था थी कि नीग्रो ग्राहक को बस के पीछे की सीटो पर स्थान मिलेगा, भले ही आगे का स्थान खाली हो। पीछे की जगह भर जाने पर वह खडा-खडा प्रवास करेगा। गोरो की बराबरी में उसे बैठने नही दिया जाता था। उसे अपना किराया कडक्टर के पास जाकर देना होता था। कडक्टर उनके पास नही आता था। अर्थात् सब प्रकार की सुविधायें और प्राथमिकता गोरे ग्राहको का ही उपलब्ध थी। परिवाहन विभाग की ९० प्रतिशत आमदनी का स्रोत निग्रो नागरिक ही थे। उनके साथ इस प्रकार घोर अन्याय हो रहा था। लोगो के दिलो में इसके प्रति विद्रोह भरा था, पर उन्हे इसका सतोषजनक हल नही सूझ रहा था। गोरे लोगो में मानसिक परिवर्तन हुये बिना कोई भी कार्यकारी व्यवस्था सभव न थी।

एक दिन थकान से चूर एक वृद्ध नीग्रो महिला एक बस में आगे की जगह बैठ गई। कडक्टर ने उसे वहाँ से उठने का आदेश दिया। उसने इसकी अवहेलना की और वह शात बैठी रही। वहा के कानून के विकृत रूप के आधार पर महिला पुलिस-हवालात में ले ली गई। इसके विद्रोह में दूसरे दिन अधिकतर नीग्रो नागरिको ने परिवाहन का बहिष्कार किया।

किसी ने बस में प्रवास नही किया। यह एक ऐसा आदोलन बन गया जिसकी असफलता या सफलता पर माटगोमरी के नीग्रो नागरिको का भावी जीवन निर्भर था। नीग्रो लोगो ने इस आदोलन का नेता अपने एक युवक पादरी मार्टिन लूथर किंग को चुना। उन्होने इसे अपने महागुरु ईसा के उपदेशानुसार अहिंसात्मक धर्मयुद्ध बनाया। महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा और प्रेम की नीति का व्यवहारी रूप सत्याग्रह को अमल में लाये। गोरे नागरिको ने सम्मिलित रूप से एव शासकीय अधिकार के आधार पर हिंसा, अन्याय और अत्याचार का आसरा लिया। मार्टिन लूथर किंग के घर पर बम फेंका, उन्हे मार डालने की धमकी दी। नीग्रो के प्रति साम, दाम, दण्ड भेद की नीति अपनाई, परन्तु नीग्रो सत्याग्रह-नीति पर अडिग रहे और उन्होने सफलता प्राप्त की। आरभ से अत तक उनका प्रयत्न समस्या का आदर्श-हल पाने का रहा, समझौते का रहा, न कि विरोधियो को हराने या नीचा दिखाने का। सफलता की कुजी अपने सिद्धान्तो मे आस्था, उस पर अमल करने की पूरी-पूरी तैयारी और हिंसा से निर्भयता प्राप्त कर लेना था। आदोलन में सद्भावना वाली गोरी जनता का भी सहयोग प्राप्त हुआ और सफलता के क्षणो में नीग्रो लोगो ने उदारता और नम्रता को वरण किया। इस ग्रथ में लेखक ने धर्म, सत्य, करुणा, प्रेम और अहिंसा के बारे में अपने अनुभव पर आधारित विचार प्रगट किए है। उसके कुछ उल्लेखनीय अश यहा दे रहे है। सब को इस ग्रथ का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। "सत्य के प्रयोग" का यह दूसरा रूप है।

> **वह भी तो एक कदम आगे बढना है।**
>
> सभाओं का वातावरण ही उनकी भावनाओं को स्पष्ट तौर पर प्रकट कर देता था। सगीत, प्रार्थना, ग्रथ पाठ और भाषणों मे अहिंसा की भावना रहती थी। बाईबल का यह अश सर्व प्रिय था—"और अब ये तीनों—श्रद्धा, आशा और प्रेम विराजमान हों, किन्तु इनमे से सर्वश्रेष्ठ है प्रेम।" दूसरा अश जिसका अवसर पाठ किया जाता था, पीटर और ईसा के बीच हुआ क्षमा के ऊपर प्रसिद्ध सवाद था। पीटर उनके पास आया और बोला—'मेरा भाई कितने बार मेरे विरुद्ध अपराध करे और मैं उसे क्षमा करूं? सात बार? ईसूने उसको कहा—'मैं तुमसेस ातबार क्षमा करने को नहीं कहता बल्कि सात का सत्तर गुणा बार।" सभा के श्रोताओं के लिए ये शास्त्र-वाक्य सदियों से आये दूर के शब्दमात्र नहीं थे, वे उनके लिए-सीधे व्यक्तिगत अर्थ रखने वाले विचार थे।
>
> अहिंसा अपने अर्थ में वह "नीति" नहीं है, जिसका उपयोग लोग शीघ्र परिणाम लाने वाली चीज की तरह करते हैं। अहिंसा तो वह जीवन दर्शन है जिसे लोग उसकी नैतिकता के लिए अपनाते हैं। किंतु अहिंसा को एक पद्धति के तौर पर अपनाना भी-एक कदम आगे बढाना है, क्यों कि जो इतनी दूर जा सकता है उसको बाद में अहिंसा को एक जीवन तौर पर अपनाने की अधिक सम्भावना है
>
> मार्टिन लूथर किंग

"कोई भी धर्म जडवत् होने पर अपनी विसात का सौदा जीवन के उपले मूल्यों से कर लेता है। धर्म अपने उत्कृष्ट रूप में न केवल इन्सान की प्राथमिक आकाक्षा से ही, वरन उसकी अवश्यभावी अतिम महाकाक्षा से भी वास्ता रखता है। धर्म इस बुनियादी स्थिति की उपेक्षा कर एक सामान्य आचार नीति भर बन जाता है जिसमें अनत

का समावेश काल में हो जाता है और ईश्वर एक तरह का अर्थहीन दिमागी फितूर बन जाता है।

"सत्यरूप में धर्म को मनुष्य की सामाजिक समस्याओं से अवश्य ही सम्बन्धित होना चाहिये। धर्म का व्यवहारी सम्बन्ध दोनों स्वर्ग और ससार ऐवं काल और अनन्त से रहता है। धर्म का चरण विस्तारक और गुणात्मक है। उसका लक्ष्य न केवल मनुष्य को ईश्वर के साथ परिपूर्ण करना है, परन्तु आदमी को आदमी से मिलाना और उसे स्वयपूर्ण करना है।

"जो भी व्यक्ति बुराई (दुष्टकर्म, पाप) को निष्क्रिय रूप से स्वीकार कर लेते हैं वे उसके उतने ही भागीदार हैं जितने कि पाप को स्थायी बनाने में मदद करने वाले लोग। जो व्यक्ति बुराई को विरोध किये बिना सहन कर लेते है वे वैसे ही उसके हिस्सेदार हैं जैसे कि दुष्टकर्म में शामिल होने वाले।"

अहिंसा के बारे में वे लिखते हैं—

"क्यों कि मोन्टिगोमेरी आन्दोलन मे अहिंसा के दर्शन का इतना बड़ा प्रभाव था यहां उस दर्शन के कुछ बुनियादी पहलुओं पर विचार करें।

"पहली बात यह है कि अहिंसा की पद्धति कायरों के लिए नही है। अगर कोई इस पद्धति का इसलिए उपयोग करता है क्यो कि वह डरता है या उसके पास हिंसा के साधन नही हैं, तो वह सचमुच अहिंसानिष्ठ नही है। इसलिए गाधी कहते थे कि अगर हिंसा का विकल्प कायरता है तो लड़ना ही अच्छा है। लेकिन वे जानते थे कि दूसरा विकल्प है। किसी भी व्यक्ति या दल को अन्याय स्वीकार करने की जरूरत नही है, न ही उन्हे उसके लिये हिंसा का उपयोग करने की जरूरत है। उनके लिए अहिंसात्मक प्रतिरोध का मार्ग है। सच्चे मजबूत आदमी का रास्ता वही है। यह कोई अकर्मण्यता की पद्धति नही है जिसमें प्रतिरोधक चुपचाप बिना कुछ किए अन्याय को सहन करता जाता है। अहिंसात्मक प्रतिरोध में सत्याग्रही अपने प्रतियोगी पर कभी शारिरिक आक्रमण नहीं करता, लेकिन उसका मन और भावनाएं हमेशा सक्रिय हैं और अपने विरोधी को यह समझाने की कोशिश करता है कि वह गलत काम कर रहा है। भौतिक रूप से वह निष्क्रिय दीख सकता है लेकिन आध्यात्मिक स्तर पर वह अत्यन्त सक्रिय है।

"अहिंसा का दूसरा सिद्धात यह है कि वह कभी अपने विरोधी को पराजित करना या नीचा दिखाना नही चाहती है। उसका उद्देश्य विरोधी के मन में प्रेम पैदा करना है जब कि हिंसा का परिणाम कटुता है।

"तीसरी बात यह है कि इसमें पाप की शक्तियो पर आक्रमण होता है, न कि व्यक्तियों पर। अहिंसा के सिपाही मात्र अन्याय का ही विरोध करता है, अन्याय करनेवाले आदमियों का नही।

"इसका चौथा सिद्धान्त प्रतिकार के विचार किये बिना कष्ट सहन करने की तैयारी है। गाधीजी ने कहा था—"स्वतत्रता पाने के लिए शायद रक्त की नदियां बहनी पड़ेंगी, लेकिन वह रक्त हमारा ही होगा।" अहिंसा का सिपाही जरूरत पड़ी तो हिंसा को सहन करेगा, लेकिन प्रतिहिंसा नही करेगा। बिना कसूर किये सजा भुगतने के लिये तैयारी पापमोचन करता है। इस तरह के कष्ट सहन की बहुत बड़ी शैक्षणिक एवं परिणामकारी सभावनाएं है।

"अहिंसात्मक प्रतिरोध का पांचवां सिद्धान्त है कि वह बाह्य शारीरिक हिंसा का ही नहीं, आन्तरिक मानसिक हिंसा का भी त्याग करता है। वह अपने विरोधी को सिर्फ मारने से इनकार नहीं करता, बल्कि उसके प्रति द्वेष भी नहीं रखता है। अहिंसा का केन्द्र भूत तत्व प्रेम है।

"और उसका छठा सिद्धान्त है कि यह विश्व मूल रूप में न्याय का प्रेमी है। इसलिये अहिंसा में विश्वास रखने वाले को भविष्य में दृढ आस्था है। यह आस्था उसके प्रतिकार किये बिना कष्ट सहन करने की तैयारी का दूसरा कारण है। क्योंकि वह जानता है कि न्याय के लिये उसके कष्टसहन में मानवता उसके साथ है।"

साभार प्राप्त

सच्चे सुख का मार्ग, लेखक–केदारनाथ,
पृष्ठ संख्या–२०, मूल्य ३० न० पै०

समय का सदुपयोग, लेखक–वही,
पृष्ठ संख्या–२०, मूल्य ३० न० पै०

गृहस्थाश्रम की दीक्षा, लेखक–वही,
पृष्ठ संख्या–१२, मूल्य २५ न० पै०

संयम और ब्रह्मचर्य, लेखक–वही,
पृष्ठ संख्या–१२, मूल्य २५ न० पै०

महिलाओं से, लेखक–वही
पृष्ठ संख्या–३०, मूल्य ३५ न० पै०

बापू के पत्र-५ कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम,
पृष्ठ संख्या–४१४ मूल्य ४ रु०

नवजीवन मंदिर अहमदाबाद–१४ द्वारा प्रकाशित।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ को श्रद्धांजलि

भारत में शिक्षा का पुनरुत्थान करने वालों में महर्षि रवीन्द्रनाथ का स्थान सबसे पहला है। नई तालीम के नाम से जब कि राष्ट्रीय शिक्षा का विचार भी नहीं आया था, गुरुदेव ने इन्हीं बुनियादी सिद्धान्तों के आधार पर न केवल विचार प्रस्तुत करना, बल्कि शिक्षा का प्रत्यक्ष कार्य भी शुरू कर दिया था। शान्तिनिकेतन का प्रारंभ, जिसको उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम कहकर स्थापना की थी, शिक्षा जगत् में एक बहुत बड़ा कदम था। उनका लिखा हुआ शिक्षा विषयक साहित्य सदा के लिए पथप्रदर्शक बन कर रहेगा। उनका जीवन दर्शन आनेवाले युग के लिए भविष्य वाणी सिद्ध होगी। उनका 'एक-जगत' का दर्शन मनुष्य-मनुष्य और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच गहरे बन्धुत्व की नींव डालने में मदद करेगा। उनका संगीत, कविता और नाटक मनुष्य को ऊपर उठाता रहेगा।

इन गुरुदेव की शतवर्षिकी के समय यदि हम उनके चरणों में एक क्षुद्र पुष्पांजलि अर्पित करें तो कौनसी बड़ी बात होगी। किन्तु यदि उसे करने में हम अपने को उनके कुछ नजदीक ले जा सकें तो अपने आपको धन्य मानेंगे। इसी भावना के साथ "नई तालीम" पत्रिका नई तालीम जगत् की ओर से श्रद्धांजलि के तौर पर एक गुरुदेव विशेषांक निकालने का प्रयास कर रही है। आगामी मई और जून १९६१ के अंक मई के प्रथम सप्ताह में (रवीन्द्र जन्मोत्सव के समय) सम्मिलित रूप से प्रकाशित होंगे। पाठकों और अन्य सभी मित्रों से निवेदन है कि हमारे इस प्रयास में सहयोग दें और अपने सुझाव भी भेजें। हम चाहते हैं कि यह अंक शिक्षकों के लिए एक सहायक ग्रंथ के तौर पर बन जाय।

यह क्या विडम्बना है !

"**युनिवर्सिटी में शिक्षा का माध्यम**" शीर्षक के अन्तर्गत, पिछले महीने हमने युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन द्वारा नियुक्त एक समिति की रिपोर्ट के बारे मे समाचार दिया था। उस समिति की राय थी कि उच्च शिक्षा में अंग्रेजी को माध्यम के स्थान से नहीं हटाना चाहिए।

पिछली सात फरवरी को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री श्रीमाली ने श्रीनिकेतन (शान्तिनिकेतन का ग्रामोद्धार विभाग) के वार्षिक समारोह में भाषण करते हुए उपरोक्त विषय पर अपनी राय प्रकट की। उन्होंने कहा

"हमारी जनता के लिये इससे ज्यादा लज्जाजनक बात क्या हो सकती है-यह सोचना कि हमारी भाषाएँ अपनी संस्कृति के वाहन बनने के लिये अयोग्य है। और हमें अपनी ही सभ्यता में भिखारी बन कर रहना पड़ेगा-जो सभ्यता भूत काल में मानव की पहुच को उच्चतम शिखर पर पहुची थी।

अब करीब एक शताब्दी से हम अपनी भाषाओं को उनको योग्य स्थान दिलाने के लिये आन्दोलन कर रहे है। हमारे ऊपर एक विदेशी भाषा लादने के लिये हम ब्रिटीश सरकार को दोष देते रहे। लेकिन जब स्वतंत्रता के बाद हमें अपनी भाषाओं का विकास करने की पूरी आजादी मिली, तो यह क्या विडम्बना है कि हम पीछे हट रहे हैं और अंग्रेजी को उसी स्थान पर बनाये रखने के लिये चिल्ला रहे हैं-सिर्फ एक दूसरी राष्ट्रभाषा के रूप में ही नही, बल्कि अपने विश्वविद्यालयो में शिक्षा के माध्यम के रूप में भी।"

डॉ० श्रीमाली ने आगे कहा कि जो लोग अंग्रेजी को अपनाये रखने की माग कर रहे है, वे समझते नही कि हमारी सभ्यता के विकास में उसका कितना प्रतिकूल प्रभाव पडेगा।

"अपने देश में इतनी सारी भाषाए है, इस वस्तुस्थिति से हमें डरना नही है। हमारे संविधान में यह हक पहचाना गया है कि एक भाषा बोलनेवाले अपने आपको संगठित करे और अपनी भाषा व संस्कृति का विकास करे। अगर कोई जनता अपनी भाषा की रक्षा के बारे में अत्याधिक सतर्क है, तो उससे कुछ डरने की बात नही है क्योंकि अपनी भाषा के द्वारा ही वे अपनी सर्जनात्मक शक्तियो का विकास कर सकते है।

रवीन्द्र शतवार्षिकी विशेषांक

लगभग ८० पृष्ठो का (सचित्र) होगा और उसकी कीमत सवा रुपया होगी। जनवरी ६१ से बनने वाले नये ग्राहकों को वह वार्षिक शुल्क के अन्दर ही मिल जायेगा। जो सज्जन विशेषांक के लिए आर्डर भेजना चाहते है कृपया पहले से ही भेजें। —प्रबन्धक

"नई तालीम" पत्रिका की जानकारी

फार्म ६ रूल ८

प्रकाशन का स्थान	सेवाग्राम
प्रकाशन काल	मासिक
मुद्रक का नाम	देवी प्रसाद
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	अ० भा० सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा)
प्रकाशक	देवी प्रसाद
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	अ० भा० सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा)
संपादक	देवी प्रसाद और मनमोहन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	अ० भा० सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा)
पत्र के मालिक	अ० भा० सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम (वर्धा)

मैं, देवी प्रसाद, विश्वास दिलाता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

१ मार्च १९६१ देवी प्रसाद
प्रकाशक

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

अप्रैल १९६१
वर्ष : ९ अंक : १०

Regd. No N.-106

सर्वोदय

स्वराज्य का वास्तविक अर्थ है अपने उपर काबू रख सकना। यह वही मनुष्य कर सकता है जो स्वयं नीति का पालन करता है, दूसरों को धोखा नहीं देता, माता-पिता, स्त्री-बच्चे, नौकर-चाकर, पड़ोसी सब के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता है। ऐसा मनुष्य चाहे जिस देश में हो, फिर भी स्वराज भोग रहा है। जिस राष्ट्र में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक हो, उसे स्वराज्य मिला हुआ ही समझना चाहिए।

—गांधीजी

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-सेवाग्राम

नई तालीम

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

अप्रैल १९६१
वर्ष ९ अंक १०

नई तालीम

[अ.भा. सर्व सेवा संघ का
नई तालीम विषयक मुखपत्र]

अप्रैल १९६१

वर्ष ९ अंक १०.

अनुक्रम

"नई तालीम" हर माह के पहले सप्ताह मे सर्व सेवा सघ द्वारा सेवाग्राम से प्रकाशित होती है। असका वार्षिक चदा चार रुपये और अेक प्रति का ३७ न पै. है। चन्दा पेशगी लिया जाता है। वी पी डाक से मगाने पर ६२ न पै अधिक लगता है। चन्दा भेजते समय कृपया अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरो में लिखें। पत्र व्यवहार के समय कृपया अपनी ग्राहक सख्या का अुल्लेख करे। "नई तालीम" में प्रकाशित मत और विचारादि के लिए उनके लेखक ही जिम्मेदार होते हैं। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का अन्य जगह उपयोग करने के लिए कोई विशेष अनुमति की आवश्यकता नही है, किन्तु उसे प्रकाशित करते समय "नई तालीम" का उल्लेख करना आवश्यक है। पत्र व्यवहार सम्पादक, 'नई तालीम" सेवाग्राम (वर्धा) के पते पर किया जाय।

वर्ष ९ अक १० ★ अप्रैल १९६१

यन्त्र उद्योग और ग्रामोद्योग का विरोध नहीं।

विनोबा

हमने "गीता-प्रवचन" में साख्य और योग, ऐसे दो विभाग बताये हैं। जीवन-शास्त्र का एक अश है साख्य व एक है योग। सर्वोदय के भी साख्य व योग, ऐसे दो अश हैं। दोनो मिलकर परिपूर्ण सर्वोदय का जो साख्य (याने "थियरी") है, वह मैं यहा कहूगा।

सर्वोदय का मूलभूत विचार है कि परस्पर हितो का विरोध न हो। मेरे हित में आपका हित है। आपके हित में मेरा हित है। दोनो के हित में देश का हित है। देश के हित में मेरा व आपका हित है। देश-हित का विश्व के हित से विरोध नहीं, इस तरह सर्वोदय अविरोधी है। यह है बुनियाद।

सर्वोदय-विचार में ग्रामोद्योग व यन्त्रोद्योग भी परस्पर अविरोध से एक साथ रह सकते हैं। उनका क्षेत्र विभाजित करना होगा। किस क्षेत्र में ग्रामोद्योग रखा जाय व किस क्षेत्र में यन्त्रोद्योग रखा जाय, ऐसा विभाजन हो जाय तो एक ही देश में ग्रामोद्योग व यन्त्रोद्योग चल सकते हैं। ग्रामोद्योग व यन्त्रोद्योग एक–दूसरे के विरोधी होने ही चाहिए, ऐसा नही। दोना का समन्वय कर सकते हैं।

यत्र तीन प्रकार के हैं · एक सहारक यत्र, दूसरा समयसाधाक यत्र व तीसरा उत्पादक यत्र।

सहारक यत्र याने मशिनगन्स, तोपें, जिनका उपयोग मानव-सहार में ही होता है। ऐसे जो शस्त्रास्त्र इत्यादि बनते है, उनका नाम है सहारक यत्र। सर्वोदय में सहारक यत्रो के लिए स्थान नहीं। सहारक यत्र का हम सर्वोदय-विचार के लोग विरोध करते है।

समय-साधक यत्र सहार भी नही करते व उत्पादन भी नही करते, समय बचाते हैं। जैसे मोटर है, रेलवे है, हवाई जहाज है। इन सब से उत्पादन नही

होता, न संहार होता है, समय बचता है । हवाई जहाज में इतनी गति है कि बम्बई से लंदन बारह घंटे में जाते हैं । ४०० साल पहले दो साल लगते थे, अब बारह घंटे लगते हैं व समय बचता है । तो ये समय-साधक यंत्र हैं । सर्वोदय में इनका विरोध नहीं । सर्वोदय को वे पसंद हैं, मान्य हैं । नये राकेट बनेंगी । राकेट भी सर्वोदय को मान्य हैं, समय साधक यंत्र सर्वथा मान्य है ।

अब उत्पादक यंत्र रहे । उत्पादक यंत्र निर्माण-कारक हैं । उत्पादक यंत्र दो प्रकार के होते हैं । एक मनुष्यों के श्रम की पूर्ति करते हैं । हमारे हाथों के श्रम से हम जो काम नहीं कर सकते है, वह करने में सहायता देते हैं यंत्र । पूरक नाम है उनका । उत्पादक यंत्र का एक प्रकार, पूरक-यंत्र मनुष्य के श्रम की पूर्ति करने वाले हैं । हम हाथ से सूत कातेंगे, तो हमारा काम पूरा नहीं होगा । तकली से थोडी मदद हुई, चरखे से ज्यादा मदद होगी । इस तरह से श्रम की पूर्ति में जो यन्त्र हैं, वे पूरक उत्पादक यन्त्र हैं । जो यन्त्र उत्पादन करते हैं ज्यादा, लेकिन मजदूरों को कम करते हैं, वे हैं "मारक" यन्त्र । सो उत्पादक यन्त्र के दो प्रकार हुए—पूरक व मारक ।

कौन-सा यन्त्र पूरक है व कौन-सा मारक, इसका निर्णय देश-काल की परिस्थिति के अनुसार बदलेगा । अमेरिका में जो यन्त्र पूरक होगा, वह हिन्दुस्तान में मारक हो सकता है । आज जो यन्त्र मारक होगा, वह कल पूरक भी हो सकता है । इसका रूप कालमानानुरूप, स्थलमानानुरूप व परिस्थिति के अनुरूप बदलेगा ।

सर्वोदय का एक बहुत बड़ा विचार है जिसमें "सयन्स" का हम पूर्ण उपयोग करना चाहते हैं । हमें "इलेक्ट्रिसिटी" व एटामिक एनर्जी, चाहिए । लेकिन सयन्स का उपयोग कहां किया जाय, इस विषय में सर्वोदय के अपने विचार हैं । सयन्स को अध्यात्म शास्त्र मार्गदर्शन करेगा ।

अग्नि का उपयोग घर जलाने में हो या पकाने में करना, यह मानव का अध्यात्म शास्त्र तय करेगा । ऐसे ही "एटामिक एनर्जी" कल आ जायेगी, तो उसका उपयोग कैसे करना, इसका निर्णय हम करेंगे, परन्तु सयन्स को हमारा विरोध नहीं, आदर है । उसका उपयोग कहां करना, यह सोचना होगा और उसका नियमन, नियंत्रण करना होगा । नियमन, नियंत्रण परिस्थिति के अनुसार बदलता रहेगा ।

यह थोडे में सर्वोदय में साम्य का विवरण है । इसमें किसी के हित में विरोध नहीं, पूरा अविरोध है । यंत्र-उद्योग व ग्रामोद्योग का विरोध नहीं, परिस्थिति को देख कर उनको "एडजस्ट" कर सकते हैं ।

सत्याग्रह पर विनोबाजी के विचार

मनमोहन चौधरी

२६-९-५६ : मेरा सवाल था–आप कहते हैं सत्याग्रह आज के जमाने में बड़ा ही होना चाहिए । अणु शस्त्र का मुकाबला कर सके, ऐसा होना चाहिये । छोटे-छोटे सत्याग्रह चलाने से बड़े सत्याग्रह के लिए शक्ति पैदा नही होगी, यह विचार मुझे ठीक जचता नही । जहा कोई अन्याय या जुल्म एकदम सामने आ जाय वहा उसका प्रतिकार आपद्धर्म के तौर पर करना ही चाहिए । ऐसी स्थिति में सत्याग्रह का स्वरूप क्या हो ? व्यापक तथा बड़े सत्याग्रह के लिए तैयारी से थोडी देर अलग होकर इस प्रकार की तात्कालिक समस्या हाथ में लेना चाहिये या नही ।

विनोबा : विश्वव्यापक दृष्टि से सत्याग्रह सिर्फ व्यापक क्षेत्र में ही होगा वैसी बात नही है । एकदम सीमित क्षेत्र में भी व्यापक दृष्टि से सत्याग्रह चल सकता है । कई प्रसगा पर छोटे सत्याग्रह का तात्पर्य तथा परिणाम विश्वव्यापक हो सकता है । क्योकि उस के साथ जो सिद्धान्त जुड़ा हुआ है उसका तात्पर्य विश्वव्यापक होगा ।

१९४३ में बगाल के अकाल में दस पद्रह लाख मनुष्य मरे । अगर उस समय कुछ लोग ऐसे निकलते जो अपना सारा अनाज तथा पैसा दूसरो के साथ बराबर बाट लेते, फिर अनशन शुरू कर देते तो वह एक सर्वोत्तम सत्याग्रह होता । उस समय तो हम लोग जेल में थे । लेकिन मेरे दिमाग में यह विचार उस समय आया था ।

प्रश्न : उस समय तो लोग बिलकुल असहाय बन गये थे । सारा अनाज कहा गया यह मालूम ही नही था ।

वीनोबा : अनाज तो छिपा कर रखा गया । लेकिन पाच दस हजार मनुष्य इस प्रकार करते तो वह सर्वोत्तम तथा अत्यन्त प्रभाव शाली सत्याग्रह हुआ होता ।

प्रश्न : तो भिसका मतलब यही हुआ कि कभी छोटे-छोटे सवालो के पीछे भी व्यापक सिद्धान्त के प्रश्न होते हैं । भिस प्रकार के सिद्धान्तो को सामने र कर ही सत्याग्रह चलाया जाना चाहिये ?

विनोबा : नही, हर सवाल के पीछे भिस प्रकार के सिद्धान्त नही होते । मान लीजिये, अेक जगह नहर आई और सिचाई के लिये टेक्स लगाया गया । अगर लोग यह टेक्स न देना चाहेगे तो यह कोई व्यापक सिद्धान्त नही हो सकता कि कभी सिंचाई की लगान देना ही नही चाहिये । अगर लगान अधिक हुअी हो तो भुसे कम करने के लिये वैधानिक आन्दोलन किया जा सकता है । लेकिन भिस समस्या को लेकर सत्याग्रह चल नही सकता ।

प्रश्न : जहा बेदखली या भुसी प्रकार का कोई अन्याय चलता हो वहा कार्यकर्ता को व्यापक काम छोडकर भुसमें फँसना चाहिये या नही ?

विनोबा : मैंने तो अुत्तर प्रदेश तथा विहार में ही कह दिया था कि बेदखली के सामने किसान मर भी मिटे, पर अुसे जमीन पर अपना कब्जा छोडना नहीं चाहिये । अगर कार्यकर्ता यह महसूस करता हो कि लोग वैसे मरने के लिये तैयार है, विचार समझते है तथा वातावरण पर पूरा काबू है, हिंसा फूट निकलने की संभावना नही है, तो उस हालत में वह बेदखलियों के खिलाफ आन्दोलन चला सकता है । लेकिन आज परिस्थिति पर वैसी काबू नही है, ऐसा दीखता है । आज पूजीवादी प्रेस तथा रूस में साम्यवादी प्रेस के हाथ में इतनी ताकत है कि वह किसी भी चीज का गलत चित्रण कर सकते हैं । किसीने कुछ किया और अखबारवालोंने कम्यूनिस्ट करार कर दिया तो इतने से उसके लिए सारी सहानुभूति मिट जायगी । लोगों के पास अपने विचार पहुचाने का साधन आज हमारे पास क्या है ? देश के सामने मैंने पदयात्रा तथा विचार प्रचार का कार्यक्रम रखा । अगर उसे ठीक तरह से उठा लिया होता और संगठित काम हुआ होता तो लोगों के साथ सम्पर्क साधने का एक साधन हमारे हाथ में होता; लेकिन वैसा हुआ नही । स्वराज्य की लडाई के समय कई अखबारों ने सरकार से मार खायी थी इसलिये वे आन्दोलन का समर्थन करते थे । मगर आज वैसा नही है ।

सवाल : याने बेदखली जैसे अखिल भारतीय समस्या को लेकर सत्याग्रह शुरू करने में कोई सार्थकता नही है, यह मैंने समझा । मगर किसी कार्यकर्ता के पडोस में इस प्रकार की घटना हो रही हो तो उसे उठा लेना क्या उसका कर्तव्य नही होगा ?

विनोबा : अगर ऐसी समस्या को लेकर सारे देश में आन्दोलन चल रहा है, कार्यकर्ता गांवों में घूम रहे हैं, विचार समझा रहे हैं, और इस प्रकार की स्थिति में किसी एक क्षेत्र में उस समस्या को लेकर प्रत्यक्ष सत्याग्रह चल रहा हो, तो वह सार्थक होगा । ओडीसा में पहुंचते ही मैंने क्यों तीन हजार सेवकों की मांग की थी । सेवकगण बराबर घूमते रहेंगे, जनसंपर्क रखेंगे और इस तरह से लोगों पर एक प्रकार की जाग्रता रहेगी । देश में किसी समस्या को लेकर एक सामान्य वातावरण तैयार होगा तो उसके कारण ऐसी घटनाएं कम होंगी, और होंगी भी तो उनके प्रतिकार के लिये जो कुछ कदम उठाया जायेगा उसकी ठीक ठीक जानकारी लोगों को होगी, कोअी गलत फहमी फैलेगी नही । नही तो क्या होगा ? सत्याग्रह चलाने वाला कोई असामान्य मनुष्य तो होगा नहीं । उसके खिलाफ प्रचार होगा और उसकी शक्ति क्षीण होगी ।

सवाल : इसका मतलब हुआ कि हमें आन्दोलन के व्यापक संगठन को छोड कर इस प्रकार के किसी प्रत्यक्ष सत्याग्रह में फंसना नही चाहिये । आम तौर पर ऐसे सवालों को बातचीत तथा वैधानिक उपायों से निपटाने की कोशिश करनी चाहिये ।

वीनोबा : जी हां । काम तीन तरह से बन सकता है । एक, आध्यात्मिक शक्ति से, दूसरा व्यापक लोग संपर्क से तथा तीसरा वैधानिक उपायों से । अब मैं आध्यात्मिक शक्ति के लिये ब्रम्ह विद्या की बात कर रहा हूं । यह ठीक है कि ब्रह्मविद्या की शक्ति सब को हासिल नही होगी । मगर दो चार लोगों को भी आध्यात्मिक शक्ति हासिल होगी तो अुससे काम बनेगा । लेकिन मैं अुतना ही नही कर रहा हूं । मैं व्यापक लोक संपर्क की बात भी कर रहा

हूं । अिसलिये हिन्दुस्तान भर से मैंने १५ हजार शान्ति सैनिकों की मांग की है । तीसरा है वैधानिक रास्ता ।

लेकिन आज हमारा विचार बिखर गया है । तरह तरह के कार्यक्रम सोचे जा रहे हैं । *अेक अेक को अेक अेक काम की जिम्मेवारी* सौंपी गयी है । अब जो शान्ति सेना मडल बना अुसमें कअी लोग हैं, नही तो यह काम अेक को सौंपा गया था । सब मिलकर अेक काम में ताकत लगायें, अुसे पूरा करें, अिसके बदले अलग कामो में शक्ति बट रही है । मैंने क्यो कहा कि हर कार्यकर्ता १०० सर्वोदय पात्र रख कर अपना अेक कान्स्टीटयूयनसी बनायें । अिसलिये कि हर कार्यकर्ता का लोक सपर्क रहना चाहिये । राजाजीने स्वतंत्र पार्टि कायम कर के पहली बात कौनसी की ? कि हिन्दुस्तान भरसे दस लाख सदस्य भर्ती किए जाय । क्या यह पैसे की जरूरत पूरी करने के लिये था ? पैसा तो उनको काफी मिल सकता है । लोक सम्मति प्राप्त करने के लिये इसकी आवश्यकता हुई । वे सत्ता के जरिये सेवा करना चाहते हैं, इसलिये उनको थोडीसी लोक सम्मति चाहिए । मगर हम तो जनशक्ति से काम करना चाहते हैं, इसिलिए हमें *जरा अधिक गहरी सम्मति* चाहिए ।

१-१०.५९ : मैंने सवाल रखा, गाधीजी के जमाने में सत्याग्रह नेगेटीव था । इसका कारण मैं यह समझता हूं कि उस जमाने में लोग भयभीत थे । भय मिटाने के लिए कोशिश करने पर लोगो के दबे हुए द्वेष ऊपर आनेकी *सभावना थी । यह खतरा उठाना पडा था ।* दीनबन्धु अेंडरूज का अेक आक्षेप का जबाब देते हुये बापू ने लिखा था कि अगर हम विलायती कपडे जलाने का मौका नही देंगे तो लोग विलायती मनुष्य को जलाने लग जायंगे । गांधीजी के दिल में अग्रेजों के लिए प्रेम था, लेकिन हम सबके दिल में तो उनके लिये प्रेम या आदर नही था । इसलिए उनके पाजिटीव सत्याग्रह का परिणाम भी नेगेटीव आया । या इसके अलावा उनके सत्याग्रह के नेगेटीव स्वरूप का कोई दूसरा कारण भी था ?

विनोबा : इसमें पाच बातें हैं । तुमने उनमें से दो बातो को इकट्ठा कर दिया । पहली बात-हमारी जनता डरपोक थी, उनको निर्भय *बनाने के साथ साथ पूर्ण शारीरिक अहिंसा* तक पहुचाना सभव नही था, इसलिये नेगेटीव सत्याग्रह का एक बीच का मार्ग मिल गया तो अच्छा ही हुआ ।

दूसरी बात : उस समय इस देश में टेररिस्ट भी थे, जो सच्चे देश भक्त थे । उनको भी सही रास्ते पर लाने की आवश्यकता थी । तुमने जो मनुष्य जलाने की बात कही वही काम ये टेररिस्ट लोग करने वाले थे । इन दोनो बातो को तुमने मिला दिया है ।

तीसरी बात : बापूने सत्याग्रह के साथ *रचनात्मक कार्यक्रम* को *एक पथ्य के तौर पर* रखा था, वे कहते थे कि अगर रचनात्मक कार्य पूरा-पूरा किया जाय तो बहुत अधिक सत्याग्रह की आवश्यकता नही रहेगी । इसके कारण एक बचाव होता था ।

चौथी बात : स्वराज्य की आवश्यकता सर्व-*मान्य थी, और उसके लिए हिंसक युद्ध का* तरीका भी न्याय्य माना जाता था । इसलिये सशस्त्र युद्ध के बदले नेगेटीव सत्याग्रह अवश्य ही अेक बेहतर मार्ग था ।

पाचवी बात : अंग्रेज राज्यकर्ताओं के ऊपर से बापू का विश्वास अुठ गया था। मानव की हैसियत से अंग्रेज जाति पर अुनका विश्वास था, मात्र शासकों पर नही था।

एक छठी बात भी हमें ध्यान में रखना चाहिए कि जैसे बापू के सत्याग्रह के कारण स्वराज्य मिला वैसे उसके साथ जो तोडफोड का कार्यक्रम चला उसके परिणाम अब भी भुगत रहे हैं। स्वराज्य प्राप्ति तो कुछ अंश में अंग्रेजो की भलमनसी और कुछ अंश में विश्व-परिस्थिति के कारण भी हुअी। फिर भी हमारे आन्दोलन को उसका एक तीसरा कारण मानने के लिए मैं तैयार हू।

मैं : आप कहते हैं कि सारे हिन्दुस्तान में भूमि क्रान्ति एक ही दिन में होगी। इसका मतलब मैं यही समझता हू कि ऐसी परिस्थिति पैदा होगी और कुछ ऐसा कदम उठाया जायगा जिससे जमीन मालिकों को खुद ही लगेगा कि हमने गलती की है और उसको तुरन्त सुधारना चाहिये। आत्म परीक्षण तथा आत्म शुद्धि की प्रेरणा उनको मिलेगी। इस प्रकार की भावना सारे देश में एक ही समय जाग उठेगी। पर सत्याग्रह का नेगेटीव विचार जैसे आज कुछ लोग सोच रहे हैं, यह है कि मालिकों पर संख्याबल या परिस्थिति से इस प्रकार का दबाव लाया जाय जिससे अपनी अनिच्छा के बावजूद भी वे मालकियत छोडने के लीए मजबूर होंगे।

पाजीटीव सत्याग्रह के बारे में कुछ विचार सूझ रहे हैं। एक यह कि सौम्य से सौम्यतर एक नित्य चलने वाली प्रक्रिया है। सौम्यतर की जानकारी हमें नही है, इसलिये हम सौम्य के स्तर पर हैं। जिस समय इस सौम्य से हमारा काम न बनता हुआ दिखाई देगा, उस समय हम आत्म निरीक्षण तथा परीक्षण से सौम्यतर की खोज करेंगे और फिर आगे वही हमारा साधन होगा। विचार, वाणी तथा कृति को इस तरह उत्तरोत्तर क्षोभ रहित या परिशुद्ध करने की यह एक नित्य साधना होगी। पर समय-समय पर लोगों के विचार को चालना देने के लिये कुछ नैमित्तिक कदम लेना पडता है। कदम क्या होगा यह हमेशा पहले से ही मालूम नही होता, पर अमुक परिस्थिति में वह सूझता है और उस समय उसका प्रयोग योग्य लगता है। आपने कश्मीर में एक शाम का खाना छोड दिया था। यह एक अिस प्रकार का नैमित्तिक या तात्कालिक कदम था। पर इस तरह से एक शाम खाना छोडना कोई नित्य करणीय कार्य तो हो नही सकता। तो सौम्य सौम्यतर की परपरा में यह कदम कैसे बैठेगा?

विनोबा : सौम्यतर कभी नित्य नही हो सकता, कारण मनुष्य कभी भी सौम्यतम तक पहुच नही सकता। वह हमेशा सौम्य में ही रहेगा। याने आज वह जिसे सौम्यतर मानता है उससे भी अधिक सौम्यतर तो है ही। तो मनुष्य को सौम्यतर का विचार एकदम नही सूझता। मैं पहले सिर्फ भूदान की ही बाते करता था, पर आगे चल कर मुझे सूझा कि कुछ लोग देनेवाले और कुछ लेनेवाले, इस प्रकार का धर्म एकागी है। तो मेरे ख्याल में आया कि भूमिहीनों के पास भी कुछ देने लायक है। वे अपना श्रम दे सकते हैं। अस्पताल में पडा हुआ मनुष्य प्रेम दे सकता है। पहले मैं भूदान मागता था तो जमीन मालिक सभा में आते नही थे, डरते थे। कुछ लोग तो सचमुच दूसरे काम की वजह से सभा में आते

नहीं होंगे। मगर उनके बारे में भी यह धारणा बन जाती थी के वे डर के मारे भाग गये। इस तरह उनके साथ अन्याय होता था। मैं तो विनोद में कहता था कि जो डर के मारे भाग गये, उन्होंने हमारी बात मान ली। उनकी जमीन हमारी हो गयी। पर मेरे मन में यह खटकता था कि लोगों को इस प्रकार का भय क्यों हो? जब सबसे मांगने का विचार आया तो धर्म परिपूर्ण हुआ और भय का कारण भी मिट गया। इस प्रकार अनुभव से विचार सूझते हैं।

मैं : आप जो कह रहे हैं मैं वही कहना चाहता हूं कि मनुष्य एक प्रकार का सौम्य सत्याग्रह करता हो तो सौम्यतर का विचार न सूझने तक उसीको करता रहता है। पर उससे सौम्यतर का दर्शन मिलने पर वही—सौम्यतर ही—आचरणीय बन जाता है। उसके पहले का सौम्य उपयोगी बन जाता है। फिर तद्योधिक सौम्यतर का दर्शन न मिलने तक वह सौम्यतर ही चलता है। पर उपवास, एक शाम खाना छोडना, दोनों शाम पदयात्रा करना इत्यादि जैसे पदक्षेप तो हमेशा करते रहें जैसे कदम नही है। वैसा कदम तो अमुक परीस्थिति में ही सीमित समय के लिए लिया जाता है। तो इस प्रकार के नैमित्तिक कदम को सौम्य सौम्यतर की संज्ञा न देकर उनके लिये कोई अलग संज्ञा ढूढनी चाहिए।

विनोबा : जी हां। इस प्रकार के सामयिक कदम उठाने की आवश्यकता होती है। मगर उसका विचार सौम्य-सौम्यतर की चिन्तन-प्रक्रिया में से ही सूझता है। इसको नैमित्तिक-तात्कालिक सत्याग्रह कहा जायगा। पर इसमें लोगों पर असर डालने की दृष्टि से सोचना ठीक नही है। सिद्धान्त की दृष्टि से क्या करणीय है यही सोचना चाहिये। पर हमारा काम यथार्थ होगा तो उसका असर अवश्य ही होगा।

मैं : अगर अपेक्षित असर न हुआ तो यही मानना होगा न कि अपने विचार में कही दोष है, और उसका परीक्षण करना होगा?

विनोबा : मैं हमेशा यह नही मानूगा कि मेरे विचार में ही दोष है। अवश्य ही विचार में दोष हो सकता है और उसका परीक्षण करना चाहिए, पर परीस्थिति भी उसके लिए जिम्मेदार हो सकती है। मेरे ही दोषों के कारण नही हुआ, यह सोचना अहकार ही होगा। इसलिए प्रभाव डालने की दृष्टि से नही, पर सौम्य सौम्यतर की दृष्टि से चिन्तन करने पर इस प्रकार के तात्कालिक-नैमित्तिक उपाय सूझेंगें। प्रभाव की दृष्टि से सोचेंगे तो प्रभाव तो पडेगा ही नही वरना अहंकार ही वढेगा।

क्रमशः

सभ्यता की परख यह नहीं होनी चाहिये कि उसने कितना शक्ति संग्रह किया है, बल्कि यह कि उसने मनुष्य प्रेम को विकसित करने के मार्ग मे कितना कार्य किया है, कौन सी संस्थाएं बनायी हैं, कौनसी व्यवस्था की है और व्यवस्थित उद्योग किये हैं। सबसे पहला और अन्तिम प्रश्न यह है कि वह मनुष्य को केवल एक यंत्र मानती है या जीवित आत्मा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सामुदायिक विकास के लिये एक प्रयत्न

गेरिट हूइसर

[दानिलो दोलची "इटालियन् गांधी" के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय लड़ाई मे भाग लेने से इनकार करने के कारण उन्हें जेल में डाला गया था। युद्ध के बाद वे सिसिलि के एक गरीब गांव में रहने गये और वहां गरीबी के कारणों व परिणामों का अध्ययन किया। "बेकारों" के लिये एक संस्था भी शुरू कर दी। बाद में उन्होंने पार्टिनिको नाम के शहर मे ऐसे कुछ "सत्याग्रहों" का आयोजन किया जिनका स्वरूप बिना वेतन की अपेक्षा किये "बेकार" मजदूरों का सड़क आदि बनाने का काम शुरू करना था। इसके लिये वे गिरफ्तार कर दिये गये और पचास दिन के जेल की सजा दी गयी। उनका यह आन्दोलन विस्तृत होता जा रहा है और आज यूरोप के कई देशों में "दानिलो दोलची समितियां" काम कर रही हैं।

इस लेख मे उनके एक साथी-गेरिट हूइसर-पार्टिनिको मे सामुदायिक विकास काम के सबन्ध मे अपने कुछ अनुभव बताते हैं। हमारे सामने ग्रामपुनर्रचना और सामुदायिक विकास योजनाओं के सिलसिले में जो समस्याएं पेश आती हैं, वे क्या इनसे विभिन्न हैं ? स०]

किसी भी सुधार के काम में परिस्थिति का अध्ययन और उसे सुधारने का प्रयत्न साथ साथ चले, यह अनिवार्य है। अध्ययन करके परिस्थिति को अच्छी तरह से समझे बिना काम सफल होने की आशा नही, लेकिन बिना काम किये सारी परिस्थिति को पूरी तरह समझना भी सभव नही।

पार्टिनिको में छः महीने से जो हम काम कर रहे है, उसके बहुत कुछ बताने लायक परिणाम तो अभी तक नही निकले हैं, फिर भी इस तरह के सुधार के कामो में जो बाते महत्व रखती हैं उनकी कुछ जानकारी हमें मिली है, उसे लिख लेना उपयोगी होगा।

शिक्षा के काम में सातत्य का बहुत महत्व है। मेरे वहां पहुचने के पहले ही छोटे छोटे व्याख्यानो व सिनेमा द्वारा, घर घर जाकर लोगो से बातचीत करके तथा किसानो की चर्चा सभाओ मे लोकजागृति साधने का काम आरंभ कर दिया गया था। मैंने भी इनको आगे चालू रखा और उससे ज्यादा से ज्यादा फायदा हो, यह प्रयत्न किया।

घरो में जाने के लिये मुझे अपनी पत्नी 'एल्सा' को भी साथ लेना पड़ता था, क्या कि इस प्रदेश में किसी पुरुष को अकेले किसी घर में प्रवेश पाना असभव सा था, उसके प्रति द्वार बन्द किया जाता। इस तरह घर घर जाने में हमारा उद्देश्य ऐसे मुहल्लो में रहने वाले लोगों को, जहा सफाई आदि की कोई व्यवस्था नही थी, सगठित करके कुछ सुधार का प्रयत्न करने का था। लेकिन इसमें एक ही जगह हमें सफलता

मिलो, जहां लोगों की मांग के कारण अधिकृतों को बीच की कीचड भरी गली की जगह एक पक्की सडक बनाने की मजूरी देनी पडी। हमेशा मुश्किल ऐसे किसी आदमी को ढूंढ कर निकालने में थी जिसमें आगे आकर काम करने का साहस हो। किसी भी विकास काम के लिये ऐसे व्यक्तियों का नेतृत्व अपरिहार्य है और पार्टिनिको में ये विरले ही मिलते थे। चर्चा सभाओं में कभी-कभी कुछ ऐसे लोग मिल जाते थे। बाद में हमने बाजार में और नाच गाने आदि की जगह पर लोगों से मिलने, बातचीत करने की ओर ज्यादा प्रयत्न किया और यह अधिक सफल सिद्ध हुआ।

किसानों की सभाओं में खेती संबन्धी समस्याओं तथा सहकारी संस्थाओ आदि के बारे में कुछ अच्छी चर्चाएं होती थी, फिर भी कोई ठोस काम नही निकलता था। लोगो में नियमितता का अभाव ही था। व्याख्यानो में "ऐक्य से बल मिलता है" इत्यादि उद्गार सुनाई देते थे, लेकिन ये सिद्धान्त व्यवहार में उतरते नही दिखाई देते थे।

जब हमने एक ठोस योजना को लेकर चर्चा शुरू कर दी तो यह परिस्थिति थोडी सी– लेकिन थोडी सी ही–सुधर गयी। यह योजना पास की "जाटो" नदी पर बांध बांधने की थी; दानिलो दोलची खुद कई सालों से इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते आये हैं। इस सिंचाई योजना से आसपास के क्षेत्र की खेती को फायदा मिलता, अलावा इसके तीन हजार लोगों को काम भी मिल जाता, जिनकी बेकारी या अर्ध बेकारी सिसिलि के इस हिस्से की सब से बडी समस्या है। लेकिन जहां पानी का "रिसरवोइर" बनाना है, वहां की जमीन कई किसानों के बीच छोटी छोटी टुकडियो में बंटी थी और इनकी क्षतिपूर्ति का प्रश्न बडा ही जटिल था। यहां लोगों को ऐसा कई दफे अनुभव आया था कि क्षतिपूर्ति मिलने में कई साल लग जाते और तभी भी पूरी नही मिलती, इसलिये जिन लोगों की जमीन पर तालाब बांधने की बात थी वे इसके लिए कतई तैयार नही होते थे। सिंचाई से सबको फायदा होगा, उनको भी फायदा होगा, इतनी एकड भूमि में इतना उत्पादन बढेगा, इत्यादि उनको बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया। व्यक्तिगत रूप से कुछ लोग राजी भी होते थे, लेकिन सभा में आते ही उनकी विवेकबुद्धि भावावेग में बह जाती थी। बांध का काम शुरू करने के लिए लोगों की तरफ से जो अर्जी भेजनी थी, उसमें उचित क्षतिपूर्ति की भी मांग रखी गयी, फिर भी इन लोगों का अविश्वास नहीं हट पाया।

सामूहिक विकास काम में यही अविश्वास हमारे सामने सब से बडी बाधा है। लोगों को एक दूसरे में या अपने ही नेताओं में विश्वास नही है। स्थानीय अधिकारियों में तो है ही नही।

फिर भी बहुत प्रयत्न के बाद हमने अर्जी तो भेज दी। अगर सिसिलि की सरकार से इसका प्रोत्साहनजनक जवाब मिलता और बांध का काम शुरू हो जाता तो लोगों का विश्वास प्राप्त करने की थोडी आशा है। उन्हें यह मालूम हो जायेगा कि उनके संगठित प्रयत्न से कुछ काम बन सकता है। लेकिन पिछले अनुभवों से लोगों में इतनी निराशा हो गयी है कि उन्हें किसी तरह का आश्वासन देना भी मुश्किल है। अपनी ही शक्तियों और संभा-

गेरिट हूइसर

सामुदायिक विकास के लिये एक प्रयत्न

[दानिलो दोलची "इटालियन् गांधी" के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के समय लडाई मे भाग लेने से इनकार करने के कारण उन्हें जेल मे डाला गया था। युद्ध के बाद वे सिसिलि के एक गरीब गांव में रहने गये और वहां गरीबी के कारणों व परिणामों का अध्ययन किया। "बेकारों" के लिये एक सस्था भी शुरू कर दी। बाद में उन्होंने पार्टिनिको नाम के शहर मे ऐसे कुछ "सत्याग्रहों" का आयोजन किया जिनका स्वरूप बिना वेतन की अपेक्षा किये "बेकार" मजदूरों का सडक आदि बनाने का काम शुरु करना था। इसके लिये वे गिरफतार कर दिये गये और पचास दिन के जेल की सजा दी गयी। उनका यह आदोलन विस्तृत होता जा रहा है और आज यूरोप के कई देशों में "दानिलो दोलची समितियां" काम कर रही हैं।

इस लेख मे उनके एक साथी गेरिट हूइसर-पार्टिनिको मे सामुदायिक विकास काम के सबन्ध मे अपने कुछ अनुभव बताते हैं। हमारे सामने ग्रामपुनर्रचना और सामुदायिक विकास योजनाओं के सिलसिले में जो समस्याए पेश आती हैं, वे क्या इनसे विभिन्न हैं ? स०]

किसी भी सुधार के काम में परिस्थिति का अध्ययन और उसे सुधारने का प्रयत्न साथ साथ चले, यह अनिवार्य है। अध्ययन करके परिस्थिति को अच्छी तरह से समझे बिना काम सफल होने की आशा नही, लेकिन बिना काम किये सारी परिस्थिति को पूरी तरह समझना भी सभव नही।

पार्टिनिको में छ. महीने से जो हम काम कर रहे हैं, उसके बहुत कुछ बताने लायक परिणाम तो अभी तक नही निकले हैं, फिर भी इस तरह के सुधार के कामो में जो बाते महत्व रखती हैं उनकी कुछ जानकारी हमें मिली है, उसे लिख लेना उपयोगी होगा।

शिक्षा के काम में सातत्य का बहुत महत्व है। मेरे वहा पहुचने के पहले ही छोटे छोटे व्याख्यानो व सिनेमा द्वारा, घर घर जाकर लोगो से बातचीत करके तथा किसानो की चर्चा सभाओ मे लोकजागृति साधने का काम आरभ कर दिया गया था। मैंने भी इनको आगे चालू रखा और उससे ज्यादा से ज्यादा फायदा हो, यह प्रयत्न किया।

घरो में जाने के लिये मुझे अपनी पत्नी 'एल्सा' को भी साथ लेना पडता था, क्यो कि इस प्रदेश में किसी पुरुष को अकेले किसी घर में प्रवेश पाना असभव सा था, उसके प्रति द्वार बन्द किया जाता। इस तरह घर घर जाने में हमारा उद्देश्य ऐसे मुहल्लो में रहने वाले लोगो को, जहां सफाई आदि की कोई व्यवस्था नही थी, सगठित करके कुछ सुधार का प्रयत्न करने का था। लेकिन इसमें एक ही जगह हमें सफलता

मिलो, जहा लोगो की माग के कारण अधिकृतो को बीच की कीचड भरी गली की जगह एक पक्की सडक बनाने की मजूरी देनी पडी । हमेशा मुश्किल ऐन किसी आदमी को ढूढ कर निकालने में थी जिसमें आगे आकर काम करने का साहस हो । किसी भी विकास काम के लिये ऐसे व्यक्तियो का नेतृत्व अपरिहार्य है और पार्टिनिको में ये विरले ही मिलते थे । चर्चा सभाओ में कभी-कभी कुछ ऐसे लोग मिल जाते थे । बाद में हमने बाजार में और नाच गाने आदि की जगह पर लोगो से मिलने, बातचीत करने की ओर ज्यादा प्रयत्न किया और यह अधिक सफल सिद्ध हुआ ।

किसानो की सभाओं में खेती सबन्धी समस्याओ तथा सहकारी सस्थाओ आदि के बारे में कुछ अच्छी चर्चाए होती थी, फिर भी कोई ठोस काम नही निकलता था । लोगो में नियमितता का अभाव ही था । व्याख्यानो में "ऐक्य से बल मिलता है" इत्यादि उद्‌गार सुनाई देते थे, लेकिन ये सिद्धान्त व्यवहार में उतरते नही दिखाई देते थे ।

जब हमने एक ठोस योजना को लेकर चर्चा शुरू कर दी तो यह परिस्थिति थोडी सी–लेकिन थोडी सी ही–सुधर गयी । यह योजना पास की "जाटो" नदी पर बाँध बांधन की थी, दानिलो दालची खुद कई सालो से इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते आये हैं । इस सिंचाई योजना से आसपास के क्षेत्र की खेतो को फायदा मिलता, अलावा इसके तीन हजार लोगो को काम भी मिल जाता, जिनकी बेकारी या अर्ध बेकारी सिसिलि के इस हिस्से का सब से बडी समस्या है । लेकिन जहा पानी का 'रिसरवाइर' बनना है, वहाँ की जमीन कई किसानो के बीच छोटी छोटी टुकडियो में बँटी थी और इनकी क्षतिपूर्ति का प्रश्न बडा ही जटिल था । यहा लोगो को ऐसा कई दफे अनुभव आया था कि क्षतिपूर्ति मिलने में कई साल लग जाते और तभी भी पूरी नही मिलती, इसलिये जिन लोगो की जमीन पर तालाब बाधने की बात थी वे इसके लिए कतई तैयार नही होते थे । सिंचाई से सबको फायदा होगा, उनको भी फायदा होगा, इतनी एकड भूमि में इतना उत्पादन बढेगा, इत्यादि उनको बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया । व्यक्तिगत रूप से कुछ लोग राजी भी होते थे, लेकिन सभा में आते ही उनकी विवेकबुद्धि भावावेग में बह जाती थी । बाँध का काम शुरू करने के लिए लोगो की तरफ से जो अर्जी भेजनी थी, उसमें उचित क्षतिपूर्ति की भी माँग रखी गयी, फिर भी इन लोगो का अविश्वास नही हट पाया ।

सामूहिक विकास काम में यही अविश्वास हमारे सामने सब से बडी बाधा है । लोगो को एक दूसरे में या अपने ही नेताओ में विश्वास नही है । स्थानीय अधिकारियो में तो है ही नही ।

फिर भी बहुत प्रयत्न के बाद हमने अर्जी तो भेज दी । अगर सिसिलि की सरकार से इसका प्रोत्साहजनक जवाब मिलता और बाँध का काम शुरू हो जाता तो लोगो का विश्वास प्राप्त करने की थोडी आशा है । उन्हे यह मालूम हो जायेगा कि उनके सगठित प्रयत्न से कुछ काम बन सकता है । लेकिन पिछले अनुभवो से लोगो में इतनी निराशा हो गयी है कि उन्हे किसी तरह का आश्वासन देना भी मुश्किल है । अपनी ही शक्तियो और समा-

बातों के बारे में उन्हें विश्वास नहीं है जैसे कि हर चर्चा सभा में प्रगट होता है। कितने दफे कोई वक्ता इस निराशाजन्य वाक्य के साथ बैठ जाता है "आखिर हम सभी तो दोषी है।"

किसी भी परिवर्तन के प्रति उनके मन में एक प्रतिकूल भावना बैठ जाती है। इसका कैसे सामना करें?

एक प्रसिद्ध वाक्य है–"आखिर में यह समझ गया कि मैं इतनी शंकाओं और गल्तियों से घिरा हूं कि आगे कुछ सीखने के प्रयत्न से मुझे अपनी अज्ञता ही ज्यादा ज्यादा स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी।" संयुक्तराष्ट्र शिक्षा विज्ञान सांस्कृतिक संगठन (युनेस्को) के एक प्रकाशन में कहा गया है–"बुनियादी शिक्षा में इस विचार को स्थान नहीं है कि निरक्षर या कं पढ़ेलिखे लोगों को बच्चों की तरह समझकर उनके साथ ऐसा वर्त्ताव करना चाहिए या बाहर से आये कुछ भलेमानस व्यक्तियों की देखरेख में उन्हें जबरदस्ती "शिक्षित' करना है। सब प्रकार के समाज शिक्षण का उद्देश्य लोगों का अपना ही भविष्य निर्माण करने में सक्रिय सहयोग प्राप्त करना है।" ऊपर बताये गये अनुभवों से ऐसा महसूस होता है कि जब तक सिसिलि का शासकीय तंत्र अपनी पद्धतियों को बदलता नहीं–जिससे कि लोगों का विश्वास नष्ट करने के बदले वह प्राप्त हो सके–तब तक सामुदायिक विकास योजना का काम सचमुच कार्यकारी नहीं हो सकता है। लोगों को अपनी ही अकर्मण्यता और निरुत्साह का भान है। उन्हें यह भी मालूम है कि यह परिस्थिति उनके पूर्व अनुभवों से ही निर्माण हुई है–जैसे अधिकारियों का भ्रष्टाचार, बेकारी, गरीबी इत्यादि। इससे ऊपर उठने का साहस और उत्साह कैसे पाया जा सकता है?

हमारा अनुभव है कि कार्यकर्त्ता को बहुत ही सब्र रखने की जरूरत है। उसे प्रयत्न और प्रयोग करते रहना है, साथ साथ अपनी मर्यादाओं को भी समझना है, अपनी ही परीक्षा और शिक्षा करते रहना है। कभी कभी लोगों की पूरी सम्मति और सहयोग प्राप्त किये बगैर कोई कार्यक्रम शुरू करने पर जोर देना भी खतरनाक हो जाता। यह समझना गलत है कि हम उनसे कुछ ज्यादा जानते हैं, या उन्हें सुधारने के लिये वहां पहुंचे हैं। मैंने पाया कि नम्रता लोगों की मैत्री प्राप्त करने की एक बड़ी कुंजी है। उनकी बातें सुनने की तैयारी होनी चाहिए और अकसर ऐसी खुली बातचीत से ही कुछ रास्ता निकल जाता है, काम बनता है।

पार्टिनिको में किसानों की सहकारि संस्था की स्थापना इस प्रकार का एक परिणाम था। जैसे पहले कहा जा चुका है, पार्टिनिको की जनता में अपनी ही कमियों और कसूरों का इतना दृढ़ बोध है कि सहकार का काम उनसे होगा, यह वे कतई नहीं मान सकते थे। जभी बातचीत शुरू की तो पिछले कई सारे विफल प्रयत्नों के इतिहास ही सामने आते थे; अब उसका कोई अपवाद हो सकता है, यह संभव नहीं दीखता था। भाग्य वश, मुझे बाहर की एक एजन्सी से परिचय हुआ जो माल खरीदने के लिए तैयार थी। जब देखा कि प्रचलित रिश्वतखोरी की व्यवस्था छोड़ कर दूसरे मार्गों से भी अपना माल बेचा जा सकता है और उससे थोड़ा पैसा बचता है तो ज्यादा ज्यादा किसान इसमें आने के लिए तैयार हुए और आखिर सहकारी संस्था बन ही गयी।

(शेषांश पृष्ठ १०५ पर)

गांधी आश्रम सेवापुरी

लक्ष्मीन्द्र प्रकाश

गांधी आश्रम, सेवापुरी की स्थापना स्वातन्त्र्य प्राप्ति से पूर्व १९४६ में ही हुई। उस समय इस स्थान पर या तो बीहड़ जंगल था अथवा ऊसर भूमि। गांव वालों की सहायता से हमने एक झोपड़ी बनायी और जंगल काटने तथा कुएं खोदने का काम हाथ में लिया। ऊसर भूमि को उर्वरा बनाने का प्रयोग भी प्रारम्भ किया। हमारा परिश्रम सफल हुआ। आज आप जंगल के स्थान पर निवासों व प्रवृत्तियों की कड़ी तथा ऊसर को उर्वरा खेत के रूप में पायेंगे।

इस प्रकार अत्यावश्यक तैयारी करके हम ग्राम स्वराज्य की कल्पना को साकार करने के प्रयत्न में लग गये। समग्र ग्राम सेवा की दृष्टि हमने सामने रखी थी। कार्य की त्रिविध व्यूह रचना की। आश्रम में हमने शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया और ग्रामोद्योगों का संगठन कर उनमें शोध कार्य प्रारम्भ किया, गांव सम्पर्क के काम को सर्वेक्षण तथा ग्राम निर्माण की दिशा में विकसित किया।

भूदान यज्ञ आन्दोलन में हम प्रारंभ से ही सक्रिय रूप से लग गये। समय-समय पर पद-यात्रा टोलियों में बँट कर हमने विचार प्रचार, भूमिदान, सम्पत्तिदान, साधनदान, शांति सेना और सर्वोदय पात्र रखवाने का कार्य किया। चतुर्थ सर्वोदय सम्मेलन के आयोजन का गौरव भी हमें मिला।

हमारी विभिन्न प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(अ) नई तालीम

१. बाल मंदिर : २ से ६ वर्ष की उम्र के ८८ बालक व बालिकायें अब बालमंदिर में हैं। ४ शिक्षक और शिक्षिकायें इसमें कार्य कर रहे हैं। बालमंदिर यहां लोकप्रिय हुआ है और इसी के कारण अन्य वर्गों के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ।

२. बुनियादी शाला : ६ से १४ वर्ष की उम्र के बच्चे बुनियादी शाला के प्रथम से ८ वें वर्ग तक शिक्षा पाते हैं। छात्रों की संख्या १५५ है और ७ शिक्षक कार्य कर रहे हैं। बुनियादी शाला में स्थानीय छात्रों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश व बिहार के छात्र भी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इनका एक छात्रावास भी है जहां प्रति माह लगभग ३००० रुपये मासिक भोजन व आवास खर्च आता है। कृषि मूलोद्योग के रूप में और कताई उद्योग वस्त्र स्वावलम्बन के लिए लिया गया है।

३. उत्तर बुनियादी विद्यालय : विद्यालय का शुभारम्भ १९५७ की जुलाई से हुआ। सेवापुरी में बुनियादी शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थियों व पालकों के सामने उस शिक्षा के आगे चालू रखने की समस्या थी; एकाध अन्य बुनियादी विद्यालय—जैसे रोहरी घाट—

के सामने भी यही प्रश्न था। इसका हल करने की दृष्टि से सोचा गया कि सेवापुरी में उत्तर बुनियादी शिक्षा का काम चालू किया जाय। वातावरण एवं ग्रामोद्योगों की दृष्टि से सेवापुरी आश्रम में सन् '४६ से चलने वाली विभिन्न प्रवृत्तियां अनुकूल सिद्ध हुईं। आश्रम के लिए प्राप्त भूमि में से १२ एकड़ भूमि का एक प्लाट, जो आश्रम के पश्चिम तरफ एक मील की दूरी पर है, विद्यालय के लिए उपलब्ध हुआ।

इस वर्ष प्रथम द्वितीय तृतीय व चतुर्थ वर्गों में मिलकर छात्रों की सख्या ६१ है, जिसमें से ३० आवासिक व शेष स्थानीय छात्र हैं। स्थानिक छात्र सुबह ६ बजे से शाम के ६ बजे तक विद्यालय में रहकर सभी प्रवृत्तियों व कार्यक्रमों में पूर्ण रूप से भाग लेते हैं।

उद्योगों का चुनाव करते समय विद्यालय के सामने यह दृष्टि रही कि विद्यालय में आने वाले बच्चों के पारिवारिक धन्धों के अनुरूप ही उद्योग सीखने की सुविधा हम जुटायें तथा सेवापुरी आश्रम में जो उद्योग चलते हैं, उनका पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके। इस दृष्टि से अभी तक कृषि और गोपालन का मुख्य उद्योग तथा वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग तथा सफाई सहायक उद्योग के रूप में चुने गये। हमारे सामने सबसे बडी समस्या कृषि के विकास की रही; क्योंकि जो भूमि हमें मिली है, वह अत्यन्त घटिया किस्म की ऊसर भूमि है। इसे तोड कर खेतों योग्य बनाना–यही अभी तक हमारा मुख्य काम रहा है, उत्पादन गौण हुआ।

इसके अतिरिक्त आश्रम में चलने वाली गोशाला उत्तर बुनियादी विद्यालय को मिल गयी, जिसमें ६ गायें हैं। इसमें लगभग सभी गायें हरियाना नस्ल की हैं। इनको स्थानिक परिस्थितियों में पालना व रखना एक कठिन कार्य है। भूमि खराब होने के कारण चारा भी पूरा-पूरा अभी तक अपना नहीं कर पा रहे हैं। तो भी हम इस कार्य का धीरे-धीरे विकास कर रहे हैं। और भविष्य में चारे की अपनी व्यवस्था होने पर आय के बढने की आशा है।

बागवानी की दृष्टि से लगभग १ एकड जमीन में बेर व अमरूद के पेड दो वर्ष पूर्व लगाये गये जो भूमि गत बाधाओं के बावजूद विकास पा रहे हैं। भूमि सुधार व कृषि उत्पादन की दृष्टि से वैज्ञानिक ढग से अधिक-से-अधिक मिश्र खाद तैयार करने का आयोजन ऊसर खेतों में ही हम कर रहे हैं। जैसे गत वर्ष लगभग ३००० मन मिश्र खाद धान की पुआल, जल कुम्भी आदि को लेकर हमने तैयार की। विद्यालय में गोपुरी ढग के पाखाने और बाल्टी वाले मूत्रालयों के उपयोग द्वारा मलमूत्र की पूरी तरह खाद बनाने का प्रयत्न बराबर करते रहते हैं।

प्रथम वर्ग में अभी तक छात्रों को अंबर चरखा सिखाकर धोती गमछे से लेकर कम्बल, कालीन, डामी, जैकेट तक का अभ्यास करा दिया गया। विद्यालय का पूरा समाज वस्त्र के मामले में स्वाश्रयी है।

सेवापुरी आश्रम के सम्बन्धित विभाग में शवच्छेदन व चर्मशोधन का कार्य विद्यार्थी दूसरे व तीसरे वर्ष में सीखते रहे। खादीग्रामोद्योग कमीशन की ओर से निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर हमने अपना पाठ्यक्रम बनाया, जिसको अनुभवों के आधार पर पुनः निर्धारित करने की हमारी योजना है।

विद्यालय के समुदाय में सफाई व आहार की व्यवस्था और कार्यक्रम उद्योग व शास्त्र की दृष्टि से चलाते हैं।

अभी तक हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करने का हमने प्रयत्न किया। समवाय शिक्षण द्वारा सामाजिक विषय एव सामान्य विज्ञान लगभग ५० प्रतिशत तथा गणित व भाषा ७५ से ८० प्रतिशत करने में सफल हुए। शेष अभ्यास–क्रम विषयो को क्रम बद्ध रूप से पढाकर पूरा किया गया।

विद्यालय की अपनी छोटीसी वैज्ञानिक प्रयोग शाला भी है। इसके और अधिक विस्तार की हमारी योजना है। विद्यालय के पुस्तकालय में चुनी हुई लगभग १२०० पुस्तके है। नित्य के तीन समाचार पत्रो के अलावा अनेक साप्ताहिक व मासिक पत्रिकायें भी विद्यालय में आती है। अभी पुस्तकालय को विस्तार तथा उपयोगिता की दृष्टि से अधिक व्यवस्थित करने की ओर हम सचेष्ट है। अभी तक चाहते हुए भी अपनी उद्योग शाला चालू करने में हम समर्थ नही हो सके।

विद्यालय में सामुदायिक जीवन का सचालन जनतात्रिक आधार पर ही करने का प्रयत्न किया जाता है। समय समय पर उठने वाली कठिनाइयो का हल शिक्षक गण छात्रो के साथ मिलकर ही करने में समर्थ होते है। समुदाय के लगभग सभी काम-जैसे भोजनालय, रोगी-परिचर्या, अतिथि सत्कार, आश्रम में होने वाले सम्मेलनो की व्यवस्था एव सचालन दूसरे कार्यकर्ताओ के साथ मिलकर शिक्षकगण व छात्र करते है। समय समय पर सास्कृतिक व मनोरजनात्मक कार्यों का आयोजन भी किया जाता है। इसी के द्वारा आसपास के गावो से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न विद्यालय की ओर से होता रहता है।

छात्रो की प्रगति की समीक्षा मासिक, त्रैमासिक तथा वार्षिक होती है। गुण विकास, बौद्धिक विकास एव औद्योगिक क्षमता और कार्य तीनो पर समान रूप से अक विभाजन करके छात्रो की प्रगति की जाच की जाती है। हमें विश्वास है कि हमारे छात्रो ने उद्योगो की दक्षता इस सीमा तक अवश्य प्राप्त की है कि अगर वे चाहे तो उन उद्योगो के सहारे अपनी जिविका उपार्जन कर सकते है।

४. नई तालीम अध्यापन मदिर १९५२ से ५६ तक शिक्षको का प्रशिक्षण चला। कुल १०४ शिक्षार्थी प्रशिक्षित हुए। परिस्थिति वश फिलहाल उसे स्थगित रखना पडा है। आगे उसे हम चलाना चाहते है।

(आ) खादी ग्रामोद्योग विद्यालय

१. कपास खेती : वृक्ष, झाडो और खेत कपास के विभिन्न किस्मो को लेकर अनुसधान कार्य यहा हो रहा है। यहा की जलवायु और मिट्टी के अनुकूल उपयुक्त कपास उगाने का हम मुख्य रूप से प्रयत्न करते है। अब तक १४ विभिन्न किस्मों की कपास हमने उगाई है। आगे भी हम प्रयत्नशील है। इसी के आधार पर कोरा ग्रामोद्योग केन्द्र में कपास का प्रयोग कार्य प्रारम्भ हुआ है।

२. खादी ग्रामोद्योग विद्यालय। १८ माह के सत्र में इस वर्ष ३६ प्रशिक्षार्थी है। कपास उगाने से बुनाई तक की सम्पूर्ण प्रक्रियाओ का व्यावहारिक व सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है। प्रारभिक चर्खे के साथ अम्बर चर्खे का शिक्षण तथा बुनाई की सभी प्रक्रियाओ का ज्ञान दिया जाता है। सर्वोदय विचार, अत्योदय, खादी अर्थ शास्त्र, भूदान,

के सामने भी यही प्रश्न था। इसका हल करने की दृष्टि से सोचा गया कि सेवापुरी में उत्तर बुनियादी शिक्षा का काम चालू किया जाय। वातावरण एवं ग्रामोद्योगों की दृष्टि से सेवापुरी आश्रम में सन् '४६ से चलने वाली विभिन्न प्रवृत्तियां अनुकूल सिद्ध हुईं। आश्रम के लिए प्राप्त भूमि में से १२ एकड भूमि का एक प्लाट, जो आश्रम के पश्चिम तरफ एक मील की दूरी पर है, विद्यालय के लिए उपलब्ध हुआ।

इस वर्ष प्रथम द्वितीय तृतीय व चतुर्थ वर्गों में मिलकर छात्रों की संख्या ६१ है, जिसमें से ३० आवासिक व शेष स्थानीय छात्र हैं। स्थानिक छात्र सुबह ६ बजे से शाम के ६ बजे तक विद्यालय में रहकर सभी प्रवृत्तियों व कार्यक्रमों में पूर्ण रूप से भाग लेते हैं।

उद्योगों का चुनाव करते समय विद्यालय के सामने यह दृष्टि रही कि विद्यालय में आने वाले बच्चों के पारिवारिक धन्धों के अनुरूप ही उद्योग सीखने की सुविधा हम जुटायें तथा सेवापुरी आश्रम में जो उद्योग चलते हैं, उनका पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके। इस दृष्टि से अभी तक कृषि और गोपालन का मुख्य उद्योग तथा वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग तथा सफाई सहायक उद्योग के रूप में चुने गये। हमारे सामने सबसे बडी समस्या कृषि के विकास की रही, क्योंकि जो भूमि हमें मिली है, वह अत्यन्त घटिया किस्म की ऊसर भूमि है। इसे तोड कर खेती योग्य बनाना—यही अभी तक हमारा मुख्य काम रहा है, उत्पादन गौण हुआ।

इसके अतिरिक्त आश्रम में चलने वाली गोशाला उत्तर बुनियादी विद्यालय को मिल गयी, जिसमें ६ गायें हैं। इसमें लगभग सभी गायें हरियाना नस्ल की हैं। इनको स्थानिक परिस्थितियों में पालना व रखना एक कठिन कार्य है। भूमि खराब होने के कारण चारा भी पूरा-पूरा अभी तक अपना नहीं कर पा रहे हैं। तो भी हम इस कार्य का धीरे-धीरे विकास कर रहे हैं। और भविष्य में चारे की अपनी व्यवस्था होने पर आय के बढने की आशा है।

बागवानी की दृष्टि से लगभग १ एकड जमीन में बेर व अमरूद के पेड दो वर्ष पूर्व लगाये गये जो भूमि गत बाधाओं के बावजूद विकास पा रहे हैं। भूमि सुधार व कृषि उत्पादन की दृष्टि से वैज्ञानिक ढग से अधिक-से-अधिक मिश्र खाद तैयार करने का आयोजन ऊसर खेतों में ही हम कर रहे हैं। जैसे गत वर्ष लगभग ३००० मन मिश्र खाद धान की पुआल, जल कुम्भी आदि को लेकर हमने तैयार की। विद्यालय में गोपुरी ढग के पाखाने और बाल्टी वाले मूत्रालयों के उपयोग द्वारा मलमूत्र की पूरी तरह खाद बनाने का प्रयत्न बराबर करते रहते हैं।

प्रथम वर्ग में अभी तक छात्रों को अंबर चरखा सिखाकर धोती गमछे से लेकर कम्बल, कालीन, डासी, जैकट तक का अभ्यास करा दिया गया। विद्यालय का पूरा समाज वस्त्र के मामले में स्वाश्रयी है।

सेवापुरी आश्रम के सम्बन्धित विभाग में शवच्छेदन व चर्मशोधन का कार्य विद्यार्थी दूसरे व तीसरे वर्ष में सीखते रहे। खादीग्रामोद्योग कमीशन की ओर से निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर हमने अपना पाठ्यक्रम बनाया, जिसको अनुभवों के आधार पर पुनः निर्धारित करने की हमारी योजना है।

विद्यालय के समुदाय में सफाई व आहार की व्यवस्था और कार्यक्रम उद्योग व शास्त्र की दृष्टि से चलाते हैं।

अभी तक हिन्दुस्तानी तालीमी सघ, सेवाग्राम द्वारा निर्धारित पाठयक्रम का अनुसरण करने का हमने प्रयत्न किया। समवाय शिक्षण द्वारा सामाजिक विषय एव सामान्य विज्ञान लगभग ५० प्रतिशत तथा गणित व भाषा ७५ से ८० प्रतिशत करन में सफल हुए। शेष अभ्यास-क्रम विषयो को क्रम बद्ध रूप से पढाकर पूरा किया गया।

विद्यालय की अपनी छोटीसी वैज्ञानिक प्रयोग शाला भी है। इसके और अधिक विस्तार की हमारी योजना है। विद्यालय के पुस्तकालय में चुनी हुई लगभग १२०० पुस्तके हैं। नित्य के तीन समाचार पत्रो के अलावा अनेक साप्ताहिक व मासिक पत्रिकायें भी विद्यालय में आती हैं। अभी पुस्तकालय को विस्तार तथा उपयोगिता की दृष्टि से अधिक व्यवस्थित करने की ओर हम सचेष्ट हैं। अभी तक चाहते हुए भी अपनी उद्योग शाला चालू करने में हम समर्थ नही हो सके।

विद्यालय में सामुदायिक जीवन का सचालन जनतात्रिक आधार पर ही करने का प्रयत्न किया जाता है। समय समय पर उठने वाली कठिनाइयों का हल शिक्षक गण छात्रो के साथ मिलकर ही करने में समर्थ होते हैं। समुदाय के लगभग सभी काम जैसे भोजनालय, रोगी परिचर्या, अतिथि सत्कार, आश्रम में होने वाले सम्मेलनो की व्यवस्था एव सचालन दूसरे कार्यकर्ताओ के साथ मिलकर शिक्षकगण व छात्र करते हैं। समय समय पर सास्कृतिक व मनोरजनात्मक कार्यों का आयोजन भी किया जाता है। इसी के द्वारा आसपास के गावो से सम्पर्क स्थापित करन का प्रयत्न विद्यालय की ओर स होता रहता है।

छात्रो की प्रगति की समीक्षा मासिक, त्रैमासिक तथा वार्षिक होती है। गुण विकास, बौद्धिक विकास एव औद्योगिक क्षमता और कार्य तीनो पर समान रूप से अक विभाजन करके छात्रो की प्रगति की जाच की जाती है। हमें विश्वास है कि हमारे छात्रो ने उद्योगो की दक्षता इस सीमा तक अवश्य प्राप्त की है कि अगर वे चाहे तो उन उद्योगो के सहारे अपनी जिविका उपार्जन कर सकते हैं।

४. नई तालीम अध्यापन मदिर १९५२ से ५६ तक शिक्षको का प्रशिक्षण चला। कुल १०१ शिक्षार्थी प्रशिक्षित हुए। परिस्थिति वश फिलहाल उसे स्थगित रखना पडा है। आगे उसे हम चलाना चाहते हैं।

(आ) खादी ग्रामोद्योग विद्यालय

१ कपास खेती वृक्ष, झाडी और खेत कपास के विभिन्न किस्मो को लेकर अनुसधान कार्य यहा हो रहा है। यहा की जलवायु और मिट्टी के अनुकूल उपयुक्त कपास उगाने का हम मुख्य रूप से प्रयत्न करते हैं। अब तक १४ विभिन्न किस्मो की कपास हमने उगाई है। आग भी हम प्रयत्नशील हैं। इसी के आधार पर कोरा ग्रामोद्योग कन्द्र में कपास का प्रयोग काय प्रारम्भ हुआ है।

२ खादी ग्रामोद्योग विद्यालय। १८ माह के सत्र में इस वर्ष ३६ प्रशिक्षार्थी हैं। कपास उगाने से बुनाई तक की सम्पूर्ण प्रक्रियाओ का व्यावहारिक व सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है। प्रारभिक चर्खे के साथ अम्बर चर्खे का शिक्षण तथा बुनाई की सभी प्रक्रियाओ का ज्ञान दिया जाता है। सर्वोदय विचार, अत्योदय, खादी अर्थ शास्त्र, भूदान,

सहकारिता, ग्रामस्वराज्य शास्त्र, स्वदेशी इतिहास, रचनात्मक कार्यक्रम, स्वराज्य आन्दोलन, तथा स्वास्थ्य, सफाई व आहार शास्त्र, एव खादी यत्र और तत्र शास्त्र का भी सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है। यहा के प्रशिक्षित छात्र विभिन्न रचनात्मक सस्थाओ में और ग्राम सहायक बनकर सेवाकार्य में रत हैं।

३. बुनाई वर्ग : बुनाई वर्ग में कुल १० प्रशिक्षणार्थी हैं। सादा थान, डिजाईन चादर, तौलिया, कम्बल, कालीन, दरी और निवाड की बुनाई सिखाई जाती है। फटे पुराने बेकार कपडो का सदुपयोग हम दरी बनाकर करते हैं। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता खादी कमीशन, और प्रदेशीय सरकार के उद्योग विभाग तथा विद्यालयो में कार्य कर रहे हैं।

(इ) चर्मोद्योग व चर्मकला

१. शवच्छेदन व उसका उपयोग : मरे जानवरो के सभी अगो–चमडा, चर्बी, हड्डी और सीग का सदुपयोग किया जाता है। मुर्दे जानवरो की खाल उतारने और चर्बी तथा गलू बनाने और हड्डी की खाद तैयार करने का काम होता है। आसपास के गाव वालो ने हड्डी खाद की उपयोगिता स्वीकार की है और इसका व्यापक रूप से उपयोग करने लगे हैं।

२. चर्मोद्योग प्रशिक्षण तथा चर्म शोधन कार्य : कुल छात्र सख्या ३४ है। सोल टैनिंग, क्रोम टैनिंग और फर टैनिंग का प्रशिक्षण तथा उत्पादन होता है। इस वर्ष ५०००० . ०० का उत्पादन करने का हमारा लक्ष्य है। यह कार्य उत्तरोत्तर सक्षम और विकसित हो रहा है। ग्रामीण आवश्यकता की वस्तुओ को प्राथमिकता दी जाती है। मोट, परसा, आदि विशेष रूप से तैयार होते हैं।

उत्पादन के साथ छात्रों का प्रशिक्षण चलता है। व्यावहारिक कार्य के साथ सैद्धान्तिक ज्ञान भी दिया जाता है। यहा के प्रशिक्षित कार्यकर्ता आज चर्मोद्योग के कार्य में प्रदेश के विभिन्न स्थानो में सरकारी तथा गैर सरकारी ढग से काम कर रहे हैं।

३. चर्मकला : पक्के चमडे से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार होती हैं। चप्पल, जूते, अटैची व सूट केस आदि बनते हैं और स्थानीय बालको को प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

(ई) ग्रामसेवा

१. ग्रामरचना विद्यालय : १९५६ में पूज्य श्री शकरराव देवजी के कर कमलो द्वारा इसका उदघाटन हुआ। १८ माह के दो सत्र चले। कुल ३३ छात्र प्रशिक्षित हुए और गाधी स्मारक निधि की ओर स ग्रामसेवा केन्द्रो पर काम कर रहे हैं। इस समय विद्यालय का कार्य स्थगित है, किन्तु निकट भविष्य में पुनर्गठन का विचार कर रहे हैं।

२ सघन विकास क्षेत्र : सघन विकास द्वारा १९४ गावो को सुनियोजित ढग से विकसित करने की दिशा में कार्य हो रहा है। इन गावो का सम्पूर्ण विकास हो सके, इस प्रकार की योजना तैयार की है और उसके क्रियान्वयन में हम प्रयत्नशील हैं। इस समय खादी कार्य के साथ साथ तेलघानी, कुम्हारी, खिलौने, बर्तन व ईंटो व टाइल-कार्य, खाण्ड सारी, रेशा उद्योग आदि चल रहे हैं। उद्योगो का विकास तथा कृषि

की उन्नति हो यह जीवन स्तर को उठाने का प्रथम सोपान होगा। धीरे धीरे अन्य योजनायें भी हाथ में ली जायेंगी।

३. पशुवंश सुधार : यह क्षेत्र मुख्यतया ऊनी गलीचे और कम्बल का है। भदोही और मिरजापुर में लगभग ५॥ करोड रु प्रति वर्ष का व्यापार इन वस्तुओ का होता है। भेडें इस क्षेत्र में बहुत हैं। इसलिए हमने भेडो की नस्ल सुधार हेतु बिकानेरी भेडें रक्खी। उससे इस क्षेत्र के तीन चौथाई नस्लो में सुधार हुआ है।

गो वश सुधार की दृष्टि से एक हरियाना साड रक्खा है। इससे आस पास के गावो में भी नस्ल सुधार हो रहा है। जानवरो के लिये चिकित्सालय से गाव वालो को पर्याप्त लाभ होता है। बछडो को बधिया करने की भी क्रिया की जाती है। मल मूत्र और गोबर की गैस तैयार की जाती है जो रोशनी जलाने के काम आती है।

५. चिकित्सालय : आस पास के गाव वालो की चिकित्सा हेतु आयुर्वेदिक औषधालय है जिससे नित्य सैकडो रोगियो को लाभ होता है। एक डाक्टर और कम्पाउन्डर है जो चिकित्सालय का सचालन करते है। सस्था के उक्त प्रवृत्तियो के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश गाधी स्मारक निधि तथा उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ समिति के प्रदेशीय कार्यालय भी यही पर हैं।

(पृष्ठ ३०० का शेषांश)

शिक्षको के बीच हमें थोडे कुछ उत्साही व्यक्ति मिले, लेकिन वे भी अपने साथियो के निराशावाद के कारण कुछ कर नही पाते थे। पार्टिनिको में पचास के करीब शिक्षक ऐसे है, जिन्हें काम नही है। अब उनको लेकर साक्षरता प्रसार का काम शुरू करने का प्रयत्न चल रहा है।

जैसे ऊपर कहा जा चुका था, हमारे आधे साल के काम का कुछ दिखाने लायक फल तो नही निकला है, या यो कहना चाहिए कि अब तक हम केवल बहुत सारी मुश्किलातो और कुछ सभावनाओ को समझ ही पाये है। क्या इससे एक व्यावहारिक कार्यपद्धति का प्रारभ करने में हम सफल हो सकते हैं ?

(पृष्ठ ३०७ का शेषांश)

आदानप्रदान से बच्चो को आपस में मैत्री और आत्मीयता बनती है।

पुरानी पत्र पत्रिकाओ से चुन-चुन कर अलग-अलग देशो के दृश्य, लोक जीवन आदि के चित्रो का सग्रह स्थायी महत्व की चीज हो सकती है। इस कार्य में बालक खूब मजा लेते हैं।

इस तरह अनेक कार्यक्रम शिक्षको को स्वय तैयार कर लेने चाहिए। इस में समवाय पाठ का भी अच्छा मौका मिल जाता है।

'एक-जगत्' की भावना

बेपी प्रसाद

शिक्षकों के लिए कुछ सुझाव

हम आज अलग-अलग रहकर सुखी नही हो सकते हैं। विज्ञान के विकास के साथ-साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है कि देशो के बीच जो सामाएँ बनी हुई हैं वे अब निकम्मी हैं, उनका आज कोई अर्थ नही रहा है। एक देश से दूसरे देश में जाते समय जो कायदे-कानून लागू होते हैं, रुकावटें आती हैं वे सब वाहियात-से लगने लगे हैं। कई चिन्तनशील व्यक्ति अपने आपको किसी देश-विशेष का नागरिक न कहकर 'वर्ल्ड सिटिजन'—जगत् का नागरिक कहने में गर्व महसूस करते हैं। भारत के ऋषि-मुनियो द्वारा जिस विश्वमानुष का आवाहन किया गया था, वह अब जन्म ले रहा है।

पर इतनी विशाल, साथ-साथ व्यावहारिक बात होते हुए भी क्यो इतनी रुकावटें? राष्ट्रो की सरहदो पर लैस-फौजें तैनात खडी हैं, तोपो और बन्दुकों की नलिया एक दूसरे के सामने ऐसे तनी हैं कि अब बजा फटाका। अणुबम और मिसाइलो की सख्या जोरो से बढती जा रही है। ऐसा क्यो? इसमें कोई शका नही कि राष्ट्रो के नेताओं की इसमें जिम्मेदारी है, किन्तु क्या यह सच नही कि ये नेता तो आम जनता की सम्मति से बनते हैं और काफी हद तक लोगो की आम विचारधारा के मुताबिक बर्ताव करते हैं? यही कारण है कि अब यह महसूस किया जाने लगा है कि आम शिक्षा में, चाहे वह बालको की शिक्षा हो या प्रौढा की, एक-जगत् के मूल्यो की बुनियाद डाली जानी चाहिए।

पुराने विचारो की कैद में हम अपनी दृष्टि इतनी सकुचित रख लेते हैं—यहा तक भूल जाते है कि दुनिया बदल रही है। राष्ट्र-गर्व, जहा तक 'स्वदेशी भावना का विकास करता है, वहा तक तो ठीक है लेकिन, 'सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, अब सकुचित दीखने लगा है। मेरी मा, मेरी मा है और प्यारी है, किन्तु उसकी मा भी तो उसे उतनी ही प्यारी है, फिर मेरी मा उसकी मा से ज्यादा अच्छी कैसे हो सकती है। और दरअसल यह मा मेरी अलग और उनकी अलग, ऐसी बात नही है, धरती माता-सबकी माता। तो फिर क्यो ऐसी सरहदें?

हम यहा कहना यह चाहते हैं कि पुराने सकुचित विचारो को बालको में नही डालना चाहिए। शिक्षकों को अपनी कक्षाओं में कुछ ऐसे कार्यक्रम करने चाहिए कि जिससे बाल्य-पन से ही सकुचित-वाद की जडें उखड जाय। हमारे बालक अन्य देशों के बालकों लोकजनों, रीतिरिवाजों, वहां को भूगोल व इतिहास और महापुरुषों के बारे में अध्ययन करें।

उनकी आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परम्पराओं के अध्ययन के द्वारा यह समझने का प्रयत्न करें कि उनके सुख दुख हमारे ही सुख-दुख जैसे हैं। यह जानकारी प्राप्त करने के लिए चित्रो फिल्मो आदि की सहायता लेनी ही चाहिए। एक एक करके सभी देशो के साथ सवेदना का सम्बन्ध इस प्रकार कायम किया जाना चाहिये।

एक और कार्यक्रम कारगर होता है। प्रकृतिकृत या मानव कृत अनेक दुर्घटनाए होती रहती है। यदि हमारे स्कूलो के बालको को यह प्रेरणा दी जाय कि अमुक देश के पीडित लोगो, खास तौर पर बालको की सहायता करना उनका फर्ज है, तो हजारो मील दूर के देश भी हृदय के नजदीक आ सकते है। बालक कुछ दिन विशेष श्रमदान करके या हफ्ते या माह में एकाध बार खाना या नाश्ता छोड कर कुछ बचाए और वह धन उस देश की सहायता के लिए भेजें। ऐसे प्रयोग कई जगह हुए हैं और देखा जाता है कि इस प्रकार से करुणा और ज्ञान दोनो का सुन्दर विकास होता है।

आपसी भाईचारा निर्माण करने के कुछ और साधन हो सकते हैं, जैसे अन्य देशो के त्योहारो और सास्कृतिक जीवन की बातो का अध्ययन करना, अन्य देशो के सगीत, नृत्य, भाषा तथा कलाकृतियो से बालको को परिचित कराना, आदि। दुर्भाग्यवश हममें इतनी सकीर्णता है कि दूसरे देश की भाषा और सगीत को सुनना तो क्या, उस पर असभ्य ढग से हसना चलता है। यदि बुनियादी शाला की ऊच्च कक्षाओ और माध्यमिक शालाओ में इस बात पर ध्यान दिया जाय तो अच्छा होगा। रेडिओ आज गाव-गाव में है। उत्तर का सगीत दक्षिण के सगीत से कुछ-कुछ भिन्न लगता है। बालको को वह सुनाना चाहिये और उसकी गुणात्मक परख चाहे न कर सके, पर श्रद्धा के साथ सुनने की आदत डालनी चाहिए। इसी प्रकार अन्य देशो के सगीत आदि की भी बात है।

आजकल डाक टिकटो का सग्रह करने का शौक काफी चला है। वह भी 'एक जगत्' के विचार का अच्छा पोषक हो सकता है। केवल जमा करना नही, बल्कि नक्शो की सहायता से टिकटो के देशो को पहचानना, और उनके रीति-रिवाजो का तथा इतिहास का अध्ययन करना भी आवश्यक है। जो शालायें बडे शहरो के पास होती हैं उनके लिए यह प्रवृत्ति कुछ आसान हो चली है। पर इसके लिए एक और अत्यन्त शैक्षणिक तरीका है जिसका उपयोग उत्साही शिक्षक को करना चाहिए। अन्य प्रदेशो और राष्ट्रो के बालको के साथ हमारे बालको का पत्र व्यवहार। पत्र व्यवहार से मित्रता करने की परम्परा बडी सहायक हो सकती है। स्कूल सामूहिक पद्धति से यह कर सकता है। एक माह में दो-तीन देशो में भी पत्र डाले तो कुछ अधिक खर्च भी नही होगा और बालको को हमेशा उसका उत्साह रहा करेगा और उनके पास उन देशो के डाक टिकट भी परिवर्तन के आधार पर आ सकते हैं। हर शाला अपना सुन्दर डाक टिकट-सग्रह बना सकती है।

इसी प्रकार बालको के चित्रो का अदल बदल होना चाहिए। एक स्कूल के बालको के बनाए चित्र अन्य स्कूल में जाय और कुछ स्कूल मिलकर अपने चित्र अन्य देशो में भेजें, यह कार्यक्रम भी बडा शैक्षणिक होता है।

(शेषांश पृष्ठ ३०५

राधाकृष्ण

आन्ध्र प्रदेश में बुनियादी तालीम

कुछ सुझाव

देश में बुनियादी तालीम के तब तक के विकास के बारे में विचार करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा १९५५-५६ में नियुक्त समीक्षा समिति ने आन्ध्रप्रदेश की परिस्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया था :-

"आन्ध्र में जो इनी गिनी बुनियादी शालाएं हैं, वे इधर उधर छोटे छोटे क्षेत्रों में बिखरी पड़ी हैं। ये क्षेत्र गैर बुनियादी स्कूलों के बड़े बड़े क्षेत्रों के बीच में जकड़े हुए हैं। इस परिस्थिति में उन बुनियादी शालाओं के अधिकृता की हालत बड़ी ही दर्दनाक मालूम देती थी।" ...'शिक्षाविभाग के अधिकारियों की कुछ ऐसी भावना दीखती थी जैसे कि इन बुनियादी शालाओं और प्रशिक्षण केन्द्रों को वे बिलकुल अलग "क्वारन्टीन" में रखना चाहते हों जिससे कि उनके सपर्क से गैरबुनियादी स्कूलों के स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचे"..."आन्ध्र में ही हमने यह ज्यादा ज्यादा महसूस किया कि अगर शिक्षाविभाग बुनियादी तालीम के प्रसार को एक आवश्यक और तुरन्त करने का काम समझकर वैसी कार्रवाही नहीं करता, तो इसकी प्रगति इतनी धीमी और अक्षम रहेगी कि सारा कार्यक्रम ही व्यर्थ हो जायगा।" समिति ने चन्द अत्यन्त उपयोगी सुझाव दिये थे, जिनकी तरफ इस काम में रुचि रखनेवाले सब को ध्यान देना चाहिये था।

इन सालों के अनुभवों से और रिपोर्टों से मालूम पड़ता है कि तब से परिस्थिति कुछ सुधरी नहीं है। वस्तुत वह और खराब हो गयी है। एक तरफ राज्य के सामने इन परिवर्तन के लिये व्यवस्थासम्बन्धी तथा भावनात्मक कठिनाइयां थी हो, दूसरी ओर यह भी मानना चाहिये कि पूरा प्रयत्न किया भी नहीं गया। इसीलिये बुनियादी तथा गैरबुनियादी विद्यालयों के बारे में आज हमारे सामने ये आंकड़े पेश आते हैं-

	६ से ११-उम्र के लिये		११ से १४-उम्र के लिये		शिक्षक प्रशिक्षण	
	बुनियादी-	गैर बुनियादी,	सीनियर बेसिक-	मिडल,	बुनियादी--	गैरबुनियादी
शालाओं की सख्या	२०००	३०,०००	२८०	४६०	५९	६१
विद्यार्थी सख्या	२ लाख	२३ लाख	६९,०००	९७,०००	५,८०९	७,४७५
शिक्षक सख्या	७०००	८४,०००	२,५००	४,०००		

इससे पता चलता है कि प्राथमिक शिक्षण में सर्वत्र बुनियादी तालीम की पद्धति पूरी पूरी अपनाने की सरकार की प्रख्यापित नीति के बावजूद गैरबुनियादी शालाओं की सख्या अभी भी इतनी अधिक है कि इस स्थिति में इन *थोडी सी बुनियादी शालाओं के काम का कोई* प्रभाव नही पड सकता है। इसलिये सिर्फ बुनियादी शालाओ की सख्या बढाने की दृष्टि से ही नही, बल्कि एक अनुकूल वातावरण तैयार करने तथा सभी शालाओ में बुनियादी तालीम के कुछ मौलिक सिद्धान्त व कार्यपद्धति तुरत अपनाने की दृष्टि से भी इस समस्या पर विचार करना चाहिए। बाद में इनका क्रमश पूरी बुनियादी शालाओं में विकास कर सकते हैं। साथ साथ यह भी ख्याल में रखना चाहिए कि अगले पाच सालों में ५३ लाख बच्चो के लिए ग्यारह साल की उम्र तक लाजिमी तालीम की व्यवस्था करनी है, जब कि आज २६ लाख बच्चे ही शिक्षा पा रहे हैं।

आन्ध्र प्रदेश में बुनियादी शिक्षा पद्धति का विकास सही रीति से हो, इस ध्येय की पूर्ति के लिये हम निम्नलिखित सुझाव रख रहे हैं—

१ शिक्षको के प्रशिक्षण का एक सुनियोजित *कार्यक्रम सब से पहली बात है। आज एक सौ* बीस प्रशिक्षण केन्द्रों में आधे ही बुनियादी पद्धति के हैं। आखिर शिक्षा का गुणात्मक स्तर शिक्षको के प्रशिक्षण पर ही ज्यादा निर्भर करता है। प्रशिक्षण की यह द्वैत पद्धति तुरत खतम करना चाहिए। सभी प्रशिक्षण केन्द्रो में एक सामान्य शिक्षाक्रम अपनाना चाहिए। हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के द्वारा शिक्षक प्रशिक्षण का एक विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किया हुआ है, जिसके आधार पर काम शुरू कर सकते हैं।

अ. द्वैतपद्धति खतम करने के बाद अगला जरूरी काम प्रशिक्षण का स्तर ऊचा उठाने का है। आज की स्थिति सन्तोषजनक नही है। किसी किसी प्रशिक्षण विद्यालय के प्रधान तथा अन्य शिक्षक भी बुनियादी तालीम में प्रशिक्षित *नही होते हैं। बुनियादी प्रशिक्षण की कुछ* निम्नतम अपेक्षाए और रूप निर्धारित नही किया हुआ दीखता है। यह बिलकुल जरूरी बात है। इस सिलसिले में कुछ विद्यालयों के स्थान एव कार्यकर्त्ता भी बदलने की आवश्यकता हो सकती है। विशेषज्ञों की एक छोटी समिति इस काम के लिये नियुक्त होनी चाहिये जो कि विभिन्न केन्द्रों का निरीक्षण कर के आवश्यक सुझाव देगी।

आ अगले कुछ सालों में अधिक सख्या में शिक्षको की जो जरूरत होगी, उसके लिये विशेष तात्कालिक प्रशिक्षण शिविर चलाये जा सकते हैं। कई जगह इस प्रकार के तात्कालिक केन्द्र बडे ही सफल सिद्ध हुए हैं। पहले एक साल का प्रशिक्षण पा कर ये शिक्षक काम में लग सकते हैं और बाद में उनके एक और साल के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। कुछ अनुभवी, कार्यनिवृत्त प्राध्यापको की सेवायें इस काम के लिये उपलब्ध हो सकती हैं।

इ केवल नीचे के दर्जों के लिये शिक्षको के प्रशिक्षण से आगे का काम नही बनेगा। अगले कुछ सालों में हमें बुनियादी शाला की उच्च कक्षाओ तथा उत्तर बुनियादी विद्यालयो के लिये भी बडी सख्या में शिक्षको की जरूरत होगी। शिक्षाविभाग को चाहिये कि वह विश्वविद्यालयो के सहयोग से उच्च प्रशिक्षण केन्द्र चलाए। इनमें सामुदायिक जीवन, शिक्षामनोविज्ञान तथा शिक्षापद्धतिया, उद्योग, समवाय पद्धति और अन्य प्रवृत्तियो का अच्छा अध्ययन हो। बुनि-

यादी शिक्षा का गुणात्मक स्तर उठाने में स्वाभाविक ही इन केन्द्रो में किये जानेवाले काम व वातावरण का बडा महत्व रहेगा।

२ दूसरा काम राज्य की सभी शालाओ के लिए तालीमी सघ के निर्धारित शिक्षाक्रम के आधार पर एक समन्वित शिक्षाक्रम तैयार करने का है। बुनियादी तथा अन्य शालाओ के शिक्षाक्रम में ज्यादा फर्क नही रहना चाहिए। सिर्फ स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल कुछ फेर-बदल हो सकता है। सब शालाओ को बुनियादी शालाओ में परिणत करने की दृष्टि से जो सामान्य कार्यक्रम चलाया जायगा, वह सभी में लागू होना चाहिए, याने बुनियादी शिक्षा के कुछ मौलिक सिद्धान्तो का समावेश पूरी शिक्षा-पद्धति में होना चाहिए। उससे वातावरण तैयार होगा और सब शालाओ को बुनियादी शालाओ में परिणत करने का कार्यक्रम आसानी से होगा।

पूरे राज्य में नया शिक्षाक्रम चालू करने के साथ साथ अभी जो बुनियादी शालाओ के क्षेत्र है, उनका विकास और विस्तार भी होना चाहिए, जिससे कि पूरे जिले में वह फैल जाय और दस साल के अन्दर सारे प्रदेश में यह काम पूरा हो जाय। अगर निश्चय और दृढता के साथ काम किया जाय तो कोई कारण नही कि उतने समय में वह पूरा न हो सके।

३ इस कार्यक्रम से तीन सवाल उठते है। एक तो निरीक्षको और प्रशासको के प्रशिक्षण का है। मद्रास, बिहार और गुजरात में शिक्षा विभाग के शासकीय अधिकारियो का बुनियादी तालीम के सिद्धान्त और पद्धति में प्रशिक्षण हुआ था और यह ज्यादा अच्छा है बनिस्बत इसके कि बुनियादी शिक्षा का एक अलग विभाग कायम करे। आखिर यह काम सारे शिक्षाविभाग का है और उसी के अधिकृतों को इसे उठा लेना चाहिए और अच्छी तरह चलाना चाहिए।

दूसरा सवाल बुनियादी तालीम की गैर-सरकारी सस्थाओ की इस क्षेत्र में नये नये प्रयोग व शोध करने की स्वतत्रता का है। सरकारी विभाग ने तो उसे एक शिक्षापद्धति के तौर पर माना है, लेकिन ऐसे कुछ निष्ठावान लोग भी है, जिन्होने इसे एक जीवनदर्शन के रूप में अपनाया और उस काम के लिए अपने आपको न्योछावर किया है। कडे नियमो और अनावश्यक बन्धनो से उनके काम में बाधा डालना सारे कार्य की प्रगति और विकास के लिए भी नुकसानदेह होगा। बेशक उनसे भी कार्यक्षमता और शैक्षणिक स्तर की दृष्टि से कुछ अपेक्षाए की जा सकती है और समय समय पर अधिकृत रूप से इसकी जाच भी होनी चाहिए। लेकिन साथ साथ यह ख्याल रखना भी जरूरी है कि शिक्षा एक नित्य बदलनेवाला प्रक्रिया है तथा स्वतत्रता और अनुसन्धान के वातावरण में ही उसका विकास हो सकता है।

तीसरा सवाल क्षेत्र के विकास और शिक्षा के काम के आपसी सबन्ध का है। आज की परिस्थिति में यह विशेष रूप से आवश्यक है कि ये दोनो एक दूसरे के पोषक हो। हम यह भी ख्याल रखना है कि एक ही क्षेत्र में सरकार की तरफ से और स्वतत्र सस्थाओ द्वारा एक ही प्रकार का काम न हो जिसमें शक्ति और पैसे का अपव्यय होता है। अब पचायत राज की जो योजना है, उससे विभिन्न सस्थाओ के काम के समन्वय तथा सामुदायिक विकास के द्वारा समग्र शिक्षा के काम में सहूलियत मिलना चाहिए।

४ अगर हम यह मानते है कि अगले दस सालो में राज्य की सब शालाए बुनियादी शालाओ में परिवर्तित का जाएगी तो उस

परिवर्तन के लिये जनमानस को तैयार करना भी जरूरी है। यह ख्याल लोगो के मन से हटाना है कि बुनियादी तालीम का विचार कुछ व्यक्तियो की एक दिमागी फितूर है, उन्हे विश्वास होना चाहिये कि वह अपने आप में एक श्रेष्ठ शिक्षा पद्धति है और समाज-पुनर्रचना का कारगर साधन है। जनता को यह समझना आवश्यक है कि ऐसी एक शिक्षा-व्यवस्था को चलाते रहना खतरनाक है जिसका आज की हमारी जरूरतो और भावी समाज-रचना के साथ कोई सबन्ध नही है।

५ और एक जरूरी बात उचित साहित्य तैयार करने तथा अनुसन्धान के काम की सुविधाए जुटाने की है। राज्य की तरफ से बुनियादी शिक्षा के एक सघन क्षेत्र में ऐसे एक अनुसन्धान केन्द्र का निर्माण हो जिसमें पूरे उपकरण और प्रशिक्षित कार्यकर्ता रहे। केन्द्रीय सरकार बच्चो के लिये उचित साहित्य तथा शिक्षको के मार्ग दर्शन के लिये आवश्यक किताबें तैयार करेगी, शिक्षा का स्तर ऊचा उठाने के लिये यह अनुपेक्षणीय है। विभिन्न क्षत्रो के लिये उपयुक्त उद्योग और उनकी शैक्षणिक सभावनाओ के बारे में भी शोध का कार्य चलते रहना चाहिए।

६ पूर्व बुनियादी तथा उत्तर बुनियादी शिक्षा के प्रश्न भी बुनियादी शिक्षा के प्रसार के साथ जुडे है। इस राज्य में अब तक इस दिशा में कोई विशेष कार्य नही हुआ है। असल में सभी उम्रो की शिक्षा को एक समग्र कार्यक्रम के रूप म हो देखना चाहिए। जब ज्यादा-ज्यादा बुनियादी शालाए अपन आठ साल की अवधि पूरी करगी तो उत्तर बुनियादी शिक्षा का सवाल स्वाभाविक ही उठेगा। इस पर राज्य सरकार गभीरता से विचार करे। तब तक स्वतत्र सस्थाओ को उत्तर बुनियादी विद्यालय चलाने और प्रयोग करने की सहूलियतें दी जानी चाहिए।

पूर्व बुनियादी शिक्षा की भूमिका इससे बिलकुल ही भिन्न है। सरकार की तरफ से इसकी पूरी व्यवस्था हो, यह आज व्यावहारिक नही दीखता है। हमारे विचार में शिक्षा विभाग को पूर्व बुनियादी शिक्षा के लिये शिक्षक प्रशिक्षण का काम ही हाथ में लेना चाहिए और पचायतो तथा स्वतत्र सस्थाओ को पूर्व बुनियादी शालाए गाव गाव में व शहरो में चलाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। पूर्व बुनियादी शिक्षा तथा प्रौढ शिक्षा का एक समन्वित कार्यक्रम चलाने के हिन्दुस्तानी तालीमी सघ क प्रयत्न व अनुभवो का अध्ययन कार्यकर्ताओ के लिए मूल्यावान् होगा।

७ आखिर, बुनियादी शिक्षा के प्रसार के कार्यक्रम की सफलता सरकार की निश्चित नीति तथा प्रशासको की वृत्ति व क्षमता पर अवलबित है। इतने बडे पैमाने के काम में स्वाभाविक ही कई मानसिक गुत्थियो व बाधाओ का सामना करना पडेगा। निष्ठा और निश्चय के बिना काम बन नही सकता। हमारा सुझाव है कि सरकार इस काम के मार्गदर्शन के लिए एक स्थाई समिति की नियुक्ति करे। एक गैर सरकारी योग्य व्यक्ति उसका अध्यक्ष हो, जो अपना पूरा समय इस काम के लिए दे सके। यह समिति स्वाभाविक ही सर्व सेवा सघ, समाज कल्याण मण्डल, खादी ग्रामोद्योग आयोग, आदि सघो के साथ सहयोग और विचार विमर्श का लाभ उठाऐगी।

शान्ति समाचार

पूज्य विनोबाजी आसाम में

५ मार्च को विनोबाजी ने आसाम में प्रवेश किया। आसाम ही केवल ऐसा बच गया था, जिसमें भूमिदान पदयात्रा के दौरान में विनोबाजी अभी तक नहीं गये थे। आसाम की माग तो वैसे थी ही, किन्तु वहा की भाषा के ऊपर हुई घटनाओ के कारण विनोबाजी का वहाँ जाना और भी महत्वपूर्ण और आवश्यक हो गया था। वे हमेशा कहते हैं कि मैं मसले हल करने नहीं जा रहा हू, मैं तो देखने-सुनने जा रहा हू। आसाम में प्रवेश करते समय उन्होंने कहा "मैं देखूगा, सुनूगा और प्रेम करूगा। मेरा विश्वास है कि यहा मुझे प्रेम मिलेगा और प्रेम भावना लेकर ही इस प्रदेश से जाऊगा।"

चम्बल, मध्यप्रदेश की शान्ति सेना समिति और जबलपुर

जबलपुर मे साम्प्रदायिक झगडो के समाचार मिलते ही वहा के शातिसैनिक श्रीगणेश प्रसाद नायक ने शाति स्थापना कार्य में घूम घूम कर सहयोग देना प्रारम्भ किया। इन्दौर से श्री दादाभाई नाईक वहा पहुच गये तो उनको साथ लेकर दोनो तबको के लोगो से मिलकर, राजनैतिक दलो से सम्पर्क करके और शासन से जानकारी प्राप्त करके एक रिपोर्ट तैयार की। प्रदेश सर्वोदय मडल की बैठक मे इस रिपोर्ट पर विचार हुआ और एक शाति समिति पाच शाति सैनिकों की बनी। होली के पहले ही यह समिति जबलपुर पहुच गई और तीन चार दिन वहा रही, एक दैनिक परिपत्र 'सर्वोदय बुलेटिन' के नाम से निकाला गया। जिसमे साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठने की अपील की गई।

जबलपुर पर जयप्रकाश जी

जबलपुर की घटनाओ के बारे मे श्री जयप्रकाश नारायण लिखते हैं–

"जबलपुर के साम्प्रदायिक झगडों से हर चिन्तनशील भारतीय व्यथित है। वहा जो दुष्कृत्य हुए हैं, वे इस बात के साक्षी हैं कि हमारे ऊपर "मानवता" का लेप कितना पतला है और हमारी राष्ट्रीय एकता की भावना कितनी कमजोर है।

और शायद पाकिस्तानियों ने सोचा होगा कि इन *अमानवीय दुष्कृत्यो मे हम कही भारतीयो से* पीछे न रह जाय, इसलिए उन्होने कराची मे उनको दोहराया। वहा के शासकीय अधिकारी भी शायद यह न चाहते थे कि वे जबलपुर वाले अपने साथियो से कम हों, इसलिए गुडो को उनकी आखो के सामने ही मनमानी करने की स्वतत्रता थी। लेकिन मुझे विश्वास है कि पाकिस्तान का भी हर चिन्तनशील व्यक्ति इन घटनाओ से उतना ही व्यथित हुआ होगा।

जबल्पुर और कराची की इन घटनाओ के बाद किसी भी विचारशील आदमी के मन में यह शका नहीं रहनी चाहिये कि दोनो देशों के हिन्दुओ और मुसलमानो को भाइओ और सहनागरिको के जैसे रहना है इतना ही नहीं, बल्कि दोनो राष्ट्रो को अपने इतिहास, भौगोलिक स्थिति और आर्थिक तथा राजनैतिक आवश्यकताओ के अनुरूप एक दूसरे के ज्यादा नजदीक आना है। दोनों देशो में निश्चय ही इतना ज्ञान और सद्बुद्धि है कि इन विनाशकारी वृत्तियों के ऊपर उठ सके।

आणविक शस्त्रों वाली पनडुब्बी का रोकने का प्रयत्न

ब्रिटन और अमेरिका के बीच की पोलारिस सन्धि के अनुसार स्काटलैंड के होली लाक नाम के समुद्रतट पर अमेरिका की अणु अस्त्रो से सुसज्जित

(शान्ति समाचार)

पनडुब्बियो का जो अड्डा बन रहा है उसका दोनो देशों के शान्तिवादी विरोध कर रहे हैं। फरवरी २१ ता को जब पोरटियस नाम की जहाज और जार्ज वाशिंग्टन नाम की पनडुब्बी न्यू थार्क से रवाना होने लगे ता इन भाइयो ने बडी वीरता के साथ अपनी छोटी छोटी नाव उनके रास्त मे ले जा कर उनको रोकने की चेष्टा की। वे इस तरह से उन्हे रोक तो नही सकते थे, नाविक सेना की लॉचे उन्ह पकड कर रास्ते स हटाती रही, लेकिन यह अपना प्रतिषेध व्यक्त करन का उनका तरीका था। इसी प्रकार सहारक अस्त्रो से सुसज्जित ये जहाज जब हालि लाक पहुचे, वहा के शान्ति वादियो ने उसके विरोध म अपनी नावे ले जा कर प्रदर्शन किया। "पोरटियम" जहा खडी है उससे डेढ सो गज दूरी पर इन्होने अपना केम्प लगा कर दिन रात पहरा दे रहे हैं। विश्वभर से दो सो से अधिक पत्र प्रतिनिधि और एक दर्जन टेलिविजन वाले इनके केम्प और कार्यों के समाचार देने के लिये पहुन्च चुके हैं।

आलडर मास्टन यात्रा

पिछले वर्ष की भाति इस यात्रा की तैयारी जोरो से प्रारम्भ हो गई है। आशा की जा रही है कि इस वर्ष आणविक युद्ध के विरोध मे यह प्रदशन पिछले सभी प्रदर्शनो से कही बडा होगा। इस यात्रा में ससार के अन्य देशा के १५०० यात्री हिस्सा लगे। यात्रा में हिस्सा लेने वालो ने अभी से अपने घरो और मोटर कारा के ऊपर इस यात्रा के प्रचार हेतु इश्तेहार लगाने भी शुरु कर दिये हैं। लण्डन शहर में पाच लाख इश्तेहार बाटे गये हैं।

यात्रा के सगठक आशा करते हैं कि इस प्रदर्शन से इग्लैड की राजनैतिक पार्टियो को पता चल जायगा कि जनता अणविक शस्त्रो का कितना विरोध करती है।

चिट्ठी–पत्री

प्रिय देवी भाई,

जय जगत। मुझे आज ही मार्च का "नई तालीम" पढने का अवसर मिला है। उसे पढकर मन में कुछ विचार आये। उन्हे सक्षेप में प्रस्तुत कर रही हू।

कृषि का पाठयक्रम बहुत अच्छा है, और इस में विस्तार के साथ काफी व्यावहारिक और शिक्षा दायक सभावनाए हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि यह कुछ विशेष अधिकार प्राप्त वर्ग की ऊची शिक्षा के लिये उपयोगी हो सकता है—उसमें अच्छे विशेषज्ञ और काफी जमीन तथा सामान की आवश्यकता होगी। यदि हम बुनियादी तालीम को बडे पैमाने पर फैलाकर उसे लोक शिक्षा और लोक क्रान्ति का माध्यम बनाना चाहते हैं तो क्या हमें इतने ऊचे स्तर की अपेक्षा नही छोडनी पडेगी ?

बारबासुदेवपुर के सम्मेलन की रिपोर्ट से भी यह विचार पैदा होता है कि नई तालीम की दिशा, उसमें व्यवहार और शब्दार्थ, दोनों में कुछ विभाजन की आवश्यकता है या नही ? मुझे लगता है कि इस वक्त कुछ ऐसी आवश्यकता हमारे नई तालीम परिवार के सामने है कि हम अपने लक्ष्य और दिशा को साफ करे।

क्या नई तालीम "शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति"—इतने में ही सीमित है, या क्या हम उसे एक सुधरी हुई राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति मानते

हैं, जिसका लक्ष्य पुराने मूल्यों पर आधारित एक ज्यादा सुधरा हुआ समाज बनाना है ? या क्या दोनो लक्ष्यो के लिये गुजाइश है ? यदि है, तो कैसे ? विभाजन कहा से शुरू हो ? उसका चुनाव कैसे हो ? विनोबाजी की कल्पना के ग्राम स्वराज्य और "ग्रामीण विश्व-विद्यालय" की ओर बढने के क्या व्यवहारिक कदम उठाये जा सकते हैं ? इस ओर भी ऊंची शिक्षा की गुजाइश है—लेकिन उसका लक्ष्य मान्यता और नौकरी न रहकर ग्राम स्वराज्य की ओर बढना है। इस लक्ष्य में यदि सफलता मिले, तब सभव है कि मान्यता और नौकरी पाने वालों के द्वारा सरकारी तत्र पर तथा राष्ट्रीय जीवन पर कुछ प्रभाव पड सके—लेकिन जबतक यह "लोक लक्ष्य" सिद्ध नही हुआ, तब तक ये मान्यता प्राप्त नई तालीम के विद्यार्थी "समुद्र में बूद पानी" के बराबर महत्व रखेंगे। व्यक्तिगत तौर से उनके काम से शायद कुछ असर पड सके, लेकिन सरकारी तत्र पर कोई असर नही पडेगा। ऐसी मेरी विनम्र राय है। हा-सभव है कि ऊची शिक्षा में बुनियादी तालीम की उपयोगिता सिद्ध हो।

विभाजन यदि हम करना चाहते हैं तो मुझे लगता है कि उसकी व्याख्या में कुछ परिवर्तन करना चाहिये। या तो हम लोक शिक्षा को "नई तालीम" कहे। तथा मान्यता प्राप्त शिक्षा को "बुनियादी तालीम।" या तो लोक शिक्षा को "नई लोक शिक्षा" तथा मान्यता प्राप्त तालीम को "नई तालीम।" यदि हमने "नित्य नई तालीम" को नई तालीम माना है तो क्या मान्यता की शिक्षा उस व्याख्या में आ सकेगी ?

जिस प्रकार व्याख्या के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार व्यक्ति के लक्ष्य के भी। वैसे ही, दोनों विभागो की आवश्यकता महसूस होती है—दोनो एक दूसरे में निहित है, दोनो एक दूसरे के बिना नही पनप सकते हैं। लेकिन यदि इस सिलसिले में हमने साफ विचार नही किया हो तो कार्यकर्ता और विद्यार्थी, दोनो के मन में उच्च या हीन गुत्थी बनने की आशका है।

इसलिये ऐसा लगता है कि यदि हम नई तालीम को लोक क्रान्ति का माध्यम बनाना चाहते हैं, तो अभी से चर्चा और स्पष्टीकरण होना आवश्यक है—ताकि यह तालीम दोनों दिशाओ में सहयोग, सहकार और पारस्परिक आदर भाव के वातावरण में आगे बढ सके।

यह मैंने सिर्फ चर्चा को शुरू करने के लिये कुछ निर्देशक सवाल उठाये है। आशा है कि आप उन्हे स्पष्टीकरण के लिये नई तालीम परिवार के सामने रख देंगे।

आपकी बहन
सरला देवी

टिप्पणियां

पढे लिखे लोगो और जो अभावग्रस्त नही है उनका यह फर्ज है कि वे अभाव द्वारा पीडित क्षेत्रो की सेवा करे। यह उनका केवल धार्मिक दृष्टि से फर्ज है, ऐसी बात नही, बल्कि यह उनपर ऋण है जिसे चुकाना आवश्यक है। इसके लिए राष्ट्र के जिम्मेदार व्यक्ति तरह-तरह से योजनायें बनाते हैं। हर्ष की बात है कि हम अपने इस धर्म को समझते जा रहे हैं। कुछ दिन पहले मौलाना आजाद मेडीकल कालेज के विद्यार्थियो के सामने भाषण देते हुए हमारे प्रधान मत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस बात पर जोर दिया और कहा कि जो सुविधायें समाज ने उन्हे दी है उनको सेवा के द्वारा ही चुकाया जा सकता है। इस प्रकार का चिन्तन करने वालो और उस पर अमल करनेवालो का हम अभिनन्दन करते है और आशा करते हैं कि शीघ्र ही युनिवर्सिटियो से निकलनेवाले केवल डाक्टरी पेशे पर ही नही बल्कि सभी टेकनिकल व नान टेकनिकल डिग्रीयाफ्ता नवयुवको में समाज के ऋण को सेवाओ द्वारा चुकाने की वृत्ति निर्मित होगी। किन्तु एक तथ्य की ओर हम ध्यान खेंचना चाहते है। वह है एक शैक्षणिक तथ्य। वह सेवा समाज को कभी भी प्रफुल्लित नही कर सकती जो जबरन या कानून के आधार पर ली जाती है। यह कहना भी कोई गलत नही होगा कि काम चाहे कितना भी अच्छा क्यो न हो, उसे जबर-दस्ती करा लेने के बडे भयानक खतरे होते है। शिक्षा प्राप्ति के बाद नवयुवको में हम अच्छे गुणो का दर्शन करना चाहते है, तो शिक्षाकाल में ही उनकी नीव डाले। शिक्षा का स्वरूप ऐसा बनाये कि सेवा एक "सूखा कर्तव्य" बनकर नही, बल्कि जीवन वृत्ति और जीवन साधना के स्वरूप में व्यक्ति में घुल जाय। यह कहते हुए हर्ष नही होता कि आज की टेकनिकल या नान टेकनिकल सारी शिक्षा व्यक्ति को अधिक स्वार्थ की तरफ ले जा रही है। देश के नवयुवक "उच्चतम शिक्षा" पाने के नाते बाहर जाते है, देश उनपर लाखो खर्च करता है, पर उनका मानस ऐसा बन जाता है कि वे स्वदेश लौटने की बात को जितना टाल सकते है, टालते है। बाहर की "नौकरियां" अधिक पैसा देने वाली होती है। मुद्दा यह है कि जब तक शिक्षा की बुनियाद ही नही बद-लेगी तब तक हमें "अच्छे काम" "कानून की शक्ति" के आधार पर करने का ही सूझता रहेगा। हमें डर है कि देश कुछ उधर की ओर अग्रसर होता हुआ ही नजर आ रहा है।

पुस्तक परिचय

माई नॉन वायोलेन्स : लेखक–एम. के. गांधी प्रकाशक–नवजीवन मंदिर, अहमदाबाद। पृष्ठ–३६२, मूल्य–रुपये पाच

आज भारत के ही नहीं, बाहर के भी शान्तिवादी अहिंसा के सिद्धान्तों और व्यावहारिक रूपों को समझने के लिये गाधीजी के जीवन कार्य तथा विचारों का अध्ययन करना चाहते हैं, क्योंकि गाधीजी ने ही पहले-पहल अहिंसा को प्रत्यक्ष जीवन क्षेत्र में–खास कर राजनैतिक क्षेत्र में–व्यावहारिक रूप में उतारा था। नवजीवन मंदिर ने पहले ही गाधीजी के अहिंसा विषयक सारे लेखों का सकलन "नान वायोलेन्स इन पीस एण्ड वार" नाम की किताब में कर दिया था, वह अहिंसा के ऊपर एक प्रमाणग्रथ ही बन गयी है। यह किताब दो भागों में और एक हजार पन्नों से अधिक की है, इसलिये पाठकों की सुविधा के लिये उसके एक सक्षिप्त रूप और सस्ते सस्करण की आवश्यकता महसूस हो रही थी। श्री शैलेश कुमार बन्दोपाध्याय के द्वारा सकलित व सपादित यह पुस्तक अब "माई नॉन वायोलेन्स" नाम से निकली है। जैसे सकलन कर्त्ता खुद लिखते हैं कि जिसको ऐसा एक भी शब्द इस्तेमाल करने की आदत नहीं थी, जिसकी बिलकुल जरूरत न हो, उस लेखक के वाक्यों का सक्षेप करना एक दुष्कर कृत्य है। फिर भी जब एक विषय पर कई जगह व कई प्रसगो पर बोलना-लिखना पडता है तो कुछ दोहराना तो अनिवार्य ही होता है, उनको निकाल कर साराश को पूरा बनाये रखने में सकलन कर्त्ता सफल हुए हैं। उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। हमें विश्वास है कि यह किताब अहिंसा के अध्ययन में अधिकाधिक लोगों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

आ०

प्राप्ति स्वीकार

मानवता की रचना– ले०–डा० पिटिरीम ए० सोरोकिन, प्र०–सर्व सेवा सघ, काशी, पृष्ठ–३०४, मूल्य रु० २–५०

हमारा राष्ट्रीय शिक्षण– ले०–चारुचन्द्र भडारी, प्र०–वही, पृष्ठ–३१९, मूल्य रु. २–५०

साहित्य का धर्म–ले०–विनोबा, प्र०–वही पृष्ठ–७९ मूल्य ५० न. पै.

आगे का कदम– (लेख सग्रह) प्र०–वही, पृष्ठ–१००, मूल्य ७५ न० पै०

चर्खा संघ का नव संस्करण– प्र०–वही, पृष्ठ–११२, मूल्य रु० १-००

वार आउट मोडेड–ले०–एन्थनी वीवर प्र०–हाउसमैन्स, लण्डन, पृष्ठ–६२, मूल्य रु० १–८८

गाधी एण्ड टेगोर–ले०–गुरुदयाल मल्लिक, प्र०–नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ–७७, मूल्य ८० न० पै०

स्ट्राइक्स– ले०–एम० के० गाधी, प्र०–वही, पृष्ट–३२, मूल्य ३० न० पै०

काग्रेस और उसका भविष्य–ले०–गाधीजी, प्र०–वही, पृष्ठ–२५, मूल्य ४० न० पै०

सेवाग्राम के पुराने विद्यार्थी यहां सडक के किनारे, आश्रम से करीब २ फर्लांग दूरी पर शल्मली पेड के नजदीक एक सफेद चबूतरे की याद करेंगे। पूज्य बा घूमने जाती थीं, थक जाती थीं तो उनके बैठने के लिये यह बनाया गया था। रामदास भाई की प्रेरणा से मार्च १९ता सुबह एक छोटे सुन्दर समारोह के साथ श्री आर्यनायकम्जी और आशादेवी के हाथ से उसके दोनों बाजू वृक्षारोपण का कार्यक्रम हुआ।

पुस्तक परिचय

माई नॉन वायोलेन्स : लेखक–एम. के. गांधी प्रकाशक–नवजीवन मंदिर, अहमदाबाद। पृष्ठ–३६२, मूल्य–रुपये पांच

आज भारत के ही नहीं, बाहर के भी शान्तिवादी अहिंसा के सिद्धान्तों और व्यावहारिक रूपों को समझने के लिये गांधीजी के जीवन कार्य तथा विचारों का अध्ययन करना चाहते हैं; क्योंकि गांधीजी ने ही पहले-पहल अहिंसा को प्रत्यक्ष जीवन क्षेत्र में–खास कर राजनैतिक क्षेत्र में–व्यावहारिक रूप में उतारा था। नवजीवन मंदिर ने पहले ही गांधीजी के अहिंसा विषयक सारे लेखों का संकलन "नान वायोलेन्स इन पीस एण्ड वार" नाम की किताब में कर दिया था, वह अहिंसा के ऊपर एक प्रमाणग्रंथ ही बन गयी है। यह किताब दो भागों में और एक हजार पन्नों से अधिक की है, इसलिये पाठकों की सुविधा के लिये उसके एक संक्षिप्त रूप और सस्ते संस्करण की आवश्यकता महसूस हो रही थी। श्री शैलेश कुमार बन्दोपाध्याय के द्वारा संकलित व संपादित यह पुस्तक अब "माई नॉन वायोलेन्स" नाम से निकली है। जैसे संकलन कर्त्ता खुद लिखते हैं कि जिसको ऐसा एक भी शब्द इस्तेमाल करने की आदत नहीं थी, जिसकी बिलकुल जरूरत न हो, उस लेखक के वाक्यों का संक्षेप करना एक दुष्कर कृत्य है। फिर भी जब एक विषय पर कई जगह व कई प्रसंगों पर बोलना-लिखना पड़ता है तो कुछ दोहराना तो अनिवार्य ही होता है, उनको निकाल कर साराश को पूरा बनाये रखने में संकलन कर्त्ता सफल हुए हैं। उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। हमें विश्वास है कि यह किताब अहिंसा के अध्ययन में अधिकाधिक लोगों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

आ०

प्राप्ति स्वीकार

मानवता की रचना– ले०–डा० पिटिरीम ए० सोरोकिन, प्र०–सर्व सेवा संघ, काशी, पृष्ठ–३०४, मूल्य रु० २–५०

हमारा राष्ट्रीय शिक्षण– ले०–चारुचन्द्र भंडारी, प्र०–वही, पृष्ठ–३१९, मूल्य रु. २–५०

साहित्य का धर्म–ले०–विनोबा, प्र०–वही पृष्ठ–७९ मूल्य ५० न. पै.

आगे का कदम– (लेख संग्रह) प्र०–वही, पृष्ठ–१००, मूल्य ७५ न० पै०

चर्खा संघ का नव संस्करण– प्र०–वही, पृष्ठ–११२, मूल्य रु० १–००

वार आउट मोडेड–ले०–एन्थनी वीवर प्र०–हाउसमैन्स, लण्डन, पृष्ठ–६२, मूल्य रु० १–८८

गांधी एण्ड टैगोर–ले०–गुरदयाल मल्लिक, प्र०–नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ–७७, मूल्य ८० न० पै०

स्ट्राइक्स– ले०–एम० के० गांधी, प्र०–वही, पृष्ट–३२, मूल्य ३० न० पै०

कांग्रेस और उसका भविष्य– ले०–गांधीजी, प्र०–वही, पृष्ठ–२५, मूल्य ४० न० पै०

सेवाग्राम के पुराने विद्यार्थी, यहां सड़क के किनारे, आश्रम से करीब २ फर्लांग दूरी पर शलमली पेड के नजदीक एक सफेद चबूतरे की याद करेंगे। पूज्य बा घूमने जाती थी, थक जाती थी तो उनके बैठने के लिये यह बनाया गया था। रामदास भाई की प्रेरणा से मार्च १६ ता सुबह एक छोटे सुन्दर समारोह के साथ श्री आर्यनायकम्‌जी और आशादेवी के हाथ से उसके दोनों बाजू वृक्षारोपण का कार्यक्रम हुआ।

Regd. No. N.-106

आज हमें यह सोचना है कि जो शान्ति-सैनिक बनेंगे उनके हाथ में शस्त्र कौन से होंगे। हिंसा की जो सेना होती है उनके हाथ में शस्त्रों का बल है। नये-नये शस्त्रों की खोज हो ही रही है। वैज्ञानिक उसे मदद दे रहे हैं। आधुनिक शस्त्रों से सेना जब लैस बनती है तब उसके सामने पुराने शस्त्र नहीं टिकते हैं। हमारी जो सेना होगी उसके हाथों में प्रीति और क्षान्ति-ये दो शस्त्र होंगे।

—विनोबा

श्री देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

मई-जून १९६१ वर्ष ९ · अंक ११-१२

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर शतवार्षिकी विशेषांक

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

Regd. No. N.-106

आज हमें यह सोचना है कि जो शान्ति-सैनिक बनेंगे उनके हाथ में शस्त्र कौन से होंगे। हिंसा की जो सेना होती है उनके हाथ में शस्त्रों का बल है। नये-नये शस्त्रों की खोज हो ही रही है। वैज्ञानिक उसे मदद दे रहे हैं। आधुनिक शस्त्रों से सेना जब लैस बनती है तब उसके सामने पुराने शस्त्र नहीं टिकते हैं। हमारी जो सेना होगी उसके हाथों में प्रीति और शान्ति-ये दो शस्त्र होंगे।

—विनोबा

श्री. देवी प्रसाद, अ० भा० सर्व सेवा संघ द्वारा नई तालीम मुद्रणालय, सेवाग्राम में मुद्रित और प्रकाशित।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ का शिक्षा विषयक मुखपत्र

मई–जून १९६१ | वर्ष ९ : अंक ११-१२

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर शतवार्षिकी विशेषांक

सम्पादक
देवीप्रसाद
मनमोहन

कई अवसर ऐसे होते हैं जब कि श्रद्धांजलि अर्पण करने के कार्यक्रम रस्मपूर्ति के तौर पर किये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का स्थान राष्ट्र के जीवन में होता है, तो हम उनका जन्मदिवस मनाकर उन्हें याद कर लेते हैं। परन्तु जब ऐसे महा-पुरुषों का जन्म दिवस मनाने का प्रसंग आता है जिनका स्थान इतिहास में तारीखों की सूचि में नहीं, बल्कि सकल मानव परिवार और मानवता के कण-कण में बन जाता है, तो हम उनका जन्म दिवस मनाने की रस्म अदा नहीं करते, ऐसे समय वाक् की विरति होती है, तब उस प्रसंग पर उनके स्मरण द्वारा हम अपने आप को कृतार्थ करते हैं।

आज तो ऐसा दिन है जिस दिन आज से सौ बरस पहले हमें जगाने वाले, हमारी दृष्टि को वैश्व रूप देने का प्रयत्न करने वाले, हमें प्रेम करना सिखाने वाले एक गुरु इस जग में जनमे थे। विश्व की वीणा के तारों के साथ उनके प्राण और मन अनुरणित थे। मानव की सच्ची स्वतंत्रता उसे मिले, इसकी उन्हें तड़पन थी।

जैसे बापूजी ने छोटी-छोटी बातों को लेकर मनुष्य को ऊपर उठने का पाठ दिया, गुरुदेव ने उसे उन छोटी-छोटी बातों से छुटकारा पाकर मानवीयता के उच्चतम शिखर तक की उड़ान लेने का पाठ दिया।

उन परमपूज्य गुरुदव के चरणों में शत-शत प्रणाम।

देवी प्रसाद

नई तालीम परिवार की ओर से

नई तालीम
(रवीन्द्र शतीपूर्ति विशेषांक)
वर्ष ९ अंक ११-१२
मई-जून १९६१

गुरुदेव द्वारा अंकित एक चित्र

वरद हस्त

कल रात को मैं सो गया
पढ़ते हुये कविता तुम्हारी।
स्वप्न में देखा कि तुम आये—
वही था रूप परिचित
शान्त सुंदर दिव्य
भारत के तपोधन ऋषि सरीखा
स्नेह बरसाती हुई वह दृष्टि;
वेद के शुभ मंत्र जैसी
अचल निर्मल सृष्टि।

क्षमा करना देव
तन निश्चेष्ट में
हो न पाया प्रणत भी श्री चरण में।
आकाशवाणी-सी तुम्हारी गूंजी,
'वत्स वर मांगो!'
'तुम्हारी भक्ति' केवल कह सका मैं;
भर गया ममकंठ
आँखें बह उठीं।

विष्णु ने ध्रुव से कहा था, अेवमस्तु;
किंतु तुमने हाथ रक्खा शीस पर
और हे कवि, तुम नहीं बोले।
तुम्हारा मौन
भर गया मेरे हृदय में
अेक अैसा बल
कि मैं निर्बल नहीं हूं।

कई अवसर ऐसे होते हैं जब कि श्रद्धांजलि अर्पण करने के कार्यक्रम रस्मपूर्ति के तौर पर किये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का स्थान राष्ट्र के जीवन में होता है, तो हम उनका जन्मदिवस मनाकर उन्हें याद कर लेते हैं। परन्तु जब ऐसे महापुरुषों का जन्म दिवस मनाने का प्रसंग आता है जिनका स्थान इतिहास में तारीखों की सूचि में नहीं, बल्कि सकल मानव परिवार और मानवता के कण-कण में बन जाता है, तो हम उनका जन्म दिवस मनाने की रस्म अदा नहीं करते, ऐसे समय वाक् की विरति होती है, तब उस प्रसंग पर उनके स्मरण द्वारा हम अपने आप को कृतार्थ करते हैं।

आज तो ऐसा दिन है जिस दिन आज से सौ बरस पहले हमें जगाने वाले, हमारी दृष्टि को वैश्व रूप देने का प्रयत्न करने वाल, हमें प्रेम करना सिखाने वाले एक गुरु इस जग में जनमे थे। विश्व की वीणा के तारों के साथ उनके प्राण और मन अनुरणित थे। मानव की सच्ची स्वतंत्रता उसे मिले, इसकी उन्हें तड़पन थी।

जैसे बापूजी ने छोटी-छोटी बातों को लेकर मनुष्य को ऊपर उठने का पाठ दिया, गुरुदेव ने उसे उन छोटी-छोटी बातों से छुटकारा पाकर मानवीयता के उच्चतम शिखर तक की उड़ान लेने का पाठ दिया।

उन परमपूज्य गुरुदव के चरणों में शत-शत प्रणाम।

देवी प्रसाद

मैं ऐसी शिक्षण-पध्दति चाहता हूं

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बहुत ही दु:ख के साथ मेरे मन में यह विचार जाग्रत हुआ कि शिशुओ की शिक्षा देने के लिए "स्कूल" नाम के जिस यत्र का निर्माण हुआ है, उसके द्वारा मानव शिशु की शिक्षा कतई पूरी नही हो सकती। सच्ची शिक्षा के लिए आश्रम की जरूरत है, जहा समग्र जीवन की सजीव पृष्ठभूमि मौजूद होती है।

गुरु तपोवन के केन्द्रस्थल में विराजते है। वे यत्र नही, मनुष्य होते है। उनका मनुष्यत्व निष्क्रिय नही, सक्रिय होता है—क्योकि वे मनुष्यत्व के लक्ष्य की परिपूर्ति के लिये प्रयत्नशील रहते है। इसी तपस्या के गतिशील धाराप्रवाह में शिष्य के चित्त को गतिशील बनाने की कोशिश करने का कार्य उनके लिए अपनी साधना का ही एक अग है। शिष्यो के जीवन को यह जो प्रेरणा मिलती है, उसके मूल में है गुरु की सगति। नित्य जागरूक मानव चित्त का यह जो सत्सग है, यही आश्रम की शिक्षण पद्धति का सब से मूल्यवान् उपादान है। यह सत्सग अध्यापन का कोई विषय, पद्धति या उपकरण नही होता है। गुरु का मन हर क्षण अपने आविष्कार में लगा रहता है और इसलिये अपने आपको भी वह दूसरो को दे रहा है। जिस प्रकार सच्चे ऐश्वर्य का परिचय त्याग की स्वाभाविकता में है, उसी तरह प्राप्ति का आनन्द दान देने के आनन्द में अपनी यथार्थता प्रमाणित करता है।

आज के युग में वस्तुओ के उत्पादन के कार्य को बढाने और उसमें गति देने के लिए ही यन्त्र के द्वारा व्यापक उत्पादन-व्यवस्था का प्रचलन हुआ है। ऐसी उत्पादित बाजारू वस्तुए प्राणवान् नही होती हैं। अत: 'हाइड्रालिक' चक्की के दबाव से भी उन वस्तुओ को कोई तकलीफ नही होती है। लेकिन शिक्षण का काम तो व्यापक उत्पादन की यान्त्रिक चेष्टा की रसहीन और निर्व्यक्तिक प्रणाली से हो तो वह मनुष्य के मन को पीडित करेगी ही। हमें यह मान कर चलना पडेगा कि आश्रम की शिक्षा उक्त प्रकार के शिक्षण का कारखाना नही होगा। यहा हरएक विद्यार्थी के मन को शिक्षक का प्राणमय स्पर्श होता रहेगा। इसी में दोनो पक्षो को आनन्द है।

मुझे एक बार एक जापानी सज्जन के घर में ठहराया गया था। वे बागवानी में विशेष रुचि रखते थे। उन्होने मुझ से कहा "मैं बौद्ध, मैत्री का साधक हू। मैं वृक्ष लताओ से प्रेम करता हू और मेरी यह प्रेम की अनुभूति उन पेड पौधो के अन्दर प्रवेश करती है। फिर उनसे मुझे इस प्रेम का प्रतिदान भी मिलता है।" प्रकृति के इस स्वाभाविक आनन्द का

सबध केवल कुशल बागवान से ही होता है, ऐसा नही। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि विद्यार्थी रूपी पौधो को बढाने वाले शिक्षकरूपी बागवान के सबध में भी यह बात पूर्ण रूप से लागू है। इसमें शका की कोई गुजाइश नही है। मन के साथ मन का मिलन होने से अपने आप खुशी होती है। और वह खुशी सर्जनशक्तिशील होती है। आश्रम का शिक्षादान इस प्रकार का खुशी का दान होता है। जिनके मन में केवल कर्तव्य भावना है पर खुशी नही, उनकी राह दूसरी है।

प्राचीन काल में हमारे देश के गृहस्थ वित्त की जिम्मेदारी स्वीकार करते थे। यथासमय उचित पात्र को दान देकर वे अपने आपको सार्थक मानते थे। इसी प्रकार ज्ञान के अधिकारी भी ज्ञान वितरण की जिम्मेदारी उठाते थे। उनको मालूम था कि जो उन्हे मिला है उसका दान करने का मौका नही मिलने पर वह अधूरा रह जायगा। गुरु शिष्य के बीच के इस प्रकार के परस्पर सापेक्ष सबध को ही मैंने विद्यादान के प्रधान जरियो के रूप में माना है।

और एक बात। गुरु के मन का शिशुभाव अगर सूख कर लकडी जैसा हो गया हो तो वह बच्चो की जिम्मेदारी लेने में असमर्थ है— ऐसा मानना चाहिए। केवल सामीप्य नही, विद्यार्थी तथा गुरु के बीच स्वाभाविक सायुज्य व सादृश्य रहना चाहिये। अन्यथा लेनदेन में आन्तरिक सबध रह नही पाता। अगर नदी के साथ आदर्श शिक्षक की तुलना की जाय, तो कहा जा सकता है कि केवल अगल बगल से आकर मिलनेवाली कई एक वृद्ध नदियो के सयोग से नदी पूर्ण नही होती है। उसके उद्गम के प्रथमारम्भ में उछलनेवाले प्रसन्नवदन झरने का प्रवाह पत्थरो के बीच खोना नही चाहिए। आदतन शिक्षक जब बच्चो की पुकार सुनते है, तो उसके अंदर का आदिम शिशु अपने आप कूद कर बाहर आ जाता है। प्रौढ कठ के भीतर से प्राणमय नवीन हास्य उछलकर निकलता है। बच्चे अगर यह महसूस न करे कि शिक्षक उन्ही लोगो की श्रेणी का ही एक जीव है, शिक्षक यदि उनके नजरो में एक प्रागैतिहासिक महाकाय प्राणी जैसा प्रतीत हो, तो उसके पजे की भयानकता देखकर वे निर्भीकता से उसकी ओर हाथ बढा नही सकेंगे। अकसर हमारे देश के गुरु प्रवीणता सिद्ध करने के लिए ही तत्पर होते हैं। यह सस्ते में प्रभुत्व जमाने के प्रलोभन का द्योतक है। बच्चों के आगण में डडेवाले नौकर के बिना अकेले जाने से उनकी इज्जत में कमी आयेगी, इसी डर से वे लोग सतर्क रहते हैं। इसलिए परिपक्व शाखा तथा नवीन शाखा में पुष्प प्रस्फुटित करने का, फल फैलाने का, हृदयगत सहकार की राह अवरुद्ध हो जाती है।

एक और गम्भीर विषय मेरे मन में था। बच्चे विश्वप्रकृति के एकदम नजदीक के होते हैं। वे आराम-कुर्सी में बैठकर विश्राम करना नही चाहते हैं। पेड पौधो के बीच घूमने की छुट्टी की अभिलाषा उनमें होती है। विशाल प्रकृति के अन्तर में आदिम प्राण का वेग गुप्त रूप से क्रियाशील है। शिशु के प्राण में वह वेग गतिसचार करता है। जीवन के प्रारम्भिक काल में अभ्यास के द्वारा अभिभूत हो जाने के पहले कृत्रिमता से छुटकारा पाने के लिए वे तरसते हैं। प्रौढो के शासन को टालते हुए वे सहज प्राणलीला की माग पेश करते हैं। आरण्यक ऋषियो के मन

में एक शाश्वत शिशु छिपा हुआ था। इसलिये किसी वैज्ञानिक सबूत का इन्तजार न करते हुए उन्होंने घोषणा की थी, "यदिद किंच सर्वं प्राण एजति नि सृतम्"–यह सभी कुछ प्राण से ही निःसृत होकर प्राण में ही सचरित हो रहा है। क्या यह कोई "बर्गसों" (दार्शनिक) की रचना है? यह तो एक महान् शिशु की वाणी है। शहरों की गूगी, बहरी, मुर्दा दीवालो के बाहर बच्चो के शरीर-मन में विश्वप्राण का यह स्पन्दन लगने दो। हमलोगो के आश्रम के बच्चो को इस प्राणमयी प्रकृति का स्पर्श केवल खेल, कूद के माध्यम से नाना प्रकार से मिला है, इतना ही नही, मैं सगीत के रास्ते से उन लोगों के मन को प्रकृति के रंगमहल में ले गया हू।

इसके बाद आश्रम की दैनदिन जीवनचर्या का प्रसग आता है। याद पड रहा है कि कादम्बरी काव्य मे एक वर्णन है–"तपोवन में सन्ध्या का आविर्भाव हो रहा है, मानो पाटली वर्ण की होमधेनु चरागाह से लौट रही है।" यह वर्णन सुनते ही आश्रम जीवन के गोचारण, गोदोहन, समिध आहरण, अतिथि–परिचर्या इत्यादि आश्रम के बालक–बालिकाओं के दैनदिन कृत्य याद आते हैं। इन्ही सब कामो के मातहत तपोवन के साथ उनलोगो के नित्य-प्रवाहित जीवन की योगधारा का सबन्ध जुड जाता था। प्रणायाम के अवकाश में केवल साम-मत्र गाया नही जाता था, बल्कि सब मिल कर सहकारिता के सख्य की वृद्धि के साथ आश्रम के सृष्टिकार्य का सचालन करते थे। इस प्रकार से आश्रम, आश्रमवासियो के कर्मसहकार याने सबके हाथों द्वारा बनी रचना का रूप धारण करता था। हम लोगों के आश्रम में इस प्रकार के सतत उद्योगशील कर्मसहकार की ही कामना हमने की थी। शिक्षक महोदय अगर बच्चों को गाय चराने के काम में लगाते तो नि सन्देह वे खुश होते, पर अफसोस है कि इस युग में वैसा सम्भव नही है। फिर भी बहुतेरे ऐसे काम हैं, जिसमें शरीर-मन को लगा सकते हैं और जो इस युग में चल सकते हैं। लेकिन हाय रे, पाठ को याद करने का काम हर वक्त बाकी रह जाता है और कापी भरी हुई है "काजुगेशन आफ वर्ब्स" से। खैर, मैंने जो विद्यानिकेतन की कल्पना की है, वहा पाठ रटने की कडी पद्धति को किसी तरह धक्का लगाकर भी परस्पर की सेवा करना तथा वातावरण बनाने को प्रमुख ध्यान दिया है।

आश्रम की शिक्षा को सही माने में सफल बनाने के लिए यथासम्भव कम-से-कम साधनो से काम चलाने की आदत डालना लाजमी है। जहा मनुष्य-प्रकृति में जडता रहती है, वहा दैनदिन जीवनचर्या कुश्री उच्छृखल तथा मलिन होने लगती है। अत वैसी परिस्थिति में मनुष्य की स्वाभाविक बर्बरता बिना रोक-थाम के प्रकट होती है। धनी समाज में आन्तरिक शक्ति का अभाव रहने पर भी बाह्य साधन की अधिकता के द्वारा कृत्रिम उपायो से इस दीनता को छिपाया जाता है। हमारे देश में प्राय धनिकों के घरो के अन्दर-बाहर का फर्क देखने पर यह प्रकृतिगत तामसिकता नजर आती है।

अपने वातावरण को अपनी कोशिश से सुन्दर, व्यवस्थित तथा स्वास्थ्यमय करते हुए मिल जुलकर रहने की सतर्क जिम्मेदारी निभाने की आदत बचपन से सहज ही आनी चाहिए। एक की शिथिलता औरो के लिए असुविधा, असभ्यता तथा नुकसान का कारण हो सकती

है–यह बोध सभ्य जीवनचर्या का आधार है। प्राय: हमारे देश के घर गृहस्थियों में इस बोध का अभाव दिखाई देता है।

सहकार की सभ्य नीति को क्रमश: सचेतन करना आश्रम की शिक्षा-व्यवस्था की प्रमुख देन है। इस देन को सफल बनाने के लिये शिक्षा के प्रारम्भिक वर्गों में जीवन साधनों की कमी अत्यावश्यक है। अत्यधिक वस्तुपरायण स्वभाव में चित्तवृत्ति की स्थूलता प्रकट होती है। सौन्दर्य तथा सुव्यवस्था मन की चीज है। उस मन को न केवल आलस्य तथा अनिपुणता से, परन्तु वस्तुलुब्धता से भी मुक्त करना पड़ेगा। रचनाशक्ति का आनन्द उतना ही सत्य होता है, जितना वह जड़ बाहुल्य के बंधन से मुक्त होता है। विभिन्न जीवन साधनों को यथोचित ढग से इस्तेमाल करने का अवसर उपयुक्त उम्र तथा स्थिति में बहुतों को मिल सकता है। पर उन व्यवहार्य वस्तुओं को बचपन से ही सुनियंत्रित करने की आत्मशक्ति मूलक शिक्षा हमारे देश में बहुत उपेक्षित रहती है। मेरी कामना है कि विद्यार्थी की उस उम्र से प्रतिदिन आसपास उपलब्ध कम-से-कम साधनों से सर्जन के आनन्द को सुन्दर ढग से उद्भावित करने का निरलस प्रयत्न करे तथा इसके माध्यम से सर्व साधारण को सुख, स्वास्थ्य तथा सुविधा प्राप्त कराने के कर्तव्य में उन्हे आनन्द की प्राप्ति हो।

हमारे देश में बच्चो के आत्मकर्तृत्वबोध को असुविधाजनक तथा आपत्तिजनक औद्धत्य मानकर सदा दबाने की कोशिश होती है। इसके फलस्वरूप उनके मन से परनिर्भरता की लज्जा चली जाती है व दूसरो के पास मागने की वृत्ति प्रोत्साहित होती है। भिक्षुकता के क्षेत्र में उन लोगो का अभिमान प्रबल होता है और दूसरो की त्रुटियों को लेकर कलह करने में वे आत्मप्रसाद लाभ करते हैं। आज इस लज्जाजनक दीनता का निदर्शन विद्यार्थियो के चारो तरफ परिदृश्यमान है। इससे छुटकारा मिलना चाहिए। विद्यार्थियो को यह साफ समझना चाहिए कि जहा बात-बात में शिकायत गूंज उठती है वहा खुद की लज्जा का कारण सचित होता है, आत्मसम्मान की बाधा। जिन लोगो के अन्दर त्रुटि सशोधन की जिम्मेदारी ग्रहण करने का अभिक्रम है, वे असन्तोषी वृत्ति की कारुपता के लिये धिक्कार बोध करते हैं। मुझे याद है कि विद्यार्थियो के प्रात्यहिक कामकाज से जिस समय मेरा प्रत्यक्ष सपर्क था उस समय कुछ बडे विद्यार्थी मेरे पास यह शिकायत लेकर पहुचे थे कि भोजन परोसते समय बडे-बडे पात्रो को फर्श के ऊपर घसीटकर ले जाने के कारण उनके नीचे के हिस्से का मैल सारे घर में फैलकर गदगी फैलाता है। मैंने कहा कि परेशानी तुम लोगो की है, पर स्वय कभी इसके प्रतिकार के लिये सोचते नही हो। मैं इसका प्रतिकार करूगा, इस भरोसे से मेरी राह देख रहे हो! तुम्हारे दिमाग में यह छोटी-सी बात सूझ नही रही है कि उस बर्तन के नीचे एक घास का बीड़ बाधने से ही उसका घर्षण निवारण हो सकता है। इस लापरवाही का एक मात्र कारण यह है कि तुम जानते हो कि सिर्फ निष्क्रिय भोक्ता का अधिकार तुम्हारा है और सभी चीजो की व्यवस्था का काम दूसरों का। इस प्रकार के बच्चे बडे होने पर सभी काम-काजो में निरतर असतोष प्रकट करते हुये अपनी मज्जागत अकर्मण्यता की लज्जा को दसो दिशाओ में गुजरित करते हैं।

इस विद्यालय में शुरू से ही मैं यह चाहता था कि आश्रम के नाना प्रकार के कामो की

व्यवस्था में विद्यार्थियों को यथासंभव कर्तृत्व का अवकाश देकर उनके चरित्र की अक्षम कलहप्रियता की घृण्यता से रक्षा करूं।

उपकरण की स्वल्पता को लेकर असंगत क्षोभ के साथ-साथ असंतोष प्रगट करने में भी चरित्र की दुर्बलता प्रकाशित होती है। वस्तुओं का कुछ अभाव रहना अच्छा है, स्वल्प में ही चलाने का आदी होना चाहिए। किसी प्रकार का प्रयत्न किये बिना सभी जरूरतों की पूर्ति करके बच्चों के मन को अनावश्यक लाड़ करने से अुनकी क्षति होती है। बच्चे सहज ही इतना कुछ नहीं चाहते—वे आत्मतृप्त होते हैं। हम ही लोग प्रौढ़ों की इच्छा को अुनके अूपर लाद कर अुनको वस्तुओं का नशा लगा देते हैं। शुरू से ही इस बात की शिक्षा देने की जरूरत है कि कितना कम लेकर वे काम चला सकते हैं। बाहर की सहायता जहां कम-से-कम होती है, शरीर तथा मन की शक्ति का सम्यक् अभ्यास वहीं सही ढंग से होता है। वहां मनुष्य का सृष्टि-अुद्यम अपने आप जागरित होता है। जिनका सृष्टि अुद्यम नहीं जगता है, प्रकृति अुनको कूड़े कचरे की तरह फेंक देती है। आत्मकर्तव्य का प्रधान लक्षण सर्जन-कर्तृत्व होता है। वही मनुष्य सही माने में स्वराट् है जो अपना साम्राज्य स्वयं सृष्टि कर लेता है। हमारे देश में स्त्री जाति के हाथों में अतिलालित बच्चे मनुष्योचित अुस आत्मप्रवर्तना के अभ्यास से शुरू से ही वंचित रह जाते हैं। इसलिये हम लोग दूसरों के कड़े हाथों के दबाव से दूसरों की इच्छा के सांचे के अनुसार रूप ग्रहण करने के लिये कीचड़ जैसे अत्यन्त लचीले ढंग से तैयार होते हैं। इसीलिये हम लोग दफ्तरों के निम्नतम विभाग में आदर्श कर्मचारी बन जाते हैं।

इस प्रसंग में मैं और अेक बात कहना चाहता हूं। ग्रीष्म प्रधान देशों में शरीरतंतु में जो शिथिलता होती है, अुसके कारण हो या और किसी कारणवश, हमलोगों की मानस-प्रकृति में जिज्ञासा वृत्ति की बहुत ही कमी है। अेक बार हमने अमेरिका से पानी अुठाने के लिये अेक वायुयंत्र (विन्ड मिल) मंगवाया था। अुम्मीद थी कि अुस विशाल यंत्र की घूमनेवाली पखड़ियों को देखकर बच्चे कुतूहल से भर जावेंगे। पर मैंने देखा कि बहुत थोड़े ही बच्चों ने अुसकी ओर गौर से देखा। निहायत अूपरी ढंग से अुन्होंने यह मान लिया कि वह केवल एक चीज मात्र है। केवल अेक नेपाली बच्चे ने अुसको गहराई से देखा था। अेक टीन के डिब्बे को काटकर अुसने अुसका अेक नमूना भी बनाया था। मनुष्य के प्रति हमारे बच्चों की उत्सुकता निहायत ही कम है, पेड़-पौधों पशु-पक्षियों के प्रति भी यही हाल है। स्रोत की धारा जैसा अुनका मन निरंतर बहता है, चारों तरफ की दुनिया की किसी भी चीज को पकड़ता नहीं।

उत्सुकता की विहीनता आन्तरिक निर्जीवता का लक्षण है। आज जिन सब जातिओं ने इस धरातल के अूपर अपने प्रभाव का विस्तार किया है, अुनके मन में दुनिया दारी की सभी कुछ चीजों के लिये कुतूहल का कोई अन्त नहीं है। केवल अपने देश के मनुष्यों या वस्तुओं के प्रति ही अुनका मन नहीं जाता है, बल्कि अैसा कोई देश, काल या विषय नहीं है जिस पर उनका मन दौड़ नहीं जाता। अुनका मन सोलह आना जिंदा है। अुन लोगों की यह सजीव चित्त-शक्ति सारी दुनिया में विजयी हुई है।

पहले ही कह चुका हूं कि आश्रम की शिक्षा परिपूर्ण रूप से जीने की शिक्षा है।

मुर्दा मनवाला भी पाठ रटकर परीक्षा में प्रथम श्रेणी के ऊर्ध्वशिखर पर अुठ सकता है। हमारे देश में हरदम इसकी मिसाले दिखाई देती हैं। हमारे देश में अच्छे लडके अुन्ही को कहा जाता है जिनका मन पुस्तको के पन्नो में ही सीमित रहता है। जो छपे हुये अक्षरो के प्रति निहायत आसक्त और जो कभी बाहर की प्रत्यक्ष दुनिया के प्रति नजर डालने का दुस्साहस नही करते। अैसे बच्चे अुपाधि हासिल कर सकते हैं, पर विश्व पर कभी हक जमा नही सकते। पहले से ही मैंने यह सकल्प किया था कि मेरे आश्रम के बच्चे आसपास की दुनिया के सबध में कुतूहली होगे। वे खोज करेंगे, परीक्षण करेंगे तथा सग्रह करेंगे। यहा अैसे शिक्षक समवेत होगे जिनकी दृष्टि पुस्तक के दायरे से बाहर सचरण करती है, जो चक्षुष्मान, अनुसधानी तथा विश्व कुतूहली हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति तथा उस ज्ञान के विषय-विस्तार मे उनके मन में आनन्द का बोध होगा, और उनकी प्रेरणा-शक्ति सहयोगी मडल की सृष्टि कर सकेगी।

अन्त में एक बात और। इस विषय को मैं सबसे प्रमुख मानता हू। पर शिक्षको का यह गुण सब से दुर्लभ भी है। शिक्षक होने की पात्रता केवल उनमें होगी जो धैर्यशील होते हैं व बच्चो के प्रति जिनके मन में एक सहज स्नेहभाव है। शिक्षकों के अपने चरित्र के सबध में एक बड़े खतरे की बात यह है कि जिनके साथ उनका व्यवहार चलता है, वे क्षमता में उनके समकक्ष नही होते हैं। थोडी-सी बात के लिये उन लोगो के प्रति असहिष्णु होना, उनको अपमान करना व सजा देना बहुत ही आसान होता है। जिसके बारे में निर्णय करना है वह यदि शक्तिहीन हो तो सहज ही गलत निर्णय करने का डर रहता है। क्षमता का सदुपयोग करने की स्वाभाविक योग्यता जिन लोगो में नही रहती वे न केवल बिना किसी रोक-टोक के अक्षम के प्रति अन्याय कर सकते हैं, बलिक वैसा करने में उनको एक प्रकार का आनन्द भी मिलता है। बच्चा अबोध तथा दुर्बल होने पर मा की गोद में इसलिये आता है कि उसको रक्षा करने का प्रधान उपाय—भरपूर स्नेह-भाव-मा के मन में भरा होता है। इतना होते हुये भी घर-घर में इस मिसाल की कमी नही मिलती है कि जहा स्वभाव में ओत-प्रोत असहिष्णुता तथा शक्ति का अहकार स्नेह को एक बाजू में रखकर बच्चो के प्रति नाजायज जुल्म बरसा करता है। बच्चो के सर्वांगीण विकास के लिये इससे जबर्दस्त बाधा और कोई नही होगी। बच्चो को कठिन या चरम दड देने का दृष्टान्त देखने पर मैं उसके लिये शिक्षक को ही जिम्मेदार ठहराता हू। पाठशालाओं में मूर्खता की दुहाई देकर विद्यार्थियो के ऊपर जो अत्याचार होता है, उसका तीन चौथाई स्वय गुरु को ही मिलना चाहिये। मैं जब विद्यालय का काम देखा करता था उस समय शिक्षक की कठोर न्यायदानपद्धति से लडको की रक्षा करना मेरे लिये एक दु साध्य समस्या जैसा था। अप्रियता कबूल करके भी मुझे इस बात को समझाना पडा है कि शिक्षक की आवश्यकता केवल शिक्षा के काम को बल-प्रयोग से सहज करने के लिये नही होती। आज तक चरम शासन से बहुत विद्यार्थियो को मैंने रक्षा की है। पर ऐसा एक भी प्रसग मुझे याद नही है जब कि मुझको उसके लिये कभी पश्चात्ताप करना पडा है। राष्ट्र व्यवस्था में ही हो या शिक्षा व्यवस्था में-कठोर शासन-नीति शासनकर्ता की ही अयोग्यता का द्योतक होता है।

धर्म की शिक्षा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बच्चो को पहले से ही धर्म की शिक्षा किस तरह की दी जाय, इसकी चर्चा आज पश्चिमी देशो में प्रबल हो उठी है। और शायद इसी कारण से यह चिन्ता हमारे देश में भी जाग्रत हो रही है।

धर्म के बारे में ससार के अधिकतर लोगो को एक सकट दीखता है। यह हम आम तौर से मानते है कि धर्म एक प्रार्थनीय वस्तु है। लेकिन वह प्रार्थना हमारे जीवन मे सत्य नही हो उठी। हम धर्म को चाहते तो हैं, लेकिन जहा तक हो सके, सस्ते भाव से। हमारी दूसरी सब आवश्यकताओ को पूरी करने के बाद जो कुछ बचता है या अधिक रहता है उसके द्वारा ही काम निबटा लेने का हम प्रयत्न करते हैं।

इसलिये धर्म शिक्षा के बारे में हम क्या चाहते है, वह जरा स्पष्ट रूप से समझ लेना जरूरी है। गीता में कहा गया है कि हमारी भावना जिस तरह की होगी सिद्धि भी उसी तरह की होगी। अगर हमने यह सोच लिया कि सब कुछ आज जैसा है वैसा ही रहेगा इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन नही होंगे, लेकिन हमें पूर्ण रूप से सफलता मिलेगी, तो यह पीतल को सोना बनाने के व्यवसाय जैसा होगा।

लेकिन ऐसी एक अवस्था होती है जब धर्म की शिक्षा एकदम सहज होती है, उतनी सहज जितनी निश्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया। जब किसी कारण से समाज में धर्म का बोध उज्ज्वल हो उठता है, तब स्वभावत. धर्म के लिये समाज में लोग बडे से बडे त्याग करते हैं। धर्म के लिये मनुष्य का प्रयास नाना रूप से प्रगट होता है। उस समाज के बच्चो को धर्म की महिमा समझाने के लिये किसी प्रकार की बाहरी ताडना का प्रयोजन नही होता। ऐसे समाज के अधिकाश लोग प्रेरणा से, आनन्द के साथ अपनी साधना के लिये हर प्रकार की कठोरता का वरण करते हैं। धर्म जहा समाज में परिव्याप्त है, धर्म की शिक्षा वहा स्वाभाविक है। लेकिन धर्म शिक्षा जहा जीवन यात्रा का एक अग मात्र बन गई है, वहा चाहे मत्री लोग कितनी ही मत्रणा करे, धर्म की शिक्षा के लिये कोई रास्ता नही दिखाई देता है।

हम नये युग के मनुष्य है, हमारी जीवन-यात्रा सरल नही। भोगो का आयोजन, प्रचुर अभिमान, धर्म जीवन हमारे लिये सामाजिकता का एक अशमात्र है। इस तरह धर्म को अगर हम जीवन की एक श्रेणी में ढकेलकर फिर इस चिता से उद्विग्न हो कि भद्रता की रक्षा के लिये बच्चो को थोडी-सी धर्म शिक्षा किस तरह दी जाय, इसका सहज उपाय किस तरह निकाला जाय, तो इसका उत्तर देना कठिन होगा। तो भी आज की परिस्थिति को सामने रखकर हमें उपाय ढूढ निकालना है। इस

विषय में विचार विनिमय करने की आवश्यकता है, इसके बारे में कोई भी सदेह नही ।

एक बात मुझे विशेषरूप मे कहनी है । जहां हम धर्म की शिक्षा देंगे, यह काम प्रबल रहेगा वहां धर्म की शिक्षा कभी सहज नही होगी । जैसे कि दीपशिखा दूसरों को प्रकाश देने के लिए व्यस्त होकर नही घूमती है—वह अपने आप जितनी उज्ज्वल होती है उतना ही दूसरो को प्रकाश देती है । धर्म के लिए भी यही बात है । यह आलोक जैसा स्वयंप्रकाश है । धर्म के क्षेत्र में देना या लेना एक ही प्रक्रिया है, और वह साथ-साथ चलती है । इसलिए धर्म शिक्षा के लिए स्कूल नही हो सकता, आश्रम ही हो सकता है । जहा मनुष्य की धर्म साधना अहोरात्र प्रत्यक्ष हो उठती है, और जहा सब कर्म ही धर्म के अंगरूप अनुष्ठित होता है, वहा स्वभाव के नियम से धर्मबोध का उद्बोधन होता है ।

'खापछाडा' पुस्तक से

इस देश में एक दिन तपोवनो का यह काम था । वहा साधना और शिक्षा एकत्र मिली होती थीं, इसलिए लेने और देने का काम सहज रूप से नियत व अनुष्ठित होता रहता था । धर्म शिक्षा के लिये ऐसे आश्रम की आवश्यकता है, जहा विश्व प्रकृति के साथ मानव-जीवन के संयोग में कोई व्यवधान नही है । जहा लता–पशुपक्षियो के साथ मनुष्य का आत्मीय सबध स्वाभाविक है, जहा भोग का आकर्षण और उपकरणो की बहुलता से मनुष्य का चित्त क्षुब्ध नही होता, जहां साधना सिर्फ ध्यान में विलीन नही है, लेकिन त्याग और मगल कार्य के द्वारा ही नित्य अपने को प्रगट करती है, जहां सकीर्ण देश, काल और पात्र के भेद के द्वारा कर्तव्य-बुद्धि खडित नहीं है, जहा विश्व जन के कल्याण के आदर्श का अनुष्ठान गंभीर रूप से विराजित है, जहां परस्पर के प्रति व्यवहार में श्रद्धा है, ज्ञान की चर्चा में उदारता और सब कालो के महापुरुषों के चरित्र के पुण्यस्मरण से-भक्ति की साधना से-मन सरस रहता है ।

जब ईश्वर ने मानव का सृजन किया तो उसे आकृति-सौन्दर्य और रूप-लक्षण की अनुपमता से प्रबुद्ध किया । जब उसका काम पूरा हुआ तो उसने कहा : "यही अति है, इति नहीं" । बाकी का काम तुम्हें ही सम्पन्न करना है । पूर्णता की प्राप्ति के लिए मानव का अथक प्रयत्न ही कला है ।

—रवीन्द्रनाथ

नही होता। बडा तो होता है अन्दर की सम्पत्ति से। लेकिन धर्म के अनुसार राज्य चलाना भी राजा का कर्त्तव्य है, इसलिये प्राणो की बाजी लगाकर भी वे कर्त्तव्य का पालन करते थे। लेकिन एक बार युवराज बडा हो गया तो वे समझते थे कि उनका कर्त्तव्य पूरा हो गया है। तब वे और अपने राज्य को पकड कर बैठे नही रहते थे।

गृहस्थी के लिये भी अैसा ही नियम था। जब ज्येष्ठ पुत्र बडा हो जाता था तब अुसके हाथ में घर गृहस्थी सौंप कर दरिद्र का वेश धारण करके तपस्या करने के लिअे वे निकल जाते थे। जब तक गृहस्थाश्रम में रहना पडता तब तक सारी शक्ति लगाकर घर ससार, सगे, सबधी, पडौसी, अतिथि, अभ्यागत, गरीब अनाथ किसी को भूलते नही थे। अपना सुख, अपना स्वार्थ दूर रखकर अुन्ही की सेवा करते थे। लेकिन अुसके बाद जब गृहस्थाश्रम की अवधि पूरी हो जाती तब धन सपत्ति घर गृहस्थी के ऊपर नजर भी नहीं डालते थे।

अुस समय जो व्यापारी थे अुन्हे भी धर्म के मार्ग पर—सत्य के मार्ग-पर चलना पडता था। किसी को ठगना, अन्याय से सूद वसूल करना, कजूस जैसा सब धन सिर्फ अपने भोग के लिये जमा करके रखना, ये सब कार्य अुनके द्वारा नही होते थे।

जो राज्य करते थे, जो व्यापार करते थे, या जो श्रम करते थे सब की भलाई के लिअे ब्राह्मण लोग चिंतन करते रहते थे। अुनके जीवन का अेकमात्र ध्येय यही रहता था कि किस तरह समाज में धर्म रहे, सत्य व्यवस्था रहे, और सबका कल्याण हो। अिसलिअे अुनके आदर्शों के अनुसार, अुनके अुपदेश से सब कोई भलाई के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते थे। समाज में शील था, प्रगति थी। हमारे पूर्वज जिस शिक्षा का, जिस व्रत का अवलम्बन करके बडे हुअे थे, वीर बने थे, अुसी शिक्षा को अुसी व्रत को ग्रहण करने के लिये तुम सबका इस निर्जन आश्रम में मैंने आह्वान किया है। तुम लोग मेरे पास आये हो, मैं उन प्राचीन ऋषियों की सत्यवाणी और उनका उज्जवल चरित्र मन के अन्दर सर्वदा धारण करके उन महापुरुषों के पथ पर तुमको सदा चलाते रहने का प्रयत्न करूगा। हमारे व्रतपति ईश्वर मुझे वह बल और योग्यता प्रदान करे। अगर हमारा सम्मिलित प्रयत्न सफल होगा तो तुम में से प्रत्येक बालक सच्चे अर्थ में वीर बनोगे। तुम भय से व्याकुल नही होगे, दु.ख से विचलित नही होगे, क्षति से म्रियमाण, धन के अभिमान से स्फीत नही होगे, मृत्यु की उपेक्षा करोगे, सत्य को जानना चाहोगे और मिथ्या को अपने मन से, वाणी से, और कर्म से दूर करने का प्रयत्न करोगे। इस ससार में अदर और बाहर एक ईश्वर विराजमान है, यह निश्चित रूप से जानकर तुम सदासर्वदा आनन्द के साथ सब प्रकार के अन्याय कार्यों से निवृत्त रहोगे। अपनी सारी शक्तियो को लगाकर कर्त्तव्य करोगे और धर्म के मार्ग पर चलते रहोगे। ससार की उन्नति की साधना करोगे। और जब धन सम्पत्ति और घर गृहस्थी छोडने का समय आयेगा तब व्याकुल नही होगे।

तुम्हारे प्रयत्न से यह भारतवर्ष फिर से उज्ज्वल हो उठेगा, तुम जहा रहोगे वही मगल होगा। तुम सबकी भलाई करोगे और तुमको देखकर सब अच्छे रहेंगे।

हमारे जो पूर्वज थे वे किस प्रकार को

शिक्षा और किस प्रकार के व्रत को स्वीकार करते थे ?

बाल्यावस्था में ही वे घर छोडकर एकान्त में गुरुगृह जाकर रहते थे। और बहुत ही कठिन नियमों के अनुसार सयम की साधना करते थे। तन मन धन से गुरु की भक्ति करते थे और गुरु का सब काम कर दिया करते थे। कितने ही बडे धनी के पुत्र क्यों न हों, अपने गुरु के लिये लकडी काटते थे, पानी भरते थे, गाय चराते थे और गाव-गाव से भिक्षा मागकर लाते थे।

अपने शरीर और मन को पवित्र रखते थे जिससे उनके शरीर और मन को कोई दोष स्पर्श न करे। गेरुआ वस्त्र पहिनते थे, कठिन बिस्तर पर सोते थे, पैरो में जूते नही पहिनते थे और न सर पर छाता ही लगाते थे। किसी प्रकार के विलास या आराम का उपयोग नही करते थे। सच्ची शिक्षा की प्राप्ति के लिये, सत्य के सधान में, अपनी खराब प्रवृत्तियो का दमन करने में और अपने अच्छे गुणा का विकास करने में अपनी सारी शक्तिया नियोजित करते थे।

> अतर मम विकसित करो
> अतरतर हे !
> निर्मल करो, उज्ज्वल करो
> सुन्दर करो हे !
> जाग्रत करो, उद्यत करो
> निर्भय करो हे,
> मगल करो, निरलस करो
> नि सशय करो हे !
> युक्त करो हे सब के सग मे
> मुक्त करो हे बध;
> करो सचरित सब कर्मों में
> शांत तुम्हारा छद !
> चरण कमल मे, मेरा मन
> निस्पदित करो हे !
> अतर मम विकसित करो
> अन्तरतर हे।
>
> —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तुम लोगो को इसी तरह हर प्रकार का दु ख-कष्ट स्वीकार करके, कठिन नियमा का पालन करके, हर प्रकार के विलास और आराम को तुच्छ समझकर यहा गुरुगृह में वास करना होगा। सर्वान्त.करण से उपेक्षा न हो, इसके प्रति तुम ध्यान रखना। अपने शरीरको तुम पवित्र रखना, किसी प्रकार का दोष उसे स्पर्श न करे, और अपने मन को गुरु के उपदेशो के अनुसार सपूर्ण रूप से अपने अधीन रखना।

आज से तुम लोगो ने सत्यव्रत को ग्रहण किया है, हर प्रकार के मिथ्या को मन, वचन और कर्म से दूर रखो। सब से पहिले सत्य को जानने के लिए नम्रता के साथ अपना सारा मन, अपनी सारी प्रवृत्तियो और बुद्धि को प्रेरित करो और उसके बाद तुम जिसे सत्य के रूप से जानोगे, निर्भय वृत्ति और तेजस्विता के साथ उसकी घोषणा और पालन करना।

आज से तुम लोगों ने अभयव्रत को ग्रहण किया है। इस ससार में एकमात्र धर्म को छोडकर और किसी प्रकार का भय तुम लोगो के लिए नही रहा। न आपत्ति का भय, न मृत्यु का भय न दु ख-कष्ट का भय। सदा-सर्वदा, दिन और रात प्रफुल्ल चित्त से प्रसन्नता के साथ, श्रद्धा के साथ सत्य की प्राप्ति के लिए, धर्म की प्राप्ति के लिए तुम अपने को नियुक्त रखोगे।

आज से तुम लोगो ने पुण्यव्रत को धारण किया। जो अपवित्र है, कलुषित है, जिसे प्रकट करने में हमें लज्जा का अनुभव होता है, उसे प्राणान्त प्रयत्न से शरीर और मन से दूर करके प्रभात की ओस से सींचे हुए फूल जैसे तुम पुण्य के मार्ग में विकसित होते रहो।